Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

प्रथम सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)-101

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहित्य

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)-101**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
श्रीमती प्रज्ञा दुबे,
असि0प्रोफे0-ए.सी. उ0मु0वि0वि0,हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सह सम्पादक
डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड**	**इकाई संख्या**
डॉ0 नीरज कुमार जोशी असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 1** **खण्ड 2** **खण्ड 3**	(इकाई 1 से 5) (इकाई 1 एवं 2) (इकाई 2 एवं 5)
डॉ०उमेश कुमार शुक्ल प्रवक्ता व्याकरण, श्री. ला. श. पं. सं. महा. भीलवाड़ा , राजस्थान	**खण्ड 2**	(इकाई 3 एवं 4)
डॉ० चन्द्रकान्त दीक्षित सरदार पटेल, महाविद्यालय, कुशीनगर	**खण्ड 2**	(इकाई 5 एवं 6)
डॉ0 भगवती पन्त उ 0 मु 0 वि 0 वि 0, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 1)
डॉ0 संगीता बाजपेयी अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 3 एवं 4)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139 **कॉपीराइट** @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहित्य
प्रकाशन वर्ष : 2023 **ISBN No.**
मुद्रक:

नोट:- इस पुस्तक में लिखित इकाइयों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की आपत्ति के निस्तारण का उत्तरदायित्व इकाई लेखक का होगा। इस सामाग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित प्रशासनिक अनुमति के बिना अन्यत्र कहीं नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) संस्कृत पद्यकाव्य का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई-1 संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास	04 -23
इकाई-2 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास	24 -34
इकाई-3 संस्कृत गीति एवं मुक्तक काव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास	35 -46
इकाई-4 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों का परिचय- (कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, श्रीहर्ष)	47 -62
इकाई-5 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख नीतिकवियों का परिचय- (जयदेव, भर्तृहरि, अमरूक, पण्डित नारायण)	63 -76
खण्ड- दो (Section-B) कुमारसम्भवम् एवं किरातार्जुनीयम्	**पृष्ठ संख्या 77**
इकाई-1 महाकवि कालिदास का परिचय एवं कुमारसम्भवम्	78-92
इकाई-2 महाकवि भारवि का परिचय एवं किरातार्जुनीयम्	93-106
इकाई-3 कुमारसम्भवम् - प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 1 से 30 तक (मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या)	107-129
इकाई-4 कुमारसम्भवम् - प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 31 से 60 तक (मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या)	130-151
इकाई-5 किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 01 से 25 तक (मूलार्थ, अन्व एवं व्याख्या)	152-177
इकाई-6 किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 26 से 40 तक (मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या)	178-191
खण्ड- तीन (Section-C) नीतिशतकम् एवं हितोपदेश	**पृष्ठ संख्या 192**
इकाई-1 संस्कृत नीतिसाहित्य का परिचय एवं परम्परा	193 -208
इकाई-2 भर्तृहरि का जीवनवृत्त एवं उनकी पद्धतियों का वर्णन	209 -221
इकाई-3 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 1 से 60 तक अनुवाद एवं व्याख्या	222 -258
इकाई-4 प. नारायण का जीवनवृत्त एवं हितोपदेश की कथाओं का सारांश	259 -269
इकाई-5 हितोपदेश की चार प्रमुख कथाओं का वर्णन- मूलपाठ,अर्थ एवं व्याख्या	270 -296

संस्कृत पद्यकाव्य का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य
खण्ड – एक BLOCK-I

इकाई-1 संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास
    1.3.1 महाकाव्य : अर्थ एवं लक्षण
    1.3.2 महाकाव्य : उत्पत्ति एवं विकास
    1.3.3 महाकाव्य के सम्बन्ध अन्य मत
    1.3.4 संस्कृत महाकाव्य परम्परा
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि जी को आदिकवि तथा उनके रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। इसी तरह से संस्कृत महाकाव्यों में महाभारत का भी बहुत बड़ा महत्त्व है। इन दोनों ग्रन्थों का अनुकरण कर कवियों ने प्रेरणा लेकर अपनी अपनी रचनाएं की। काव्य का अध्ययन करने से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है। मम्मटाचार्य ने कहा है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।"

काव्य अध्ययन का प्रयोजन कीर्तिलाभ, धनलाभ, व्यवहारज्ञान, अशुभ निवारण, कान्ता के समान उपदेश, तत्काल परम आनंद की अनुभूति- ये सब प्राप्त होते हैं। । काव्य के समान संगीतादि अन्य सभी ललित कलाओं का परम श्रेष्ठ प्रयोजन माना गया है। इन प्रयोजनों के के साथ नैसर्गिक प्रतिभा बहुश्रुतता और अन्यान्य शास्त्रविद्या, कला आचारपद्धति आदि का ज्ञान भी सभी साहित्यकारों ने काव्यनिर्मिति के लिए आवश्यक माना है। इन सभी कारणों से काव्य का शिक्षण प्रधान है। संस्कृत साहित्य में रामायण महाभारत, रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित इत्यादि सुप्रसिद्ध महाकाव्य हैं। इस इकाई में आप महाकाव्य लक्षण, महाकाव्य उत्पत्ति एवं विकास, संस्कृत महाकाव्य परम्परा के काव्य ग्रन्थों के विषय वस्तु , शैली एवं रस का अध्ययन करेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- महाकाव्य शब्द से परिचित होंगे।
- संस्कृत महाकाव्य परम्परा से परिचित हो सकेगें।
- संस्कृत साहित्य में कुछ प्रमुख महाकाव्यों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- इसके अध्ययन से आप महाकाव्य उत्पत्ति एवं विकास को बता सकेगें।
- संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के इतिहास से परिचित होंगे।
- इसकी सहायता से आप महाकाव्य विषयक प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें।
- महाकाव्य के स्वरूप से परिचित होंगे ।
- संस्कृत महाकाव्य की परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

1.3.1 महाकाव्य : अर्थ एवं लक्षण—

संस्कृतसाहित्य का आगार विविध काव्य विधाओं से परिपूर्ण है। काव्य-शैली की श्रेष्ठता की दृष्टि से भारतीय साहित्य में संस्कृत के महाकाव्य सर्वोपरि माने जाते हैं और उनके रचनाकारों को महाकवि नाम से अभिहित किया जाता है। प्रारम्भ में दृश्य और श्रव्य काव्य के रूप में काव्य को दो भेद माने जाते हैं, इसमें श्रव्य काव्य का प्रथम भेद महाकाव्य कहलाता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के लिए सर्गबन्द नाम का प्रयोग किया गया है। साहित्यशास्त्र में भी **'सर्गबन्धो महाकाव्यम्'** इत्यादि लक्षण किया गया है । परन्तु अधिकतर महाकाव्यों में सर्गान्त टिप्पणी या पुष्पकाओं में सर्गबन्ध की स्थापना पर 'महाकाव्य' शब्द का ही प्रयोग किया

गया है। बुद्धचरित, सौन्दरनन्द, सेतुबन्ध, कुमारसम्भव, रघुवंश आदि की सर्गान्त टिप्पणी में महाकाव्य नाम का ही प्रयोग मिलता है। इससे यही ज्ञान होता है कि महाकाव्य के लिए सर्गबन्ध शब्द पर्यायवाची होने पर भी इसे 'महाकाव्य' नाम से ही अभिहित किया गया। वैसे कुछ आचार्यों के अनुसार असर्गबन्ध भी महाकाव्य रचे जाते थे।–**सर्गबन्धों महाकाव्य मिति केचित् प्रचक्षते । असर्गबन्धंमपि च महाकाव्यामितीष्यते।।** परन्तु असर्गबन्ध महाकाव्य वर्तमान में अनुपलब्ध है। महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में रचित महाकाव्यों के नाम क्रमश: 'आश्वाबन्धय' और सन्धि-बन्धट है। 'सेतुबन्ध' नामक महाकाव्य इसका प्रमाण है। सन्धि या बन्ध नाम सर्गान्त में प्रयुक्त होने पर भी इन्हे महाकाव्य नाम से ही अभिहित किया जाता है। इससे यदि सिद्ध होता है कि काव्यशास्त्रीय लक्षणानुसार आकार-प्रकार वाली काव्य रचना के लिए 'महाकाव्य' नामक रूढ़ सा हो गया है।

संस्कृतसाहित्य के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के स्वरूप पर प्राय: सभी आचार्यों ने प्रकाश डाला है। भामह प्रथम आचार्य माने जाते हैं जिन्होंने 'महाकाव्य' की परिभाषा सर्वप्रथम प्रस्तुत की। भामह की परिभाषा के अनुसार 'सर्गबन्ध' महाकाव्य कहलाता है। महाकाव्य के सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा सर्वमान्य रही है। आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्यदर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है। इनके अनुसार महाकाव्य में निम्न लक्षणों का समावेश होना चाहिए। जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर: ।
सद्वंश: क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वित: ।।
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा ।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते ।।
अड्.गानि, सर्वेऽपि रसा: सर्वे नाटक सन्धय: ।
इतिासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गा: स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत ।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयै: पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै: ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा: सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमय: क्वापि सर्ग: कश्चन दृश्यते ।।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत् ।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासरा:
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागरा: ।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वरा: ।।
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादय: ।
वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा ।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु ।।

आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है।

1- महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्ग न तो छोटे हों और बड़े, उनकी संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।

2- महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त, देवता व कुलीन क्षत्रिय होना चाहिए। एक वंश के अनेक क्षत्रिय राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।

3- महाकाव्य में श्रृंगार, वीर या शान्त रस में से कोई एक प्रधान होना चाहिए तथा अन्यि रसों का अंग रूप में निर्वाह होना चाहिए। नाट्य सन्धियों का भी इसमें समावेश होना चाहिए।

4- महाकाव्य की कथावस्तु पौराणिक आख्यान, ऐतिहासिक या सज्जन चरित्र पर आधारित होनी चाहिए । इसमें दूत, मन्त्र, युद्ध, प्रयाण, प्रात: काल, समुद्र, वन, पर्वत,ऋतु आदि का यथा योग्य समावेश अपेक्षित है।

5- महाकाव्यय में पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक को सफल बनाने की योजना होनी चाहिए। इसमें नायक का अभ्युदय दिखाना चाहिए।

6- महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए।

7- प्रत्येक वर्ग में एक छन्द का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन होना चाहिए। किसी एक सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

8- सर्ग की समाप्ति पर अगले सर्ग की कथा की सूचना दी जानी चाहिए।

9- महाकाव्य में दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा का विधान होना चाहिए अन्त में नायक की विजय या उत्कर्ष का उल्लेख होना चाहिए।

10- कवि निबद्ध छन्द, नायक के नाम अथवा कथानक की घटनाओं के अनुसार प्रत्येक सर्ग का नामकरण होना चाहिए । महाकाव्य का नामकरण कवि, वृत्त और नायक के नाम पर हो सकता है। काव्य वैशिष्टय को ध्यान में रखकर सामान्य लक्षणों के अनुसार महाकाव्य में कथानक, रस, छन्द अलंकार आदि का समन्वय किया जाता है और उसमें काव्यसौष्ठव पर अतिशय ध्यान रखा जाता है।

दण्डी के अनुसार महाकाव्य के लक्षण–

1. महाकाव्य में सर्ग होने चाहिए।
2. आरम्भ में आशीर्वाद, वंदना अथवा किसी वस्तु का वर्णन होना चाहिए।
3. महाकाव्य का फल धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों की प्राप्ति में निहित होना चाहिए।
4. महाकाव्य का नायक चतुर और उदात्त होना चाहिए।
5. महाकाव्य में नगर, समुद्र आदि प्रकृतिक तथा विवाह, कुमारजन्म, मन्त्रणा इत्यादि के साथ नायका अभ्युदय होना चाहिए।
6. महाकाव्य में रस और भावों का निरंतर संचरण हो।
7. महाकाव्य में मुख-प्रतिमुख आदि सन्धियों का समावेश होना चाहिए।

1.3.2 महाकाव्य : उत्पत्ति एवं विकास—

महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों- इन्द्र, वरुण, विष्णु और ऊषा आदि के स्तुतिमंत्रों तथा नराशंसी गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन अख्यान आदि का विस्तृत रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में बदल गया। क्रौंचवध से दु:खी मनवाले महाकवि वाल्मीकि के वाणी से निकला व्याध-शाप (मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्...) वाल्मीकिकृत रामायण के रूप में आदि काव्य के गौरव को

प्राप्त कर लिया तथा इसके प्रणेता वाल्मीकि को आदिकवि का गौरव प्राप्त हुआ। वाल्मीकिकृत रामायण तथा रामायण के बाद वेदव्यास कृत महाभारत भी परवर्ती कवियों का उपजीव्य काव्य बन गये।

भारतीय परम्परा वेद को ही काव्य, शास्त्र आदि का उत्पत्तिस्थल मानती रही है। वैदिक मनीषी की सर्वाधिक मनोहर कल्पनायें ऋग्वेद के उषस् सूक्तों में समस्त काव्यात्मक उन्मेष के साथ निकली हुई है। देवस्तुति के अतिरिक्त नाराशंसियों में भी काव्यात्मक रूप झलकता है। तत्कालीन उदार राजाओं की प्रशंसा में नितान्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ नाराशंसी कहलाती है। ऐतरेयब्राह्मण की सप्तम पंचिका में शुनःशेप आख्यान एवं अष्टम पंचिका में 'ऐन्दमहाभिषेक'के अनेक अंश सुन्दर काव्य की छटा बखिरते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में काव्यतत्त्वों का अस्तित्त्व तो दृष्टिगोचर होता है किन्तु महाकाव्य शैली का पूर्ण परिपाक कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

संस्कृतसाहित्य में महाकाव्य के विकास की दशाएँ स्पष्ट ज्ञात नही होती हैं। हमें रामायण, महाभारत के अनन्तर कविकुल कालिदास के परिमार्जित महाकाव्य प्राप्त होते हैं। इसके अन्नतर भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि की प्रौढ शैली के दर्शन होते हैं।

संस्कृत महाकाव्यों की मूल उद्गम स्थली आदिकाव्य रामायण ही है, जिसमें महाकाव्य की सभी विशेषताओं का दर्शन हो जाता है। संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की विकास-परम्परा में संस्कृत व्याकरण के 'मुनित्रय' - पाणिनि, वररुचि तथा पतंजलि का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आचार्य रुद्रट द्वारा रचित 'काव्यालंकार सूत्र' के टीकाकार नेमिसाधु ने पाणिनि द्वारा रचित महाकाव्य 'जाम्बवतीजय' या 'पातालविजय' का उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य (ईस्वी पूर्व द्वितीय शती) में काव्यगुणों से सम्पन्न पद्य उपलब्ध होते हैं। इन सब प्रमाणों के आधर पर महाकाव्य का उदय ईस्वी पूर्व की अष्टम शती में ही पाणिनि द्वारा हो चुका था। सूक्तिग्रन्थों में राजशेखर ने पाणिनि को 'व्याकरण' तथा 'जाम्बवतीजय' दोनों का रचयिता माना है।

महाकाव्य के विकास का इतिहास हम दो रूपों में करते हैं। रूपगत विकास एवं शैलीगत विकास, रूपगत विकास के अन्तर्गत सबसे पहले वैदिक काल आता है जिनमें आख्यान, देवस्तुति, भावप्रधनता इत्यादि आते हैं। वीरमहाकाव्य के अन्तर्गत रामायण, महाभारत एवं आाख्यान तत्त्वों की प्रधनता आती है। लौकिक महाकाव्य में कालिदास एवं परवर्ती काव्यकारों ने भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की उदात्तता पर बल दिया है।

महाकाव्य के शैलीगत विकास में रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। अलंकारात्मक शैली, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। श्लेषात्मक शैली, द्वयर्थक काव्यों में प्राप्त होती है। द्वयर्थक काव्य ध्नंजयकृत- द्विसन्धनकाव्य, कविराजसूरिकृत-राघवपाण्डवीय, राघवचूड़ामणिदीक्षितकृत-राघवायादव- पाण्डवीय।

संस्कृतसाहित्य में काव्यशास्त्र के सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रमाण अग्निपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण से प्राप्त होती है । लेकिन काव्यशास्त्र का इतिहास नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध लेखक भरत से शुरू होता है और लगभग जगन्नाथ पंडित के रसगंगाधर के साथ समाप्त होता है। संस्कृत काव्य में भरत का मुख्य योगदान उनका रससूत्र है। यह रस की उत्पत्ति की व्याख्या करता है और इसे कलाओं के सौन्दर्यपरक अनुभव की व्याख्या के सूत्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य काव्य में किसी भी अवधारणा का इतना महत्व नहीं है जितना कि भारतीय काव्य में रस का। कुछ अन्य काव्य ग्रंथ जो नाट्यशास्त्र के बाद विकसित हुए, वे हैं भामह के काव्यलंकार और रुद्रता, दंडिन के काव्यादर्श, वामन के काव्यालंकारसूत्रवती, मम्मट के काव्यप्रकाश और साहित्य के साहित्यदर्श । काव्यालंकार में, भामह कविता में प्रमुख तत्व के रूप में काव्यात्मक आकृति या अलंकार को स्थापित करते हैं । काव्यालंकार के लेखक रुद्रट, अलंकार सम्प्रदाय के अंतिम प्रतिनिधि हैं ।

दंडिन के अनुसार काव्य में सौन्दर्य बढ़ाने वाले सभी गुण अलंकार हैं। वामन, रीति स्कूल के नायक अपने ग्रंथ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में काव्यशास्त्र का एक व्यवस्थित सिद्धांत देते हैं। वे पहले अलंकारकार थे जिनमें काव्य की आत्मा की खोज करने की तीव्र उत्कंठा थी। मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ पंडित आनंदवर्धन के ध्वनि सिद्धांत के उत्साही अनुयायी हैं।

काव्य ग्रन्थ काव्य के उद्देश्य, काव्य की परिभाषा, अलंकार आदि विषयों से संबंधित हैं। काव्य ग्रन्थों में उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों की भी चर्चा की गई है। भोज का श्रृंगारप्रकाश व्याकरण की चर्चा करता है। अलंकारसर्वस्व और कुवल्यानानद जैसे ग्रंथ केवल अलंकारों की चर्चा करते हैं। राजशेखर का काव्यमीमांसा नाम का काव्य पाठ कवियों को निर्देश, काव्य सम्मेलन आदि जैसे विषयों से संबंधित है। संस्कृत में कुछ अन्य प्रमुख काव्य ग्रंथ आनंदवर्धन के ध्वनिलोक हैं, व्यक्तिविवेक महिमाभट्ट , कुन्तक के वक्रोक्तिजिविता और जगन्नाथ पंडित के रसगंगाधर। ध्वन्यालोक अभिनवगुप्त के लोकाना की टिप्पणी के साथ भारतीय परंपरा में संस्कृत साहित्य में एक व्यापक रूप से चर्चा काव्य पाठ है। वामन कविता की आत्मा के रूप में शब्द की व्यवस्था के बारे में बात करते हैं। आनंदवर्धन एक कदम आगे बढ़ते हुए कविता की आत्मा के रूप में अर्थ के गहरे सार को स्थापित करते हैं। 11 वीं सदी में लिखे गए व्यक्तिविवेक ने अनुमितिवाद नामक एक नए सिद्धांत को प्रतिपादित किया। महिमाभट्ट उस ध्वनि की स्थापना करते हैं अनुमान की तार्किक प्रक्रिया के समान है। अभिनवगुप्त की अभिनवभारती , नाट्यशास्त्र पर एक टिप्पणी संस्कृत साहित्य का एक और उल्लेखनीय काव्य पाठ है। अभिनवगुप्त तीव्र बुद्धि और विश्वकोशीय विद्वता के व्यक्ति थे। अभिनवभारती नाट्यशास्त्र में चर्चा किए गए सभी मामलों पर चर्चा करती है। वक्रोक्तिजीवीता उत्तर -ध्वनि काल की अलंकारिक रचनाओं में एक प्रमुख स्थान रखती है क्योंकि इसने संस्कृत काव्यशास्त्र में अपने लिए एक स्वतंत्र और मौलिक मार्ग प्रशस्त किया।

वाल्मीकि कृत रामायण के रूप में आदिकाव्य के गौरव को प्राप्त कर लिया, तथा इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि को आदिकवि का गौरव प्राप्त हुआ। वाल्मीकि रामायण काव्यरूपी गंगोत्री का उद्गम है जहाँ से विभिन्न कवियों को काव्यस्रोतस्विनी रूपी मन्दाकिनी अविरल प्रवाहित हो रही है। रामायण के बाद वेदव्यास कृत महाभारत भी परवर्ती कवियों का उपजीव्य काव्य बन गया। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गये।

रामायण और महाभारत के प्रणयन के उपरान्त प्राप्त होने वाले विपुल महाकाव्य साहित्य के बीज वैदिक साहित्य में खोजना व्यर्थ सा ही है। किन्तु भारतीय परम्परा वेद को ही प्रत्येक शास्त्र काव्य आदि का उत्पत्ति स्थल मानती रही है। वैदिक ऋषि की सर्वाधिक मनोहर कल्पनाएं ऋग्वेद के उषस् सूक्तों में समस्त काव्यात्मक उन्मेष के साथ प्रस्फुटित हुई है। देवस्तुति के अतिरिक्त नराशंसियों में भी काव्यस्वरूप झलकता है। तत्कालीन उदार दानी राजाओं की प्रशंसा में नितान्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ ही नराशंसी कहलाती है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' की सप्तम पंचिका में 'शुनः शेप आख्यान' एवं अष्टम पंचिका में 'ऐन्दमहाभिषेक' के अनेक अंश सुन्दर काव्य ही छटा बिखेरते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में काव्य तत्वों का अस्तित्व तो दृष्टिगोचर होता है किन्तु महाकाव्य शैली का पूर्ण परिपाक कहीं प्राप्त नहीं होता है। संस्कृत महाकाव्य धारा का मूल उद्गम स्थल आदिकाव्य रामायण ही है, जिसमें महाकाव्य की सभी प्रवृत्तियों का सम्यक् दर्शन हो जाता है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य पर इस आदिकाव्य का दाय प्रत्येक साहित्यानुरागी को विदित ही है।

संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों के विकास परम्परा में संस्कृत व्याकरण के 'मुनित्रय' पाणिनि, वररूचि तथा पतंजलि का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आचार्य रुद्रट कृत 'काव्यालंकार सूत्र' के टीकाकार नेमिसाधु ने पाणिनी के द्वारा रचित महाकाव्य 'जाम्बवतीजय' या 'पातालविज' का उल्लेख किया है। पतंजलि के

महाभाष्य (ईस्वी पूर्व द्वितीय शती) में काव्यगुणों से सम्पन्न पद्य उपलब्ध है। इन प्रमाणों के आधार पर महाकाव्य का उदय ईस्वी पूर्व की अष्टम शती में ही पाणिनी द्वारा हो चुका था। सूक्तिग्रन्थों में 'राजशेखर' ने पाणिनी को व्याकरण तथा 'जाम्बवतीजय' दोनों का रचयिता माना है। **''नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह। आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्।।**'वररूचि' के नाम से भी अनेक सुन्दर श्लोक विभिन्न सुभाषित संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। न केवल 'सुभाषितावलि' तथा शारंगधरपद्धति' में ही इनके पद्य पाए जाते हैं। बल्कि इससे भी प्राचीन 'सदुक्तिकर्णमृत' में वररूचि कृत श्लोकों की उपलब्धि होती है। पतंजलि ने वररूचि के बनाये हुए किसी काव्यग्रन्थ (वाररूचं काव्यं) का उल्लेख महाभारत में किया है। **''यथार्थता कथं नाम्नि मा भूद वररूचेरिह। व्यधत्त कण्ठाभरणं यः सदारोहणप्रियः।।''** वररूचि कृत महाकाव्य का नाम 'कण्ठाभरण' है। वररूचि ने पाणिनी का अनुसरण 'वार्तिक' लिख कर ही नहीं किया प्रत्युत, काव्य रचना से भी उसकी पूर्ति की। 'पतंजलि' (150 ई0 पूर्व) ने अपने महाभाष्य में दृष्टान्त के ढंग पर बहुत से श्लोकों या श्लोक खण्डों को उद्धृत किया। जिनके अनुशीलन से संस्कृत काव्यधारा की प्राचीनता स्वतः सिद्ध होती है। 'छन्दशास्त्र' के अनुशीलन से भी महाकाव्य की प्राचीनता विषदरूपेण प्रमाणित होती है। काव्य अपने रूचिर निर्माण तथा रचना के निमित्त शान्त वातावरण, आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक शान्ति की जितनी अपेक्षा रखता है उतनी ही वह किसी गुणग्राही आश्रयदाता की प्रेरणा की भी। प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में वह युग शकों के भयंकर आक्रमणों से भारतीय जनता, धर्म तथा संस्कृति के रक्षक मालव संवत के ऐतिहासिक संस्थापक शकारि मालवगणाध्यक्ष विक्रमादित्व का है। इसी युग में भारतीय संस्कृति के उपासक हमारे राष्ट्रीय कवि कालिदास का काव्याकाश मे उदय होता है। कालिदास को ही वस्तुतः प्रौढ़ परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज्ञ काव्य शैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उन्होंने जो आदर्श उपस्थित किया वह परकालिन कवियों एवं महाकवियों के लिए अनुकरणीय हुए। संस्कृत महाकाव्य के विकास को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

1.कालिदास के पहले का समय जिसमे कथानक की प्रधानता रही। रामायण और महाभारत इस समय के आदर्श काव्य है।

2.कालिदास का समय जिसमे आडम्बरों में रहित, सहज एवं सरल ढंग से भाव तथा कला का मंजुल समन्वय स्थापित करके काव्य की धारा प्रवाहित हुई। जैसे- 'रघुवंशम' और कुमारसम्भवम्' इत्यादि।

3.कालिदास के बाद का समय जिसमें काव्य लेखन भाषा और भाव की दृष्टि से क्लिष्ट होता हुआ दिखाई पड़ता है जिसकी परम्परा 'भारवि' से शुरू होकर 'श्रीहर्ष' की रचना तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और एक वैदग्ध तथा पाण्डित्यपूर्ण परम्परा का निर्माण होता है।

विद्वानों ने कालिदास के पूर्ववर्ती कवि व्यास और वाल्मीकि को ऋषिकोटि में माना है। इनकी रचनाओं में सरलता और स्वाभाविकता का पुट है। संस्कृत साहित्य में महाकवि 'भारवि' का नाम विशेष उल्लेखनीय रहेगा क्योंकि संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा में समय एवं कवित्व दोनों दृष्टियों से कालिदास के बाद भारवि का प्रमुख स्थान है। इनका एकमात्र महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' है जो अपनी अर्थपूर्ण उक्तियों के लिए विद्वान्मण्डली में लोकप्रिय हो गया। इसके बाद उसी कोटि का महत्वपूर्णकाव्य 'माघ' का 'शिशुपालवधम्' है। कवि के नाम पर इसे 'माघकाव्य' भी कहा जाता है। संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में कालक्रम के अनुसार सबसे अन्तिम और महत्वपूर्ण काव्य 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखा गया महाकवि 'श्रीहर्ष' का 'नैषधीयचरितम्' है। इन्होंने अपने महाकाव्य को तत्कालीन समाज में प्रचलित परम्परा के अनुरूप ही आगे बढ़ाया और उस शैली के विकास को चरम तक पहुँचा दिया। इस प्रकार महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है। कि आरम्भिक युग में नैसर्गिकता का ही काव्य में मूल्य था। वहीं गुण

आदर की दृष्टि से देखा जाता था। कवियों ने अपने काव्यों में अक्षराडम्बर तथा अलंकार विन्यास की ओर अपना दृष्टिपात किया और उन्हें ही काव्य का जीवन मानने लगें।

1.3.3 महाकाव्य के सम्बन्ध अन्य मत—

महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण भारतीय आचार्यों ने किया, शब्दभेद से उन्हीं से मिलती-जुलती विशेषताओं का उल्लेख पश्चिम के आचार्यों ने भी किया है। अरस्तू ने त्रासदी (ट्रेजेडी) से महाकाव्य की तुलना करते हुए कहा है कि "गीत एवं दृश्यविघान के अतिरिक्त (महाकाव्य और त्रासदी) दोनों के अंग भी समान ही हैं।" अर्थात् महाकाव्य के मूल तत्त्व चार हैं - कथावस्तु, चरित्र, विचारतत्व और पदावली। कथावस्तु के संबंध में उनका मत है कि

(1) महाकाव्य की कथावस्तु एक ओर शुद्ध ऐतिहासिक यथार्थ से भिन्न होती है ओर दूसरी ओर सर्वथा काल्पनिक भी नहीं होती। वह प्रख्यात (जातीय दंतकथाओं पर आश्रित) होनी चाहिए और उसमें यथार्थ से भव्यतर जीवन का अंकन होना चाहिए।

(2) उसका आयाम विस्तृत होना चाहिए जिसके अंतर्गत विविध उपाख्यानों का समावेश हो सके। "उसमें अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बड़ी क्षमता होती है" क्योंकि त्रासदी की भांति वह रंगमंच की देशकाल संबंधी सीमाओं में परिबद्ध नहीं होता। उसमें अनेक घटनाओं का सहज समावेश हो सकता है जिससे एक ओर काव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और दूसरी ओर अनेक उपाख्यानों के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न हो जाता है।

(3) किंतु कथानक का यह विस्तार अनियंत्रित नहीं होना चाहिए। उसमें एक ही कार्य होना चाहिए जो आदि मध्य अवसान से युक्त एवं स्वत: पूर्ण हो। समस्त उपाख्यान इसी प्रमुख कार्य के साथ संबंद्ध और इस प्रकार से गुंफित हों कि उनका परिणाम एक ही हो।

(4) इसके अतिरिक्त त्रासदी के वस्तुसंगठन के अन्य गुण -- पूर्वापरक्रम, संभाव्यता तथा कुतूहल—भी महाकाव्य में यथावत् विद्यमान रहते हैं। उसकी परिधि में अद्भुत एवं अतिप्राकृत तत्त्व के लिये अधिक अवकाश रहता है और कुतूहल की संभावना भी महाकाव्य में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। कथानक के सभी कुतूहलवर्धक अंग, जैसे स्थितिविपर्यय, अभिज्ञान, संवृति और विवृति, महाकाव्य का भी उत्कर्ष करते हैं।

महाकाव्य के पात्रों के सम्बंध में अरस्तू ने केवल इतना कहा है कि "महाकाव्य और त्रासदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।" त्रासदी के पात्रों से समानता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि महाकाव्य के पात्र भी प्राय: त्रासदी के समान - भद्र, वैभवशाली, कुलीन और यशस्वी होने चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का प्रभाव और प्रयोजन भी त्रासदी के समान होना चाहिए, अर्थात् मनोवेगों का विरेचन, उसका प्रयोजन और तज्जन्य मन:शांति उसका प्रभाव होना चाहिए। यह प्रभाव नैतिक अथवा रागात्मक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।

अरस्तू के शब्दों में महाकाव्य की शैली का भी "पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) हो किंतु क्षुद्र न हो।" अर्थात् गरिमा तथा प्रसादगुण महाकाव्य की शैली के मूल तत्त्व हैं और गरिमा का आधार है असाधारणता। उनके मतानुसार महाकाव्य की भाषाशैली त्रासदी की करुणमधुर अलंकृत शैली से भिन्न, लोकातिक्रांत प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त एवं गरिमावरिष्ठ होनी चाहिए।

महाकाव्य की रचना के लिये वे आदि से अंत तक एक ही छंद - वीर छंद - के प्रयोग पर बल देते हैं क्योंकि उसका रूप अन्य वृत्तों की अपेक्षा अधिक भव्य एवं गरिमामय होता है जिसमें अप्रचलित एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलता से अंतर्भुक्त हो जाते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी महाकाव्य के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में उन्हीं

विशेषताओं का पुनराख्यान किया है जिनका उल्लेख आचार्य अरस्तू कर चुके थे। वीरकाव्य (महाकाव्य) का आधार सभी ने जातीय गौरव की पुराकथाओं को स्वीकार किया है। जॉन हेरिंगटन वीरकाव्य के लिये ऐतिहासिक आधारभूमि की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्पेंसर वीरकाव्य के लिये वैभव और गरिमा को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। फ्रांस के कवि आलोचकों पैलेतिए, वोकलें और रोनसार आदि ने भी महाकाव्य की कथावस्तु को सर्वाधिक गरिमायम, भव्य और उदात्त करते हुए उसके अंतर्गत ऐसे वातावरण के निर्माण का आग्रह किया है जो क्षुद्र घटनाओं से मुक्त एवं भव्य हो।

1.3.4 संस्कृत महाकाव्य परम्परा—

संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य का सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इसका विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षणनिरूपण इस परम्परा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सारसंकलन के रूप में उपलब्ध है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं :जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। महाकाव्य में देवता या सदृश क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक सत्कुलीन भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं। उसमें सब नाटकसंधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक महाकाव्य का फल होता है। आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तुनिर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा तथा सज्जनों का गुणकथन होता है। न अत्यल्प और न अतिदीर्घ अष्टाधिक सर्ग होते हैं जिनमें से प्रत्येक की रचना एक ही छन्द में की जाती है और सर्ग के अन्त में छंदपरिवर्तन होता है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा और विवाह आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए (साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद 315-324)।

आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है।

कथानाकमहाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासाश्रित होना चाहिए।विस्तारकथानक का कलवेर जीवन के विविध रूपों एवं वर्णनों से समृद्ध होना चाहिए। ये वर्णन प्राकृतिक, सामाजिक और राजीतिक क्षेत्रों से इस प्रकार संबंद्ध होने चाहिए कि इनके माध्यम से मानव जीवन का पूर्ण चित्र उसके संपूर्ण वैभव, वैचित्र्य एवं विस्तार के साथ उपस्थित हो सके। इसीलिए उसका आयाम (अष्टाधिक सर्गों में) विस्तृत होना चाहिए।

विन्यासकथानक की संघटना नाट्य संधियों के विधान से युक्त होनी चाहिए अर्थात् महाकाव्य के कथानक का विकास क्रमिक होना चाहिए। उसकी आधिकारिक कथा एवं अन्य प्रकरणों का पारस्परिक संबंध उपकार्य-उपकारक-भाव से होना चाहिए तथा इनमें औचित्यपूर्ण पूर्वापर अन्विति रहनी चाहिए। महाकाव्य का नायक देवता या सदृश क्षत्रिय हो, जिसका चरित्र धीरोदात्त गुणों से समन्वित हो - अर्थात् वह महासत्त्व, अत्यंत गंभीर, क्षमावान् अविकत्थन, स्थिरचरित्र, निगूढ़, अहंकारवान् और दृढ़व्रत होना चाहिए। पात्र भी उसी के अनुरूप विशिष्ट व्यक्ति, राजपुत्र, मुनि आदि होने चाहिए।जिस प्रकार रामायन के नायक श्रि राम है और महाभारत के नायक राधेय कर्ण है। रसमहाकाव्य में शृंगार, वीर, शांत एवं करुण में से किसी एक रस की स्थिति अंगी रूप में तथा अन्य रसों की अंग रूप में होती है।फलमहाकाव्य सद्वृत होता है - अर्थात् उसकी प्रवृत्ति शिव

एवं सत्य की ओर होती है और उसका उद्देश्य होता है चतुवर्ग की प्राप्ति। शैली के संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों ने प्राय: अत्यंत स्थूल रूढ़ियों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ एक ही छंद में सर्ग रचना तथा सर्गांत में छंदपरिवर्तन, अष्टाधिक सर्गों में विभाजन, नामकरण का आधार आदि। परंतु महाकाव्य के अन्य लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट ही है कि महाकाव्य की शैली नानावर्णन क्षमा, विस्तारगर्भा, श्रव्य वृत्तों से अलंकृत, महाप्राण होनी चाहिए। आचार्य भामह ने इस भाषा को सालंकार, अग्राम्य शब्दों से युक्त अर्थात् शिष्ट नागर भाषा कहा है। महाकाव्य के सम्बन्ध में पश्चिमी मत महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण भारतीय आचार्यों ने किया, शब्दभेद से उन्हीं से मिलती-जुलती विशेषताओं का उल्लेख पश्चिम के आचार्यों ने भी किया है। अरस्तू ने त्रासदी (ट्रेजेडी) से महाकाव्य की तुलना करते हुए कहा है कि "गीत एवं दृश्य विधान के अतिरिक्त (महाकाव्य और त्रासदी) दोनों के अंग भी समान ही हैं।" अर्थात् महाकाव्य के मूल तत्त्व चार हैं - कथावस्तु, चरित्र, विचारतत्व और पदावली (भाषा) कथावस्तु के संबंध में उनका मत है कि (1) महाकाव्य की कथावस्तु एक ओर शुद्ध ऐतिहासिक यथार्थ से भिन्न होती है ओर दूसरी ओर सर्वथा काल्पनिक भी नहीं होती। वह प्रख्यात (जातीय दंतकथाओं पर आश्रित होनी चाहिए और उसमें यथार्थ से भव्यतर जीवन का अंकन होना चाहिए। (2) उसका आयाम विस्तृत होना चाहिए जिसके अंतर्गत विविध उपाख्यानों का समावेश हो सके। "उसमें अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बड़ी क्षमता होती है" क्योंकि त्रासदी की भांति वह रंगमंच की देशकाल संबंधी सीमाओं में परिबद्ध नहीं होता। उसमें अनेक घटनाओं का सहज समावेश हो सकता है जिससे एक ओर काव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और दूसरी ओर अनेक उपाख्यानों के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न हो जाता है। (3) किंतु कथानक का यह विस्तार अनियंत्रित नहीं होना चाहिए। उसमें एक ही कार्य होना चाहिए जो आदि मध्य अवसान से युक्त एवं स्वत: पूर्ण हो। समस्त उपाख्यान इसी प्रमुख कार्य के साथ संबंद्ध और इस प्रकार से गुंफित हों कि उनका परिणाम एक ही हो। (4) इसके अतिरिक्त त्रासदी के वस्तुसंगठन के अन्य गुण -- पूर्वापरक्रम, संभाव्यता तथा कुतूहल—भी महाकाव्य में यथावत् विद्यमान रहते हैं। उसकी परिधि में अद्भुत एवं अतिप्राकृत तत्त्व के लिये अधिक अवकाश रहता है और कुतूहल की संभावना भी महाकाव्य में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। कथानक के सभी कुतूहलवर्धक अंग, जैसे स्थितिविपर्यय, अभिज्ञान, संवृति और विवृति, महाकाव्य का भी उत्कर्ष करते हैं। महाकाव्य के पात्रों के सम्बंध में अरस्तू ने केवल इतना कहा है कि "महाकाव्य और त्रासदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।" त्रासदी के पात्रों से समानता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि महाकाव्य के पात्र भी प्राय: त्रासदी के समान - भद्र, वैभवशाली, कुलीन और यशस्वी होने चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।प्रयोजन और प्रभावअरस्तू के अनुसार महाकाव्य का प्रभाव और प्रयोजन भी त्रासदी के समान होना चाहिए, अर्थात् मनोवेगों का विरेचन, उसका प्रयोजन और तज्जन्य मन:शांति उसका प्रभाव होना चाहिए। यह प्रभाव नैतिक अथवा रागात्मक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।भाषा, शैली और छंदअरस्तू के शब्दों में महाकाव्य की शैली का भी "पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) हो किंतु क्षुद्र न हो।" अर्थात् गरिमा तथा प्रसादगुण महाकाव्य की शैली के मूल तत्त्व हैं और गरिमा का आधार है असाधारणता। उनके मतानुसार महाकाव्य की भाषाशैली त्रासदी की करुणमधुर अलंकृत शैली से भिन्न, लोकातिक्रांत प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त एवं गरिमावरिष्ठ होनी चाहिए। महाकाव्य की रचना के लिये वे आदि से अंत तक एक ही छंद - वीर छंद - के प्रयोग पर बल देते हैं क्योंकि उसका रूप अन्य वृत्तों की अपेक्षा अधिक भव्य एवं गरिमामय होता है जिसमें अप्रचलित एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलता से अंतर्भुक्त हो जाते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी महाकाव्य के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में उन्हीं विशेषताओं का पुनराख्यान किया है जिनका उल्लेख आचार्य अरस्तू कर चुके थे। वीरकाव्य (महाकाव्य) का

आधार सभी ने जातीय गौरव की पुराकथाओं को स्वीकार किया है। जॉन हेरिंगटन वीरकाव्य के लिये ऐतिहासिक आधारभूमि की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्पेंसर वीरकाव्य के लिये वैभव और गरिमा को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। फ्रांस के कवि आलोचकों पैलेतिए, वोकलें और रोनसार आदि ने भी महाकाव्य की कथावस्तु को सर्वाधिक गरिमायम, भव्य और उदात्त करते हुए उसके अंतर्गत ऐसे वातावरण के निर्माण का आग्रह किया है जो क्षुद्र घटनाओं से मुक्त एवं भव्य हो। सारांश रूप में भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के उपर्युक्त निरूपण की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में ही महाकाव्य के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में एक ही गुण पर बार-बार शब्दभेद से बल दिया गया है और वह है - भव्यता एवं गरिमा, जो औदात्य के अंग हैं। वास्तव में, महाकाव्य व्यक्ति की चेतना से अनुप्राणित न होकर समस्त युग एवं राष्ट्र की चेतना से अनुप्राणित होता है। इसी कारण उसके मूल तत्त्व देशकाल सापेक्ष न होकर सार्वभौम होते हैं -- जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में, परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी, किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित करना संभव नहीं होता। मूल तत्त्व

(1) उदात्त कथानक

(2) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य

(3) उदात्त चरित्र

(4) उदात्त भाव और

(5) उदात्त शैली।

इस प्रकार औदात्य अथवा महत्तत्व ही महाकाव्य का प्राण है।संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं विकास संस्कृत महाकाव्य के उद्भव और विकास का निरूपण अधेलिखित है-महाकाव्य के विकास का इतिहास हम दो रूपों में करते हैं। (१) रूपगत विकास, (२) शैलीगत विकासरूपगत विकासरूपगत विकास के अन्तर्गत सबसे पहले वैदिक काल आता है जिनमें आख्यान, देवस्तुति, भावप्रधनता इत्यादि आते हैं। वीरमहाकाव्य के अन्तर्गत रामायण, महाभारत एवं आाख्यान तत्त्वों की प्रधनता आती है। लौकिक महाकाव्य में कालिदास एवं परवर्ती काव्यकारों ने भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की उदात्तता पर बल दिया है।शैलीगत विकासमहाकाव्य के शैलीगत विकास में प्रसादात्मक शैली में रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। अलंकारात्मक शैली, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। श्लेषात्मक शैली, द्वयर्थक काव्यों में प्राप्त होती है। द्वयर्थक काव्य ध्नंजयकृत- द्विसन्धनकाव्य, कविराजसूरिकृत-राघवपाण्डवीय, राघवचूड़ामणिदीक्षितकृत-राघवायादव- पाण्डवीय।महाकाव्य का उद्भवमहाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों- इन्द्र, वरुण, विष्णु और उषा आदि के स्तुतिमंत्रों तथा नराशंसी गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन अख्यान आदि का विस्तृत रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में बदल गया। क्रौंचवध से दुःखी मनवाले महाकवि वाल्मीकि के वाणी से निकला व्याध-शाप (मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्...) वाल्मीकिकृत रामायण के रूप में आदि काव्य के गौरव को प्राप्त कर लिया तथा इसके प्रणेता वाल्मीकि को आदिकवि का गौरव प्राप्त हुआ। वाल्मीकिकृत रामायण तथा रामायण के बाद वेदव्यासकृत महाभारत भी परवर्ती कवियों का उपजीव्य काव्य बन गये।भारतीय परम्परा वेद को ही काव्य, शास्त्र आदि का उत्पत्तिस्थल मानती रही है। वैदिक मनीषी की सर्वाधिक मनोहर कल्पनायें ऋग्वेद के उषस् सूक्तों में समस्त काव्यात्मक उन्मेष के साथ निकली हुई है। देवस्तुति के अतिरिक्त नाराशंसियों में भी काव्यात्मक रूप झलकता है। तत्कालीन उदार राजाओं की प्रशंसा में नितान्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ नाराशंसी कहलाती है। ऐतरेयब्राह्मण की सप्तम पंचिका में शुनःशेप आख्यान एवं अष्टम पंचिका में 'ऐन्दमहाभिषेक'के अनेक अंश सुन्दर काव्य की छटा बखिरते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में काव्यतत्त्वों का अस्तित्त्व तो दृष्टिगोचर

होता है किन्तु महाकाव्य शैली का पूर्ण परिपाक कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। संस्कृत महाकाव्य धरा की मूल उद्गम स्थली आदिकाव्य रामायण ही है, जिसमें महाकाव्य की सभी विशेषताओं का दर्शन हो जाता है। संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की विकास-परम्परा में संस्कृत व्याकरण के 'मुनित्रय' - पाणिनि, वररुचि तथा पतंजलि का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आचार्य रुद्रट द्वारा रचित 'काव्यालंकार सूत्र' के टीकाकार नेमिसाधु ने पाणिनि द्वारा रचित महाकाव्य 'जाम्बवतीजय' या 'पातालविजय' का उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य (ईस्वी पूर्व द्वितीय शती) में काव्यगुणों से सम्पन्न पद्य उपलब्ध होते हैं। इन सब प्रमाणों के आधर पर महाकाव्य का उदय ईस्वी पूर्व की अष्टम शती में ही पाणिनि द्वारा हो चुका था। सूक्तिग्रन्थों में राजशेखर ने पाणिनि को 'व्याकरण' तथा 'जाम्बवतीजय' दोनों का रचयिता माना है-

नमःपाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह। आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्। वररुचि के नाम से भी अनेक श्लोक विभिन्न सुभाषित संग्रहों में प्राप्त होते हैं। पतंजलि ने वररुचि के बनाये गये किसी महाकाव्य (वाररुचं काव्यं) का उल्लेख महाभारत में किया है-यथार्थता कथं नाम्नि या भूद वररुचेरिह।

व्यध्त्त कण्ठाभरणं यः सदारोहणप्रियः ॥ वररुचि-प्रणीत महाकाव्य का नाम 'कण्ठाभरण' है। वररुचि ने पाणिनि का अनुकरण 'वार्तिक' लिखकर ही नहीं किया प्रत्युत काव्यरचना से उसकी पूर्ति की। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में दृष्टांत के रूप में बहुत से श्लोकों या श्लोकखण्डों को उद्धृत किया जिनके अनुशीलन से संस्कृत-काव्यधरा की प्राचीनता सिद्ध होती है। काव्य अपने सुन्दर निर्माण तथा रचना के निमित्त शान्त वातावरण, आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक शान्ति की जितनी अपेक्षा रखता है उतनी ही वह किसी गुणग्राही आश्रयदाता की प्रेरणा की भी। प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में वह युग शकों के भयंकर आक्रमणों से भारतीय जनता, धर्म तथा संस्कृति के रक्षक मालव संवत के ऐतिहासिक संस्थापक शकारि मालवगणाध्यक्ष विक्रमादित्य का है। इसी युग में भारतीय संस्कृति के उपासक कालिदास का काव्याकाश में उदय होता है। कालिदास को वस्तुतः प्रौढ़, परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज्ञ काव्यशैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। कालिदासजी ने जो काव्यादर्श उपस्थित किया वह परकालीन कवियों एवं लेखकों के लिये अनुकरणीय हुए।संस्कृत महाकाव्य के तीन समूहसंस्कृत महाकाव्य को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है

-(१) कालिदास के पहले का समय जिसमें कथानक की प्रधनता रही। रामायण और महाभारत इस समय के आदर्श काव्य हैं।

(२) कालिदास का समय जिसमें आडम्बरों से रहित, सहज एवं सरल ढंग से भाव तथा कला का सुन्दर समन्वय स्थापित करके काव्य की धरा प्रवाहित हुई। जैसे : 'रघुवंशम्' और 'कुमारसंभवम्' आदि।

(३) कालिदास के बाद का समय जिसमें काव्यलेखन भाषा और भाव की दृष्टि से कठिन होता हुआ दिखाई पड़ता है जिसकी परम्परा भारवि से प्रारम्भ होकर 'श्रीहर्ष' की रचना तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और एक वैदग्ध तथा पाण्डित्यपूर्ण परम्परा का निर्माण होता है।विद्वानों ने कालिदास के पूर्ववर्ती कवि व्यास और वाल्मीकि को ऋषिकोटि में माना है। इनकी रचनाओं में सरलता और स्वाभाविकता का पुट है। संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि 'भारवि' का नाम विशेष उल्लेखनीय रहेगा क्योंकि संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा में समय और कवित्व दोनों दृष्टियों से कालिदास के षद भारवि का प्रमुख स्थान है। इनका एक मात्रा कालजयी महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' है जो अपनी अर्थपूर्ण उक्तियों के लिए विद्वान्मण्डली में लोकप्रिय हो गया। संस्कृत-महाकाव्यों की परम्परा में कालक्रम के अनुसार सबसे अन्तिम और महत्त्वपूर्ण काव्य बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया महाकवि श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' है। इन्होंने अपने महाकाव्य को तत्कालीन समाज में प्रचलित परम्परा के अनुरूप ही आगे बढ़ाया और उस शैली के विकास को चरम तक पहुँचा दिया।संक्षेप में महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आरम्भिक युग में नैसर्गिकता

का ही काव्य में मूल्य था, वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था। कालान्तर में कवियों ने अपने काव्य में अक्षराडम्बर तथा अंलकारविन्यास की ओर दृष्टिपात किया और उन्हें ही काव्य का जीवन मानने लगे।

महाकाव्यों का परिचय—

1.रामायण-- महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि के आदिकवि हैं तथा उनका रामायण आदिकाव्य है। उनकी कविता देश तथा काल की अवधि के द्वारा परिच्छिन्न नहीं की जा सकती। वे उन विश्व-कवियों में अग्रणी है जिनकी वाणी एक देश विशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती और न किसी काल-विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। काल-क्रम से संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य – सृष्टिका चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य-कला का परम औदात्य है। वाल्मीकि का रामायण 'महनीय कला' के लिए जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है वह वाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। फ्लाउबेर की मान्यता में 'ग्रेट आर्ट (महान् कला) इन वस्तुओं की साधना तथा प्रसारणसे मण्डित होती है 2 – मानव सोख्य की अभिवृद्धि, दीन-आर्त जनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभुति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या **ईश्वर की महिमा झलके।** ' यह लक्षण वाल्मीकि के रामायण के ऊपर अक्षरश: घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण में जिन आदेशों की वाल्मीकि ने अपनी अमर तुलिका से चितत्रत किया, वे भारतवर्ष के लिए ही मान्य और आदरणीय नहीं है, प्रत्युत् महर्षि वाल्मीकि अपनी मानव-मात्र के सामने उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं। हमारी दृष्टि में वाल्मीकि का काव्य शाश्वतवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से काव्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है:-

24 हजार पद्यों में विरचित सप्तकाण्डात्मक आदिकाव्य 'रामायण' में इक्ष्वाकुवंशीय भगवान् श्रीराम के जन्म, विवाह, वनगमन, सीतापहरण, सीतान्वेषण, सुग्रीवमैत्री, राक्षसवध, लंकाधिपति रावणवध, सीता अग्निपरीक्षा, लवकुशोत्पत्ति, सीताभूमिप्रवेश तथा श्रीराम के महाप्रयाण तक के सम्पूर्ण चरित को विस्तार के साथ काव्यात्मक शैली में चित्रित किया गया है।

2. महाभारत— महाभारत के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं- (1) जय, (2) भारत, (3) महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप (1) 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण, 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था। पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है। (2) भारत – 'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा - भारत। नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था। उस समय उसका परिणाम केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था। (3) उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने 'खिल पर्व '(अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया –एक लाख श्लोक वाला। महाभारत की रचना कृष्णद्वैपायन बादरायण महर्षि वेदव्यास द्वारा की गयी। इसमें 18 पर्व हैं- आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रास्थानिक, स्वर्गारोहण। इन पर्वों में 1920 अध्याय तथा लगभग 84 हजार श्लोक हैं। महाभारत के परिशिष्ट हरिवंशपुराण में लगभग 12 हजार श्लोक जोड़े गये। इस प्रकार महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक होने से इसको शतसाहस्रीसंहिता भी कहा जाता है। इसमें कौरवों

तथा पाण्डवों के मध्य हस्तिनापुर के साम्राज्य के लिए हुए कौटुम्बिक संघर्ष का वर्णन है।महाभारत के तीन संस्करण हुए- व्यासरचित जयसंहिता, वैशम्पायन द्वारा परिष्कृत भारतसंहिता तथा सौति द्वारा परिवर्द्धित महाभारतसंहिता।महाभारत की रचना 400 ई0 पू0 मानी जाती है, परन्तु इसके मौलिक रूप का अविर्भाव इतिहासकार बुद्धपूर्व मानते हैं। महाभारत को भी रामायण के सदृश आर्ष तथा उपजीव्य महाकाव्य माना जाता है।

3. कुमारसम्भवम्— कालिदास की सच्ची नि:सन्दिग्ध रचना है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन का संकल्प किया था, परन्तु यह महाकाव्य अधूरा ही हैं। इसके वर्तमान 17 सर्गो में से आदि के सात सर्ग तो कालिदास की लेखनी के चमत्कार हैं ही। अष्टम सर्ग भी उनका ही नि:संशय निर्माण है। आलङ्कारिकों तथा सुक्तिसंग्रहों ने इन्हीं सर्गो में से पद्यों को उद्धृत किया है। कालिदासीय कविता के प्रवीण पारखी मल्लिनाथ ने इतने ही सर्गो पर अपनी 'संजीवनी' लिखी। इन आदि अष्ट सर्गो में विषय की दृष्टि से पूर्ण ऐक्य है। कविता का चमत्कार सहृदयों के लिए नितान्त हृदयावर्जक है। 'जगत:पितरौ' शिव-पार्वती जैसे दिव्य दाम्पत्य के रूप तथा स्नेह का वर्णन नितान्त औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी है। केवल अष्टम सर्ग का रतिवर्णन आलङ्कारिकों के तीव्र कटाक्ष का पात्र बना है। पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त तथा संश्लिष्ट है उतना ही तृतीय सर्ग में शिवजी की समाधिका वर्णन भी है। 9 से लेकर 17 सर्ग किसी साधारण कवि के द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र है। महाकवि कालिदास संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। इनकी सात कृतियाँ प्रसिद्ध हैं- दो महाकाव्य- रघुवंश और कुमारसम्भव, दो खण्डकाव्य- ऋतुसंहार और मेघदूत तथा तीन नाटक- मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल।

4. रघुवंश— वाल्मीकि-रामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण में उपलब्ध सूर्यवंशीय राजाओं के चरितों को आधार बनाकर महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' नामक 19 सर्गों के महाकाव्य की रचना की। इसमें सूर्यवंशीय राजा दिलीप से प्रारम्भ कर अग्निवर्ण तक 32 राजाओं का उल्लेख मिलता है। इसके प्रारम्भिक 9सर्गों में श्रीराम के चार पूर्वजों- दिलीप, रघु, अज और दशरथ का वर्णन है, 10 वें सर्ग से 15 वें सर्ग तक श्रीराम के सम्पूर्ण चरित का तथा अन्तिम 4 सर्गों में श्रीराम के वंशजों का वर्णन मिलता है।

5. बुद्धचरित— अश्वघोष प्रथम शताब्दी के कुषाणवंशीय कश्मीर नरेश कनिष्क के गुरु तथा आश्रित कवि थे। इनके दोनों महाकाव्यों की पुष्पिका में प्राप्त विवरण से विदित होता है कि इनका जन्म साकेत में हुआ तथा इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। इनको ब्राह्मण कुल का माना जाता है, क्योंकि बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के अनन्तर भी इनके काव्यों में शास्त्रों तथा वेदों के अनेक सिद्धान्त मिलते हैं। कालान्तर में पाश्र्व के शिष्य पूर्णयशस् ने इनको बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। साधारण जनता को बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराने के लिए इन्होंने बुद्धचरित और सौन्दरनन्द नामक दो महाकाव्यों की रचना की।बुद्धचरित में भगवान् बुद्ध के जीवन और उपदेशों का वर्णन करता है। इसमें मूलत: 28 सर्ग थे, किन्तु आज इसके प्रथम चौदह सर्ग ही उपलब्ध हैं। वैसे पूरे महाकाव्य के तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद भी हो चुके थे, जो उपलब्ध हैं। बुद्धचरित पर रामायण का बहुत अधिक प्रभाव है। इसके कई दृश्य रामायण से समता रखते हैं। घटनाओं का चयन तथा आयोजन करने में अश्वघोष अधिक प्रभाव डालते हैं। बौद्ध होते हुए भी प्राचीन वैदिक परम्पराओं के प्रति उनमें गहन निष्ठा है। बुद्धचरित के पूर्वार्द्ध में बुद्ध के निर्वाण तक का वर्णन है। शेष भाग में उनके उपदेशों तथा उत्तरकालिक जीवन का चित्रण है। प्रथम तथा चतुर्दश सर्ग अपूर्ण है। 14 से 17 सर्ग की पूर्ति किसी अमृतानन्द नामक नेपाली पण्डित द्वारा की गयी। इस महाकाव्य में भगवान् बुद्ध के गर्भाधान तथा जन्म से प्रारम्भ कर

बुद्धत्वप्राप्ति तक का जीवनचरित वर्णित है। प्रथम सर्ग में असित मुनि द्वारा की गयी बुद्धविषयक भविष्यवाणी का वर्णन है। दूसरे सर्ग में महाराज शुद्धोदन द्वारा सिद्धार्थ को अपने प्रासाद में सुखोपभोगों में आसक्त करने का प्रयास किया जाता है। तीसरे सर्ग में रोगी, वृद्ध तथा मृत को देख बुद्ध विरक्त हो जाते हैं। चतुर्थ सर्ग में सुन्दर युवतियों के द्वारा रिझाने का प्रयास किए जाने पर भी पाँचवे सर्ग में सिद्धार्थ महाभिनिष्क्रमण कर जाते हैं। छठे सर्ग में सारथि छन्दक की व्याकुलता चित्रित है। सातवें सर्ग में सिद्धार्थ तपोवन में प्रवेश करते हैं तथा आठवें में सिद्धार्थ के वियोग में स्त्रियों का विलाप चित्रित है। नवम में सिद्धार्थ को शुद्धोदन खोजते हैं। दशम में सिद्धार्थ मगध पहुँचते हैं। एकादश सर्ग में उनके द्वारा कामनिन्दा के अनन्तर द्वादश में अराड ऋषि के आश्रम के पहुँच धर्मोपदेश प्राप्त करना वर्णित है। सिद्धार्थ अराड के उपदेशों पर विचार कर तपस्या प्रारम्भ करते हैं कि त्रयोदश सर्ग में मार (काम) उनकी तपस्या में विघ्न डालता है। बहुत प्रयास करने पर भी सिद्धार्थ से परास्त होता है मार। चौदहवें सर्ग में सिद्धार्थ के बुद्धत्वप्राप्ति का वर्णन है।इसके बाद के सर्ग जो संस्कृत में नहीं मिलते उनमें बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्तन, शिष्यपरम्परा, पिता से मुलाकात, उपदेशों तथा निर्वाण की प्रशंसा का वर्णन है।

6. सौन्दरनन्द— यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है, जिसमें 18 सर्ग हैं। इसके सौतेले भाई नन्द की धर्मदीक्षा का वर्णन है। इस महाकाव्य के आरम्भिक भाग में कवि ने नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी के परस्पर अनुराग को शृंगार रस के माध्यम से प्रस्तुत किया है।नन्द के बुद्ध के विहार में चले जाने पर दोनों की विरह-व्यथा का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। नन्द के मानसिक संघर्ष का चित्रण करने में कवि ने पूर्ण सफलता पाई है। बौद्ध धर्म के उपदेशों का अत्यन्त रोचक उपमाओं के द्वारा इसमें प्रतिपादन किया गया है। जो नन्द काम में आसक्त था, वही धर्मोपदेशक बन जाता है। अश्वघोष के दोनों महाकाव्य वैदर्भी रीति में लिखे गए हैं। उनमें अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से है। अश्वघोष ने बौद्धधर्म के उपदेशों को काव्य का रूप देकर प्रस्तुत किया है, जिससे लोग संन्यास-धर्म के प्रति प्रवृत्त हों। भोग के प्रति अनासक्ति और संसार की असारता दिखाने में कवि को पूरी सफलता मिली है।

7. किरातार्जुनीयम्— महाकवि भारवि विरचित किरातार्जुनीयम् महाकाव्य 18 सर्गों में उपनिबद्ध है जिसका वृत्तान्त महाभारत के वनपर्व से लिया गया है। भारवि का समय 550 से 600 ई0 के मध्य माना जाता है, क्योंकि 634 ई0 के पुलकेशिन द्वितीय के प्रशस्ति लेखक रविकीर्ति के बीजापुर के ऐहोल ग्राम से मिले शिलालेख में भारवि का उल्लेख मिलता है- स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः- यहाँ रविकीर्ति ने स्वयं को कलिदास तथा भारवि के समान यशस्वी बताया है। किरातार्जुनीय महाकाव्य में किरातवेशधारी शिव और अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर युद्ध तथा शिव द्वारा प्रसन्न हो अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करने की घटना प्रधान है।

8. रावणवध—भट्टिकाव्यभारवि के पश्चात् संस्कृत महाकाव्य परम्परा में महाकवि भट्टि विरचित 'रावणवध' महाकाव्य का स्थान आता है। इसको भट्टिकाव्य भी कहा जाता है। इस महाकाव्य में 22 सर्ग हैं। इसमें भगवान् श्रीराम के जन्म से प्रारम्भ कर राज्याभिषेक तक के सम्पूर्ण वृत्तान्त को उपनिबद्ध किया गया है।

9. जानकीहरण— महाकवि कुमारदास द्वारा विरचित जानकीहरण महाकाव्य में 20 सर्ग हैं जिनमें रामजन्म से लेकर रावणवध तक का रामचरित उपनिबद्ध है। महाकवि ने अपनी काव्यप्रतिभा से प्राचीन कथानक को नया कलेवर देने का भरपूर प्रयास किया है।कुमारदास सिंहल द्वीप के निवासी थे। ये 517 से 526 ई0 के मध्य लंका के राजा थे। सिंहल द्वीप के जातीय इतिहास ग्रन्थ महावंश में मोद्गलायन के पुत्र कुमारधातुसेन नामक राजा का उल्लेख मिलता है जिन्होंने 9 वर्षों तक पिता की मृत्यु के बाद सिंहल द्वीप पर शासन किया था। महावंश में

कुमारदास की कृति का उल्लेख न मिलने से इतिहासकार राजा कुमारधातुसेन तथा कवि कुमारदास को एक मानने के पक्षधर नहीं हैं। कुमारदास महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य से प्रभावित हैं।

10. शिशुपालवध— महाकवि माघ द्वारा महाभारत के सभापर्व (33 से 45अध्याय) में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अपने फुफेरे भाई चेदिनरेश शिशुपाल का वध किए जाने के वृत्तान्त को आधार बनाकर 20 सर्गों तथा 1650 पद्यों में विरचित 'शिशुपालवध' महाकाव्य संस्कृत महाकाव्य परम्परा की बृहत्त्रयी का अमूल्य रत्न माना जाता है। शिशुपाल के वध का यह वृत्तान्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भी मिलता है।महाकाव्य के अन्त के पाँच पद्यों में महाकवि ने अपना वंशपरिचय दिया है। इसके अनुसार उनके पितामह 'सुप्रभदेव' श्रीवर्मल संज्ञक राजा के महामन्त्री थे। उनके धर्मनिष्ठ पुत्र थे 'दत्तक' जिनके पुत्र थे महाकवि माघ। श्रीवर्मल को वर्मलात नामक राजा माना जाता है जो माघ के पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता थे। इनका राजपूताने के वसन्तगढ़ से 625ई0 का शिलालेख मिलता है। इस आधार पर सुप्रभदेव का समय सातवीं शताब्दी का प्रारम्भ तथा माघ का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है। नौंवी शताब्दी के आचार्य वामन के काव्यलंकारसूत्र तथा 850 ई0 के आनन्दवर्द्धन के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ ध्वन्यालोक में शिशुपालवध के पद्य उद्धृत होने से माघ का स्थितिकाल इनसे पूर्व सिद्ध होता है।शिशुपालवध के कतिपय प्राचीन पाण्डुग्रन्थों में प्राप्त पुष्पिकाओं से महाकवि माघ 'भिन्नमालवास्तव्य' सिद्ध होते है। भीनमाल वर्तमान समय में राजस्थान में आबूपर्वत तथा लूना नदी के मध्य स्थित है। यह सिरोही जिले की एक तहसील है जो 'ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त' नामक ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता ब्रह्मगुप्त की जन्मस्थली है। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रावृत्तान्त में इसका उल्लेख गुजरात की राजधानी तथा प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र के रूप में मिलता है। शिशुपालवध महाकाव्य में युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ में सभी ज्येष्ठों की सम्मति से श्रीकृष्ण को प्रथम अघ्र्य दिया जाता है। जिसका शिशुपाल विरोध करता है। शिशुपाल श्रीकृष्ण का अपमान कर युद्ध के लिए ललकारता है और श्रीकृष्ण के हाथों मारा जाता है।महाकाव्य का प्रारम्भ किरातार्जुनीय सदृश 'श्री' पद से हुआ है- श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत्- इस रूप में। प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद इन्द्र का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण के पास द्वारकापुरी पहुंचते हैं तथा दुराचारी शिशुपाल के पूर्वजन्मों का वृत्तान्त बताकर लोककल्याणार्थ उसके वध के लिए श्रीकृष्ण को प्रेरित करते है। द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण मन्त्रणा करते हैं बलराम और उद्धव से। उन्हें इसी समय युधिष्ठिर के राजसूय में जाने का आमन्त्रण भी मिलता है। उद्धव के परामर्श पर शिशुपाल के वध की अपेक्षा वे युधिष्ठिर के राजसूय में सम्मिलित होने को महत्त्व देते हैं। तृतीय सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक श्रीकृष्ण का द्वारका से प्रस्थान, मार्ग में रैवतक पर्वत पर सेना का पड़ाव, षड्ऋतुओं का वर्णन, वनविहार, जलक्रीडा, चन्द्रोदय, मधुपान, प्रभात आदि का महाकवि ने मनोरम चित्रण किया है। श्रीकृष्ण यमुना पार कर इन्द्रप्रस्थ पहुंचते हैं। चतुर्दश सर्ग में युधिष्ठिर उनको अपने यज्ञ का रक्षक बना लेते हैं। श्रीकृष्ण की यज्ञ में अग्रपूजा होती है। पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल श्रीकृष्ण की अग्रपूजा को सह नहीं पाता और उनका अपमान करता है। इससे उत्तेजित दोनों पक्ष के योद्धा युद्ध के लिए उद्यत होते हैं।शिशुपाल अपने शिबिर में जाकर श्रीकृष्ण पर आक्रमण की योजना बनाता है। सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण के पास पहुंच कर स्तुति तथा निन्दापरक द्वर्थक सन्देश सुनाता है। सात्यकि दूत को समुचित उत्तर देता है। दूतसंवाद से उत्तेजित श्रीकृष्ण की सेना युद्ध के लिए प्रयाण करती हैं। अठाहरवें तथा उन्नीसवें सर्ग में दोनों सेनाओं के मध्य भीषण युद्ध का वर्णन है। अन्ततः बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल के मध्य युद्ध में शिशुपाल का वध होता है। शिशुपालवध के साथ महाकाव्य पूर्ण हो जाता है।

11. हरविजय— कश्मीरी कवि रत्नाकर द्वारा विरचित 'हरविजय' महाकाव्य में पचास सर्ग हैं तथा 4321 पद्य। इसमें मत्स्यपुराण के 179 वें अध्याय में प्राप्त अन्धकासुर की कथा को महाकाव्य के रूप में उपनिबद्ध किया गया है। रत्नाकर का समय नवम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। रत्नाकर की तीन रचनाएँ मिलती हैं- हरविजय, वक्रोक्तपंचाशिका, ध्वनिगाथापंजिका।हरविजय महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में महाकवि ने लिखा है- 'इति श्रीबालबृहस्पत्यनुजीविनो वागीश्वराङ्कस्य विद्याधिपत्यपरनाम्नो महाकवे राजानकश्रीरत्नाकरस्य कृतौ रत्नाङ्के हरविजये महाकाव्ये' इससे स्पष्ट होता है कि महाकवि राजानक रत्नाकर 'बालबृहस्पति' की उपाधि से सम्मानित राजा जयापीड के सभापण्डित थे जिनका समय 800ई0 माना जाता है। हरविजय महाकाव्य में परम पराक्रमी अन्धकासुर नामक राक्षस के वध की कथा वर्णित है।

12. श्रीकण्ठचरित— कश्मीर के राजा जयसिंह के सभापण्डित महाकवि मङ्ख द्वारा विरचित श्रीकण्ठचरित महाकाव्य 25 सर्गों में उपनिबद्ध है। मङ्ख का समय बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है, क्योंकि राजा जयसिंह का समय 1129 से 1150 ई0 माना जाता है। इनके गुरु थे आचार्य रुय्यक। श्रीकण्ठचरित महाकाव्य भगवान् शिव द्वारा किए गए त्रिपुरदाह के पौराणिक इतिवृत्त पर आश्रित है। इस पर जोनराज की टीका उपलब्ध होती है। इसके प्रथम सर्ग में शिववन्दना है। दूसरे सर्ग में महाकवि ने सज्जन-दुर्जन का वर्णन किया है। तृतीय सर्ग में कश्मीर का वर्णन किया है। इस महाकाव्य के शेष सर्गों में त्रिपुरदाह की कथा का सरस वर्णन है।

13. नैषधीयचरितम्— नैषधीयचरित का संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके रचयिता दार्शनिक कवि श्रीहर्ष हैं। नैषधीयचरित का कथानक महाभारत के वनपर्व में 52 से 79 अध्याय तक प्राप्त होने वाले नलोपाख्यान पर आश्रित है। इस महाकाव्य में निषध देश के राजा नल तथा विदर्भदेश के राजा भीम की पुत्री राजकुमारी दमयन्ती के मध्य प्रणय प्रसंग को महाकवि ने अपने रोचक वस्तुविन्यास तथा शैली से 22सर्गों में उपनिबद्ध किया है।

14. विक्रमांकदेवचरित— महाकवि बिल्हण द्वारा विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य विक्रमांकदेवचरित में चालुक्यवंशीय नरेश विक्रमादित्य षष्ठ को नायक बनाकर 18 सर्गों में चालुक्य वंश का इतिहास उपनिबद्ध किया गया है। महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में महाकवि ने अपना जीवनवृत्त स्वयं प्रस्तुत किया है।15. राजतरङ्गिणीकश्मीर के प्रसिद्ध कवि कल्हण द्वारा विरचित राजतरङ्गिणी अपने आठ तरंगों में प्राचीन काल से प्रारम्भ कर 12वीं शताब्दी तक के कश्मीर के इतिहास को प्रकाशित करने वाला महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। इसमें कश्मीर का राजनीतिक इतिहास, भौगोलिक विवरण, सामाजिक व्यवस्था, साहित्यिक अवदान तथा आर्थिक दशा का विस्तृत विवेचन है।

बोध प्रश्न 1 -

1 . किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

2. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . नि:श्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

3. बुद्धचरितम् के रचनाकार हैं ?

(क) श्री हर्ष (ख) भारवि (ग) वाण (घ) महाकवि अश्विघोष

4. महाभारत का प्राचीन नाम है ।

क. जय ख. महाभारत ग. संहिता घ. कोई नही

5. महाभारत में कितने श्लोक है।

क. 1 लाख ख. 2 लाख ग. 3 लाख घ. 4 लाख

1.4 सारांश

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आपको ज्ञात हुआ कि भारतीय काव्य के निर्माण की पूर्व प्रेरणा कवियों को रामायण तथा महाभारत जैसे महनीय महाकाव्यों के अध्ययन से प्राप्त हुई। लोकविश्रुत देववाणी संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं की शिरोमुकुट उदात्त एवम् उज्ज्वल विचारों की मनोरम मंजूषा, प्राचीन भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन की कमनीय कुंजिका तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की निर्मल मुकुर है। इस भूमण्डल पर सर्वाधिक प्राचीन कही जाने वाली यही आर्यों की गीर्वाणवाणी है। संस्कृत साहित्य भारत का राष्ट्रीय गौरव है, वह भारतीय संस्कृति का निर्मल दर्पण है। उसमें हमे अपने गौरवमय अतीत की झाँकी देखने को मिलती है। भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के उपर्युक्त निरूपण की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में ही महाकाव्य के विभिन्न तत्वों के सन्दर्भ में एक ही गुण पर बार-बार शब्दभेद से बल दिया गया है और वह है- भव्यता एवं गरिमा, जो औदात्य के अंग हैं। वास्तव में, महाकाव्य व्यक्ति की चेतना से अनुप्राणित न होकर समस्त युग एवं राष्ट्र की चेतना से अनुप्राणित होता है। इसी कारण उसके मूल तत्त्व देशकाल सापेक्ष न होकर सार्वभौम होते हैं- जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में, परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी, किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित करना संभव नहीं होता।

आख्यान, देवस्तुति, भाव प्रधानता , रामायण, महाभारत, भाव एवं आख्यान तत्वों की प्रधानता कालिदास एवं परवर्ती काव्यकार, भावपक्ष की अपेक्षा कला पक्ष उदात्त यह शैली रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। यह शैली भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। यह शैली द्वयर्थक काव्यों में प्राप्त होती है। वाल्मीकि रामायण काव्यरूपी गंगोत्री का उद्गम है जहाँ से विभिन्न कवियों को काव्यस्रोतस्विनी रूपी मन्दाकिनी अविरल प्रवाहित हो रही है। रामायण के बाद वेदव्यास कृत महाभारत भी परवर्ती कवियों का उपजीव्य काव्य बन गया। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गये। अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप महाकाव्य के लक्षण, महाकाव्यों की उत्पत्ति और विकास, महाकाव्य के सम्बन्ध में अन्य मत एवं संस्कृत के कुछ महाकाव्यों के बारे में बता सकेंगे।

1.5 शब्दावली

नायिका	स्त्री सुलभ मर्यादा की पालिका नायक की सहधर्मिणी
रामायण	राम और अयन दो शब्दों से मिलकर रामायण शब्दन बनता है। अयन का अर्थ है घर।
शतसाहस्री	शत का अर्थ होता है सौ तथा सहस्र का अर्थ है एक हजार। अंकानां वामतो गति के अनुसार सौ हजार होकर एक लाख अर्थ कहलाता है।
बुद्धत्व	बुद्ध की प्राप्ति
पुर्वगामी	पहले वाले
समुदय	कारण
निरोध	नाश करना

राज्याश्रय	राजा का आश्रय पाप्त होना
प्रव्रज्या	बौद्धों का एक संस्कार
वैदर्भी	रीति
प्रसाद	गुण
महाभिनिष्क्रमण	ग्रहत्याग करना
चतुष्टय	चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर -1

1.क 2.क 3.घ 4.क 5.क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी कपिल देव, संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. आचार्य उपाध्याय बलदेव संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 137, 138
3. उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास - 2 पृष्ठ 100
4. भारतीय साहित्य शास्त्र 'दूसरा खण्ड' पृष्ठ 186, 196
5. गैरोला वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 756
6. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद. सं० २००९
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण २००९
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी,
9. भरतमुनि का नाट्यशास्त्र , खंड-1-4, परिमल प्रकाशन, दिल्ली , 1983।

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1. वाल्मीकि रामायण
2. आदिपर्व 1/68-69
3. ऋग्वेद: उषस् सूक्त
4. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास (वाराणसी 1969 पृष्ठ 416)
5. राजशेखर, सूक्तिग्रन्थ

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.रघुवंश महाकाव्य का पर प्रकाश डालिए।
2.बुद्धचरितम् महाकाव्य पर टिप्पणी लिखिए।
3. नैषधीयचरित का परिचय लिखिये ।
4. वाल्मीकि का परिचय अपने शब्दों में लिखिये ।
5. व्यास का परिचय अपने शब्दों में लिखिये ।
6. संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास पर प्रकाश डालिए।
7. महाकाव्य का अर्थ एवं लक्षण सहित स्पष्ट कीजिए।

इकाई-2 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास
    2.3.1 नीतिकथा का अर्थ एवं महत्त्व
    2.3.2 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति
    2.3.3 संस्कृत नीतिकाव्यों का विकास एवं महत्त्व
2.4 संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति
    2.4.1 भारतीय नीतिकव्यों की पृष्ठभूमि
    2.4.2 नीतिकव्यों की विशेषतायें
2.5 प्रमुख नीतिग्रन्थों का परिचय
    2.5.1 पंचतंत्र का परिचय
    2.5.2 हितोपदेश का परिचय
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 उपयोगी पुस्तकें
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही नीति कथाओं की परम्परा चली आ रही है। इन नीति कथाओं में नीति विषयक उपदेश दिये गये हैं। वैसे तो संस्कृत साहित्य में कथाओं का विपुल भण्डार है किन्तु नीति कथायें इनसे भिन्न होती हैं क्योंकि इनके अधिकतर पात्र पशु- पक्षी ही होते हैं। महाभारत, चाणक्य के अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र ,कामन्दकीय नीतिशास्त्र, जैन व बौद्ध ग्रंथों में भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होते हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में राजनीति की शिक्षा दी गई है। पंचतंत्र व हितोपदेश में तो नीति वचन यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। इस इकाई में आप नीति कथा से परिचित होने के साथ-साथ उसकी पृष्ठभूमि को जान पायेंगे, तत्पश्चात् हम आपको नीति कथा की उत्पत्ति, विकास एवं उसके महत्त्व के विषय में जानकारी देंगे। इन नीति कथाओं के अध्ययन से आप जीवन के व्यावहारिक पहलुओं का ज्ञान करा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- नीति काव्यों से परिचित होंगे।
- नीति कावयों की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- नीति काव्यों की उत्पत्ति और विकास से परिचित हो सकेंगे।
- पंचतंत्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हितोपदेश नामक सर्वजनहिताय नीति युक्त ग्रंथ के विषय में जान सकेंगे।

2.3 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

2.3.1 नीतिकथा का अर्थ एवं महत्त्व—

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर तथा 'कथा' शब्द 'कथ' धातु से बना हुआ है। नीति शब्द का प्रयोग सदाचार, राजनीति, सदाचरण के लिए उपदेश आदि अर्थ में हुआ है तथा कथा का अर्थ कहानी से है। नीति विषयक या नीति सम्बन्धी पाठ सिखाने वाली कहानी जिसमें मानवेतर प्राणी होते हैं वही नीति कथा कहलाती है। देखा जाय तो नीति कथा एक छोटी कहानी है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है इसमें नीति कथाओं का भण्डार है। केवल भारतवर्ष ही नहीं अपितु विदेशों में भी नीति कथाएं प्रसिद्ध हैं।

2.3.2 संस्कृत नीतिकाव्यों की उत्पत्ति—

इससे पूर्व के पृष्ठों में संस्कृत महाकाव्य व उसकी विशेषताओं के सम्बन्ध मे चर्चा करने के पश्चात् इस अध्याय में नीति काव्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करने जा रहें है ।किस प्रकार नीति कथा की उत्पत्ति हुई ? किन परिस्थितियों में संस्कृत साहित्य में इसका प्रारम्भ हुआ। यदि देखा जाय तो कथा अर्थात् कहानी का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन समय में कहानी का स्वरूप मौखिक ही था। भारतीय पृष्ठभूमि के आधार पर नीति कथा की उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई। मनुष्य के विकास के साथ- साथ उसका भी विकास हुआ। इससे लोक साहित्य की परम्परा का भी निर्माण हो गया।

लोक कथा— प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हमें लोक साहित्य में दिखायी देती है । सर जेम्स फ्रेझर के अनुसार "लोक साहित्य में मानवीय मन के प्राचीन अवशेष प्राप्त होते हैं" लोक साहित्य के तीन मूल आधार हैं परम्परा, कर्म और विश्वास । किसी भी राष्ट्र में अपनी परम्परा की जिज्ञासा अर्थात् एक आकर्षण होता है। आदि मानव में तो अनेक प्रकार के विश्वास रहे हैं उनके अनुसार पशु-पक्षी एवं अचेतन पदार्थ भी मानव के तुल्य कार्य एवं वार्तालाप कर सकते हैं । बच्चे तो नीति कथाओं में यह विश्वास करते हैं कि पशु-पक्षी भी कभी बातचीत कर सकते थे । बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी में राजा शूद्रक के दरबार में एक शुक अपने पुर्नजन्म की कथा सुनाता है । कादम्बरी के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस जन्म में जो पशु रूप में हैं वह किसी जन्म में मानव व मानव भी किसी जन्म में पशु रूप में अवश्य रहा होगा । इस आधार पर प्राणियों के मानव के समान व्यवहार की कल्पना की पुष्टि हुई व साथ- साथ उसे लोक साहित्य में स्थान भी मिल गया।यह भी कल्पना के आधार पर कहा गया कि प्राणियों के द्वारा मानव की सहायता की गई । अलेक्झांडर क्राप जो लोक साहित्य के महान विद्वान हैं उन्होंने अपने ग्रंथ में लोक साहित्य के जो प्रमुख अंग माने हैं उनमें से प्राणी कथा एक है इसका नीति कथा के लिए बड़ा महत्त्व है । यह भी माना जाता है । संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति के लिए प्राणी कथा का अध्ययन अति आवश्यक है क्योंकि कथा साहित्य को लोक साहित्य में इसलिए महत्त्व दिया गया है कि उसमें प्राचीन समय की कल्पित कथा तथा प्राणी कथा को मौलिक रूप देकर ग्रंथ में बद्ध किया है इसलिए नीति कथा की उत्पत्ति में प्राणी कथा का अत्यधिक महत्त्व है ।

प्राणी कथा— आदि मानव का वन्य जीवन से,पशु-पक्षी व प्रकृति से निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो चुका था, उसने प्रणियों व प्रकृति को अपने जीवन का अभिन्न अंग के रूप में मानना आरम्भ कर दिया । जिस प्रकार से मानव स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है उसी प्रकार पशु-पक्षियों का स्वभाव भी भिन्न होता है । पशु भी मानववत् व्यवहार कर सकते हैं व उनकी भी मानव के समान कहानी हो सकती है । प्राणी कथा की उत्पत्ति का आधार मानव वंश विज्ञान के जाति विषयक है। यह सिद्धान्त टोटेनिज्म का सिद्धान्त कहलाता है यह सिद्धान्त हमें यह बताता है कि मानव के कुल व प्राणियों के जातियों की उत्पत्ति एक ही सामान्य प्राणी से हुई है क्योंकि मानव व प्राणियों में आदि काल से ही विश्वास रहा है । लोक कथा में जो प्राणी कथा प्राप्त हुई है उसका मूल आधार मानव की प्राणी प्रवणता है। प्राणी कथा का प्रचलन परम्परा से हो रहा था । प्रारम्भ से ही प्राणियों के दृष्टान्त लोकव्यवहार में दिये जाते थे।किन्तु जन समूह ने यह अनुभव किया कि वीर पुरूषों व देवताओं के दृष्टान्तों से लोगों पर अधिक अच्छा प्रभाव पड़ेगा किन्तु प्राणियों के दृष्टान्त सुनते ही प्रत्येक मानव के लिए यह बड़ी ही सुगमता से ग्राह्य हुए। प्राणी भी मानव के समान व्यवहार कर सकते हैं कभी ऐसा भी रहा होगा कि प्राणियों व मानव में कोई अन्तर न था । इस कारण से यह प्राणी दृष्टान्त सभी लोगों पर समान रूप से प्रभावशील हुए। इस कारण प्राणियों के इन दृष्टान्तों में धर्म व लौकिकता का तत्व है। प्राणी दृष्टान्त तो बाल व वृद्धें के अति प्रिय हो गये । इस कारण से कहानी के उपदेशकों व विचारकों को बहुत अधिक सफलता मिली । तत्पश्चात् धीरे-धीरे लोक वाणी में प्रचलित प्राणी कथा 'नीति कथा' परिवर्तित हो गयी अर्थात् नीति कथा बन गई। लोगों ने जिस परम्परा का निर्वाह किया वही नीति कथा लौकिक कथा में प्रचलन में रही । यदि देखा जाय तो पंचतंत्र इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है । नीतिशास्त्र के आचार्यों ने यथावत् इसका उपयोग किया । नीति कथा की उत्पत्ति प्राणी कथा व नीति युक्त वचनों के एकीकरण से हुई । यदि देखा जाय तो वैदिक, जैन व बौद्ध ग्रंथों में कथायें यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं इनका उद्देश्य जन-जन में सद्उपदेश देना है। ऋग्वेद के संहिता सूक्त में नीति कथायें प्राप्त होती हैं । वैदिक काल से ही पशु-पक्षियों के उदाहरणों के माध्यम से व्यावहारिक उपदेश देना प्रारम्भ हो चुका था । पुराणों में भी बहुत सी नीति कथायें प्राप्त होती हैं । महाभारत में विदुर, कणिक व भीष्म ने अनेक नीति कथायें

कहीं हैं। सर्प कथा महाभारत में सर्वत्र पायी जाती है।यदि देखा जाय तो महाभारत का कथा साहित्य विविध रूपों से भरा पड़ा। 1550 विक्रम संवत् में नीति मंजरी का एक हस्तलेख प्राप्त है जिसका रचनाकाल 1400 ईसवी के लगभग सिद्ध होता है। इस ग्रंथ के माध्यम से वैदिक कहानियों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यह सम्पूर्ण ग्रंथ अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध किया गया है। "कथा कोष" जैन धर्मावलम्बियों का एक विस्तृत साहित्य है। इसी तरह से बौद्धों की मनोरंजक कथायें "जातक" के नाम से जानी जाती हैं यह भगवान बुद्ध के जन्मों की कथाओं से निबद्ध है। भारतीय नीति कथाओं के अनुवाद चीनी विश्वकोष में भी उपलब्ध होते हैं। पंचतंत्र संस्कृत नीति कथा का अत्यन्त प्राचीन व विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें विष्णुशर्मा ने अनायास ही राजपुत्रों को नीतिशास्त्र का रहस्य ज्ञात कराने के लिए नीति कथा को अपनाया। पंचतंत्र पांच तंत्रों में निबद्ध है। पंचतंत्र के आधार पर ही नितान्त लोकप्रिय हितोपदेश नामक कथा ग्रंथ का निर्माण हुआ। इन सब प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि नीति कथाओं की उत्पत्ति भारत में ही हुई।

2.3.3 संस्कृत नीतिकाव्यों का विकास एवं महत्त्व—

नीति कव्यों में नीति युक्त वचन प्रयुक्त होते हैं। महाभारत, पंचतंत्र व हितोपदेश में नीति वचनों का प्रयोग हुआ है। भारतीय साहित्य में नीति कव्यों (कथाओं) का विकास 300 ई के लगभग माना जा सकता है क्योंकि इसी समय संस्कृत नीति कथाओं महान ग्रंथ 'पंचतंत्र' का निर्माण हुआ। वैसे तो भारत में कथाओं का विकास बृहत्कथा के समय से हो चुका था किन्तु कथा व नीति कथा में अन्तर है,इसलिए पंचतंत्र से ही नीति कथाओं का विकास प्रारम्भ हुआ। पंचतंत्र में जितनी भी कथायें वे नितान्त प्राचीन हैं। पांच तंत्रों में निबद्ध पंचतंत्र नामक नीति कथाओं का ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन व विश्व प्रसिद्ध है।

2.4 संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति

पश्चिम के विद्वानों के अनुसार नीति कथाओं की उत्पत्ति पूर्व में ही हुई। प्राचीन समय में अधिकतर राजाओं का ऐकाधक्य था। क्योंकि दास व चाटुकार स्पष्ट शब्दों में अपने स्वामी को हितकारी बातें नहीं कर पाते थे इसलिए उन्होंने ज्ञान युक्त बातें कहने के लिए नीति कथाओं को ही अपनाया। नीति कथा के माध्यम से ही दास अपने राजा को उसकी गलतियों पर पाठ सिखा सकते हैं। संस्कृत नीति कथा के उपदेशकों , आचार्यों व विद्वानों का राजा के दरबार में आदर होता था। प्राचीन समय में सूत ही सारथियों का कार्य करते थे। महाभारत के कर्ण पर्व में तो एक बार तो कर्ण के सारथि शल्य ने कर्ण को उसके घमंड पर अत्यधिक कोसा व नीति का पाठ सिखाने के लिए "हंस- काकीयोपाख्यान" नामक नीति कथा को कह सुनाया। इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म ने युधिष्ठर को नीति कथाओं के द्वारा उपदेश दिये, आदि पर्व में कणिक ने भी उपदेशों के लिए नीति कथा को ही अपनाया।

विष्णुशर्मा ने तो राजपुत्रों को नीतिशास्त्र का रहस्य जानने के लिए नीति कथा को अपनाया उनका विचार राजा की भर्त्सना करना नहीं था। मात्र छः महिने में ही विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को नीति शास्त्र का ज्ञाता बनाने की प्रतिज्ञा कर डाली। राजा अमरशक्ति से उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं ये प्रतिज्ञा अवश्य करता हूँ कि यदि मैं आपके पुत्रों को छः माह में नीति शास्त्र का ज्ञाता न बना दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा। क्योंकि उस समय राजा प्रकाण्ड विद्वानों की स्पष्ट रूप से कही बातों के लिए अभ्यस्त थे। अतः इन सब जानकारियों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत नीति कथा की उत्पत्ति चाटुकारों व दासों के द्वारा नहीं बल्कि सारथि, विद्वान आचार्यों व सामजिक नेताओं के द्वारा हुई।

अभ्यास प्रश्नः -

1- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

(क) प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हमें..... में दिखायी देती है।

(ख) नीति कथा की उत्पत्ति..... व नीति युक्त वचनों के एकीकरण से हुई।

(ग) विष्णुशर्मा ने अनायास ही ..... को नीतिशास्त्र का रहस्य ज्ञात कराने के लिए नीति कथा को अपनाया।

(घ) ..... दृष्टान्त तो बाल व वृद्धों के अति प्रिय हो गये।

2.4.1 भारतीय नीतिकव्यों की पृष्ठभूमि—

संस्कृत नीति काव्यों (कथाओं) का एक विशाल साहित्य है। नीति कथाएं भारतीय साहित्य में अमूल्य निधि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यदि देखा जाय तो भारतीय कथा से ही विश्व कथा साहित्य की उत्पत्ति मानी जाती है। भारत में नीति कथाओं की उत्पत्ति लोक साहित्य से हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है। कथा साहित्य में नीति कथा का स्वरूप स्वतंत्र ही है। संस्कृत कथाओं का स्वरूप निवेदनात्मक है। संस्कृत के सभी ग्रंथों में प्रायः नीति विषयक कथायें उपलब्ध होती हैं। अंग्रेजी के विख्यात आलोचक डॉ0 जान्सन के अनुसार-"नीति कथा एक ऐसा विशुद्ध निवेदन है जिसमें बुद्धिहीन प्राणी एवं अचेतन पदार्थ पात्रों के रूप में नीतितत्त्व की शिक्षा देने के हेतु आएं हों और वे मानवीय हितों एवं भावों को ध्यान में रखकर चेष्टा तथा संभाषण करने में कल्पित किये गये हों"। डॉ0 जान्सन के अनुसार नीति कथा में अधिकतर सजीव पात्रों को ही लेना स्वीकार किया है। फिक्शन् के अनुसार- " चाहे जो कथा हो, केवल वह कल्पित हो , मनगढ़त कहानी हो, यथार्थ घटना न हो यही उसका अर्थ है। नीति कथा एक कल्पित कथा है। प्रो0 शरच्चन्द्र मित्र के शब्दों में - "प्राणी कथा वह है जिसमें प्राणी पात्र होते हैं एवं मानववत् बोलते और कार्य करते हैं वही नीति कथा कहलाती है। "नीति कथा पाठकों के लिए रूचिकर होने के साथ ही साथ शिक्षा प्रद भी होती है। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि नीति कथा उसे कहते हैं जिसमें अमानवीय प्राणी या अचेतन पदार्थ मनुष्यवत् व्यवहार करते हैं। यदि देखा जाय तो साहित्यिक नीति कथा की यही विशेषता है। संस्कृत नीति कथाओं में पंचतंत्र के बाद हितोपदेश प्रमुख है।

2.4.2 नीतिकव्यों की विशेषतायें—

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है जिसमें नीति के उपदेश विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं। यदि देखा जाय तो संस्कृत के ग्रंथों में अनेक ऐसे पद्य मिलते हैं जिनमें सदाचार युक्त बातों को सूक्तियों के माध्यम से उपस्थित किया गया है। भारतीय साहित्य में कथाओं के माध्यम से नीतिगत उपदेश स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। विश्व साहित्य में भारतीय कथा साहित्य का स्थान बहुत बड़ा है क्योंकि नीति कथा रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होती है।

1- नीति कथाओं में कथाकार का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है बल्कि नीति सम्बन्धी उपदेशों के द्वारा शिक्षा प्रदान करना है।

2- नीति कथाओं के अधिकतर पात्र मानवेतर प्राणी अर्थात्,पशु-पक्षी होते हैं

3- इनके पात्र अधिकांश सजीव प्राणी ही होते हैं, यदि कभी अचेतन एवं मानवीय व्यक्ति इसके पात्र हों तो उनका अस्तित्व नीति प्रतिपादन के लिए ही होता है।

4- नीति कथाएं बच्चों के लिए उपयोगी व आकर्षक की वस्तु है क्योंकि इसमें सिंह, हाथी, सियार आदि जन्तु मानव के तुल्य व्यवहार करते दिखायी देते हैं।

5- नीति कथा के पात्र अपने चातुर्यपूर्ण कौशल से संकटों से मुक्त हो जाते हैं। उदाहरणः- वानर एवं मगर की कथा में नदी के मध्य भाग में पहुँचने पर मगर ने अपनी पीठ में सवार वानर को जब अपनी दुष्ट कामना बतायी तो उस समय वानर ने अपने चार्तुयपूर्ण बुद्धि से स्वंय को बचा लिया।

6- नीति कथा में प्राणी आलम्बन होते हैं क्योंकि उनकी अपनी एक कहानी है इसलिए उन्हें प्रधानता दी जाती है।

7- इसके प्रतिनिधि श्रृंगाल या वृषभ, मार्जार या नकुल आदि प्राणी होते हैं जो हमारे शिक्षक बनकर ही कथा में व्यवहार करते हैं उनके अनुभव व उनकी गलतियों से हमें कुछ न कुछ सीख मिलती है और हम लाभान्वित होते हैं।

8- नीति कथाओं के पात्र सीमित होते हैं।

9- विषय की दृष्टि से यदि देखा जाय तो नीति कथा एक कल्पित कथा है इसके दो कथानक होते हैं,एक वाच्य और दूसरा व्यंग्य। इसमें से जो वाच्य कथानक होता है उसमें कल्पना का रूप स्वाभाविक नहीं होता। जैसे- सियार, व्याघ्र, चूहे आदि पशु कैसे मनुष्य के समान विचार कर सकते हैं किन्तु व्यंग्य में अलिखित कथानक से मानव जीवन की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि उसके पात्र मानव जीवन के दृश्यों को प्रस्तुत करते हैं।

10- नीति कथाएं मुख्यतया धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से संबद्ध हैं क्योंकि इससे नीति, धर्म, सदाचार व राजनीति की शिक्षा प्राप्त होती है।

11- इसमें पशु- पक्षियों की लीलाओं के माध्यम से नीति के मार्ग का अनुसरण होता है।

12- नीति कथाओं में मानव को सफलता की ओर ले जाने वाले आवश्यक सभी गुणों का वर्णन होता है और साथ ही साथ अपने लक्ष्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा भी मिलती है।

13- व्यवहार ज्ञान के साथ-साथ ही नीति कथाओं में अपार सुख की प्राप्ति भी होती है।

14- नीति कथा के अन्तर्गत नीति का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया जाता है। किसी सिद्धान्त या नीति का प्रतिपादन करना ही नीति कथा का प्रधान उद्देश्य है।

15- नीति कथा में कल्पना तत्त्व का बहुत ही निकटतम सम्बन्ध है क्योंकि पशु-पक्षियों की कहानी से मानवीय अर्थ की प्राप्ति यह कल्पना से ही सम्भव है।

16- नीति कथा का सबसे चरम उद्देश्य नीति की शिक्षा या पाठ देना है। इसमें सदाचार, दर्शन एवं व्यवहारज्ञान का सुन्दर सामंजस्य होता।

बोध-प्रश्नः-

2-नीचे जो प्रश्न दिये गये हैं, उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के तथा गलत वाक्यों के सामने सही का चिह्न लगाइये- सामने कोष्ठक में

(क) संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है,इसमें नीति कथाओं का भण्डार है। ( )

(ख) विश्व साहित्य में भारतीय कथा साहित्य का कोई स्थान नहीं है। ( )

(ग) नीति कथाओं के पात्र मानवेतर प्राणी या पशु- पक्षी होते हैं। ( )

(घ) नीति कथाएं बच्चों के लिए उपयोगी व आकर्षक वस्तु नहीं है। ( )

2.5 प्रमुख नीतिग्रन्थों का परिचय

2.5.1 पंचतंत्र का परिचय—

भारत में एक समय ऐसा भी आया जब नीति कथाएं अपनी लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गयी थी। उस समय भारतीय नीति कथा ने पुनः विदेशों में इसका प्रचार व प्रसार किया। उनमें पंचतंत्र प्रमुख है। प्राणी प्रधान कथा ग्रंथ पंचतंत्र का नाम नीति कथा के रूप में विश्वप्रसिद्ध है। महाभारत व जैन साहित्य में इसके विकास के बीज उपलब्ध होते हैं। महाभारत में प्राप्त मार्जार व मूषिक संवाद, गृध व गोमायु संवाद, कपोत व व्याघ्र संवाद तथा व्याघ्र व गोमायु संवाद में जो पशु प्रधान कथाएं पंचतंत्र के लेखन में आधार भूत रही। जैन व बौद्ध साहित्य में कर्म एवं पुनर्जन्म के अन्योन्याश्रित सिद्धान्त के अनुसार पशुयोनि से मानवयोनि व मानवयोनि से पशुयोनि में जीवात्मा के जन्म लेने का जो विश्वास दिखता है उसके आधार पर मानव व पशु के बीच सम्बन्ध विद्यमान है।इसके रचयिता कर्मकाण्डी व नीतिशास्त्रज्ञ ब्राह्मण विष्णुशर्मा थे। इनके द्वारा रचित यह नीति ग्रंथ समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ-साथ लोकप्रिय है। अपने शिष्यों को सफलतापूर्वक शास्त्रज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के कारण इन्हें कुशल आचार्य होने का यश प्राप्त था। भारत में ही नहीं विदेशों में भी यह सर्वश्रेष्ठ नीति ग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें नीति की बड़ी शिक्षाप्रद, मनोहर व उपादेय कहानियां हैं व बीच-बीच में सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। इस ग्रंथ के रचनाकाल के समय के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं है लेकिन प्राप्त प्रमाणों के आधार पर पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ई0 के लगभग माना जा सकता है।

पंचतंत्र की वाचनाएँ –

पंचतंत्र यद्यपि आज अपने पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं है किन्तु उसके कई संस्करणप्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर उसके विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। शोधकर्त्ता डॉ0 एजर्टन के अनुसार पंचतंत्र की आठ भारतीय वाचनाएँ प्राप्त होती हैं।

1- **तन्त्राख्यायिका -** डॉ0 हर्टेल ने पंचतंत्र की इस वाचना को प्राचीनतम माना है। तन्त्राख्यायिका का रचनाकाल 531ई0-579ई0 माना जा सकता है क्योंकि उसी समय फारस के बादशाह खुशरो नौशेरवां के आदेश पर इसका अनुवाद पहलवी में किया गया। पंचतंत्र का मूल रूप का निर्धारण इसी ग्रंथ के आधार पर होता है। डॉ0 हर्टेल को इसकी पाण्डुलिपियाँ कश्मीर में प्राप्त हुई जिस कारण इसे काश्मीरी वाचना कहा जाता ।

2- **दक्षिण भारतीय पंचतंत्र** - तमिल भाषा में रचित इस ग्रंथ में 96 कथाएं हैं।डॉ0 एजर्टन के मतानुसार इसमें मूल पंचतंत्र के दो तिहाई पद्य व तीन तिहाई गद्यों का संकलन है। दक्षिणापथ में स्थित महिलारोप्य नगर के उल्लेख के आधार पर पंचतंत्र की मूल वाचना का स्थान माना जाता है। इसमें तमिल जनपद की प्रचलित कथाओं का संग्रह है।

3- **नेपाली पंचतंत्र**- नेपाली वाचना के अन्तर्गत पंचतंत्र के गद्य व पद्य दोनों का अस्तित्व

प्राचीन समय में विद्यमान था। इस वाचना में जो भी श्लोक हैं वह दक्षिण भारतीय पंचतंत्र की वाचना में सर्वथा उपलब्ध हैं। लेकिन फिर भी विद्वानों ने नेपाली वाचना का स्रोत दक्षिण भारतीय पंचतंत्र से भिन्न माना है।

4- **पंचतंत्र का हितोपदेश संस्करण**- नारायण पंडित ने ईसा की नवीं शती के आसपास पंचतंत्र के आधार पर हितोपदेश नामक लोकप्रिय कथा ग्रन्थ की रचना की। प्ंचतंत्र की अपेक्षा संक्षिप्त व सरल रूप में बालकों को संस्कृत व नीति की शिक्षा प्रदान करना इसका एक मात्र उद्देश्य था। पंचतंत्र के पांच तन्त्रों के स्थान पर इसमें चार भागों में नीति कथा विभक्त है। जो इस प्रकार हैं- मित्रलाभ, सुहृदयभेद, विग्रह और सन्धि।

5- **बृहत्कथामंजरी के अन्तर्गत पंचतंत्र की कथा**- 11वीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र द्वारा रचित बृहत्कथामंजरी के भीतर पंचतंत्र की कथा का संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है। फ्रेंच विद्वान लाकोत का मत है कि पंचतंत्र की अत्यधिक प्रसिद्धि के कारण इसका सारांश बृहत्कथा के कलेवर में प्रविष्ट कर दिया गया। क्षेमेन्द्र द्वारा रचित पंचतंत्र की पद्यात्मक कथा में केवल पाँच ऐसी कथाएं उपलब्ध होती हैं जो केवल तन्त्राख्यायिका में प्राप्त हैं।

6- **कथा-सरित्सागर के अन्तर्गत पंचतंत्र की कथा**- सोमदेव द्वारा रचित कथासरित्सागर की कथाओं से सम्बन्धित लम्बक(परिच्छेद) में भी पंचतंत्र का संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होता है किन्तु यह भी देखा गया है कि पंचतंत्र की रोचकता व भाषा-शैली इन दोनों ही पद्यात्मक संस्करणों में अभाव है।

7- **पश्चिम भारतीय पंचतंत्र**- विद्वानों के मतानुसार पश्चिम भारतीय पंचतंत्र में मूल पंचतंत्र का स्वरूप उपस्थित है व आज से लगभग 1000वर्ष पूर्व इसका प्रस्तुतीकरण भी हो चुका है।

8- **पंचाख्यान**- पूर्णभद्र सूरि नामक एक जैन विद्वान ने 1255वि0(1199ई0) में पंचाख्यान नामक पंचतंत्र की वाचना प्रस्तुत की। आज जो पंचतंत्र प्राप्त है वह इसी वाचना के ऊपर आधारित है। इस पंचतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 21 नई कथाओं का समावेश किया गया है। जैन लेखक मेघविजय द्वारा 1659-60 ई0 में इसी के आधार पर पंचाख्यानोद्धार नामक ग्रंथ उपलब्ध होता है इसका मुख्य उद्देश्य मुख्य रूप से बालकों को शिक्षा देने के लिए किया गया है व साथ ही इसमें कई नई कहानियां जोड़ी गयी हैं।

9- **डॉ0 एजर्टन द्वारा प्रस्तुत पंचतंत्र का संस्करण**- विद्वान एजर्टन ने पंचतंत्र की उत्पत्ति व विकास की सभी वाचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया व उससे प्राप्त तथ्यों से उन्होंने एक "पुनर्निमित संस्करण " प्रस्तुत किया। डॉ0 एजर्टन का कथन- "जब हम इसकी अन्य वाचनाओं के साथ तुलना करते हैं तब यह तथ्य पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि यह न केवल साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कृति है अपितु यह एक सबसे सुन्दर, परिष्कृत एवं निपुणतम रचना है"डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- " यह पंचतंत्र निश्चय ही महान् साहित्यकार की विलक्षण कलापूर्ण रचना है जिसमें लेखक की प्रतिभा द्वारा कहानियों और संवाद अत्यन्त ही सजीव हो उठे हैं।"

पंचतंत्र का उद्देश्य—

विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र पंच तंत्रों में निबद्ध नीति ग्रंथ है । इसमें मित्रभेद, मित्रलाभ, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षित कारक हैं। प्रत्येक तंत्र में कथा मुख्य रूप से एक ही है उसी के आधार पर अनेक गौण कथायें कही गई। विष्णुशर्मा एक प्रकाण्ड विद्वान व धर्मशास्त्री थे। पंचतंत्र के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है कि भारत के दक्षिण में महिलारोप्य नामक एक नगर था उसमें अमरशक्ति नामक राजा राज्य करते थे। धन-सम्पन्न होने के बाद भी राजा बहुत दुःखी रहते थे क्योंकि उनके तीनों ही पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति व अनन्तशक्ति नामक विवेकहीन, शास्त्रविमुख व महामूर्ख थे। राजा को अपने पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए योग्य गुरू की आवश्यकता थी। तभी उन्हें विष्णुशर्मा नामक नीतिज्ञ ब्राह्मण मिले उन्होंने अपने तीनों मूर्ख पुत्रों को विष्णुशर्मा को सौंप दिया। जब आचार्य विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को शिक्षा देने का कार्यभार ग्रहण किया था उस समय वे अपनी अवस्था के 80 वर्ष पूर्ण कर चुके थे। अर्थ इच्छा से रहित इन्द्रिया शक्ति से शून्य उस निडर आचार्य ने राजसभा में ऐसी प्रतिज्ञा ली कि सभी आश्चर्य से अवाक् रह गये । मात्र छः माह में ही राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञाता बनाने का राजा को आश्वासन दिया। तब विष्णुशर्मा ने छःमाह में ही स्वरचित पंचतंत्र के पांच तंत्रों की रचना के माध्यम से राजकुमारों को नीति शास्त्र का पारंगत बना दिया। पंचतंत्र की रचना का मुख्य उद्देश्य नीति व सदाचरण की शिक्षा देना है।

पंचतंत्र की शैली—

पंचतंत्र में पशु-पक्षी नीति एवं लोक व्यवहार के विषय में वार्तालाप करते हैं, इस ग्रंथ की भाषा मुहावरेदार व सरल है। ग्रंथ में सरल वाक्यों का प्रयोग किया गया है जिससे उसके भावों को समझने में दुरूहता नहीं होती है। उपदेशात्मक सूक्तियां पद्यों में व ग्रंथ के कथानक का वर्णन गद्यों में किया गया है। ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ पर ग्रंथकार की नीतिमत्ता झलकती है। पंचतंत्र की सूक्तियां महाभारत, रामायण व जातक नीति ग्रंथों से संगृहित हैं। पंचतंत्र विश्व साहित्य की विभूति के रूप मेंदो महान विद्वान डॉ0 बेनफी व डॉ0 हर्टर जिन्हें पंचतंत्र के विशाल अनुसंधान का श्रेय दिया जाता है। डॉ0 बेनफी ने यूरोप, एशिया व अफ्रीका जैसे बड़े देशों में भारतीय नीति कथा का प्रसार किया। पंचतंत्र की कथाओं को विश्वप्रसिद्ध बनाने में डॉ0 बेनफी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 हर्टर ने पंचतंत्र के साहित्यिक रूप व कथा साहित्य के विषय में विस्तृत एवं विशद अनुशीलन किया। विद्वानों के प्रमाणों के अनुसार पंचतंत्र केवल भारतीय साहित्य का ही अंग न होकर विश्व साहित्य का भी आदरणीय व सम्माननीय अंग है। डॉ0 हर्टर के अनुसार तन्त्राख्यायिका पंचतंत्र का मूलरूप है। विश्वसाहित्य के लिए पंचतंत्र एक महान रचना व वरदान स्वरूप है। छठी शती में इसका प्रसार फारस तक हो चुका था। खुसरो नौशेरखां के आदेशानुसार बुरजोई नामक हकीम ने इसका पहलवी भाषा में अनुवाद किया। किन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है। सीरियन व अरबी भाषा में इसका रूपान्तर प्राप्त होता है। लगभग 570ई0के आसपास इसका 'कलिलंग' व 'दमनग' नाम से सीरियन भाषा में अनुवाद किया। 10-11वीं शती में इसका अनुवाद अरबी से पुनः सीरियन भाषा में किया गया। अंग्रेजी में इसका अनुवाद सर टामस नार्थ ने किया 1590 में प्रथम बार किया व 1601 में इसका पुनः मुद्रित किया। पंचतंत्र का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ। इस प्रकार से यदि देखें तो पंचतंत्र की लोकप्रिय कहानियां चीन से लेकर अरब देशों तक फैल गयी।

2.5.2 हितोपदेश का परिचय—

नीति कथाओं में पंचतंत्र पर आधारित हितोपदेश नामक लोकप्रिय ग्रंथ है।पण्डित श्री नारायण शर्मा ने राजा धवलचंद्र की प्रेरणा से ही इस महान ग्रंथ की रचना की ऐसा माना जाता है क्योंकि उनके आश्रयदाता राजा धवलचंद्र ही थे। इसके चार भाग हैं- मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह व सन्धि,जिनमें पंचतंत्र के पांचों तन्त्रों को समाविष्ट किया गया है। हितोपदेश नामक ग्रंथ वार्तालाप करने में पटुता के साथ-साथ नीति सम्बन्धी विद्या को भी प्राप्त कराता है। हितोपदेश के विषय में एक कथा प्रचलित है- पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे। उनके चार पुत्र थे जो अनपढ़ थे। समय बीतने के साथ राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में चिन्ता होने लगी। तब राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा कि मेरे इन अनपढ़ पुत्रों को आप नीति शास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें। तत्पश्चात् विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश के नाम से प्रसिद्ध हुए। हितोपदेश के मित्रलाभ में 8,सुहृदभेद में 10,विग्रह में 10 व संधि में 13 कथायें वर्णित हैं।

हितोपदेश का उद्देश्य—

हितोपदेश हितकारी नीतियों का ही उपदेश है। इसके अध्ययन से हमें व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। बालकों को कथा के माध्यम से नीति की शिक्षा देना हितोपदेश का मुख्य उद्देश्य है,यह ग्रंथ अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णरूपेण सफल भी हुआ है।

हितोपदेश की शैली—

हितोपदेश में सूक्तियां पद्यों में दी गयी हैं व कहानी गद्य में है। पंचतंत्र की अपेक्षा हितोपदेश में पद्यों की संख्या अधिक है कहीं तो इनकी संख्या इतनी अधिक है कि कथा प्रवाह में स्वाभाविकता का अभाव है। हितोपदेश संस्कृत की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इसकी भाषा सरल व सुबोध है जिसे सरलता से समझा जा सकता है। अधिकतर पद्यों में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ का एक नेपाली हस्तलेख 1373 ई0 में प्राप्त हुआ है। अतः इसका रचनाकाल 12वीं शती से पूर्व होना चाहिए देखा जाय तो लगभग11वीं शती में। इस ग्रंथ में नीति विषयक पद्यों की संख्या 679 हैं। इस ग्रंथ के लेखन कार्य में केवल पंचतंत्र का ही नहीं बल्कि धर्मशास्त्र, महाभारत ,चाणक्यनीति व कामन्दकीय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अत्यन्त सरल व सुबोध उपदेशों से परिपूर्ण इसकी नीति कथायें मानव को प्रेरणा देती हैं।

हितोपदेश का प्रचार—

जैसा आपको विदित ही है हितोपदेश में हितकारी उपदेशों का प्रचुर भण्डार है। इसके देशकालके विषय का परिचय नहीं मिलता है मित्रलाभ की षष्ठ कथा 'गौरीव्रत" में इसके उद्गम स्थल बंगाल का उल्लेख है यह माना जा सकता है वहां तान्त्रिक पूजा का अत्यधिक प्रचलन था। क्योंकि यह ग्रंथ पंचतंत्र की अपेक्षा विशाल है इसमें पद्यों की संख्या भी अधिक है जिस कारण भारत में इसका प्रचार अधिक हुआ। यूरोप की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। जिससे यह ज्ञात होता है कि इसकी लोकप्रियता विश्वव्यापी है।

अभ्यास प्रश्न .

3- निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये-

(1) पंचतंत्र के रचयिता कौन हैं

(क) शूद्रक (ग) कालिदास

(ख) विष्णुशर्मा (घ) नारायण पंडित

(2) हितोपदेश की कथाओं को कितने भागों में बांटा गया है।

(क) 2 (ग) 4

(ख) 7 (घ) 8

4- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

(क) नीति कथाओं का---- 300ई0 के लगभग माना जा सकता है

(ख) पंचतंत्र की प्राचीनतम वाचना----- है।

(ग) हितोपदेश में----उपदेशों प्रचुर भण्डार है।

(घ) विष्णुशर्मा द्वारा रचित----पांच तंत्रों में निबद्ध ग्रंथ है

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप ये जान चुके हैं कि नीति कथा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों व समीक्षकों के अनुसार संस्कृत नीति कथाओं की उत्पत्ति भारत में ही हुई है। उत्पत्ति के साथ-साथ आप विकास से भी परिचित हुए। नीति सम्बन्धी कथाएं कल्पना शक्ति पर आधारित होती हैं क्योंकि इसमें पशु-पक्षी मानव के समान व्यवहार करते हैं जो असम्भव है ये कथाकार की कल्पना ही तो है। इन कथाओं में हास्य , कौतूहल व उत्सुकता की छटा होती है। इस इकाई में आपने कथाओं के लोकप्रिय व विश्वव्यापी ग्रंथ पंचतंत्र व हितोपदेश का अध्ययन किया। जो आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

2.7 शब्दावली

शिक्षाप्रद - शिक्षा प्रदान काने वाली
चातुर्यपूर्ण - चतुरता से
श्रंगाल - सियार
मार्जार - बिल्ली
अर्थ - धन
जिज्ञासा - किसी चीज के विषय में जानने की इच्छा
चाटुकार - राजा की प्रशंसा करने वाले
सारथि - रथ हांकने वाला
प्रकाण्ड - अत्यधिक विद्वान (सभी शास्त्रों का ज्ञाता)
पारंगत - निपुण
दुरूहता - कठिनता

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- (क) लोक साहित्य (ख) प्राणी कथा (ग) राजपुत्रों (घ) प्राणी
2- (क) (ख) (ग) (घ)
3- (1) ख- विष्णुशर्मा (2) घ- 4
4- (क) विकास (ख) तन्त्राख्यायिका (ग) हितकारी (घ) पंचतंत्र

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 प्रभाकर नारायण कवठेकर- संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्भव एवं विकास चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस ,वाराणसी
(2) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय-संस्कृत साहित्य का इतिहास प्रकाशक-शारदा निकेतन 5बी, कस्तूरबा नगर, सिगरा वराणसी-221010
(3) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय- संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास प्रकाशक डॉ0 सच्चिदानन्द पाठक निदेशक उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

2.10 उपयोगी पुस्तकें

(1) डॉ0 कपिल देव द्विवेदी- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास प्रकाशक रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद
(2) डॉ0 सत्यनारायण पाण्डेय- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रकाशकसाहित्य भंडार
(3) वी0 वरदाचार्य-संस्कृतसाहित्य का इतिहास,प्रकाशक रामनारायण लाल, बेनी प्रसाद, इलाहाबाद

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- नीति कथा के अर्थ को समझाते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2- पंचतंत्र के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
3- नीति कथा की उत्पत्ति को बताते हुए हितोपदेश के महत्व का वर्णन कीजिये।

इकाई-3 संस्कृत गीति एवं मुक्तक काव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संस्कृत गीति एवं मुक्तक काव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास
    3.3.1 संस्कृत गीतिकाव्य उत्पत्ति एवं विकास
    3.3.2 संस्कृत मुक्तककाव्य उत्पत्ति एवं विकास
    3.3.3 प्रमुख गीति एवं मुक्तक काव्यों का परिचय
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही गीति एवं मुक्तक काव्यों की परम्परा चली आ रही है। इन गीति एवं मुक्तक काव्यों में विभिन्न प्रकार के उपदेश दिये गये हैं। वैसे तो संस्कृत साहित्य में काव्यों का विपुल भण्डार है किन्तु गीति एवं मुक्तक परक काव्यों की अपनी विशेषता है। वैदिक वाङ्मय में मुक्तक एवं गीतिकाव्य के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। लौकिक साहित्य में प्रायः सभी विधाओं में गीतिकाव्य लिखे गये। स्वतन्त्र रूप से गीतिकाव्य की रचना बहुत ही अल्प मात्रा में हुई है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। मुक्तककाव्य में मुख्य रूप से लोक व्यवहार एवं नैतिक भावनाओं का समावेश होता है। इसमें केवल एक प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति की संभावना होती है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत, जैन व बौद्ध ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उक्त परम्परा दृष्टिगोचर होती हैं। इस इकाई में आप गीति एवं मुक्तक काव्यों से परिचित होने के साथ-साथ गीति एवं मुक्तक काव्यों की उत्पत्ति, विकास एवं उसके महत्त्व के विषय में जान पायेंगे। इन इकाई के अध्ययन से आप कुछ महत्त्वपूर्ण गीति एवं मुक्तक काव्यों के व्यावहारिक पहलुओं को जानेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- संस्कृत गीतिकाव्य की विशेषताओं के विषय में जान सकेंगे।
- संस्कृत गीतिकाव्य के उत्पत्ति एवं विकास के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- संस्कृत मुक्तक एवं गीति काव्यों की विकास यात्रा से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृत मुक्तककाव्य के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- संस्कृत मुक्तककाव्य के उत्पत्ति एवं विकास के विषय में जानेंगे।

3.3 संस्कृत गीति एवं मुक्तक काव्यों की उत्पत्ति एवं उनका विकास

गीतिकाव्य का अर्थ अंग्रेजी के शब्द 'लिरिक' के समानांतर है। इस पर विद्वानों में मतभेद भी हैं। हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार गीतिकाव्य 'लिरिक' के तत्व बोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूतः आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है। गीत का प्रयोग प्राचीनतम है और नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं। 'गीत शब्दितगानयोः(हेमचन्द्र) और गीत गानमिमेसमे (अमरकोश)।

सामान्य शब्दों में गीतिकाव्य का अर्थ है 'गाया जा सकने वाला काव्य' परन्तु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण होते हैं, उसे गीतिकाव्य कहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि भारतीय गीतिकाव्य की परम्परा स्फुटतः भारतीय वेदों से पूर्व की है। मानव सभ्यता में गीत की प्राचीन परंपरा है। गीत अथवा संगीत का मानव जीवन में विशेष महत्व है। साहित्यदर्पणकार इस सन्दर्भ में कहते हैं— **'भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्। एकार्थप्रवणै: पद्यै: सन्धि साग्रयवर्जितम्। खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च'।**

3.3.1 संस्कृत गीतिकाव्य उत्पत्ति एवं विकास—

संस्कृत में कथा-प्रधान महाकाव्यों के अतिरिक्त ऐसे अनेकों काव्य ग्रन्थों की रचना भी हुई है, जिसमें उन्मुक्त माननीयभावों एवं उच्छवासों को प्रमुख स्थान दिया गया है। गेयता तथा संगीत के तत्वों से युक्त होने के कारण इन्हें गीतिकाव्य कहा गया है। महाकाव्यों की भॉती इन गीतिकाव्यों में कवि कथा की नियोजित रूढियों

और पारम्परिक वर्णनों की सीमा में बड़ा नहीं होता है। यहां वह सर्वथा उन्मुक्त होकर जीवन और जगत् के अपने निजी अनुभवों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। इस क्षेत्र में प्रकृति उसकी स्वच्छन्द सर्जरी होती है। वह प्रकृति के साथ अपने हृदय को रागात्मक भावों का सहयोग स्थापित पर एक पारलौकिक संसार की सृष्टि करता है जिसके मधुरस से श्रोता और पाठक आत्मविभोर होकर उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा कर उठते हैं। संक्षेप में गीतिकाव्य के संस्कृत साहित्यरूपी पारलौकिक वाटिका के ऐसे विभाग हैं। जिनमें विहार कर सरस पाठक मृत्युलोक में भी पारलौकिक आन्नद का अनुभव करते हैं।

वैदिक वाङ्मय से ही संस्कृतसाहित्य का उद्भव हुवा हैं। वैदिक काल से काव्यत्व का प्रचार प्राप्त होता आ रहा है। इसमें गीतिकाव्य के सौन्दर्य परक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। रामायण में अनेक स्थानों पर गीतिकाव्य के तत्त्वों का प्रयोग किया है। रामायण एक प्रबन्ध काव्य है फिर भी वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर गीतिकाव्य के तत्त्वों का प्रयोग किया है। गीतिकाव्य की विकास परम्परा में महाभारत का भी अप्रत्यक्ष रूप से योगदान अवश्य है। वाल्मीकि ने अपने मनोभाव को प्रकट करने के लिए काव्य की जिस प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया वह महाभारत में भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता रहा है। महाभारत के स्वयंवर अवसर में, नल उपाख्यान में पद की मनोदशा तथा पाण्डवों के वन गमन काल में करुण क्रन्दन आदि अनेक स्थलों में गीतिकाव्य के लक्षण घटित होते हैं। रामायण, महाभारत जैसे आर्ष काव्यों में भी अनुभूत भावों को गीति के रूप में प्रकट किया गया है। महाकाव्य में गाम्भीर्य, प्रशस्तता तथा उदात्तता गुण अपेक्षित होता है किन्तु इसके विपरीत गीतिकाव्य में माधुर्य, मृदुता तथा आन्तरिक वेग आदि गुण मुख्य होते हैं। व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य पाणिनि के 'पातालविजय' काव्य में भी गीतिकाव्य के उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाकवि कालिदास की रचनाओं में गीतितत्व विकसित रूप में प्रकट हुआ है।

महाकवि कालिदास रचित 'मेघदूत', जयदेव रचित 'गीतगोविन्द', अमरू कवि का 'अमरुशतकम्' तथा पंडितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनीविलास' ऐसे ही कृतियां हैं जिनका आस्वाद किये बिना संस्कृतसाहित्य की काव्य माधुरी से परिचित नहीं हुआ जा सकता है। संस्कृतसाहित्य में गीतिकाव्य के तत्व वेदों से ही प्राप्त होने लगते हैं। ऋग्वेद में 'उषा' का वर्णन अद्भुत गीतात्मकता से युक्त है। आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण के सत्रहवें सर्ग में निहित अशोकवाटिका का वर्णन अलौकिक गीतात्मकता से युक्त है। यहां तक कि आदि कवि की कवित्वशक्ति की प्राप्ति से संबंधित प्राथमिक घटना कौञ्च-बध अपने आप में अपूर्व रागात्मकता छुपाए हुए हैं। रामायण के पश्चात् संस्कृत के अनेकों नाटकों में गीतिकाव्य के तत्व ढूंढे जा सकते हैं। नाटकों में निहित गीतात्मकता की ओर भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में संकेत कर दिया है।'**मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं।जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्'।।**

भरत का यह कथन यद्यपि नाटकों के विषय में है फिर भी संकेत रूप में इसमें गीतिकाव्य की मृदुललित शब्दों का प्रयोग, गूढ अर्थ वाले क्लिष्ट पदों का बहिष्कार सर्वजन बोध्यता तथा विभिन्न रसों श्रृंगार, करूण, अद्भुत, शांत, आदि का परिपाक आदि विशेषताएं निहित है। इस प्रकार संस्कृत गीतिकाव्य सर्जना का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल से ही हुआ और अद्यावधि पर्यन्त इसकी रचना होती चली आ रही है। संस्कृत गीतिकाव्य की सुविस्तृत परम्परा अधोलिखित प्रमुख रूपों में प्राप्त होती है।

गीतिकाव्य के तीन भेद है। 1.प्रबन्धगीति (खण्डकाव्य), 2.मुक्तकगीति 3.मुक्तक संदोह इनमें से मुक्तकगीति के चार भेद हैं। 1.श्रृंगारमुक्तक, 2.करूणमुक्तक, 3.नीतिमुक्तक 4.वैराग्यमुक्तक इसी प्रकार मुक्तक संदोह के दो भेद है।1.विषयप्रधान 2.स्तोत्र के रूप में प्राप्त होते है।

प्रबन्धगीति की कोटि में कालिदास कृत मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति के अनेक मनोहर चित्रों को प्रस्तुत किया हैं। कालिदास का प्रकृति चेतना में विश्वास है जिसको उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रदर्शित किया

है। ऋतुसंहार की भी गणना गीतिकाव्य में की जाती है। इसी प्रकार जयदेवकृत गीतगोविन्द प्रमुख हैं। मुक्तकगीति के अंतर्गत अमरुशतक, भर्तहरि कृत शतकत्रय (श्रृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक)। गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, पण्डितराज जगन्नाथ का विलासकाव्य, गंगालहरी। मुक्तक संदोह की कोटि में कालिदास कृत ऋतुसंहार, भामिनीविलास, चंडीशतक आदि की गणना की जा सकती है।

3.3.2 संस्कृत मुक्तककाव्य उत्पत्ति एवं विकास—

जिस काव्य के स्वरूप में एक ही छन्द के माध्यम से विचारों एवं भाव की अनुभूति बिना किसी परंपरा या पूर्वापर संबंध से प्रस्तुत किया गया हो उस काम को मुक्तककाव्य के नाम से जाना जाता है। संस्कृत साहित्य में बहुत से काव्य मुक्तक में लिखे गये हैं क्योंकि क्षणिक भाव के आवेश से उत्पन्न काव्य गुण की दृष्टि से मुक्तक ही होते हैं। अग्निपुराण के अनुसार-'मुक्तकं एकैकश्चमत्कारक्षमं सताम्' अर्थात् मुक्तक काव्य वह है जिसका प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र रूप से अपने सर्वांगीण अर्थ प्रकाशन में पूर्ण समर्थ होकर सहृदयों में चमत्कार का कारक होता है। इसके एक पद्य का दूसरे पद्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। शब्दकल्पद्रुमकार केशव ने मुक्तक का स्वरूप बतलाते हुवे कहा है- जो पद्य अर्थ के पर्यवसान में तथा रस की चर्वणा में दूसरे पर बिना अपेक्षित स्वतः पूर्ण हों उसे मुक्तक काव्य कहते हैं। मुक्तक काव्य में रस चमत्कार और समस्त विशेषताओं का समाहार अपेक्षित है। मुक्तककाव्य में किसी भी कथा या संदर्भ की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह पूर्ण स्वतंत्र काव्यरचना होती है। मुक्तककाव्य के प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र एवं पूर्ण होते हैं। मुक्तककाव्य के अन्तर्गत कविता, दोहा, पद, गीत आदि आते हैं।

इस प्रकार कह सकते है कि मुक्तक रचना करने वाले कवि तथा प्रबन्धकाव्य के रचयिता दोनों ही नीति, धर्म तथा व्यवहार सम्बन्धी ऐसी रचनायें पद्यों में करते थे, जिनको अकेले भी सभाओं में सुनकर आनन्द लिया जा सकता था। भर्तृहरि मुक्तककाव्य परम्परा के अग्रणी कवि हैं। उनकी रचनाओं में मुक्तककाव्य की सभी विशेषतायें दिखायी पड़ती हैं। मुक्तक कवियों की रचना करने वाले ऐसे कवियों की परम्परा समान रूप से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में विद्यमान है। संस्कृत साहित्य की मुक्तक काव्य परम्परा में भर्तृहरि, अमरुक, अभिनन्द, योगश्वर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवीन्द्रवचनसमुच्चय, सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषितमुक्तावली, शारंगधरपद्धति आदि संस्कृतसाहित्य के प्रमुख मुक्तक काव्य हैं। इनके अतिरिक्त मुक्तक काव्यों के प्रति आचार्यों का अत्यधिक आदर रहा है। आनन्दवर्धन, मम्मट, कुन्तक आदि ने ऐसे मुक्तकों को अपने लक्षण ग्रन्थों में उद्धृत किया है और उनके काव्यगुणों की प्रशंसा की है।

मुक्तककाव्य की विशेषताएं—

1. मुक्तककाव्य में प्रत्येक छन्द अपने आप में पूर्ण होता है।
2. मुक्तककाव्य में मुख्य रूप से लोक व्यवहार एवं नैतिक भावनाओं का समावेश होता है।
3. मुक्तक काव्य में चमत्कार पूर्ण समाहार होता है।
4. मुक्तककाव्य में रसानुभूति के द्वारा हृदय मुक्तता आवश्यक है।
5. इसमें कथा तत्व का अभाव होता है।
6. मुक्तककाव्य में किसी रस विशेष की गहन अनुभूति विद्यमान होती है।
7. मुक्तककाव्य में रसपाकता एवं सौन्दर्य विद्यमान होता है।
8. मुक्तक काव्य में ध्वन्यात्मकता पूर्ण होते हैं।

3.3.3 प्रमुख गीति एवं मुक्तक काव्यों का परिचय—

लौकिक साहित्य में स्वच्छन्द रूप से गीतिकाव्य की रचना का उद्भव कालिदास के ग्रन्थों में मिलता है। उनकी दो प्रसिद्ध गीतिकाव्य की रचनाएँ मेघदूत तथा ऋतुसंहार प्राप्त होती हैं। संस्कृत के प्रमुख गीति एवं मुक्तककाव्यों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

मेघदूत का परिचय—

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों एव नाटकारों में निश्चित रूप से कालिदास कनिष्ठिका पर गीने जाने वाले महत्वपूर्ण कवि है। उनकी अपनी काव्य प्रतिभा से जो यश और प्रसिद्धी मिली शायद अन्यविद्धान नही प्राप्त कर सके। यद्यपि कालिदास के रचनावों के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नही हैं तथापि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध जो प्रचलित काव्य और नाटक है। उनके सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य है। कालिदास के काव्यों में ऋृतुसंहार, कुमारासम्भवम्, मेघदूत तथा रघुवंशमहाकाव्य प्रसिद्ध हैं तथा नाटको में मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् यह तीन नाटक विद्वानों ने बताया है।

मेघदूत कालिदास की उत्कृष्ट एवं सशक्त रचना है। जो दो भागों में विभक्त है। 1 - पूर्वमेघ 2 - उत्तरमेघ। यह एक प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य है जिसके पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ दो भाग हैं। इन दोनों भागों में लगभग 115 श्लोक प्राप्त होते हैं। मेघदूत का अंगीरस विप्रलम्भ शृंगार है। सम्पूर्ण मेघदूत में एकमात्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। पूर्वमेघ में अलकापुरी के लिए प्रस्थान करने वाले मेघ के मार्ग का चित्रण है तथा उत्तरमेघ में अलकापुरी की सम्बृधि ओर यक्षिणी के सौन्दर्य एवं वियोगावस्था का वर्णन है। समाप्ति के दौरान कुछ पद्यों के माध्यम से यक्ष का सन्देश बतलाया गया है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत एक परम रमणीय गीतिकाव्य है विल्कुल नपे तुले शब्दों के माध्यम से भाव की विषद व्यंजना कर देना मेघदूत की प्रथम विशिष्टता है। इस काव्य में मानव की चिर नवीन वेदना है। जिसमें स्त्री पुरूष के मधु सिक्त प्रणय की कहानी है। और अपूर्व सौन्दर्य का अंकन है। इसकी शिक्षागर्भित मनमोहनी कविता पर मोहित होकर आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य ने लिखा है - **'साकूत मधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूचितप्राये। शिक्षासमयेपि मुदे रतिलीला कालिदासेक्ति'।।** अर्थात् शिक्षा समय में भी आनन्द देने वाली दो ही वस्तुए है एक भावगर्भित मधुर और कोयल कण्ठकूजित वाली विलासती कामिनी की रतिलीला और दूसरी उसी के समान भाव पूरित मधुर और कोमलकान्त पदावली वाली कालिदास की कविता।

मेघदूत की भाषा प्राज्जल परिष्कृत एव प्रवाहपूर्ण है। शब्द चयन करते समय कवि ने विशेष कौशल प्रकट किया है। मेघदूत के मात्र एक मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग है वर्षा ऋतु के वर्णन में तथा वियोग वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग सुन्दर प्रतीत होता है। आवश्यकातानुसार कवि ने अलंकारों का भी यथास्थान गुफुन किया है। जिससे काव्य का स्वाभाविक सौन्दर्य और प्रस्फुतित हो गया है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण मेघदूत बहुत ही अधिक लोकप्रिय बना। इससे बाद के कवि परम्परा ने भावात्मक प्रेरणा प्राप्त की और शायद इसी का अनुकरण 108 दूतकाव्य भी लिखे गये।

ऋतुसंहार का परिचय—

विद्वानों ने ऋृतुसंहार को कालिदास की प्रथम कृति माना है। छ: सर्गो में विभाजित इस काब्य में छ: ऋृतुओं का ह्रदय स्पर्शीवर्णन कवि ने किया है। इन ऋृतुओं का वर्णन उददीपन के रूप में किया गया है। इसकी भाषा सरल एव सहज है। इसमें कृत्रियान का अभाव तथा प्रसाद गुण की अधिकता दिखाई पडती है। यद्यपि इस रचना के सम्बन्ध में विद्धानों में मतैक्यता नही है। तथापि यह मत मान्य नही है। यह कालिदास की प्रथम रचना है। छः सर्ग वाला एक लघुकाव्य है। इसमें छः ऋतुओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसका वर्ण्य विषय प्रकृति चित्रण है। इस ऋतुसंहार में कालिदास प्रिया को सम्बोधित करके छः ऋतुओं का वर्णन, छः सर्गों में करते हैं।

शतकत्रय का परिचय—

संस्कृत गीतिकाव्य को अपेक्षित गति देने वाले भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वानों में गिने जाते थे। उनकी यह विद्धता उनके द्वारा रचित अनेक पुस्तकों, ग्रन्थों से ही प्राप्त होता है । भर्तृहरि को जो भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई उनमें नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक का उल्लेख प्रमुखता से मिलता है। आपके तीनों शतकों का विश्लेषण वर्गीकरण के आधार पर निम्न प्रकार से किया जाता है ।

1. नीतिशतक—

नीतिशतक के प्रत्येक श्लोक में कवि भर्तृहरि ने नैतिकता का उल्लेख किया है। कविता के माध्यम से भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों को नीति शतक में चित्रित किया है, इसमें नीति से सम्बन्धित श्लोकों का संग्रह है। यह व्यावहारिक उपदेशों का भंडार है, इसमें वर्णित पद्य तो इतने मार्मिक हैं कि वे तत्क्षण अध्येताओं के हृदय में उतरकर कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं । विद्वत प्रशंसा, अर्थ पद्धति, सुजन पद्धति, दुर्जन पद्धति, परोपकार पद्धति आदि। वास्तव इस शतक में वीरता, विद्या,दया, उदारता, परोपकार, और साहस जैसे मानवीय मूल्यों को अपना विषय बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने पूरे मानव समाज के लिए नीतिगत बातों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

यह सर्वविदित रूप में प्राप्त होता है कि भर्तृहरि उज्जयिनी के राजा थे । इनकी राज व्यवस्था तथा नीतियों से प्रजा, जनता एवं पदाधिकारी सभी लाभान्वित तथा सुखी होने का अनुभव व्यतीत करते हैं । भर्तृहरि की विद्वता पर किसी प्रकार का संशय किया ही नहीं जा सकता था । आपने नीतिशतक के अन्तर्गत व्यवस्था संचालन की प्रथम इकाई मानव का चयन किया। वह उसके व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन यह प्रकट करना चाहते थे कि जैसा व्यक्ति वैसा व्यवहार तथा इन दोनों के अनुरूप वैसी नीति का क्रियान्वयन सम्मिलित होना चाहिए । भर्तृहरि ने नीतिशतक में सर्वप्रथम सृष्टि के विभाजक नियामक स्त्री पुरूष को मोहने के लिए बनायी गयी है । वह उनके व्यवहार का चित्रण करते हुए कहते हैं कि वास्तव में वह बात किसी से करती है हॉव-भाव किसी और को दिखाती हैं जबकि विचार किसी अन्य के प्रति रखती हैं । विद्याधन को सर्वोत्तम धन के रूप में स्वीकारते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि विद्याधन चुराने की वस्तु नहीं है क्योंकि यह चुराने वाले व्यक्ति को दिखाई नहीं देती है । विद्या से प्रत्येक का कुछ न कुछ कल्याण होता है यह आपेक्षितों को नियमित देने से भी बढ़ती ही रहती है, यह अन्त तक समाप्त नहीं होने वाली वस्तु है अतः हे राजाओं जिनके पास भी यह धन है किसी प्रकार का घमण्ड़ अहंकार विद्या के लिए मत आने दो । विद्या अर्थात् सरस्वती के पश्चात् लक्ष्मी की चर्चा करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मी वैभव का प्रतीक है जिनको यह प्राप्त होती है वह धन्य हो जो हैं किन्तु इस परम को प्राप्त करने के पश्चात् किसी जाति, विषय और धर्म के पाण्डित्य का अपमान न करें क्योंकि यह धन सम्पत्ति इन विद्वानों को किसी बंधन में नहीं बांध सकती हैं । यह उनके वैसे ही है जैसे कमल, डण्ठल से निकलने वाले धागों से मदमस्त हाथी को बांधने का असफल प्रयास है । इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा भर्तृहरि ने नीतिशास्त्र के अन्तर्गत धर्म और सामाजिक जीवन को संतुलित बनाने का प्रयास किया है ।

2. श्रृंगारशतक—

श्रृंगारशतक में भर्तृहरि ने बड़ा ही उल्लास पूर्ण वर्णन किया है। श्रृंगार से ओत-प्रोत श्रृंगारशतक भर्तृहरि के यौवन उल्लास की अभिव्यक्ति है, इसके श्लोकों में काम के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है। कवि ने कामिनियों के सौन्दर्य व कटाक्ष नेत्रों के द्वारा आकृष्ट करने वाले हाव-भावों का चित्रण किया है। प्रेम से प्रभावित कामी स्त्री व पुरूष के चित्त का वर्णन भर्तृहरि ने सुन्दर प्रकार से किया है—

अदर्शने दर्शनमात्रकामादृष्ट्वा परिष्वड्गरसैकलोलाः।
आलिड्गतायां पुनरायताक्ष्या आशास्महेविग्रहयोरभेदम् ।।

जब तक प्रेमी अपनी प्रियतमा को देख नही लेता उसे देखने की इच्छा बनी रहती है प्रियतमा का आलिंगन कर लेने के बाद ये इच्छा होती है कि दोनों इसी तरह रहें, हममें कोई विलगाव अर्थात् हम अलग न हों। इसी तरह भर्तृहरि ने युवक-युवतियों की प्रणयक्रीड़ा, स्त्रियों की मन्द-मन्द मुस्कान, भौंहों के फेरने की चतुराई से पूर्ण आंखों द्वारा कटाक्ष आदि श्रृंगारिक चेष्टाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन है। राजा भर्तृहरि सांसारिक सुन्दरता से प्रभावित थे, राजा भर्तृहरि ने दो विवाह किये थे इन दोनों विवाहों के पश्चात् भी आपने तीसरा विवाह पिंगला नामक राजकुमारी से किया है जो अत्यन्त सुन्दरी तथा सौन्दर्य में वह अप्सराओं को भी मात दिये हुए थीं। उनके सौन्दर्य से प्रेरित होकर इन्होंने श्रृंगारशतक को जमीनी आधार प्रदान किया। अपने श्रृंगारशतक के अन्तर्गत सर्वप्रथम कामदेव को प्रणाम किया और इस बात को स्वीकारा कि यह कामदेव भगवान की देन है कि विराट पुरूष भी मृगनयनियों के वश में हो जाता है। आपने यह कहा है कि स्त्रियों का सबसे बड़ा गहना उनकी भौहों की चंचलता, आँखों का तिरक्षापन तथा लज्जा में परिवर्तित होने वाली हँसी है जिसे वह समय-समय पर अस्त्रों के रूप में प्रयोग करती हैं। स्त्रियों के नयनों की व्याख्या करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि इन नयनों का ही प्रबल प्रभाव है जो धरती पर सभी दिशाओं में खिले हुए कमल की भांति सुन्दर बनाती हैं। अर्थात् देखने वाली सभी सुन्दर वस्तुओं में सबसे सुन्दर चित्र मृगनयनियों के द्वारा देखने की कला से ही प्रचारित होता है।

श्रृंगारशतक के अन्तर्गत कामदेव की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा जाता है कि कामदेव केवल राजा, महाराजाओं तथा धनी व्यक्तियों, सम्पन्न गुणों वालों को ही प्रभावित करते हुए नहीं पकड़ते अपितु मरे हुए व्यक्तियों को भी मारते हैं। इसका प्रभावपूर्ण विस्तृत वर्णन करते हुए यह उजागर किया जाता है कि जब श्रृंगार एक नशा के रूप में व्यक्ति पर छा जाता है तो वह बेहाल और व्याकुल तथा विभिन्न व्याधियों से पीड़ित होते हुए भी केवल और केवल वासना की आसक्ति को स्वीकार करता है। कामदेव के इस प्रभाव को प्रकट करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि नारी अमृत और विष दोनों है नारियों का प्यारा कोई नहीं होता है यह राजा भर्तृहरि के श्रृंगार शतक के अंतिम पक्ष को दर्शाता है और अन्त में आप यह भी स्वीकार करते हैं कि वेश्या विवेक रूपी कल्पना के लिए कुल्हाडी के समान है अतः कुलीन पुरूषों को वेश्याओं से दूर ही रहना चाहिए और उन्हें यह मानना चाहिए कि वियोग में संयोग होता है और संयोग में वियोग होता है।

3. वैराग्य शतक—

वैराग्य शतक में कवि भर्तृहरि का सर्वस्व प्रतीत होता है। यौवन -काल में उन्होंने सभी प्रकार के भोग पदार्थों का सेवन किया। उनका प्रारम्भिक जीवन विषय वासनाओं से ग्रस्त था। अपनी प्रिय रानी के कुकर्म से इन्हें ऐसी घृणा हुई जो कि इन्होंने राजपाट त्याग कर वैराग्य धारण किया। राजा भर्तृहरि ने अपने जीवन के सच्चे अनुभवों को श्लोकों में बॉ ध दिया। वैराग्य शतक को सर्वोत्तम कृति मानने में कोई संशय नहीं है, इसमें सांसारिक सुख भोगों का व मानवीय जीवन के दुःखमयता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया। वैराग्य के द्वारा ही परम सुख की प्राप्ति होती है। इस चराचर जीवन में मनुष्य को कहॉ से सुख मिल सकता है, वैराग्य शतक के इस श्लोक में कवि भर्तृहरि ने संसार की असारता और वैराग्य के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

इस संसार में आकर हम भ्रम में थे कि जी भर के भोगों को भोगें लेकिन भोगों ने ही हमें भोग लिया, हम तप नहीं सके पर तप ने ही हमें तपा लिया, काल व्यतीत न हुआ किन्तु हम ही व्यतीत हो गये, हमारी तृष्णा दिनों दिन बढ़ती गई किन्तु हम ही समाप्त हो गये। इस प्रकार भर्तृहरि ने संतोष को परम धन व वैराग्य को इसका साधन माना है। अपने नीतिशास्त्र के अन्तिम पक्ष में यह माना कि धीर का धैर्य नष्ट नहीं होता है अर्थात्

धैर्य पूर्ण स्वभाव वाला मनुष्य कितना ही दुःख में पड़ा हो पर उसका धैर्य समाप्त नहीं किया जा सकता है इसकी तुलना करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि यदि आग का मुँह नीचे की ओर कर दिया जाय तो भी उससे उठने वाली लपटे नीचे की ओर नहीं जाती हैं। नीति शास्त्र का अन्तीम श्लोक भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक के आरम्भिक रूप-रेखा को तय करने के लिए ही बनाया होगा। पिंगला के छल से जागृत होने के पश्चात् कवि, साहित्यकार भर्तृहरि ने अपने छोटे भाई राजा विक्रमादित्य को उज्जयिनी का शासन देने के बाद वैराग्य को ही जीवन दर्शन का आधार बनाया और साधुवादी दृष्टिकोण को अपनाकर सुन्दर उपदेश देना आरम्भ कर दिया। वह धार्मिक आधार पर नवजीवन को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि बह्म ज्ञान के अतिरिक्त सभी ज्ञान केवल एक सामाजिक व्यापार है। ज्ञान, धर्म और तपस्या के माध्यम से ही संसार सागर से पार हुआ जा सकता है जाने का उपाय है।

घटकर्पर—

घटकर्पर महाराजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। उन्होंने 22 पदों का 'घटकर्पर' नामक एक लघुकाव्य रचा है। जिसमें वर्षाऋतु के आरंभ में एक विरहिणी पत्नी अपने दूरस्थ पति के पास अपने संदेश भेजती है। यमक अलंकार की प्रधानता वाले इस काव्य में गीतात्मकता का सफल निर्वाह हुआ है।

अमरुकशतम् का परिचय—

महाकवि अमरूक का 'अमरुकशतक' संस्कृत गीतिकाव्य के इतिहास में प्रसिद्ध है। 'अमरुकशतक' एक उत्कृष्ट मुक्तकाव्य के रूप में विद्वानों के सक्षम समादृत है। इसका रचना काल नवीं शती माना जाता है। डॉ. भोलाशंकर व्यास कहते हैं कि संस्कृतसाहित्य में अमरूक को छोटी सी मुक्तकमालिका है, जिसमें पूरे 100 मुक्तमणियां गुथी हुई हैं, और पता नहीं कब से सहृदय रसिकों, अलंकारिक पंडितों का एक साथ गले का हार बनी हुई है। इस माला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक मुक्तक सुमेरू है। प्रत्येक पद में अपनी एक अलग विशेषता है और इन विशेषताओं के कारण अमरुकशतक गीतिकाव्य में बेजोड़ है। श्रृंगार रस के विविध पक्षों को उपस्थित करने में अमरूक की तूलिका अपनी सानी नहीं रखती और उसकी रेखाओं की बारीकी और भंगिमा अमरूक की कलाविदग्धता का सफल प्रमाण है।

विक्रमांकदेवचरित—

विक्रमांकदेवचरित नामक महाकाव्य के रचयिता बिलहण का 'चोरपंचरीका' नामक एक लघु गीतिकाव्य मिलता है। इसकी शैली सरस और मधुर है तथा भाषा प्रभावपूर्ण है।

आर्यासप्तशती का परिचय —

आर्यासप्तशती एक श्रृंगारिक गीतिकाव्य है। इसमें गोवर्धनाचार्य ने लगभग 700 आर्या छन्दों में प्रेमी-प्रेमिकाओं के संयोग वियोग की कथाओं का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है। एक पद्य में गोवर्धनाचार्य कहते हैं कि- हे भ्रमण! इस कोमलकली के होठों का रसपान करते समय तुम दूर से ही केवल अपने जीव के अग्रभाग से उसका स्पर्श करना क्योंकि यदि अपना संपूर्ण मुख उसके मुख पर रख दोगे तो उसके होठों के मधु से तुम्हारे होंठ चिपक जाएंगे। इस तरह शृंगार रस की गीतिकाव्यात्मकता इस काव्य में पूर्ण रूप से विद्यमान है।

गीतगोविन्द का परिचय—

संस्कृत गीतिकाव्य की परम्परा में महाकवि जयदेव की काव्यकृति गीतगोविन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें राधा और कृष्ण के प्रणय की विविध दशाओं, आशा, निराशा, उत्कंठा, ईर्ष्या, कोप, मान और मिलन का हृदयग्राही चित्रण हुआ है। संस्कृतकाव्य में राधा की प्रतिष्ठा करने का प्रथम श्रेय जयदेव को ही प्राप्त है। श्लोक, गद्य और गीत की मिलीजुली अभिनव शैली का सूत्रपात करके जयदेव ने राधा कृष्ण की जीवन घटनाओं को श्रृंगार की एक नई तन्मयता से रक्तसिक्त कर दिया है। गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के

साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन, कृष्ण की राधा के लिए उत्कण्ठा, राधा की सखी द्वारा राधा के विरह सन्ताप का वर्णन है। इसमें 12 सर्ग हैं, जिनका 24 प्रबन्धों में विभाजन हुआ है। जयदेव ने इस काव्य में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है तथा उनमें अनुपम माधुर्य भी है। मानवीय सौन्दर्य के चित्रण में प्रकृति को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस सन्दर्भ में 'गीतगोविन्द' काव्य में ऋतुराज वसन्त, ज्योत्स्ना, सुरभित समीर तथा यमुना तट के मोहक कुंजों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है।

भामिनीविलास का परिचय—

संस्कृत साहित्य में आचार्य के रूप में प्रसिद्ध पंडितराज जगन्नाथ की कई कृतियां हैं। लेकिन इनमें 'भामिनीविलास' उल्लेखनीय है। इसके पद अत्यंत सुंदर, सरस, भावपूर्ण और मन पर प्रभाव डालने वाले हैं। इसकी शैली अत्यंत मधुर, उधार और लालित्ययी है।

यह मुक्तक कविताओं का संकलन है। भामिनीविलास में चार विलास (अध्याय) हैं जिनमें प्रत्येक में प्रायः सौ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ का नाम पण्डितराज की प्रथम पत्नी पर है जिनका नाम 'भामिनी' था और उनकी मृत्यु बहुत कम आयु में हो गयी थी।

(1) प्रस्ताावितविलास– इसमें जीवन के अनुभव एवं ज्ञान का सरस, भावमय प्रकाशन किया गया है। इस विलास को अन्योक्तिविलास के नाम से भी जाना जाता है।

(2) शृङ्गारविलास- इसमें शृंगार रस से युक्त श्लोकों का वर्णन किया गया हैं।

(3) करुणविलास- इस में भामिनि की अकाल मृत्यु पर करुण विलाप का वर्णन किया गया है।

(4) शान्तविलास- इसमें वैराग्य भावना का वर्णन किया गया हैं।

स्तोत्रसाहित्य का परिचय—

संस्कृत गीतिकाव्य की ही एक अन्य धारा इसमें स्तोत्र साहित्य के रूप में प्रवाहित हुई। भारत अनेक देवी देवताओं और उनसे सम्बन्धित विविध सम्प्रदायों संयुक्त देश है। यहां देवी देवताओं की अर्चना उनकी वन्दना धर्म का एक अंग मानी गई है। इन्हीं में विभिन्न देवी-देवताओं को प्रसन्न करने तथा उनकी कृपा से मनोवांछित फल प्राप्त करने के लिए संस्कृत में भक्त कवियों ने अनेक स्तोत्रों का निर्माण किया है। इन स्तोत्रों की परंपरा वैदिक आर्यों से ही प्रारम्भ हो जाती है। सारा ऋग्वेद वैदिक देवताओं के प्रीत्यर्थ की गई स्तुति मात्र है। बाद में संस्कृत साहित्य में भी अनेक स्तोत्र ग्रंथों की रचना हुई। इन स्तोत्रों में भक्ति और शान्त रस की जो मंदाकिनी प्रवाहित हुई वह आज भी भारतीयों की श्रांति एवं विश्रांति का मूल आधार है। संस्कृत के स्तोत्र साहित्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

शिवमहिम्न: स्तोत्र—इसके रचयिता पुष्पदन्त नामक कवि हैं। इसमें शिव की अद्भुत महिमा का गुण-गान किया गया है। इसका रचनाकाल दसवीं शती ईसवी है।

सूर्यशतक—सातवीं शती में मयूरभट्ट नामक कवि इसके रचयिता हैं। प्राकृतिक शक्तिरूपी देवता सूर्य का इसमें गुणगान किया गया है।

चंडीशतकम्—इसके रचियता प्रसिद्ध गद्यकार बाणभट्ट है। शिव की आदिशक्ति रूपी चण्डी के प्रीत्यर्थ इसमें में 100 श्लोक निबद्ध हैं। सातवीं शती इसका समय है।

सौंदर्यलहरी— इसके प्रणेता आदि गुरु शंकराचार्य हैं। इसमें कामाख्या देवी की स्तुति की गई है। इसका रचनाकाल आठवीं शती है।

मुकुंदमाला— इसके रचयिता कुलशेखर हैं। समय दसवीं शती है।

आलवन्दारस्त्रोत्रम्—इसके लेखक यमुनाचार्य हैं। इनका समय भी दसवीं शती है।

लक्ष्मीसहस्त्र— इसमें धन एवं ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की स्तुति की गई है। इसके रचयिता कवि वेंकटाध्वर हैं। इसका रचनाकाल सत्रहवीं शती है।

लहरीपंचकम्—करूणलहरी,गंगालहरी,अमृतलहरी,लक्ष्मीलहरी,सुधालहरी इन पांच लहरियों के रचियता प्रसिद्ध कवि पंडितराज जगन्नाथ है। इसमें प्रथम में विष्णु की स्तुति, द्वितीय में गंगा महिमा का वर्णन, तृतीय यमुना की स्तुति, चतुर्थ में विष्णु पत्नी लक्ष्मी की स्तुति तथा पंचम में सूर्य की स्तुति की गई है। इसका रचनाकाल सत्रहवीं शती है।

शिवस्तोत्रावली— इसमें देवाधिदेव शिव की महिमा का गान किया गया है। इसके रचियता कवि उत्पलदेव हैं। इसका रचनाकाल नवीं शती ई. है।

उपर्युक्त स्त्रोत्र ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित साहित्य में भी उपलब्ध होता है। जैन धर्म से सम्बन्धित स्त्रोत्र ग्रन्थों में कुछ उल्लेखनीय स्त्रोत्र हैं। मानतुंगाचार्य का 'भक्तामरस्तोत्र' सिद्धसेन दिवाकर का 'कल्याणमंदिरस्तोत्र' श्री वादिराज का 'एकीभावस्तोत्र' सोमप्रभाचार्य की 'सूक्तिमुक्तावली' श्री जम्बूकवि का 'जिनशतक' तथा आचार्य हेमचन्द्र द्वारा भगवान महावीर की स्थिति के रूप में लिखे गए प्रौढ दार्शनिक स्त्रोत्र आदि। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित स्त्रोत्रों में उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

शून्यवाद के प्रधान प्रतिष्ठापक नागार्जुन के चतु:स्तव में से संस्कृत में मिलने वाले दो स्त्रोत्र ग्रन्थ 'निरोपम्यस्तव:' और 'अचिन्त्यस्तव:'। इनके स्त्रोत्रों की भाषा और भक्ति संवलित है। इस प्रकार संस्कृत स्त्रोत्र साहित्य परम्परा का प्रारम्भ प्राचीन काल से हुआ और वह आज भी जैसी की तैसी प्रचलित है। आधुनिक युग में भी अनेकों पौराणिक देवी-देवताओं की अर्चना हेतु संस्कृत तथा हिंदी दोनों ही भाषाओं में स्तोत्रों के रचनाएं सामान्य हैं। धर्म प्राण भारत देश में इस प्रकार के साहित्य का परिमाण लगा पाना असंभव ही नहीं, दु:साध्य भी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य में गीति एवं मुक्तककाव्य की एक विशाल एवं उज्जवल परंपरा विद्यमान है।

बोध प्रश्न—1

1.महाकवि कालिदास की रचना है। -

क. मेघदूत
ख. गीतिगोविन्द
ग. करूणलहरी
घ. आर्यासप्तशती

2.मेघदूत में एकमात्र् प्रयुक्त छन्द है।

क. शिखरिणी
ख. मन्दाक्रान्ता
ग. आर्या
घ. बसन्ततिलका

3.ऋतुसंहार में सर्ग हैं।

क. 6
ख. 7
ग. 8
घ. 10

4.शतकत्र्य के प्रणेता हैं।

क. कालिदास
ख. भर्तृहरि
ग. जयदेव
घ. महाकवि

5.जयदेव प्रणीत काव्य रचना है।

क. गीतगोविन्द
ख. आर्यासप्तशती
ग. गीतिगोविन्द
घ. करूणलहरी

6.गीतगोविन्द में रीति का प्रयोग किया गया है।

क. पांचाली
ख. वैदर्भी
ग. गौणी
घ. उक्त में से कोई नही

बोध प्रश्न—2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिकीजिये।

1. गीतगोविन्द काव्य में ..... सर्ग हैं।
2. ऋतुसंहार में ..... श्लोक हैं।
3. अमरुकशतक में ..... श्लोक हैं।
4. मेघदूत में ..... और ..... दो भाग हैं।
5. मेघदूत का अंगीरस है।

3.4 सारांश

इस इकाई में आपने गीति एवं मुक्तककाव्य के विषय में जानकारी प्राप्त की। इनके उत्पत्ति एवं उनका विकास क्रम को जाना। साथ ही गीति एवं मुक्तककाव्य के स्वरूपादि लक्षणों उसकी विशेषताओं के विषय में जाना। प्रमुख गीति एवं मुक्तक काव्यों के विषय के बारे में जाना। जिसमें महाकवि कालिदास रचित मेघदूत एवं ऋतुसंहार,भर्तृहरि के शतकत्रय (नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक), जयदेव रचित 'गीतगोविन्द', अमरू कवि का 'अमरुशतकम्', पंडितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनीविलास' बिलहण कृत विक्रमांकदेवचरित,गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती तथा स्तोत्रसाहित्य के विषय में जानकारी प्राप्त की।

3.5 शब्दावली

अतिरेक	=	अधिक
अभिव्यक्ति	=	प्रस्तुतीकरण
हुतभुक्	=	आग
आत्मनिष्ठता	=	निष्ठापर्वक

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोंत्तर—1

1.मेघदूत 2.मन्दाक्रान्ता 3.6 4.भर्तृहरि 5.गीतगोविन्द
6.वैदर्भी

बोध प्रश्नोंत्तर—2

1. 12 2. 144 3. 100 4. पूर्वमेघ, उत्तरमेघ
5. विप्रलम्भ शृंगार

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पाण्डेय एवं व्यास, साहित्य निकेतन प्रकाशन, कानपुर

3.8 उपयोगी पुस्तकें

1. गीतिकाव्यानुचिन्तनम् , नेमिचन्द शास्त्री, सुशीला प्रकाशन।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास , बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भर्तृहरि के शतकत्रय का परिचय लिखिये।
2. मुक्तक काव्य की तीन विशेषतायें लिखिये ।
3. गीतिकाव्य का लक्षण लिखिये।
4. मुक्तक काव्य की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालिये।
5. प्रमुख गीति एवं मुक्तक काव्यों का परिचय लिखिये।
6. स्तोत्रसाहित्य का परिचय लिखिये।

इकाई-4 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों का परिचय (अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों का परिचय
  4.3.1 महाकवि अश्वघोष
  4.3.2 महाकवि कालिदास
  4.3.3 महाकवि भारवि
  4.3.4 महाकवि माघ
  4.3.5 महाकवि श्रीहर्ष
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहित्य से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की यह चतुर्थ इकाई है। प्रस्तुत इकाई में आप संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों के बारे में जानेंगे। जिसमें महाकवि अश्वघोष, महाकवि कालिदास, महाकवि भारवि, महाकवि माघ, महाकवि श्रीहर्ष आदि के जन्म, स्थितिकाल, उनकी रचनाओं तथा काव्यकला का अध्ययन करेगें। संस्कृतसाहित्य के अधिकांश काव्यों का काल निर्धारण करना दुरूह कार्य रहा है। इसी तरह महाकवि अश्वघोष की स्थिति काल का निर्धारण करना दुरूकर कार्य है। केवल बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके स्थिति काल का निर्धारण किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अश्वघोष महाकवि कालिदास के पश्चात हुए। परन्तु शोध समीक्षकों की दृष्टि में अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती रहे हैं।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था। इसके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में उपमा तथा गौरव एवं पदलालित्य जैसे तीनों गुणों को एक साथ धारण करने वाले कवि माघ के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित कवि हैं। जिस प्रकार कालिदास उपमा के लिये प्रसिद्ध है, भारवि अपने अर्थगौरव वर्णन के लिये प्रसिद्ध है, दण्डी अपने रचनाओं में लालित्य प्रयोग के लिये प्रसिद्ध है। उसी प्रकार माघ उपर्युक्त तीनों गुणों के लिये समन्वित रूप से प्रसिद्ध है। इनके विषय में कहा जाता है कि - नवसर्ग गतेमाघे नव शब्दो न विद्यते। शिशुपाल वध महाकाव्य इनकी रचना है जो वृहत्त्रयी में परिगणित है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में भारवि का भी महत्व पूर्ण स्थान है। इनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् प्रसिद्ध है। भारवि एक परम शैव सम्प्रदाय के थे। यह प्रमाण किरातार्जुनीयम् के शैव महात्म्य प्रतिपादक कथानक अवन्ति सुन्दरी कथा से स्पष्ट प्रतीत होता है। भारवि की अमर कीर्ति का आधार उनके प्रसिद्ध महाकाव्य किरातार्जुनीयम् पर आधारित है। भारवि ने 18 सर्गों में इस महाकाव्य का सृजन किया। श्री हर्ष का जीवन चरित्र का वर्णन बाणभट्ट के ग्रन्थ हर्ष चरित में प्राप्त होता है। इनके पिता प्रभाकर वर्धन तथा माता यशोमती है। ये अपने पिता के दूसरे पुत्र इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम राज्य वर्धन था। 'राज्य श्री' नाम की इनकी बहिन योग्य विदुषी थी। बाल्यकाल में इन्हें समुचित शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। महाराजा हर्ष एक महान कवि थे। उन्होने स्वयं भी अनेक रमणीय और सरद ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती के विपुल भण्डार को भरा है। इनका व्यक्तित्व ही महान था। श्री हर्ष एक महान दानी थे। श्री हर्ष ने बड़ी भारी सम्पति कवियों को दे डाली। श्री हर्ष महा उदार और सरल हृदय वाले थे। उन्होंने तीन ग्रन्थों का निर्माण किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप महाकवि अश्वघोष, महाकवि कालिदास, महाकवि भारवि, महाकवि माघ, महाकवि श्रीहर्ष आदि कृत कृतियों के प्रतिपाद्य के आधार पर उनकी भाषा शैली, काव्य कला तथा संस्कृत साहित्य में उनका स्थान एवं अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों के बारे में सम्पूर्ण रूप से ज्ञान पाप्त कर सकते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- कालिदास का परिचय और समय के विषय में परिचित हो सकेंगे।
- अश्वघोष का परिचय और समय के विषय में परिचित हो सकेंगे।

- माघ का संस्कृत साहित्य में क्या स्थान है, यह जान सकेंगे ।
- भारवि के व्यक्तित्व के विषय में आप अध्ययन करेगें।
- भारवि के कृतियों के विषय में आप अध्ययन करेगें।
- श्री हर्ष के व्ययक्तित्व को बाता सकेंगे ।
- नैषधीयचरितम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेंगे।
- श्रीहर्ष के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेंगे।

4.3 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों का परिचय

4.3.1 महाकवि अश्वघोष—

महाकवि अश्वघोष का जीवन परिचय:- महाकवि अश्वघोष के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी का अभाव है अन्य महाकवियों की तरह अश्वघोष ने भी अपना परिचय देने में मौन अपनाया है। केवल 'सौन्दरनन्द' के अन्त में अश्वघोष ने इतना ही उल्लेख किया है—**'आयर्सुवर्णाक्षीपुत्रस्यौ साकेतस्य 'भिक्षोराचार्यभदन्तानश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिन: कृतिरियम्'**। इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि अश्वघोष सुवर्णाक्षी के पुत्र और साकेत के निवासी थे। यह आचार्य भदन्त, महाकवि, महावादी, भिक्षु आदि कई विशेषणों से अलंकृत थे। चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष पुण्यादित्य की उपाधि से विभूषित थे। तिब्बती इतिहासकार श्री तारा नाथ के अश्वघोष के मात्रृचेट, पितृचेट, मतिचित्र, शूर आदि विविध नामों का उल्लेख किया है, परन्तु यह नाम कल्पित प्रतीत होते हैं क्योंकि मातृचेट अश्वघोष से भिन्न बौद्ध भिक्षु एवं विद्वान था, जिसने अश्वघोष का अनुकरण करते हुए 'शतपञ्चाशतिक' की रचना की थी।

परम्परानुसार ऐसी मान्यता है कि अश्वघोष का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा भी तदनुसार ही मिली थी। बाद में यह बौद्ध धर्म के दीक्षित ही नहीं हुए,अपितु उसके प्रबल प्रचारक एवं उपदेशक भी बने। चीनी यात्री इत्सग का उल्लेख के अनुसार अश्वघोष बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक थे और बौद्ध मठों में उस समय उनकी रचनाओं का ही गान होता था। हुएनसांग के अनुसार अश्वघोष, देव, नागार्जुन और कुमारलात यह चारों बौद्ध विद्वान् चार सूर्य थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार में विश्व को प्रकाशित किया था।

इस प्रकार अश्वघोष के जीवन परिचय के सम्बन्ध उक्त तथ्यों के अलावा अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती है। सम्भवत: यह माहाराज कनिष्क के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म के योगाचार सम्प्रदाय के आचार्य थे। वे अपनी रचनाओं को धर्म प्रसारार्थ मानते थे और गायकों की टोली के साथ गा गाकर जनता में अपनी कविताओं का प्रचार करते थे। अपनी कविता के सम्बन्ध में अश्वघोष ने स्पष्ट कहा है—**'इत्ये षा व्युंपशान्तेये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृति:'**

महाकवि अश्वघोष का समय एवं स्थितिकाल— संस्कृत के अधिकांश महाकाव्यों की तरह महाकवि अश्वघोष की स्थिति काल का निर्धारण करना दुरूकर कार्य है। ऐसी कोई सामग्री अथवा अन्त: साक्ष्य नहीं मिलते हैं, जिसके बल पर अश्वघोष का समय ज्ञात हो सके। केवल बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके स्थिति काल का निर्धारण किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अश्वघोष महाकवि कालिदास के पश्चात हुए। परन्तु शोध समीक्षकों की दृष्टि में अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती रहे हैं। इस सम्बन्ध में निम्नोक्त तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं।—

1. सम्राट् अशोक के बाद बौद्ध धर्म को जो प्रबल राज्याश्रय प्राप्त हुआ, वह कुषाण वंश के राजा कनिष्क का व्यक्तित्व था कनिष्क के समय बौद्ध धर्म का तिब्बत, चीन आदि देशों में अत्यधिक प्रचार हुआ था। चीनी अनुश्रुतियों एवं साहित्यिक परम्पराओं के अनुसार अश्वघोष कनिष्क के समय कालीन तथा परामर्शदाता थे ऐसी मान्यता है कि अश्वघोष ने कनिष्क के राज्य-काल में अभीधर्म की व्याख्या 'विभाषा' की रचना की इस आधार पर अधिकतर विद्वान् का स्थिति काल ईसा की प्रथम शताब्दी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान फर्गुसन ओल्डभनवर्ग, रैप्सन, सैमुअल ब्रीलआदि ने न्यूनाधिक रूप में सम्राट कनिष्क का यह समय माना है। उनका यह मत है कि कनिष्क ने ही शक संवत् का प्रवर्तन किया था। इस मत के आधार पर कीथ भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी के लगभग अवस्थित मानते हैं।

2. 'बुद्धचरित' महाकाव्य का चीनी अनुभाग 5 वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था। अतः इससे पहले अश्वघोष द्वारा बुद्धचरित की रचना करना सिद्ध हो जाता है जो कि प्रथम शताब्दी के आसपास हुई होगी बुद्धचरित के अन्तिम सर्ग में सम्राट् अशोक द्वारा बनाई गई बौद्ध संगीति का वर्णन मिलता है। अशोक का समय 265 से 211 ईसा पूर्व माना जाता है। अतः बुद्धचरित की रचना इसके बाद की हुई है।

3. महाकवि कालिदास और अश्वघोष की काव्य शैली में पर्याप्त समानता है। कालिदास का स्थिति काल ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी माना जाता है। क्योंकि प्राचीन परम्परा के अनुसार कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के सभारत्नों में थे। विक्रमादित्य ने ई0 पूर्व 57 में विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया था। इस आधार से भी अश्वघोष का समय ई0पू0 प्रथम शताब्दी सिद्ध हो जाता है।

4. प्रो0 ल्यूडर्स के अनुसार अश्वघोष कृत 'शारिपुत्रप्रकरण' की पाण्डुलिपि के हस्तलेख लिपी को देखने से पता चलता है कि यह कनिष्क या हविष्क के समय की है। परन्तु कनिष्क का समय अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। इतिहास में कम से कम दो कनिष्कों का उल्लेख मिलता है। द्वितीय कनिष्क थम कनिष्क का पौत्र था। विण्टरनित्जथ ने सभी प्रमाणों का परीक्षण करके अपना मत व्यक्त किया है। कनिष्ठ 125 ई0 में सिंहासन पर अधिष्ठित हुआ था । ऐसी परिस्थितियों में अश्वघोष का स्थिति काल दूसरी ई0 शती माना जाता है। परन्तु अधिकतर अन्य विद्वानों का मत है कि कनिष्क शक संवत् का प्रवर्तक था। यह संवत् 78 ई0 भी से प्रारम्भ हुआ। कीथ आदि इस मत का समर्थन करते हुए महाकवि अश्वघोष के प्रथम ई0 में अवस्थित मानते हैं। इन दोनों मतों के आधार पर अश्वघोष का समय ई0पूर्व प्रथम शताब्दी से द्वितीय शताब्दी के मध्य प्रतीत होता है।

5. अश्वघोष को नागार्जुन से पूर्ववर्ती माना जाता है, नागार्जुन का उल्लेख जगय्य पेट स्तूप के लेख में मिलता है, जो कि उसके शिष्य द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था। इस लेख का समय तृतीय ई0 शताब्दी माना जाता है और नागार्जुन का समय दूसरी शताब्दी सिद्ध होता है। इस आधार पर अश्वघोष का स्थिति काल प्रथम शताब्दी या उससे पूर्ववर्ती सिद्ध होता है।

7. सूत्रालंकार में अश्वघोष ने ऐसी दो कथाएं लिखी हैं जिससे भी यही सिद्ध होता है कि अश्वघोष को कनिष्क का राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। इस आधार पर भी अश्वघोष का स्थिति काल ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी माना जाता है।

8. चीनदेश के प्रसिद्ध प्रवासी ह्वेनसांग ने सोमान्तिक संप्रदाय का प्रथम आचार्य कुमारजीव या कुमारलब्ध को माना है। इनके अनुसार उस समय चारों दिशाओं में बौद्ध धर्म के चार आचार्य थे। पूर्व में अश्वघोष,दक्षिण में देव, पश्चिम में नागार्जुन तथा उत्तर में कुमारजीव नामक संस्थापक आचार्य थे। अनेक विद्वान् इस सिद्धान्त के पक्षधर हैं कि सम्राट कनिष्क द्वारा कुंडलवन बिहार में एक संगीति बुलाई गई थी उस संगीति का पुण्य गौरव अश्वघोष को प्राप्त है । एक चीनी परम्परा के अनुसार उस सगीति के सभापति वसुमित्र तथा उपसभापति अश्वघोष थे।

9. सौन्दरनन्द महाकाव्य की भूमिका में डॉ0 हरप्रसाद शास्त्री ने अश्वघोष का समय ईसा के प्रथम शताब्दी का अंतिम चरण माना है।

10. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 516 में बलदेव उपाध्याय ने अश्वघोष का समय 1 से 55 ईसवी के मध्या माना है।

11. महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र नामक बौद्ध ग्रंथों का चीनी अनुवाद सांग इंन की निर्माण तिथि 500 वर्ष पश्चात अश्वघोष की स्थिति को स्वीकार करता है, किन्तु उसके भाष्यकार इन निर्वाण तिथि को 370 वर्ष बाद कवि की सत्ता स्वीकार करता है।

12. बुद्धचरित के अन्तिम चरण में अशोक का उल्लेख मिलता है अथवा निश्चित रूप में अशोक सम्राट अशोक के परवर्ती थे।

13. चीनी परम्परा के अनुसार अशोक सम्राट कनिष्क के धर्मगुरु थे अभिधर्मपिटक की विभाषा नामक व्याख्या इसी समय लिखी गई थी यह व्याख्या 78-100 ई0 के बीच लिखी गई थी।

14. डॉ0 राधाकृष्ण भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी में स्थित कनिष्क का धर्म गुरु मानते हैं।

15. पी0बी0काणे ने भी अश्वघोष कृत बुद्धचरित का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ही मानते हैं।

अश्वघोष सम्बन्धी उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इनका काल प्रथम बौद्ध सम्राट प्रियदर्शी अशोक के प्रसाद तथा द्वितीय बौद्ध सम्राट कनिष्क के समकालीन मानना युक्तिरसंगत होगा। यद्यपि कनिष्क की स्थिति विवादग्रस्त अवश्य रही है किन्तु भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार अश्वघोष को ईसा के प्रथम शताब्दी में मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। सम्राट कनिष्क की स्थिति यदि 78 ई0 निर्णीत हो तो अश्वघोष का भी यही समय मानना उपयुक्त प्रतीत होता है। तथा बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अश्वघोष का प्रादुर्भाव 50 ई0 पूर्व और 100 ई0 के मध्य हुआ था। कनिष्क के राज्याश्रय में अश्वघोष ने अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

महाकवि अश्वघोष की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— अश्वघोष की रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। अश्वघोष बौद्ध भिक्षु और महान पण्डित थे, किन्तु वे अपने समय की काव्य शैली के प्रभाव से वंचित न रह सके। उनके द्वारा रचित दोनों ही काव्य सौन्दरनन्द एवं बुद्धचरित शास्त्रीय शैली (वैदर्भी रीति) के महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य हैं। उनकी शैली भी कालिदास के समान परिष्कृत एवं रसान्वित होने के साथ नैसर्गिक ओजस्विता एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण है। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिग के उल्लेख के अनुसार इन्होंने कुल 19 ग्रन्थों की रचना की थी। इनके नाम के चार दार्शनिक ग्रन्थों का भी परिचय मिलता है। ये ग्रन्थ हैं।(1) सूत्रालंकार (2) महायानश्रद्धोत्पाद-संग्रह (3) वज्रसूची (4) गण्डीस्तोत्र-गाथा।

सूत्रालंकार का मूल संस्कृत रूप आज उपलब्ध नहीं है। कुमारजीव ने इसका 405 ई0 में चीनी भाषा में अनुवाद किया था, इसका फ्रेंच अनुवाद भी (पेरिस 1908) में किया गया। महायानश्रद्धोपादसंग्रह महायान शाखा का एक दार्शनिक ग्रन्थक है। इसका संस्कृत रूप अनुपलब्ध है, केवल चीनी संस्करण मिलता है। कुछ विद्वान् इसे अश्वमघोष की रचना नहीं मानते हैं। वज्रसूत्री में वर्ण व्यवस्था की आलोचना की गई है। इसका भी चीनी भाषा में अनुवाद मिलता है। इसका मूल रूप उपलब्ध है। गण्डीकस्तोत्र गाथा में भगवान बुद्ध के संघ की स्तुीति है। इसमें केवल 29 पद हैं। किसी यूरोपियन विद्वान् ने चीनी प्रतिलिपि में इसका संस्कृत रूपान्तर किया है। इन रचनाओं के अलावा सिलवां लेबी ने अश्वघोष के नाम पर 'राष्ट्रपाल' और 'उर्वशीवियोग' नायक गेय नाटकों का भी उल्लेख किया है। अश्वघोष की उपलब्ध रचनाओं में 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य तथा शारद्वतीपुत्रप्रकरण या 'शारिपुत्रप्रकरण' के अन्त में इसके रचयिता एवं अंक संख्या आदि का स्पष्टत: उल्लेख मिलता है।

शारिपुत्रप्रकरण—

अश्वघोष प्रारम्भिक नाटककारों में अन्यतम है। इनके तीन नाटकों की अपूर्ण पाण्डु लिपियां को प्रो.त्युड्से ने खोजा। तदनुसार सुवर्णाक्षी पुत्र अश्वघोष ने इन 9 अंकों वाले नाटक की रचना की । इसमें उन घटनाओं का उल्लेख नहीं है, जिसके परिणाम स्वरुप बुद्ध द्वारा मोद्गल्यायन और शारिपुत्र को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया जाता है। इसके अन्तिम अंक में शारिपुत्र और बुद्ध के मध्य दार्शनिक वार्तालाप का वर्णन किया गया है।

सौन्दरानन्दमहाकाव्य—

यह महाकाव्य 18 सर्गों से युक्त है। सौन्दरानन्द में बुद्ध के चचेरे भाई नन्द एवं उनकी पत्नी सुन्दरी की कथा, नन्द के भिक्षु बनने का कथानक का वर्णन काव्यमय पद्धति में वर्णित है। नन्द का कुछ समय पूर्व ही विवाह हुआ था कि तब तक चारिका करते हुए गौतम बुद्ध कपिलवस्तु पहुंच गये। उन्होंने अपने पिता के महल में जाकर भिक्षा मांगी । उनकी पत्नी यशोधरा स्वेपुत्र राहुल को ही भिक्षा में दान कर दिया। साथ ही बुद्ध के चचेरे भाई नन्द ने भी उन से प्रव्रज्या लेनी चाही। नन्द की पत्नी सुन्दरी रोती बिलखती ही रह गयी। किन्तु नन्द ने बुद्ध धर्म एवं संघ की शरण ले ही लिया और वहसम्पन्न हो गया।

इस प्रकार यह दोनों ही ग्रन्थ शान्त रस से परिपूर्ण महाकाव्य हैं किन्तु कहीं कहीं यथाप्रसंग श्रंगार रस का भी परिपाक दिखाई पड़ता है। अश्वघोष सम्राट कनिष्क की राजसभा में कवी भी रहे थे। अतः उन को राजदरबार, राजनीति एवं सामाजिक नीति का पूर्ण ज्ञान था। इसी कारण इन के इन दोनों काव्यों में तत्कालीन भारतीय धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृति स्थिति परिस्थितियों का वर्णन भी प्रसंगानुसार पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अतः प्राचीन भारतीय समाज के अध्ययन की दृष्टि से इन दोनों काव्यों का अत्यधिक महत्व है।

कुछ समीक्षकों की दृष्टि में इसका कथानक बुद्धचरित से मिलता-जुलता है। जिन जिन विषयों का वर्णन बुद्धचरित में नहीं हो सका उन उन विषयों का उल्लेख इसमें में किया गया है। इसकी मूल कथा महावग्ग और निदानकथा में मिलती है। सौन्दरनन्द अट्ठारह सर्गों का महाकाव्य है। इसमें हृदय की उस उच्छृमखल प्रवृत्तियों को ठीक विपरीत दिशा में मोड़ देने की मार्मिकता का सरल शैली में वर्णन हुआ है। इसमें महाकाव्य के सभी लक्षणों का निर्वाह हुआ है। इसका प्रासंगिक संस्करण डा0 जान्सैटन द्वारा 1928 ई0 में प्रकाशित किया जा चुका है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति नेपाल महाराज के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ चीनी एवं तिब्बती भाषा में नहीं मिलता है।

बुद्धचरितम् महाकाव्य—

बुद्धचरित में गौतम बुद्ध के जन्म से उनके महापरिनिर्वाण तक का समस्त जीवन वृत्त काव्यमय पद्धति में वर्णित है। महाकवि ने उपर्युक्त दो महत्वपूर्ण काव्यों के अतिरिक्त तीन नाटकों की भी रचना की थी। जिनमें पहला था सारिपुत्रप्रकरण यह नाटक नौ अंकों में विभाजित है। इसमें सारिपुत्र एवं मोद्गल्यामयन का समस्त जीवन वृत्त का वर्णित है। यह नाटक रचना संस्कृत साहित्य में वर्तमान तक उपलब्ध सभी नाटक रचनाओं में प्राचीनतम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित दो अन्य नाटकों की भी खोज एच. लूडर्स ने इस शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के तूर्फान प्रान्त में की थी। परन्तु इन दोनों ही नाटकों के आरम्भ में कुछ पत्र उपलब्ध नहीं हुए इस कारण इनका नाम नहीं ज्ञात हो सका। इनमें पहला नाटक प्रबोधचन्द्रोदय के समान रुपकात्मक है तथा दूसरा मृच्छकटिक के तुल्य वैश्य नायक प्रणयात्मक है।

4.3.2 महाकवि कालिदास—

महाकवि कालिदास का जीवन परिचय— संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के जन्म स्थान,समय और जीवनवृत्त के विषय में अन्य कवियों की भांति निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुछ किंवदन्तियों तथा अनुमानों के आधार पर ही थोडा बहुत जाना जा सकता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना तथा भरतवाक्य के आधार पर इतनी जानकारी तो अवश्य ही प्राप्त होती है कि ये विक्रमादित्य के राजकवि थे। महाकवि कालिदास के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे आरम्भ में इतने मूर्ख थे कि जिस डाल पर बैठे हुए थे उसी को काट रहे थे। कुछ पण्डित जो एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे वहां के राजा से रूष्ट होकर धोखे से उनका विवाह उनकी विदुषी पुत्री विद्योत्तमा से करा देते हैं। एक दिन जब वह ऊँट को उट्र कहकर पुकारने लगे और प्रयत्न करने पर भी उष्ट्र न कह सके तब उनकी पत्नी ने उन्हें धक्का देकर घर से निकाल दिया। खिन्न होकर वह काली देवी के मन्दिर में गये ओर अपनी जीभ काट कर देवी पर चढा दी। माँ काली ने इन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान दिया और तभीसे यह कालिदास कहलायें। वहाँ से लौटकर अपने घर वापस आने पर इन्होने 'अनावृतं कपाटं द्वारं देहि' कह कर अपनी पत्नी से किवाड खुलवाये। विद्योत्तमा ने 'अस्ति कश्चित वाग्विशेष: ' कहकर इनका सम्मान किया। कालिदास ने अस्ति शब्द से 'अस्त्युत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा ' कुमारसंभवम् ,कश्चित से 'कश्चितकान्ताविरहर्गुरूणां ' से मेघदूत और वाग्विशेष: से 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ ' से रघुवंश महाकाव्य की रचना की। इनके वर्णनों से ज्ञात होता है कि इन्होनें दूर दूर तक भ्रमण किया था। प्रकृति से इन्हें विशेष लगाव था। ऐसा माना जाता है कि इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सिंहलद्वीप में इनके मित्र कुमारदास की दरबारी वेश्या के द्वारा हुई थी। इसी प्रकार इनके जन्म स्थान भी काश्मीर, बंगाल,विदर्भ तथा उज्जयिनी बतलाये जाते हैं किन्तु उज्जयिनी को ही इस महाकवि की जन्मभूमि कहलाने का गौरव हुआ है।

महाकवि कालिदास का समय एवं स्थितिकाल:- महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। इनका स्थितिकाल ईसा की छठी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। इसका विवरण निम्नलिखित है —

ईसा की छठी शताब्दी का मत —

कालिदास ने अपने नाटकों में स्वयं को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राजसभा का कवि बतलाया है। किन्तु विक्रमादित्य नाम के कई राजा हुए हैं अत: कालिदास किस विक्रमादित्य के समय में हुए हैं यह एक विवादास्पद विषय है। डा0 फर्ग्युसन का मत है कि उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने 544 ई0 में शकों को पराजित करके विक्रम सम्वत् चलाया उन्होनें इस सम्वत् को प्राचीन बनाने के लिए इसका आरम्भ अपने समय से 600 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से 57 वर्ष पूर्व रखा। कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य की सभा के कवि थे। इस मत को मानने वाले कहते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में शक, यवन और हूण आदि जातियों का उल्लेख है। हूणों ने भारत पर 500ई0 में आक्रमण किया था अत: कालिदास का समय ईसा की छठवीं शताब्दी है।

समीक्षा —

डा0 फर्ग्युसन के इस मत की पुष्टि में कि विक्रम सम्वत् को 600 वर्ष चलाया कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शक,यवन और हूण आदि जातियों का वर्णन विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में नहीं किया है बल्कि रघु की दिग्विजय के प्रसंग में ही किया है। अत: शकादि के आक्रमण से पूर्व भी उनका वर्णन न्यायोचित नहीं है। 473 ई0 में मन्दसौर बाली वत्स भट्ट द्वारा लिखित प्रशस्ति में ऋतुसंहार और मेघदूत की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है अत: कालिदास इससे पूर्व के ही होगें।

गुप्तकालीन मत—'कीथ' महोदय का मत है कि कालिदास गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375—413) की सभा के कवि थे। इन्हीं चन्द्रगुप्त ने शकों को भारत से बाहर निकाल कर विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया था और पहले से ही चले आने वाले मालव सम्वत् को विक्रमसम्वत् के नाम से चलाया था। इस मत को मानने वालों के निम्न तर्क हैं— कालिदास के कुमार संभव महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के नाम को ध्यान में रख कर की थी। कालिदसा के ग्रन्थों में वर्णित भारत की सुख समृद्धि गुप्तकाल की सुख समृद्धि से समानता रखती है। रघुवंश में वर्णित अश्वमेध यज्ञ का वर्णन समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से समानता रखता है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कालिदास गुप्त काल में विशेषत: चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में हुए होगें।

समीक्षा — कालिदास ने कुमार संभव महाकाव्य में कुमार शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में किया है। अत: इससे कुमारगुप्त संकेत निकालना अनुचित है। रघु की दिग्विजय का वर्णन एक काल्पनिक कवित्वपूर्ण वर्णन है, ऐतिहासिक नहीं। किसी भी गुप्त सम्राट का नाम 'विक्रमादित्य'नहीं था यह केवल उनकी उपाधि मात्र थी। इससे सिद्ध है कि उनके पूर्व विक्रमादित्य नाम का अति प्रतापी राजा हुआ होगा और उसका नाम बाद में उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया होगा इस प्रकार यह मत भी उचित नहीं है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का मत — ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विक्रम की प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा उज्जयिनी का शासक था। अत: कालिदास इसी के समकालीन रहे होगें क्योंकि प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में महाकवि अश्व घोष की स्थिति सिद्ध होती है और उनके ऊपर कालिदास का प्रभाव है। अत: कालिदास का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है। उक्त प्रमाणें से स्पष्ट हे कि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही होना चाहिए।

महाकवि कालिदास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है। कालिदास ने दो महाकाव्य , दो गीतिकाव्य तथा तीन नाटकों की रचना की। इस प्रकार इनकी कुल सात रचनाऐं हैं जिसमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् इनका विश्व प्रसिद्ध नाटक है।

महाकाव्य —

कुमारसंभव तथा रघुवंश कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कुमारसंभव में 18 सर्ग हैं किन्तु विद्वान 8 सर्गों को ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं। इसमें पार्वती जन्म, कामदहन , पार्वती तपस्या, शिव विवाह, कार्तिकेय जन्म आदि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। **रघुवंश** महाकाव्य में19 सर्ग हैं। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन है। यह उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

गीतिकाव्य —

ऋतुसंहार तथा मेघदूत कवि के प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। ऋतुसंहार में षडऋतुओं का छ: सर्गों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में क्रमश: एक—एक ऋतुओं का वर्णन है। मेघदूत कालिदास का प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रियतमा को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। भौगोलिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण, तथा विरहिणी की मर्म व्यथाओं को देखकर मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत का सर्वोत्तम गीतिकाव्य कहा जाता है।

नाटक —

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध नाटक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से कालिदास के नाटक अद्वितीय हैं अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। मालविकाग्निमित्रम् कालिदास

का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है। विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक है। इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुर्नमिलन का सुन्दर वर्णन है।

4.3.3 महाकवि भारवि—

महाकवि भारवि का जीवन परिचय— कालिदास और अश्वघोष के बाद तृतीय उल्लेखनीय महाकवि भारवि हैं , पर इनका काव्य मार्ग जिसे काव्य क्षेत्र में विचित्र मार्ग भी कहा जाता है , कालिदास से भिन्न है और यही इस मार्ग के प्रवर्तक महाकवि हैं। अतः स्पष्ट है कि कालिदास पश्चात्वर्ती काव्यकारों में महाकवि भारवि सर्वश्रेष्ठ प्रथम कवि हैं , इनके उत्तरकालीन माघ , भवभूति , श्री हर्ष आदि कवियों ने इनके ही विचित्र मार्ग का अनुसरण किया है। इस युग के काव्यों में कलापक्ष का परम साध्य बन गया है। संस्कृत महाकाव्यों में रचना कौशल और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से वृहत्रयी और लघुत्रयी प्रसिद्ध है। प्रथम में किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल वध तथा नैषधीयचरितम् नामक महाकाव्य है और कालिदास के तीनकाव्य रघुवंश , कुमारसंभव और मेघदूत ' लघुत्रयी में माने जाते हैं। इस प्रकार वृहत्त्रयी में भारवि सर्वश्रेष्ठ प्रथम कवि है। भारवि ने प्रचलित भाव पक्ष प्रधान काव्य धारा को एक नया मोड़ देकर उसमें कलापक्ष को अधिक महत्त्व प्रदान किया , अतः इसके काव्यों में जहाँ एक ओर पदों के अर्थो का गाम्भीर्य है , वहाँ दूसरी ओर विविध मनोरम अलंकारों की शोभा का चमत्कार है। अर्थगरिमा , सुन्दर पदविन्यास और अलंकारों की सजावट ही भारवि का सबसे बड़ा काव्य-कौशल है। भारवि अपने समय के राजनीति के प्रकाण्ड पंडित थे और विविध शास्त्रों के अध्येता कवि थे।

महाकवि भारवि का समय एवं स्थितिकाल—संस्कृत साहित्य के महत्त्वपूर्ण काव्यकारों में भारवि का विशिष्ट स्थान है। इनके जीवनचरित के विषय में इनका एकमात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् एकदम मौन है। इनके समय आदि का ज्ञान हमें बहिरंग से प्राप्त होता है। भारवि के काव्य में कालिदास की रचनाओं का बहुत अनुकरण है -- ऐसा विद्वानों का अभिप्राय है अतः भारवि का कालिदास के बाद होना निश्चित है। माघ (600 ई.) पर भारवि की स्पष्ट छाप है। गद्य सम्राट महाकवि बाण (सप्तम शती का पूर्वार्द्ध) अपने हर्षचरित में भारवि के नाम का उल्लेख नहीं करते। अतः अनुमान होता है कि उनके काल तक भारवि का यश विशेष विस्तृत नहीं हुआ था। सर्वप्रथम भारवि नाम ऐहोल (634 ई.) के शिलालेख मे मिलता है। यह शिलालेख दक्षिण में बीजापुर जिले के ऐहोल नामक ग्राम के एक जैन मन्दिर में मिला है। शिलालेख की प्रशस्ति दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी द्वितीय के आश्रित रविकीर्ति नामक किसी जैन कवि के द्वारा अपने आश्रयदाता के विषय में लिखी गई है। प्रशस्ति की समाप्ति पर रविकीर्ति अपने आपको कविता निर्माण की कला में कालिदास तथा भारवि के समान यशस्वी बतलाता है।

काशिका वृति में जिसकी रचना वामन और जयादित्य द्वारा 650 ई. के लगभग की गई थी , भारवि की ' किरातार्जुनीयम् ' से एक उदाहरण दिया गया है , इससे प्रतीत होता है कि भारवि अब तक एक के रुप में प्रसिद्ध हो चुके थे , अतः भारवि की स्थिति सातवीं शताब्दी के पूर्व मानी जा सकती है। गंगनरेश दुर्विनीत के शिलालेख से यह सिद्ध होता है कि दुर्विनीत ने ' किरातार्जुनीयम् ' के पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी थी। पन्द्रहवाँ सर्ग चित्रकाव्य है। अतः क्लिष्ट है। इसलिए उस पर टीका लिखना वैदुष्य का काम है। राजा दुर्विनीत का काल वि. सं. 538 (ई. 481) है। दुर्विनीत के इस उल्लेख से भारवि का समय पंचम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। दुर्विनीत के इन शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि पंचम शताब्दी के अन्तिम

चरण तक भारवि की कीर्ति प्रभा दक्षिण भारत में पूर्णतः प्रकाशित हो चुकी थी। अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले और पुलकेशीद्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। विष्णुवर्धन का शासन काल 615 ई. के आसपास होना चाहिए। किन्तु ' अवन्ति सुन्दरी ' के कथन एवं साक्ष्य की अपेक्षा शिलालेखों का प्रामाण्य अधिक आदरास्पद एवं विश्वसनीय है।

1. येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कवतिश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ॥

2. सदावतारकारेण देवभारतीनिबद्धवडकथेन किरातार्जुनीयपंचदशसर्गटीकाकारेण
दुर्विनीतनामधेयेन।

महाकवि भारवि की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है।

4.3.4 महाकवि माघ —

महाकवि माघ का जीवन परिचय:- शिशुपालवध के कर्ता का नाम 'माघ' है। डॉक्टर याकोवी का मत है कि जिस प्रकार 'भारवि' ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए 'भा-रवि' (सूर्य का तेज) नाम रखा, उसी भॉति शिशुपालवध के अज्ञातनामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए 'माघ' का नाम धारण किया, क्योंकि माघमास में सूर्य की किरणे ठंडी पड़ जाती हैं। परन्तु यह कल्पना बिल्कुल निराधार जान पड़ती है शिशुपालवध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही 'माघ' है, उपाधि नहीं। माघ की जीवन घटनाओं का पता 'भोजप्रबन्ध' तथा ''प्रबन्ध-चिन्तामणि' से लगता है। दोनों पुस्तकों में प्राय: एक –सी कहानी दी गयी है। माघ के जीवन की रूपरेखा को हम जान सकते हैं। माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के, जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक था, प्रधान मन्त्री थे। अत: माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मणकुल में हुआ था। इनके पिता 'दत्तक' बडे. विद्वान् तथा दानी थे । गरीबों की सहायता में इन्होंने अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया। माघ का जन्म भीन-माल में हुआ था। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था, जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने 625 ई0 के आस-पास अपने 'ब्रह्म्गुप्तसिद्धान्त' को यही बनाया। इन्होंने अपने को 'भीनमल्लाचार्य लिखा है। हुवेनसांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है । पिता की दानशीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। ये भी खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी । राजा भोज का इन्होने अपने घर पर बड़े आवभगत से सत्कार किया। धीरे-धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गये। यह धारा का प्रसिद्ध राजा भोज नहीं हो सकता। इतिहास इसे असंभव सिद्ध कर रहा है। अत एव कुछ लोग 'भोजप्रबन्ध' की कथा पर विश्वास नहीं करते, परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे। एक तो प्रसिद्ध धारानरेश भोज (1010-50 ई0) थे और दूसरे भोज सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए। सम्भवत: इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुए थे। 'भोजप्रबन्ध' ने दोनों भोजों की कथाओं में हड़बड़ी मचा डाली हैं।

माघ अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिए आये, 'भोज-प्रबन्ध' में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास 'कुमुदवनमपश्रिश्रीमदम्भोजखण्डमद्' आदि पद्यको, जो माघ –काव्यके प्रभात-वर्णन (11सर्ग) में मिलता है, ले

गयी। इस पद्य को सुनकर राजाने प्रभूत धन दिया। उसे लेकर माघ-पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बांट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उसकी पत्नी के पास एक कोड़ी भी न बची रही, परन्तु याचकों का तॉंता बँधा ही रहा। कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राणछोड़ दिये। प्रात:-काल भोज ने माघ का यथोचित अग्नि संस्कार दिया और बहुत दु:ख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गयी।

माघ के जीवन की यही घटना ज्ञात है। यह सच्ची है या नहीं ,परन्तु इतना तो हम नि:सन्देह कह सकते है कि माघ परम्परानुसार एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जीवन के सुख की समग्र सामग्री इनके पास थी। पिता ने इन्हे शिक्षा दी थी। पिता के समान ही ये दानी तथा उपकारी थे। सम्भवत: भोज के यहॉं इनका बडा मान था।

महाकवि माघ का समय एवं स्थितिकाल:- माघ के समय-निरूपण के लिए एक संदेह – हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उदाहरण के लिए उद्धृत किया है- रम्या इति प्राप्तवती: पताका: (3/53) तथा त्रासाकुल: परिपतन् (5/26)। फलत: माघ आनन्दवर्धन (नवम शती का पूर्वार्ध) से प्राचीन हैं। एक शिलालेख से इसका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ0 कीलहार्न को राजपुताने के 'वसन्तगढ' नामक किसी स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है। शिलालेख का समय संवत्682, अर्थात् 625 ई0 है शिशुपालवधकी हस्तलिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भिन्न-भिन्न मिलता है। धर्ममान, वर्मनाम, धर्मलात, वर्मलात आदि अनेक पाठ भेद पाये जाते हैं। भीनमाल के आसपास के प्रदेश में इस शिलालेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न 'वर्मलात' को असली पाठ मानकर इस राजा तथा सुप्रभदेव के आश्रयदाता को यथार्थत: अभिन्न मानते हैं। अत: सुप्रभदेव का समय 625 ई0 से लेकर700 ई0 के पास है। अत एव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई0 से लेकर700 ई0 तक होगा,अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

महाकवि माघ की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय:- माघ का केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवध' है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णनहै। यही 'शिशुपालवध' महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणास्रोतमुख्यतया श्रीमद्भागवत है, गौण रूप से महाभारत।वैष्णव माघ के ऊपर भागवत अपना प्रभाव जमाये था। फलत: उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। सर्गो की संख्या 20 तथा श्लोको की 1650 (एक हजार छ: सौ पचास) ।द्वारका में श्रीकृष्ण के पास नारद पधारकर दुष्टों के वध के लिए प्रेरणा देते हैं (1सर्ग) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें जाने के लिए बलराम तथा उद्धव द्वारा मन्त्रणा द्वारा निश्चय किया जाता है (2सं0) श्रीकृष्ण दलबल के साथ इन्द्रप्रस्थ की यात्रा करते है (3सं0) तदनन्तर महाकाव्य के पूरक विषयों का वर्णन आरम्भ होता है। रैवतक का (4 सं0), कृष्ण के रैवतक-निवास का (5 सं0) , ऋतुओं का (6स0) ,वनविहार का (7स0), जलक्रीड़ा का (8स0) ,सूर्यास्त तथा चन्द्रोदयका (9स0) , मधुपान और सुरतका (10सं0), पाण्डवों से मिलन तथा सभा प्रवेश का (13 स0), राजसूययाग तथा दान का (14सं0),शिशुपाल द्वारा विद्रोहका(15 स0), दूतों की उक्त-प्रत्युक्ति का (16 सं0), सभासदों के क्षोभ तथा युद्धार्थ कवचधारण का (17 स0),युद्धका (18 तथा 19 स0) तथा श्रीकृष्ण और शिशुपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन 20 सर्ग में निष्पन्न होता है। इस विषयसूची पर आपातत:दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि लघुकाय वृत्त को परिवृंहित कर महाकाव्यत्व के निर्वाह के लिए माघ ने आठ सर्गो की योजना (4 सर्ग-11 सर्ग) अपनी प्रतिभा के बल पर की है। अलंकृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिबृंहण कर हमारा काव्यसाहित्य समृद्ध, सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

4.3.5 महाकवि श्रीहर्ष—

महाकवि श्रीहर्ष का जीवन परिचय:- श्रीहर्ष संस्कृत के महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनका व्यक्तित्व अनुपम एवं उच्चकोटि का है। महाकवि की उत्कृष्ट काव्य कला से प्रभावित होकर उन्हें कविता कामिनी का हर्ष कहा गया है। अलंकार विन्यास में निपुण श्रीहर्ष ने अपनी भारती को अलंकारों द्वारा इस प्रकार विभूषित किया है कि उसकी भव्य मूर्ति देखते ही बनती है। अतिश्योक्ति की मनोहर उद्भावना में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, विरोधाभास, श्लेष के समुचित प्रयोग में श्रीहर्ष अद्वितीय है। उन्होंने यमक की छटा द्वारा कन्दर्प स्तुति इस प्रकार की है-

लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार
श्रृंगारसान्तरभृशान्तभावान्।
पञ्चेन्द्रियाणि जगतामिषुपञ्चकेल
संक्षोभयनं वितनुतां वितनुर्मदं वः।।

कालिदासोत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम है, जिन्होंने सुकुमार मार्ग की सरसता और विचित्र मार्ग की प्रौढ़ि का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की। भारवि ने जिस महाकाव्य पद्धति का प्रवर्तक किया और माघ ने जिसे आगे बढ़ाया उसे आंशिक रूप से ही श्रीहर्ष ने स्वीकार किया वर्णनों की विपुलता में श्रीहर्ष उन कवियों से आगे बढ़ गये। श्रीहर्ष में कवि प्रतिभा अवश्य है। वह भी उच्च दर्जे की है। नैषधीयचरितम् के टीकाकार श्रीविद्याधर ने उनकी बहुज्ञता एवं वैदुष्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला है-

अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवहः साहित्य सारो नयौ।
वेदार्थावगतिः पुराणपठितिर्यस्यान्यशास्त्रण्यपि।।
नित्यं स्युः स्फुरितार्थ दीप विहताज्ञानान्धकारण्यसौ।
व्याख्यातुं प्रभवत्ययुं सुविषमं सर्गं सुधीः कोविदः।।

महाकवि श्रीहर्ष में सहृदयता एवं वैदुष्य का मणिकाञ्चन योग है। उन्हें अपने वैदुष्य पर गर्व है। दमयन्ती स्वयम्वर में राजाओं के परिचय के निमित्त उन्होंने जिस सरस्वती का आह्वान किया है। वह वस्तुतः उनकी अपनी सरस्वती है। महाकवि श्रीहर्ष ने सरस्वती के स्वरूप वर्णन के ब्याज से अपने व्यक्तित्व को अभिव्यंजित किया है।

महाकवि श्रीहर्ष आस्तिक स्वभाव के साधु पुरुष थे। उन्हें वेदों पर अत्यधिक श्रद्धा थी। उनके महाकाव्य में अनेक वैदिक विषयों की समन्विति सहज देखी जा सकती है। भारतीय धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिशास्त्र, दर्शन, व्याधकरण, संगीत, काव्यतशास्त्र पर उनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। महाकवि श्रीहर्ष के महाकाव्य नैषध में ज्योतिषशास्त्र के कई उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते हैं—

रथादसौ सारथिना सनाथाद्राजाडवतीर्याशु पुरं विवेश।
निर्गत्य बिम्बादिव भानवीयात्सौधाकरं मण्डलमंशु संघः।।

अर्थात् राजा नल सारथि से युक्त रथ से ठीक उसी प्रकार उतरे जैसे सूर्य किरण समूह सूर्यमण्डल से निकलकर चन्द्रमण्डल में प्रवेश करता है। वैसे ही शीघ्र कुण्डिनपुर में प्रवेश किया। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पुराण, को महत्वपूर्ण स्थान देकर अपने आस्तिक एवं परमतत्त्व को प्रतिपादित किया है। महाकाव्य के अनुशीलन से यह प्रतीत होता है कि वे ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पुराण, काव्यशास्त्र आदि में पारंगत थे।

श्रीहर्ष अत्यन्त ही भावुक एवं उदात्त वृत्ति के कवि रत्न थे। 'हंस' के करुण-विलाप में उनका करुण हृदय प्रतिबिम्बित हुआ है। उनका सिद्धान्त है कि उपकारी का प्रत्युपकार शीघ्र ही करना चाहिए। कृतज्ञता मानव को पवित्र बनाती है। वे अत्यन्त धार्मिक एवं सदाचारी हैं। उनका अभिमत है कि मनुष्य को विपत्ति में पड़कर भी धर्म से विचलित नहीं होना चाहिये। उनके महाकाव्य में वेद शास्त्रादि के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, संगीतशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, नाट्यशास्त्र, राजनीति कला, शिल्प, विज्ञान, शकुन, देव पूजा, सुपात्र, तुरग्लक्षण, वर्णाश्रम, चित्रकला आदि के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग मिलते हैं, जिससे उनके बहुज्ञ होने का परिचय मिलता है। महाकवि श्रीहर्ष भगवती वागीश्वरी और अपनी माता के अनन्य भक्त थे।

महाकवि श्रीहर्ष ने ज्ञान मार्ग द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करने के लिये पूर्ण प्रयास किया है, इसमें वे सफल भी हुए हैं। अतएव उनका व्यक्तित्व अलौकिक है, जिसका अनुसरण व्यक्तित्व को उत्कृष्ट कोटि का बना सकता है।

महाकवि श्रीहर्ष का समय एवं स्थितिकाल:- संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र महाकवि श्रीहर्ष का सम्बन्ध विद्वानों ने कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के साथ माना है। गहड़वाल नृपतियों की राजधानी कन्नौज थी, किन्तु काशी विजय के बाद उन्होंने काशी को ही अपनी राजधानी बनाया प्राचीन लेखमाला के अनुसार जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र श्रीहर्ष के आश्रयदाता थे। विजयचन्द्र की यश प्रशस्ति श्रीहर्ष ने अपनी विजय प्रशस्ति नामक रचना में की है। लेखमाला के 22 वें लेख के अनुसार जयचन्द्र का यौवराज्य दान पत्रनुसार संवत् 1225 अर्थात् 1169 ई0 सिद्ध होता है।

श्रीहर्ष के काल सम्बन्धी मत-मतान्तर का खण्डन करते हुए श्री बूलर महोदय ने भी इस मत का समर्थन किया है कि श्रीहर्ष जयचन्द्र के ही समकालीन थे।

रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई ब्रान्च की विद्वत्सभा द्वारा प्रकाशित 1875 के प्रबोध ग्रन्थ से भी इसी मत की पुष्टि होती है कि श्रीहर्ष जयचन्द्र के समकालीन थे। श्रीहर्ष ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य में व्यक्ति विवेककार महिम भट्ट का नामोल्लेख किया है—

दोषं व्यक्ति विवेकेऽमुं कविलोकविलोचने।
काव्यमीमांसिषु प्राप्त महिमा महिमाऽऽदृत।।

महिमभट्ट अभिनवगुप्त के परवर्ती कवि जान पड़ते हैं क्योंकि महिमभट्ट ने व्यक्ति विवेक में अभिनव गुप्त का नामोलेख किया है—

अत्र केचित्तु विद्वन्मानिः----मान्यमाना 'व्यड्न्त् इति
द्विवचनेनेदमाहुः यद्यम्यविवक्षितवाच्ये शब्द एवं व्यजकः
तथाप्यर्थस्य सहकारिता नत्रुटयति। यदाहुस्तद्भ्रान्तिमूलम।।

इसलिए महिम भट्ट का काल 1020 ई0 से परवर्ती ही सिद्ध होता है। व्यक्ति विवेक के टीकाकार ख्यातिलब्ध अलंकारशास्त्री रुय्यक का समय 1110-1150 ई0 तक माना जाता है।

अत एव महिमभट्ट का काल 1100 ई0 तक माना जा सकता है, इस प्रकार व्यक्तिविवेक को उद्धृत करने वाले श्रीहर्ष महिमभट्ट (1100) ई0 के परवर्ती ही होंगे।

श्रीहर्ष के व्यक्तित्व में कवि, दार्शनिक, योगी, ज्योतिषी आदि न जाने कितने रूपों का सामंजस्य था। उनकी रचनाएँ इस कथन को सार्थक करती हैं। श्रीहर्ष ने अनेक रचनाएँ की, जिनका उल्लेख अपनी प्रसिद्ध रचना नैषधीयचरितम् के सर्गान्त पद्यों में किया है।

नैषधमहाकाव्य का प्रथम नामोल्लेख अपनी कृतियों में करने वालों में महेन्द्रसूरि हैं। हेमचन्द्र के अनेकार्थसंग्रह की टीका में नैषध महाकाव्य के अनेक पद्य उदाहरण के रूप में दिये हैं। महेन्द्रसूरि जो हेमचन्द्र के

शिष्य एवं उनके अनेकार्थसंग्रह के टीकाकार हैं। उनका समय हेमचन्द्र के समय 1088 ई0 से 1172 ई0 के मध्य निश्चित है।

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर श्रीहर्ष का समय बारहवीं शताब्दी का मध्य एवं उत्तरार्द्ध भाग मानना समीचीन होगा।

महाकवि श्रीहर्ष की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय:- महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक ग्रंथों की रचना की इन ग्रन्थों का नाम महाकवि श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य फ्नैषधीयचरितम्य् में उल्लेखित किया है।

1- स्थैर्यविचारण प्रकरण:- यह रचना दार्शनिक विषय पर लिखी हुई जान पड़ती है। इसमें बौद्धों के क्षणिक वाद का निराकरण किया गया होगा। सम्प्रति यह ग्रन्थ अप्राप्य है-

तुर्य:स्थैर्यविचारण प्रकरण भ्रातर्ययं तन्महा-
काव्येऽत्र व्यभगलन्नहलस्य् चरिते सर्गो निसर्गौज्ज्वीज:।। नै04/123।।

2- विजयप्रशस्ति:- इस ग्रन्थ में जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की, जो उस समय योद्धा तथा विजयी वीर होने के अतिरिक्त कवि के आश्रयदाता भी थे, प्रशंसा में यह प्रशस्ति ग्रंथ प्रणीत किया गया है। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है-

तस्य श्री विजयप्रशस्तिरचनातातस्य नव्येमहाकाव्ये
काव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत्पाञ्चम:।। नै05/138।।

3- खण्डनखण्डखाद्य:- श्रीहर्ष का यह प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदान्त शास्त्र का अनुपम रत्न है। इसमें न्यायिक तर्क प्रणाली का अनुकरण कर लेखक ने न्याय सिद्धान्तों का खण्डन तथा अद्वैत सिद्धान्तों का मण्डन किया है-

षष्ठ: खण्डनखण्डतयोऽपि सहजात् क्षोदक्षमे तन्महाकाव्ये--------(नै06/113)

4- गोडोर्वीशकुलप्रशस्ति:- विजय प्रशस्ति की तरह यह भी प्रशस्ति है, जिसको महाकवि ने (बंगाल) गौड़भूमि के किसी राजा की प्रशंसा में बनाया था—

गोडोर्वीशकुलप्रशस्तिभणिति भ्रातर्ययं तन्महाकाव्ये (नै07/110)

5- अर्णवर्णन:- इस रचना में समुद्र के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है-

संदृब्धार्णवर्णनस्य नवमस्तस्य व्यरंसीन्महाकाव्ये (नै04/160)

6- छिन्दप्रशस्ति:-'छिन्द' नामक राजा के संदर्भ में प्रणीत काव्य कृत्ति जान पड़ती है। छिन्द किसी देश का राजा था। उसका निवास स्थान कहाँ था, यह बिल्कुल अज्ञात है—

यात: सप्तश: स्वसु सुसदृशि छिन्दप्रशस्तेर्महाकाव्ये (नै017/222)

7- शिवशक्तिसिद्धि:- यह ग्रंथ शिव एवं शक्ति की साधना के विषय में लिखा गया तथा तन्त्रशास्त्र विषयक प्रतीत होता है। नैषधीयचरितम् महाकाव्यय् के 16/18 से तथा खण्डनखण्डखाद्य के मंगलाचरण से कवि की भगवान शिव के अर्धनारीश्वर रूप के प्रति सहज अनुरक्ति स्पष्ट है। कहीं-कहीं इसका दूसरा नाम शिवभक्तसिद्धि भी है—

यातोऽस्तिमिञ्शवशक्तिसिद्धिभगिनीसौभ्रात्रभव्येमहाकाव्ये--- (नै018/154)

8- नवसाहसांकचरितचम्पू:- सम्भवत: राजाभोज के पिता 'नवसाहसाङ्क' उपाधि वाले सिन्धुराज का रचित होगा। पद्मगुप्त ने भी नवसाहसाङ्क चरित महाकाव्य में सिन्धुराज के चरित का वर्णन किया है। श्रीहर्ष ने इसे चम्पूकाव्य बताया है—

नवसाहसांकचरिते चम्पूकृतोऽयं महाकाव्ये--------(नै022/149)

9- नैषधीयचरितम्:- नैषधीयचरितम् महाकाव्य संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी संज्ञक महाकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट रत्न है। यह महाकवि श्रीहर्ष की विद्वता तथा पाण्डित्य को प्रदर्शित करने वाला आकार ग्रन्थ है। श्रीहर्ष

महादार्शनिक, वैयाकरण, ज्योतिष आदि सिद्धान्त पारङ्गत दार्शनिक थे। इनके वैदुष्य के अनेक रूप नैषध महाकाव्य में देखने को मिलते हैं। इन्होंने भारवि की अलंकार प्रधान एवं अर्थ गाम्भीर्य युक्त शैली को अपने काव्य में पराकाष्ठा प्रदान की है। इनके काव्य में कालिदास के सुन्दर उपमा प्रयोग, भारवि के अर्थगाम्भीर्य तथा दण्डी के पद लालित्य का सुष्ठु समन्वय एकत्र दिखाई पड़ता है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः
उदिते नैषधे भानौ क्व माघः? क्व भारविः?।।

नैषधीयचरितम् महाकाव्य पुराणों एवं महाभारत में वर्णित प्रसिद्ध नल-दमयन्ती के प्रणय आख्यान को लेकर लिखा गया है। इसकी मुख्य कथावस्तु महाभारत के वनपर्व में वर्णित नलोपाख्यान से ली गयी है। इस महाकाव्य में निषध देश के अधिपति राजा 'नल' के चरित्र का उत्तम रीति से वर्णन किया गया है, जो यशस्वी, पराक्रमी विविध शास्त्र ज्ञाता एवं सदाचारी थे।

इस महाकाव्य में राजा नल-दमयन्ती की प्रणय कथा तथा विवाहादि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। अतः इस महाकाव्य का अंगीरस श्रृंगार है एवं करुण, हास्य आदि रसों की अंग रूप में योजना की गयी है। पुरुषार्थ चतुष्टय में इस महाकाव्य का मुख्य फल काम-पुरुषार्थ है। इस महाकाव्य में 22 सर्ग, 2828 श्लोक हैं। विविध अलंकारों एवं अतिशयोक्ति के द्वारा कवि ने राजा नल-दमयन्ती की प्रणय-कथा के अतिरिक्त प्रकृति के विविध रूपों का सुन्दर वर्णन किया है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ करते हुए कवि ने वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का प्रयोग किया है। साथ ही राजा नल की कथा को अमृत से भी श्रेयस्कर एवं कलियुग में पापों के विनाश करने वाली रूप में वर्णित किया है।

बोध प्रश्न 1 –

1. शिशुपाल का वध किसने किया।

क. कृष्ण ख. रूक्मि ग. द्रुपद घ. बलराम

2. शिशुपाल वध किसकी रचना है।

क. माघ ख. भारवि ग. श्रीहर्ष घ. कोई नहीं

3. माघ के दादा का क्या नाम था।

क. सुप्रभदेव वर्मलात ख. प्रभदेव ग. सुकर्म घ. कीर्तिमान

4. माघे सन्ति .....।

क. चतुर्गुणा ख. त्रयो गुणाः ग. पंच गुणा घ. षड् गुणाः

5. नैषधीयचरितम् के रचनाकार हैं ?

क. श्री हर्ष ख. भारवि ग. वाण घ. माद्य

6. नैषधीयचरितम् किस विधा की रचना हैं ?

(क) महाकाव्य (ख) खण्ड काव्य

(ग) नाटक (घ) गद्यकाव्य

7. नैषधीयचरितम् में कितने सर्ग हैं ?

(क) बीस (ख) इक्कीस

(ग) बाईस (घ) तेईस

4.4 सारांश

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख कवियों के बारे में परिचित हुए। जिसमें महाकवि अश्वघोष, महाकवि कालिदास, महाकवि भारवि, महाकवि माघ, महाकवि श्रीहर्ष के जन्म, स्थितिकाल, उनकी रचनाओं तथा काव्यकला आदि के बारे में विस्तार पूर्वक जाना। अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप संस्कृत पद्यकाव्य के स्वरूप, संस्कृत पद्यकाव्य की उत्पत्ति और विकास, पद्यकाव्य के सम्बन्ध में अन्य मत एवं संस्कृत के प्रमुख महाकाव्यों के बारे में बता सकेंगे।

4.5 शब्दावली

राज्याश्रय	राजा का आश्रय पाप्त होना
प्रव्रज्या	बौद्धों का एक संस्कार
वैदर्भी	रीति
प्रसाद	गुण
महाभिनिष्क्रमण	ग्रहत्याग करना
चतुष्टय	चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर -1

1. क. कृष्ण 2. माघ 3. सुप्रभदेव वर्मलात 4. ख. त्रयो गुणा:
5. क 6. क 7. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा०कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद. सं० 2009

2.संस्कृतसाहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2009

3. संस्कृतसाहित्य का इतिहास, डा०उमाशंकरशर्मा'ऋषि', चौखम्भाभारतीअकादमी, वाराणसी,

4. गैरोला वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास।

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. वाल्मीकि रामायण।

4. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास वाराणसी 1969।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.रघुवंश महाकाव्य का पर प्रकाश डालिए।

2.बुद्धचरितम् महाकाव्य पर टिप्पणी लिखिए।

3. नैषधीयचरित का परिचय लिखिये।

4. महाकवि अश्वघोष का परिचय अपने शब्दों में लिखिये।

5. महाकवि माघ का परिचय अपने शब्दों में लिखिये।

6. संस्कृत पद्य साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।

इकाई-5 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख नीतिकवियों का परिचय (जयदेव, भर्तृहरि, अमरूक, पण्डित नारायण)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख नीतिकवियों का परिचय
  5.3.1 महाकवि जयदेव
  5.3.2 महाकवि भर्तृहरि
  5.3.3 महाकवि अमरूक
  5.3.4 महाकवि पण्डित नारायण
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहत्यि से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड़ की यह पंचम इकाई है । इससे पूर्व की इकाइयों में आपने संस्कृत पद्यसाहित्य के प्रमुख कवियों (अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष) के विषय में विस्तृत अध्ययन किया । इस इकाई में संस्कृत पद्यसाहित्य के प्रमुख नीतिकवियों (जयदेव, अमरूक, भर्तृहिर एवं प.नारायण) के विषय में विस्तार से बताया चर्चा की जा रही है । संस्कृत जगत में प्रचलित नीति कविओं को आप जानते हैं । उन्हीं से सम्बन्धित नीति साहित्य की परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ होकर आज तक चली आ रही है । विभिन्न ग्रंथों में नीति परक सम्वादों, कथाओं, सूक्तियों आदि के वर्णन मिलते हैं। इसी क्रम में प्रसिद्ध नीति कथाओं के रचनाकार महाकवि जयदेव राजा लक्ष्मणसेन की सभा में रहते थे। जिनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' है, महाकवि जयदेव भक्तिरस में ही लिप्त रहते थे। 12 सर्गों में निबद्ध गीतगोविन्द में राधा कृष्ण की प्रेम की निर्मलता बड़े सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त की है।

इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले महाकवि अमरूक का 'अमरुकशतक' इतिहास में प्रसिद्ध है। इसका रचना काल नवीं शती माना जाता है। श्रृंगार रस के विविध पक्षों को उपस्थित करते हुये इसमें पूरे100 मुक्तमणियां गुथी हुई हैं। प्रत्येक पद में अपनी एक अलग विशेषता है और इन विशेषताओं के कारण अमरुकशतक बेजोड़ है। इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले व्याकरण एवं दर्शन प्रिय व्यक्तित्त्व तथा पाण्डित्य के धनी आचार्य भर्तृहरि ने नीतिशतक की रचना करके लौकिक जीवन के विभिन्न पक्षों में नीतियां का उद्घाटन किया । इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले नारायण पण्डित प्रसिद्ध संस्कृत नीतिपुस्तक हितोपदेश के रचयिता हैं। नीतिकथाओं में पंचतन्त्र का पहला स्थान है। इसकी रचना काल ११ वीं शताब्दी के आस-पास है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रमुख नीतिकवियों (जयदेव, अमरूक, भर्तृहिर एवं प.नारायण) द्वारा विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित घटनाओं व महत्त्वपूर्ण नीति परक बातों का ज्ञान कराने में सक्षम हो सकेंगे ।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- जयदेव के विषय में बता सकेंगे ।
- गीतगोविन्द में किसका वर्णन है, उल्लेख कर सकेंगे ।
- भर्तृहरि के जीवन, स्थिति काल से सम्बन्धित प्रमाणों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अमरूक के विषय में उल्लेख कर सकेंगे ।
- प.नारायण के नीति साहित्य में योगदान से सम्बधित तथ्यों से परिचित होंगे ।

5.3 संस्कृत पद्यकाव्य के प्रमुख नीतिकवियों का परिचय

5.3.1 महाकवि जयदेव

महाकवि जयदेव का जीवन परिचय—जयदेव संस्कृत के महाकवि थे। ये लक्ष्मण सेन शासक के दरबारी कवि थे। वैष्णव भक्त और संत के रूप में जयदेव सम्मानित थे। जयदेव 'गीतगोविन्द' और 'रतिमंजरी' के रचयिता थे। श्रीमद्भागवत के बाद राधा-कृष्ण लीला की अद्भुत साहित्यिक रचना उनकी कृति 'गीत गोविन्द' को माना गया है। जयदेव संस्कृत कवियों में अंतिम कवि थे। इनकी सर्वोत्तम गीत रचना 'गीत गोविन्द' के नाम से संस्कृत भाषा में उपलब्ध हुई है। माना जाता है कि दिव्य रस के स्वरूप राधा-कृष्ण की रमणलीला का स्तवन

कर जयदेव ने आत्मशांति की सिद्धि की। संत महीपति जो भक्ति विजय के रचयिता है, उन्होंने श्रीमद्भागवतकार व्यास का अवतार जयदेव को माना है।

प्रसिद्ध भक्त-कवि जयदेव का जन्म पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगाल के वीरभूमि जिले के अन्तर्गत केन्दुबिल्व नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम वामादेवी था। ये भोजदेव कान्यकुब्ज से बंगाल में आये हुए पंच-ब्राह्मणों में भरद्वाज गोत्रज श्री हर्ष के वंशज थे। माता-पिता बाल्यकाल में ही जयदेव को अकेला छोड़कर चल बसे थे। ये भगवान का भजन करते हुए किसी प्रकार अपना निर्वाह करते थे। पूर्व-संस्कार बहुत अच्छे होने के कारण इन्होंने कष्ट में रहकर भी बहुत अच्छा विद्याभ्यास कर लिया था और सरल प्रेम के प्रभाव से भगवान श्रीकृष्ण की परम कृपा के अधिकारी हो गये थे।

जयदेव के पिता को निरंजन नामक उसी गाँव के एक ब्राह्मण के कुछ रुपये देने थे। निरंजन ने जयदेव को संसार से उदासीन जानकर उनकी भगवद्भक्ति से अनुचित लाभ उठाने के विचार से किसी प्रकार उनके घर-द्वार हथियाने का निश्चय किया। उसने एक दस्तावेज बनाया और आकर जयदेव से कहा- "देख जयदेव ! मैं तेरे राधा-कृष्ण को और गोपी-कृष्ण को नहीं जानता या तो अभी मेरे रुपये ब्याज-समेत दे दे, नहीं तो इस दस्तावेज पर सही करके घर-द्वार पर मुझे अपना कब्जा कर लेने दे!"

जयदेव तो सर्वथा नि:स्पृह थे। उन्हें घर-द्वार में रत्तीभर भी ममता नहीं थी। उन्होंने कलम उठाकर उसी क्षण दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिये। निरंजन कब्जा करने की तैयारी से आया ही था। उसने तुरंत घर पर कब्जा कर लिया। इतने में ही निरंजन की छोटी कन्या दौड़ती हुई अपने घर से आकर निरंजन से कहने लगी- "बाबा ! जल्दी चलो, घर में आग लग गयी; सब जल गया।" भक्त जयदेव वहीं थे। उनके मन में द्वेष-हिंसा का कहीं लेश भी नहीं था, निरंजन के घर में आग लगने की खबर सुनकर वे भी उसी क्षण दौड़े और जलती हुई लाल-लाल लपटों के अंदर उसके घर में घुस गये। जयदेव का घर में घुसना ही था कि अग्नि वैसे ही अदृश्य हो गयी, जैसे जागते ही सपना! जयदेव की इस अलौकिक शक्ति को देखते ही निरंजन के नेत्रों में जल भर आया। अपनी अपवित्र करनी पर पछताता हुआ निरंजन जयदेव के चरणों में गिर पड़ा और दस्तावेज को फाड़कर कहने लगा- "देव ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने लोभवश थोड़े-से पैसों के लिये जान-बूझकर बेईमानी से तुम्हारा घर-द्वार छीन लिया है। आज तुम न होते तो मेरा तमाम घर खाक हो गया होता। धन्य हो तुम! आज मैंने भगवद्भक्त का प्रभाव जाना।" उसी दिन से निरंजन का हृदय शुद्ध हो गया और वह जयदेव के संग से लाभ उठाकर भगवान के भजन-कीर्तन में समय बिताने लगा।

महाकवि जयदेव का समय एवं स्थितिकाल— राजा लक्ष्मणसेन की सभा में आश्रित ये बंगाल के सेनवंश के अन्तिम राजकवि थे , जिनकी लेखनी ने ' गीतगोविंद 'जैसे अमर काव्य की सृष्टिकी है। महाकवि जयदेव उत्कल (बंगाल) के केन्दुबिल्व नामक स्थान के निवासी थे । इनके पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम राधा देवी था । राजा लक्ष्मणसेन का एक शिलालेख 1116 ई0 का मिलता है अत: जयदेव का समय 1100 ई0 के लगभग माना जाता है।

महाकवि जयदेव की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— जयदेव बंगाल के सेनवंश के अन्तिम नरेश लक्ष्मणसेन के आश्रित महाकवि थे। लक्ष्मणसेन के एक शिलालेख पर 1116 ई. की तिथि है, अतः जयदेव ने इसी समय में 'गीतगोविन्द' की रचना की होगी। 'गीतगोविन्द' में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन, कृष्ण की राधा के लिए उत्कंठा, राधा की सखी द्वारा राधा के विरह संताप का वर्णन है। 'गीतगोविन्द' काव्य में बारह सर्ग हैं, जिनका चौबीस प्रबन्धों (खण्डों) में विभाजन हुआ है। इन प्रबन्धों का उपविभाजन पदों अथवा गीतों में हुआ है। प्रत्येक पद अथवा गीत में आठ

पद्य हैं। गीतों के वक्ता कृष्ण, राधा अथवा राधा की सखी हैं। अत्यन्त नैराश्य और निरवधि-वियोग को छोड़कर भारतीय प्रेम के शेष सभी रूपों - अभिलाषा, ईर्ष्या, प्रत्याशा, निराशा, कोप, मान, पुनर्मिलन तथा हर्षोल्लास आदि का बड़ी तन्मयता और कुशलता के साथ इसमें वर्णन किया गया है।

'गीतगोविन्द' में 12 सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग गीतों से ही समन्वित् है। सर्गों को परस्पर मिलाने के लिए कथा के सूत्र को बतलाने के लिए कतिपय वर्णनात्मक पद्य भी हैं। ' गीतगोविंद ' भगवती संस्कृत-भारतीके सौन्दर्य तथा माधुर्य की पराकाष्ठा है। महाकवि कालिदास की कविता में भी इस रसपेशलता मधुर भाव का हमें दर्शन नहीं मिलता। इस काव्य में कोमलकान्त-पदावली का सरस प्रभाव तथा मधुरता का मधुमय सन्निवेश है। आनन्दकन्द व्रजचन्द्र तथा भगवती राधिका की ललित लीलाओं का जितना सुन्दर वर्णन यहाँ मिलता है, वह अन्यत्र कहाँ देखने को मिलता है ? शब्दमाधुर्य के लिए ' ललित-लवंगलतापरिशीलन-कोमल-मलय-समीरे (गीत01/3)'' वाली अष्टपदी का पाठ पर्याप्त होगा। भावों का सौष्ठव भी उतना ही चित्ताकर्षक है। विरहिणी राधिका के वर्णन मे कवि की यह उक्ति कितनी अनूठी है। राधा के दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा झर रही है। ऐसा जान पड़ता है कि राहु के दाँतों के गड़ जाने से चन्द्रमा से अमृत की धारा बह रही हो:--

वहति च वलित-विलोचनजलभरमाननकमलमुदारम्।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलन-गलितामृतधारम्॥

उपमा की कल्पना तथा उत्प्रेक्षा की उड़ान में यह काव्य अनूठा तो है ही , परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है प्रेम की उदात्त भावना। राधाकृष्ण के प्रेम की निर्मलता तथा अध्यात्मिकता सुन्दर शब्दों में यहाँ अभिव्यक्त की गई है। श्रृंगार-शिरोमणि कृष्ण का मिलन जीव-ब्रह्म का मिलन है। साधनामार्ग के अनेक तथ्यों का रहस्य यहाँ सुलझाया गया है। अर्थ माधुर्य के लिए इस पद्य का अवलोकन पर्याप्त होगा --

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुसंदीपकं
गतिर्जमनोरमा विजितरम्भमूरूद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रूचिर-चित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता॥

राधा के विविध अंगों में विविध अप्सराओं का मिलान है, अत: उसका शरीर अप्सरा मय है। इस प्रकार राधा का रसमय वर्णन है -- तुम्हारे नेत्र मद से अलस-आलसी है (पक्षान्तर में ' मदालसा ' नामक अप्सरा है) , तुम्हारा मुख चन्द्रमा को दीप्त करने वाला है (पक्षान्तर ' इन्दुमती ' अप्सरा) , गति जनों के मन को रमण करने वाली है (पक्षान्तर -- ' मनोरमा ' अप्सरा) ; तुम्हारे दोनों उरूओं ने रम्भा (केला तथा ' रम्भा ' नामक विख्यात अप्सरा) को जीत लिया है। तुम्हारी रति कला से युक्त है (' कलावती ' अप्सरा)। तुम्हारी दोनों भौंहे सुन्दर है (पक्षान्तर -- ' चित्रलेखा ' अप्सरा)। हे तन्वी , पृथ्वी पर रहकर भी तुम देव-युवतियों के समूह को अपने शरीर में धारण करती हो। इस कमनीय पद्य में श्लेष के माहात्म्य से देवांगनाओं के नाम निर्दिष्ट किये गये है। मुद्रालंकार के द्वारा ' पृथ्वी छन्द का भी रूचिर संकेत सहृदयों के आनन्द का विषय है। गीतगोविन्द का व्यापक प्रभाव उत्तर भारत में ही नहीं , प्रत्युत महाराष्ट्र , गुजरात तथा कन्नड़ प्रान्त के साहित्य पर भी पड़ा। महाप्रभु चैतन्यदेव गीतगोविन्द की माधुरी के परम उपासक थे। उनके शिष्य प्रतापरूद्रदेव (२६ शतक 1199 ई0) ने उत्कल के अनेक मन्दिरों में इसके नियमित गायन के लिए भूमिदान की व्यवस्था की थी। मराठी साहित्य में महानुभानी ग्रन्थकार भास्कर भट्ट बोरीकर (१२७५ ई. १३२० ई.) के काव्य - ग्रन्थ ' शिशु-पालवध ' में गीत-गोविन्द से अनेक भाव-सादृश्य उपलब्ध होते है , जिसे ग्रन्थकार ने जयदेव से निश्चित रूप् से ग्रहण

किया है। गुजरात के राजा सारंगदेव के एक शिलालेख (संवत् ई.) का मंगलश्लोक गीतगोविंद के प्रथम सर्ग का अंतिम पद्य है।

अप्रमेय शास्त्री (ई.) ने इस ग्रन्थ पर श्रृंगार-प्रकाशिका नामक व्याख्या कन्नड़ भाषा में लिखी है। मैसूर के राजा चिवकदेवराय (ई.) ने गीत-गोविन्द के आदर्श पर ' गीतगोपाल ' नामक सुन्दर काव्य लिखा है , जो कन्नड़ देश मे गीत-गोविन्द की लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके सप्तांकी नाटक ' प्रसन्नराघव ' में रामकथा का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें भवभूति के नाटकों के समान हृदय के भावों का चित्रण नहीं है और राजशेखर के बालरामायण की तरह वर्णन का विस्तार ही है , परन्तु इतनी मंजुल पदावली है कि पढ़ते ही पूरा चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। प्रसादमयी कविता के कारण इसका ' प्रसन्नराघव ' नाम यथार्थ है। प्रसन्नराघव की प्रस्तावना से केवल इतना ही पता चलता है कि जयदेव का गोत्र कौण्डिन्य था और वे सुमित्रा तथा महादेव के पुत्र थे। वे कवि तथा तार्किक दोनों एक साथ थे और इस बात पर उनका विशेष अमग है कि कोमलकाव्य के निर्माण में लीलावती भारती कर्कश तर्क से युक्त वकवचन के उद्गार में भी पूर्णतया समर्थ हो सकती है और इसीलिए कविता और तार्किकत्वं का एक स्थान मे निवास विस्मयकारी नहीं मानना चाहिए। अनुमान से कवि के देश तथा काल का परिचय लगता है। जयदेव से ये भिन्न नहीं हैं , परन्तु गीतगोविन्दकार जयदेव से ये भिन्न तथा कालक्रम से अर्वाचीन हैं। गीतगोविन्द के कर्ता जयदेव भोजदेव तथा राधा (रामा) देवी के पुत्र , लक्ष्मण सेन (१२ वीं सदी) के सभा-कवि थे तथा उड़ीसा के केन्दुबिल्व के निवासी थे। विश्वनाथ (२४ वीं शती) ने प्रसन्नराघव का एक पद्य ' कदली कदली ' ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया है, जिससे इसका समय उनसें पूर्ववर्ती त्रयोदश शतक में मानना उचित होगा। ' प्रसन्नराघव ' में सात अंक हैं। कवि को बालकाण्ड की कथा से इतना अधिक प्रेम है कि उन्होंने प्रथम चार अंको का विस्तार किया है। प्रथम अंक में मंजीरक और नुपूरक नामक बन्दीजनों के द्वारा सीता स्वयंवर की सूचना मिलती है , जिसमें रावण और बाणासुर अपने-अपने भुजबल की प्रचुर प्रशंसा करते है और आपस में संघर्षकर बैठते हैं। द्वितीय अंक में हम जनक की वाटिका में उपस्थित जनों को पाते हैं , जहाँ राम और लक्ष्मण फूल तोड़ने के लिए आते हैं और सीता को देखने का प्रथम अवसर प्राप्त होता है। तृतीय अंक में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ स्वयंवर-मण्डप मे पधारते है और जनक के साथ उनका परिचय कराते है, जो राम के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो उठते है तथा धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा से वे चिन्तित हो जाते हैं। इसी बीच विश्वामित्र के आदेश से राम धनुष को चढ़ाने के स्थान पर तोड़ देते हैं। विवाह आनन्द के साथ सम्पन्न होता है। चतुर्थ अंक में परशुराम का प्रसंग उपस्थित किया गया है जिसमें राम के साथ उसका वाक्-कलह होता है। प्रथमतः ताण्डचायन ने रावण को ही धनुष का तोड़ने वाला कहा था , परन्तु पीछे सच्ची बात का पता चलता है। परशुराम जी के पूछने पर राम ने सरल उत्तर दिया कि यह पुराना धनुष छूते ही स्वयं टूट गया। लक्ष्मण के साथ भी नोक-झोंक की बातें होती है। पंचम अंक मे गंगा , यमुना और सरयू के संवाद रूप मे राम का वनवास तथा दशरथ की मृत्यु आदि घटनायें अंकित है। हंस नामक पात्र सीताहरण तक की कथा सुनाता है। षष्ठ अंक में वियोगी राम का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। हनुमान लंका जाते है जहाँ जानकी शोक से जल मरने के लिए अंगार की याचना करती है। उसी समय हनुमान जी रामनाम से अंकित अँगुठी गिराते हैं। सप्तम अंक में मन्त्री माल्यवान् का परिचारक ' करालक ' आरम्भ ' में विभीषण आदि की बातें कहता है। विद्याधर तथा विद्याधरी युद्ध का वर्णन करते रावण मारा जाता है। चन्द्रमा के उदय होने पर सुग्रीव तथा विभीषण बड़ी सुन्दर कल्पनायें सुनाते है। अंत में पुष्पक विमान पर चढ़कर राम अयोध्या लौट आते हैं।' प्रसन्नराघव ' की कथा के वर्णन से स्पष्ट है कि इस नाटक में नाटकीय तत्त्व की अपेक्षा कवित्व की ही सत्ता विशेष है। कवि में कोमल कविकला की पूर्ण अभिव्यक्ति करने की क्षमता है और वह उसे ललित अवसरों की खोज में रहता है। द्वितीय अंक का वाटिका-वृत्तान्त कवि की

निजी कल्पना है बहुत ही सुन्दर कल्पना है। षष्ठ अंक में राम का विरही रूप ही करूणाजनक है , जब जंगल की प्रत्येक वस्तु से सीता का समाचार पूछते तथा विलखते हुए घूमते हैं। प्रभात तथा चन्द्रोदय का वर्णन भी प्रतिभा-संपन्न है। इस प्रकार कविता की दृष्टि से यह बहुत ही सुन्दर, गुण से युक्त तथा लालित्य से मण्डित हैं। परन्तु नाटकीय दृष्टि से इसका मूल्यांकन विशेष नहीं किया जा सकता । प्रसिद्ध घटनाओं का यहाँ केवल नाटकीयरूप ही दिया गया है। उसमें व्यापार की प्रसृति तथा प्रगति खोजने पर भी नहीं मिलती।

5.3.2 महाकवि भर्तृहरि

महाकवि भर्तृहरि का जीवन परिचय— व्याकरण दर्शन में अभूतपूर्व चिन्तन करने वाले जीवन में प्रीति, दया, करूणा और विद्वता जैसे अक्षुण्ण गुणों को पहचानने वाले प्रसिद्ध कवि भर्तृहरि का आविर्भाव महाकाव्यों और नीति साहित्य के सन्धि काल की उद्भूत प्रेरणाओं के साथ हुआ। दन्तकथाओं व किंवदन्तियों के आधार पर ही आप भर्तृहरि के जीवन के विषय में जान पायेंगे।भर्तृहरि का जीवन विविधताओं से भरा है, अपने काव्य में समय की ही भाँति अपने जीवन के विषय में निर्देश न देने के कारण जनश्रुतियों को ही आधार माना गया है। भर्तृहरि का जन्म मालवा प्रान्त में हुआ था, ये जाति के क्षत्रिय व परमार वंशज थे। इनका सम्बन्ध राजघराने से था। इनके पिता का नाम गन्धर्वसेन था। इनकी दो रानियां थीं। एक से भर्तृहरि का जन्म हुआ व दूसरी से विक्रमादित्य उत्पन्न हुए। राजकुमार विक्रम भर्तृहरि के छोटे भाई थे, राजकुमार विक्रम ही बाद में महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, इन्हीं के नाम पर तिथि का ज्ञान कराने के लिए संवतसर की प्रथा चलाई गई इसके विषय में आप पूर्व जान चुके हैं। भर्तृहरि ने अपनी शिक्षा गुरू के आश्रम में रहकर पूर्ण की, भर्तृहरि आज्ञाकारी थे। उन्होंने वेदों, उपवेदों और छह शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, गुरू के आश्रम में रहकर ही उन्होंने वेदान्ताचार्य से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया। महाराजा भर्तृहरि असाधारण विद्वान और बुद्धिमान होने के साथ-साथ एक महान योद्धा भी थे, एक बार उनके राज्यमें शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया उन्होंने शत्रुओं का पूर्ण रूप से दमन किया। राजा भर्तृहरि अपनी वीरता के कारण ही नहीं अपितु विद्वता के कारण भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।भर्तृहरि के साथ विक्रमादित्य और विक्रमादित्य के साथ भर्तृहरि के नाम को कभी भी अलग नहीं किया जा सकता , अग्रज होने के कारण भर्तृहरि राजा बने विक्रमादित्य अपने अग्रज के प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार चलाने में सहयोग देते थे, जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र को कार्यभार सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार भर्तृहरि भी विक्रम को सम्पूर्ण दायित्व सौंपकर सुखी थे, दोनों भाईयों में अत्यधिक प्रेम था। कुछ समय उपरान्त मालवा की राजधानी उज्जैन हो गयी, सत्ता पाकर भर्तृहरि विषयासक्त हो गये और उनका अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में बितने लगा। महाराजा भर्तृहरि की पिंगला नाम की रानी थी जो अपने समय की परमसुंदरी, मनमोहिनी, रूपलावण्या सम्पन्ना थी। भर्तृहरि व रानी पिंगला में अत्यधिक प्रेम था, असाधारण रूप से सम्पन्न रानी पिंगला पर महाराज इस प्रकार मुग्ध हुए कि अपनी बुद्धि, विवेक, और विचार जैसे वैभव को उनके ऊपर समर्पित किया वे महारानी पिंगला के हाथों की कठपुतली बन गये, उनका अधिकांश समय रनिवास में बीतने लगा ,विक्रमादित्य के बार-बार समझाने पर भी उन्होंने उनकी बात नही सुनी।यदि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देखा जाय तो रूप लावण्या मोहिनियों के सम्मुख बड़े-बड़े योगी तपस्वी भी धाराशायी हो जाते हैं यहाँ हम भर्तृहरि को दोष नहीं देंगे, विश्वामित्र जैसे महान योगी तपस्वी ने मेनका के रूप लावण्य में फँसकर अपना तप भंग किया था, बड़े-बड़े योद्धा जो अपने बाहुबल से इस संसार को पराजित कर सकते हैं उन्होंने भी इन कोमलांगी मनमोहिनियों के सम्मुख हार मान ली बड़े-बड़े योद्धा जो अपने युद्ध कौशल के बल नहीं कर पाते ये अपने एक ही कटाक्ष से कर लेती हैं। इन मोहिनियों के वशीभूत रहने वाले पुरूष को अंत में दुःख, धोखा और विश्वासघात ही मिलता है।

यदि भर्तृहरि की बुद्धि मारी नहीं जाती तो वे रानी पिंगला के हाथों की कठपुतलीनहीं बनते जिससे रानी पर पुरूष से प्रेम न करती, यदि वह व्यभिचारिणी न होती तो भर्तृहरि को कैसे वैराग्य प्राप्त होता और वे कैसे महान शतक त्रय का निर्माण करते, येसब तो ईश्वर की इच्छा से होता है। यदि उन्हें विरक्ति न होती तो उनका नाम संसारमें अमर न होता, अपनी प्रिया के कुकर्म को जानकर उन्हें ऐसी विरक्ति हुई कि वे राजपाट त्यागकर योगीराज बन गये।

महाकवि भर्तृहरि का समय एवं स्थितिकाल— संस्कृत विश्व की प्राचीनतम व श्रेष्ठ भाषा है। इसका साहित्य अत्यन्त विशाल और समृद्ध है। भर्तृहरि संस्कृत साहित्य में सूर्य के समान चमके, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार भर्तृहरि के शतक अन्नत काल तक समाज को प्रेरणा देते रहेंगे। इन्होंने अपने काव्य में अपने समय का निर्देश नहीं किया। संस्कृत साहित्य की परम्परा में अनेक महान साहित्यकार व कवि हुए, अपनी कृतियों में अपना परिचय न देने के कारण अनेक जनश्रुतियों को ही सत्य माना जाता है। कालिदास ,भास, भारवि, माघ,तथा शद्रक की तरह ही भर्तृहरि के समय के विषय में मतभेद है। दन्तकथाओं व विदेशी यात्रियों के द्वारा लिखे लेखों के अतिरिक्त कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार देखा जाय तो भर्तृहरि के स्थिति काल के विषय में निश्चित ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। जनश्रुतियों के आधार पर राजा भर्तृहरि विक्रमादित्य के अग्रज थे, तिथियों के ज्ञान हेतु विक्रम के नाम पर एक संवत्सर की प्रथा चली जो वर्तमान में 'विक्रम संवत' के नाम से जानी जाती है। यदि हम जनश्रुतियों को आधार मानकर राजा भर्तृहरि केा विक्रमादित्य का अग्रज मान लें तो उनका समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध माना जाता हैजिन्होंने 644 में कहरूर के युद्ध में हूणों को पराजित किया। नवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध होने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में भर्तृहरि के श्लोंको को उद्धृत किया है,अतः निश्चय ही भर्तृहरि इससे पूर्व का होना चाहिए। चीनी यार्त्री हित्संग के अनुसार बौद्ध भर्तृहरि को त्रय शतकों का निर्माता मानते हैं। इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी पूवार्द्ध का माना जा सकता है, उसी समय अमरूक नामक कवि हुए, अमरूक कवि द्वारा लिखे गये शतक के पद्य भर्तृहरि के श्रृंगार शतक के पद्यों से प्रभावित हैं अर्थात् मिलते हैं। अतः हम भर्तृहरि के समय को 700 ई0 के कुछ पूर्व का मानेंगे, यदि भर्तृहरि को अमरूक कवि के समकालीन मान लें तो तब भी भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध का निश्चित किया जा सकता है।

महाकवि भर्तृहरि की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— भारतीय संस्कृत साहित्य में ऐसी अद्वितीय रचनाओं का भण्डार है, जो सम्पूर्ण समाज का मार्गदर्शन करती हैं। चाहे वह प्राचीन कालीन साहित्य हो या आधुनिक काल का साहित्य। संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए, भर्तृहरि की कृतियों का विवेचन करने पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने भर्तृहरि शतक नामक एक मौलिक कृति की रचना की, जिसमें तीन शतक हैं- नीति शतक, श्रृंगार शतक तथा वैराग्य शतक, इन तीनों शतकों की उपदेशात्मक कहानियाँ लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रत्येक शतक में सौ-सौ श्लोक लिखे गये थे, धीरे-धीरे कवियों ने इनकी संख्या में वृद्धि कर दी, इनके तीनों शतक विभिन्न वृत्तों में लिखे गये हैं। वाक्यपदीय का रचयिता भी भर्तृहरि को माना जाता है, यह तीन खण्डों में विभक्त है। पतंजलि के महाभाष्य के कुछ अंशों पर भर्तृहरि द्वारा टीका लिखने का संकेत मिलता है। भर्तृहरि की कृतियों का हम अगले पृष्ठों पर वर्णन करेंगे।

1. नीतिशतक— नीति शतक के प्रत्येक श्लोक में कवि भर्तृहरि ने नैतिकता का उल्लेख किया है। कविता के माध्यम से भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों को नीति शतक में चित्रित किया है, इसमें नीति से सम्बन्धित

श्लोकों का संग्रह है। यह व्यावहारिक उपदेशों का भंडार है, इसमें वर्णित पद्य तो इतने मार्मिक हैं कि वे तत्क्षण अध्येताओं के हृदय में उतरकर कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। विद्वत प्रशंसा, अर्थ पद्धति, सुजन पद्धति, दुर्जन पद्धति, परोपकार पद्धति आदि। वास्तव इस शतक में वीरता, विद्या,दया, उदारता, परोपकार, और साहस जैसे मानवीय मूल्यों को अपना विषय बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने पूरे मानव समाज के लिए नीतिगत बातों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

2. श्रृंगारशतक— श्रृंगार शतक में भर्तृहरि ने बड़ा ही उल्लास पूर्ण वर्णन किया है। श्रृंगार से ओत-प्रोतश्रृंगार शतक भर्तृहरि के यौवन उल्लास की अभिव्यक्ति है, इसके श्लोकों में काम के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है। कवि ने कामिनियों के सौन्दर्य व कटाक्ष नेत्रों के द्वारा आकृष्ट करने वाले हाव- भावों का चित्रण किया है। प्रेम से प्रभावित कामी स्त्री व पुरूष के चित्त का वर्णन भर्तृहरि ने सुन्दर प्रकार से किया है-

अदर्शने दर्शनमात्रकामादृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोलाः।
आलिङ्गतायां पुनरायताक्ष्या आशास्महेविग्रहयोरभेदम् ।।

जब तक प्रेमी अपनी प्रियतमा को देख नही लेता उसे देखने की इच्छा बनी रहती है प्रियतमा का आलिंगन कर लेने के बाद ये इच्छा होती है कि दोनों इसी तरह रहें, हममें कोई विलगाव अर्थात् हम अलग न हों। इसी तरह भर्तृहरि ने युवक-युवतियों की प्रणयक्रीड़ा , स्त्रियों की मन्द-मन्द मुस्कान, भौंहों के फेरने की चतुराई से पूर्ण आंखों का मारना आदि श्रृंगारिक चेष्टाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

3. वैराग्यशतक— वैराग्य शतक में कवि भर्तृहरि का सर्वस्व प्रतीत होता है। यौवन -काल में उन्होंने सभी प्रकार के भोग पदार्थों का सेवन किया। उनका प्रारम्भिक जीवन विषय वासनाओं से ग्रस्त था। अपनी प्रिय रानी के कुकर्म से इन्हें ऐसी घृणा हुई जो कि इन्होंने राजपाट त्याग कर वैराग्य धारण किया। राजा भर्तृहरि ने अपने जीवन के सच्चे अनुभवों को श्लोकों में बॉ ध दिया। वैराग्य शतक को सर्वोत्तम कृति मानने में कोई संशय नहीं है, इसमें सांसारिक सुख भोगों का व मानवीय जीवन के दुःखमयता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया। वैराग्य के द्वारा ही परम सुख की प्राप्ति होती है। इस चराचर जीवन में मनुष्य को कहॉ से सुख मिल सकता है, वैराग्य शतक के इस श्लोक में कवि भर्तृहरि ने संसार की असारता और वैराग्य के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

इस संसार में आकर हम भ्रम में थे कि जी भर के भोगों को भोगें लेकिन भोगों ने ही हमें भोग लिया, हम तप नहीं सके पर तप ने ही हमें तपा लिया, काल व्यतीत न हुआ किन्तु हम ही व्यतीत हो गये, हमारी तृष्णा दिनों दिन बढ़ती गई किन्तु हम ही समाप्त हो गये। इस प्रकार भर्तृहरि ने संतोष को परम धन व वैराग्य को इसका साधन माना है।

4. वाक्यपदीय— वाक्यपदीय के रचयिता भी महाकवि भर्तृहरि माने जाते हैं, वाक्यपदीय भी तीन खण्डों में विभक्त है। इसके तीनों काण्ड वैयाकरण के लिए आदर्श हैं भर्तृहरि की कृतिवाक्यपदीय में व्याकरण दर्शन के सिद्धान्तों का पद्यों में मार्मिक विवेचन किया है।

5.3.3 महाकवि अमरूक

महाकवि अमरूक का जीवन परिचय— अमरु (या अमरूक) संस्कृत के महान कवियों में से एक हैं। इनकी रचना अमरूशतक प्रसिद्ध है। इनका कोई अन्य काव्य उपलब्ध नहीं है और केवल इस एक ही सौ पद्यों के काव्य से ये सहृदयों के बीच प्रसिद्ध हुए हैं। सुभाषितावलि के विश्वप्रख्यातनाडिंधमकुलतिलको विश्वकर्मा द्वितीयः पद्य से पता चलता है कि ये सुवर्णकार थे। तथापि इनके माता-पिता कौन थे यह उल्लेख नहीं मिलता।

किसी अज्ञात राज्य के शासक अमरु नामक राजा इस मुक्तककाव्य के प्रणेता बतलाए जाते हैं इनका समय भी विवादास्पद है। आठवीं शती के संस्कृत के प्रकांड आलोचक एवं ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने अमरूशतक के श्लोकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस आधार पर इनका समय आनन्दवर्धन के कुछ पहले ही रहा होगा विद्वानों ने इस समय का निर्धारण 750 ई0 के लगभग किया है

महाकवि अमरूक का समय एवं स्थितिकाल— अमरूक की कविता जितनी विख्यात है, उनका व्यक्तितत्व उतना ही अप्रसिद्ध है। उनके देश और काल का अभी तक ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। रविचंद्र ने "अमरूशतकम्" की अपनी टीका के उपोद्धात में आद्य शंकराचार्य को अमरूक से अभिन्न व्यक्ति माना है, परंतु यह किंवदंती नितांत निराधार है। आद्य शंकराचार्य के द्वारा किसी "अमरूक" नामक राजा के मृत शरीर में प्रवेश तथा कामतंत्र विषयक किसी ग्रंथ की रचना का उल्लेख शंकरदिग्विजय में अवश्य किया गया है, परंतु विषय की भिन्नता के कारण "अमरूशतक" को शंकराचार्य की रचना मानना नितान्त भ्रान्त है। आनंदवर्धन (९वीं सदी का मध्यकाल) ने अमरूक के मुक्तकों की चमत्कृति तथा प्रसिद्धि का उल्लेख किया है (ध्वन्यालोक का तृतीय उद्योत)। इससे इनका समय ९वीं सदी के पहले ही सिद्ध होता है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में '**मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते, तथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव**'।ऐसा कहते हुए अमरुशतक के अनेक श्लोंकों का उदाहरण देते हैं। अतः उससे पहले ही अमरुशतक रचना प्रसिद्ध हो गयी थी ऐसा तर्क किया जा सकता है।

महाकवि अमरूक की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— अमरूशतकम् संस्कृत का एक गीतिकाव्य है। इसके रचयिता अमरु या अमरूक हैं। इसका रचना काल नवीं शती माना जाता है। इसमें १०० श्लोक हैं जो अत्यन्त शृंगारपूर्ण एवं मनोरम हैं। नाम से यह शतक है, परंतु इसके पद्यों की संख्या एक सौ से कहीं अधिक है। सूक्तिसंग्रहों में अमरूक के नाम से निर्दिष्ट पद्यों को मिलाकर समस्त श्लोकों की संख्या 163 है। इस शतक की प्रसिद्धि का कुछ परिचय इसकी विपुल टीकाओं से लग सकता है। इसके ऊपर दस व्याख्याओं की रचना विभिन्न शताब्दियों में की गई जिनमें अर्जुन वर्मदेव (13वीं सदी का पूर्वार्ध) की 'रसिक संजीवनी' अपनी विद्वत्ता तथा मार्मिकता के लिए प्रसिद्ध है। आनंदवर्धन की सम्मति में अमरूक के मुक्तक इतने सरस तथा भावपूर्ण हैं कि अल्पकाय होने पर भी वे प्रबंधकाव्य की समता रखते हैं। संस्कृत के आलंकारिकों ने ध्वनिकाव्य के उदाहरण के लिए इसके बहुत से पद्य उद्धृत कर इनकी साहित्यिक सुषमा का परिचय दिया है।

अमरूक शब्दकवि नहीं हैं, प्रत्युत रसकवि हैं जिनका मुख्य लक्ष्य काव्य में रस का प्रचुर उन्मेष है। अमरूशतक के पद्य शृंगार रस से पूर्ण हैं तथा प्रेम के जीते जागते चटकीले चित्र खींचने में विशेष समर्थ हैं। प्रेमी और प्रेमिकाओं की विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान शृंगारी मनोवृत्तियों का अतीव सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन सरस श्लोकों की प्रधान विशिष्टता है। कहीं पति को परदेश जाने की तैयारी करते देखकर कामिनी की हृदयविह्वलता का चित्र है, तो कहीं पति के आगमन का समाचार सुनकर सुंदरी की हर्ष से छलकती हुई ऑखों और विकसित स्मित का रुचिक चित्रण हैं। हिंदी के महाकवि बिहारी तथा पद्माकर ने अमरूक के अनेक पद्यों का सरस अनुवाद प्रस्तुत किया है। अमरुक संस्कृत गीतिकाव्यपरम्परा में कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक स्पृहणीय कवि हैं। मुक्तक काव्य परम्परा में शृंगार और प्रेम के कवि के रूप में उन्होंने अनन्य सामान्य प्रशंसा तथा प्रसिद्धि पायी। डी. डी. कोसाम्बी जैसे विद्वान् तो अमरुक नामक किसी कवि के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हैं । पर कोसम्बी ने इस तथ्य को अनदेखा कर दिया है कि विद्याधर के बहुत पहले आनन्दवर्धन जैसे संस्कृत काव्यशास्त्र के महान् आचार्य की दृष्टि में अमरुक मुक्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं । अतएव न

अमरुक के अस्तित्व को अस्वीकार किया जा सकता है। और न अमरुकशतक के सन्दर्भ में उनके कर्तृत्व को। अमरुक कवि की एक ही रचना मिलती है। अमरुकशतक की विभिन्न प्राचीन प्रतियों में 90 से 115 तक पद्य प्राप्त होते हैं। जिनमें से केवल 51 पद्य ही सर्वश्रेष्ठ हैं। साइमन तथा आफ्रेट इन दो पाश्चात्य विद्वानों ने छन्द को प्रमाण मानकर अमरुक के वास्तविक कर्तृत्व का परीक्षण करना चाहा है। आफ्रेट ने यहाँ तक कहा है कि अमरुक ने अपने पद्य केवल शार्दूलविक्रीडित छन्द में ही लिखे थे और शेष छन्दों में लिखे गये पद्य वस्तुतः अमरुक के नहीं है। परञ्च आफ्रेट के इस वचन में कोइ तर्क नहीं है। टीकाकार अर्जुन वर्म देव ने कुल 102 पद्यों पर टीका की है तथा निर्णयसागर संस्करण में इन पद्यों के अतिरिक्त पद्य अलग से संगृहीत किये गये हैं, जिनके अमरुककृत होंने की सम्भावना प्रकट की जाती रही है।

अमरुकशतक की प्राचीन प्रतियों तथा उपलब्ध संस्करणों के आधार पर उसके दो संस्करण प्राचीन काल से प्रचलित प्रतीत होते हैं। एक लगभग 114 पद्यों का बृहत् संस्करण है, जिसका प्रचार 1000 ई० के आसपास अवन्तिदेश में अधिक रहा है। अमरुक का एक दूसरा संस्करण आन्ध्रप्रदेश में प्रचलित रहा होगा, जिसका अपनी टीकाओं में उपयोग रुद्रमदेव, रविचन्द्र तथा वेमभूपाल जैसे टीकाकारों ने किया है।

रविचन्द्र ने अमरुकशतक के विषय में शंकराचार्य सम्बद्ध किंवदन्ती को प्रमाण मानते हुए प्रत्येक पद्य की द्विविध व्याख्या की है। शृंगारपरक, वैराग्यपरक वेमभूपाल आदि टीकाकारों ने अमरुक के काव्य को कामसूत्र या नायिका.लक्षणों के उदाहरण के रूप में ही प्रस्तुत किया है। वस्तुतः अमरुक का रसावेशवैशद्य सौन्दर्यनिधानमत काव्य किसी शास्त्र को सामने रखकर उसकी काव्यात्मक टीका में नहीं रचा गया है। वह तो जीवन के सहज अनुभव से उपजा है।

अमरुक प्रणय.जीवन के कुशल चितेरे हैं। उनके सारे मुक्तकों का वर्ण्य .विषय दाम्पत्य कहा जा सकता है। दम्पती के जीवन में भावनात्मक स्तर पर उठते घात.प्रत्याघात, प्रणय के अपूर्व उल्लास, मान, सम्बन्धों में बिखराव या विघटन और उपालम्भ की स्थितियों के उन्होंने गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि के साथ अन्तरंग चित्र उकेरे हैं। वे दम्पती के बीच सम्बन्धों में आते उतारचढाव की बाहरी पड़ताल करते हुए भारतीय गृहस्थ जीवन और दाम्पत्य की अखण्ड मांगलिकता का दिग्दर्शन कराते हैं-

दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्टैव नैन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजाव्यादिभिः
दत्तः स्वेदमुचा पयोंधरभरेणाधौ न कुम्भाम्भस-
स्स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मंगलम्।।

प्रोषितभर्तृका का पति परदेश से लौट आया है। वह बावली इतनी प्रतीक्षा के बाद उसे आया देख हड़बड़ी में कोई मंगल नहीं रच पाती पर उसे नहीं पता कि मांगलिक उपकरणों की टीमटाम के बिना ही उसने सहज रूप में स्वतः कितना उत्तम मंगल उपस्थित कर दिया है। अपनी दृष्टि के वितान से ही उसने बन्दनवार खींच दी कमल नहीं हुए तो क्या ? उसने अपनी मुस्कानों से ही फूल बिखेर दिये, कुन्द और जाति के फूल भले न हों। पसीने से तरबतर अपने पयोधरों से ही उसने प्रिय को अर्घ्य दिया, मंगल कलश से नहीं। इस प्रकार प्रिय के प्रवेश करते समय उसने अपने आप अपने अवयवों से सारी मांगलिक सामग्री प्रस्तुत कर दी।

5.3.4 महाकवि पण्डित नारायण

महाकवि पण्डित नारायण का जीवन परिचय— नारायण पण्डित प्रसिद्ध संस्कृत नीतिपुस्तक हितोपदेश के रचयिता थे। पुस्तक के अंतिम पद्यों के आधार पर इसके रचयिता का नाम नारायण ज्ञात होता है। **'नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोऽयं कथानाम्'** पण्डित नारायण ने पंचतन्त्र तथा अन्य नीति के ग्रंथों की

सहायता से हितोपदेश नामक इस ग्रंथ का सृजन किया। स्वयं पं॰ नारायण जी ने स्वीकार किया है- **'पंचतन्त्रान्तथाडन्यस्माद् ग्रंथादाकृष्य लिख्यते'** इसके आश्रयदाता का नाम धवलचंद्रजी है। धवलचंद्रजी बंगाल के माण्डलिक राजा थे तथा नारायण पण्डित राजा धवलचंद्रजी के राजकवि थे। हितोपदेश भारतीय जन-मानस तथा परिवेश से प्रभावित उपदेशात्मक कथाएँ हैं। इसकी रचना का श्रेय पंडित नारायण को जाता है, जिन्होंने पंचतंत्र तथा अन्य नीति के ग्रंथों की मदद से हितोपदेश नामक इस ग्रंथ का सृजन किया। नीतिकथाओं में पंचतंत्र का पहला स्थान है। विभिन्न उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना तीसरी शताब्दी के आस- पास निर्धारित की जाती है। हितोपदेश की रचना का आधार पंचतंत्र ही है। स्वयं पं. नारायण जी ने स्वीकार किया है। हितोपदेश की कथाएँ अत्यंत सरल व सुग्राह्य हैं। विभिन्न पशु- पक्षियों पर आधारित कहानियाँ इसकी खास- विशेषता हैं। रचयिता ने इन पशु- पक्षियों के माध्यम से कथाशिल्प की रचना की है। जिसकी समाप्ति किसी शिक्षाप्रद बात से ही हुई है। पशुओं को नीति की बातें करते हुए दिखाया गया है। सभी कथाएँ एक- दूसरे से जुड़ी हुई प्रतीत होती है।

महाकवि पण्डित नारायण का समय एवं स्थितिकाल— नीतिकथाओं में पंचतन्त्र का पहला स्थान है। विभिन्न उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना तीसरी शताब्दी के आस-पास निर्धारित की जाती है। हितोपदेश की रचना का आधार पंचतन्त्र ही है। कथाओं से प्राप्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर डा. फ्लीट कर मानना है कि इसकी रचना काल ११ वीं शताब्दी के आस-पास होना चाहिये। हितोपदेश का नेपाली हस्तलेख १३७३ ई. का प्राप्त है। वाचस्पति गैरोला जी ने इसका रचनाकाल १४ वीं शती के आसपास माना है। हितोपदेश की कथाओं में अर्बुदाचल (आबू), पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, मालवा, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज (कन्नौज), वाराणसी, मगधदेश, कलिंगदेश आदि स्थानों का उल्लेख है, जिसमें रचयिता तथा रचना की उद्गमभूमि इन्हीं स्थानों से प्रभावित है।

महाकवि पण्डित नारायण की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय— नारायण पण्डित प्रसिद्ध संस्कृत नीतिपुस्तक हितोपदेश के रचयिता थे। नीति कथाओं में पंचतंत्र पर आधारित हितोपदेश नामक लोकप्रिय ग्रंथ है। पण्डित श्री नारायण शर्मा ने राजा धवलचंद्र की प्रेरणा से ही इस महान ग्रंथ की रचना की ऐसा माना जाता है क्योंकि उनके आश्रयदाता राजा धवलचंद्र ही थे। इसके चार भाग हैं- मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह व सन्धि,जिनमें पंचतंत्र के पांचों तन्त्रों को समाविष्ट किया गया है । हितोपदेश नामक ग्रंथ वार्तालाप करने में पटुता के साथ-साथ नीति सम्बन्धी विद्या को भी प्राप्त कराता है। हितोपदेश के विषय में एक कथा प्रचलित है- पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे । उनके चार पुत्र थे जो अनपढ़ थे । समय बीतने के साथ राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में चिन्ता होने लगी । तब राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा कि मेरे इन अनपढ़ पुत्रों को आप नीति शास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें । तत्पश्चात् विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश के नाम से प्रसिद्ध हुए । हितोपदेश के मित्रलाभ में 8, सुहृदभेद में 10, विग्रह में 10 व संधि में 13 कथायें वर्णित हैं।

हितोपदेश की शैली— हितोपदेश में सूक्तियां पद्यों में दी गयी हैं व कहानी गद्य में है। पंचतंत्र की अपेक्षा हितोपदेश में पद्यों की संख्या अधिक है कहीं तो इनकी संख्या इतनी अधिक है कि कथा प्रवाह में स्वाभाविकता का अभाव है। हितोपदेश संस्कृत की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इसकी भाषा सरल व सुबोध है जिसे सरलता से समझा जा सकता है। अधिकतर पद्यों में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ का एक नेपाली हस्तलेख 1373 ई0 में प्राप्त हुआ है। अतः इसका रचनाकाल 12 वीं शती से पूर्व होना चाहिए देखा जाय तो लगभग11वीं शती में। इस ग्रंथ में नीति विषयक पद्यों की संख्या 679 हैं। इस ग्रंथ के लेखन कार्य में केवल पंचतंत्र का ही नहीं बल्कि धर्मशास्त्र, महाभारत, चाणक्यनीति व कामन्दकीय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अत्यन्त सरल व सुबोध उपदेशों से परिपूर्ण इसकी नीति कथायें मानव को प्रेरणा देती हैं। जैसा आपको विदित ही है हितोपदेश में हितकारी उपदेशों का प्रचुर भण्डार है। इसके देशकालके विषय का परिचय नहीं मिलता है मित्रलाभ की षष्ठ कथा 'गौरीव्रत" में इसके उद्गम स्थल बंगाल का उल्लेख है यह माना जा सकता है वहां तान्त्रिक पूजा का अत्यधिक प्रचलन था। क्योंकि यह ग्रंथ पंचतंत्र की अपेक्षा विशाल है इसमें पद्यों की संख्या भी अधिक है जिस कारण भारत में इसका प्रचार अधिक हुआ। यूरोप की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। जिससे यह ज्ञात होता है कि इसकी लोकप्रियता विश्वव्यापी है।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. महाकवि जयदेव किस राजा के महाकवि थे।
2. गीतगोविन्द का लेखक कौन है।
3. महाकवि जयदेव का निवास स्थान कहाँ था।
4. यहा कवि जयदेव का सबसे प्रिय रस क्या था।
5. राधा कृष्ण का मिलन क्या था।
6. जयदेव का गोत्र क्या था।

अभ्यास प्रश्न- 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गीतगोविन्द में सर्ग हैं-

(क) 4 (ख) 6

(ग) 12 (घ) 10

2. प्रसन्नराघव के लेखक है -

(क) विश्वनाथ (ख) जयदेव

(ग) भवभूति (घ) हर्ष

3. प्रसन्नराघव में वर्णन है -

(क) कृष्ण कथा का (ख) राम कथा का

(ग) विष्णु का (घ) ब्रह्म का

4. प्रसन्नराघव में अंक है-

(क) 10 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 7

5. प्रसन्नराघव है -

(क) नाटक (ख) कथा

(ग) पद्य (घ) कविता

अभ्यास प्रश्न- 3

1-निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) भर्तृहरि के अनुज कौन थे?

(क) चन्द्रगुप्त (ग) विक्रमादित्य

(ख) अमरूक कवि (घ) गन्धर्वसेन

(2) भर्तृहरि की रानी का नाम क्या था?

(क) सौम्या (ग) पिंगला

(ख) शकुन्तला (घ) पद्माक्षी

(3) आयुवर्द्धक अमर फल राजा भर्तृहरि को किसने दिया था?

(क) महात्मा (ग) राजा

(ख) संन्यासी (घ) ब्राह्मण

(4) महाराजा भर्तृहरि ने वह अमर फल किसे दिया?

(क) वेश्या (ग) दरोगा (ख) रानी (घ) मंत्री

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

(क) भर्तृहरि के -----शतक हैं।

(ख) भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता' यह श्लोक-----से लिया गया है।

(ग) वैराग्य शतक भर्तृहरि की-----कृति है।

(घ) नीति शतक व्यावहारिक-----का भंडार है।

5.4 सारांश

इस इकाई में संस्कृत पद्यसाहित्य के प्रमुख नीतिकवियों के विषय में आपने विस्तार से जाना। आपने जान कि नीतिसाहित्य की परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ होकर आज तक चली आ रही है। विभिन्न ग्रन्थों में नीति परक सम्वादों, कथाओं, सूक्तियों आदि के वर्णन मिलते हैं। इसी क्रम में प्रसिद्ध नीति कथाओं के रचनाकार महाकवि जयदेव, महाकवि अमरूक, आचार्य भर्तृहरि, नारायण पण्डित के नीति परक उपदेश समस्त मानव जाति के लिए है इनके नीति गत उपदेश अनन्त काल तक मानव को प्रेरणा देते रहेंगे। अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपरिउक्त का परिचय, समय और इनके समय निर्णय में विविध मतों का अवलोकन करते हुये उनके विविध वर्णन शैली को समझा सकेंगे।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
तव	तुम्हारी
मदालसे	मद से आलसी है
वदनम्	मुख
इन्दु	चन्द्रमा
सन्दीपकम्	चमकने वाला
गतिर्जनमनोरमा	गतिजनों के मन को रमण करने वाली
विजितरम्भमूरूद्वयम्	तुम्हारें दोनों जंघाओं ने जीत लिया
दुश्:चरित्रा	बुरा चरित्र

पूर्णरूपेण	पूर्ण रूप से
विद्वता	अत्यधिक विद्वान
कुकर्म	बुरे कर्म
निष्कासित	निकाल देना
उद्भूत	उत्पन्न होना
रूचिर	सुन्दर
चित्रलेखे भ्रुवा	चित्र के समान दोनों भौंहे हैं
अक्षुण्ण	कभी न मिटने वाले
अग्रज	बड़ा भाई
दायित्व	भार
धाराशायी	घायल
रनिवास	रानियों के रहने का स्थान

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 .

1 - राजा लक्ष्मणसेन 2- जयदेव 3- उत्कल के केन्दुविल्व 4- भक्ति रस

5- जीव ब्रह्म का मिलन 6 - कौण्डिन्य

अभ्यास प्रश्न-2 –

बहुविकल्पीय प्रश्न 1- ग 2- ख 3- ख 4- घ 5- क

अभ्यास प्रश्न-3

1-(1) गः- विक्रमादित्य (2) गः- पिंगला (3) घः- ब्राह्मण (4) खः- रानी

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गीतगोविन्द, लेखक-जयदेव, प्रकाशक-चौखभासंस्कृत भारति चौक वाराणसी।

2.बलदेव उपाध्याय, संस्कृतसाहित्य का इतिहास, काशी, पंचम सं. 1958।

3.भक्तचरितांक,प्रकाशक,गीताप्रेस,गोरखपुर,विक्रमी संवत्- 2071।

4.ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, भर्तृहरि शतक रणधीरबुक सेल्स प्रकाशन 182, हरिद्वार।

5.डॉ.बाबूरामत्रिपाठी, भर्तृहरि कृत- नीतिशतक महालक्ष्मी प्रकाशशहीद भगतसिंह मार्ग आगरा।

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1. अमरूशतकम् (कमलेशदत्त त्रिपाठी द्वारा अमरूशतकम् का हिन्दी अनुवाद)।

2. डॉ0 चमनलाल गौतम- भर्तृहरि शतक-त्रयसंस्कृति संस्थान वेदनगरबरेली 01(उ0 प्र0)।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गीतगोविन्द का सामान्य रूप से वर्णन कीजिये ?
2. महाकवि जयदेव का परिचय दीजिए।
3. भर्तृहरि के स्थिति काल को समझाइये।
4. पण्डित नारायण के नीतिसाहित्य में योगदान को लिखिए।
5. महाकवि अमरूक के नीतिसाहित्य में योगदान को लिखिए।

कुमारसम्भवम् एवं किरातार्जुनीयम्
खण्ड -दो – BLOCK-II

इकाई .1 महाकवि कालिदास का परिचय एवं कुमारसम्भवम्

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 महाकवि कालिदास का परिचय एवं कुमारसम्भवम्
    1.3.1 कालिदास का परिचय
    1.3.2 कालिदास के ग्रन्थ
    1.3.3 कालिदास की प्रसिद्धि का कारण
    1.3.4 कालिदास की जन्मभूमि
    1.3.5 कालिदास का समय
    1.3.6 कालिदास की काव्य-कला
    1.3.7 कालिदास का पात्र-चित्रण
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में द्वितीय खण्ड कुमारसम्भवम् प्रथम सर्ग के वर्णन से सम्बद्ध यह पहली इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने संस्कृत पद्य साहित्य का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप कालिदास के बारे में जानेंगें। विद्वत् समाज में किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे।

कालिदास के परिचय के साथ उनके समय के विषय में भी विद्वानों में मतभेद ही है। आन्तरिक प्रमाणों के आधार कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक माना गया है। महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भवम् विश्व विख्यात कवि कालिदास के द्वारा निर्मित महाकाव्य है। इसमें कवि के द्वारा प्रधान रूप से भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म का वर्णन किया गया है।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप महाकवि कालिदास के जीवन से परिचित होकर उनके काल निर्धारण सम्बन्धी तथ्यों को जानकर कुमारसम्भव महाकाव्य के महाकाव्यत्व को समझा सकेंगें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कालिदास के महत्त्व को जानते हुए उनके सम्बन्ध में बताएंगे।
- कालिदास के जीवन के विषय में समझाएंगे।
- कालिदास के समय विषयक मतों को बता सकेंगे।
- कुमारसम्भव का महत्व बता सकेंगे।
- कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा के विषय में भी जान सकेंगे।
- कालिदास के आठ ग्रन्थों के विषय में आप परिचित होगें।
- कालिदास के विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ कुमारसम्भव के महाकाव्यत्व को सिद्ध कर सकेंगे।

1.3 कालिदास का परिचय,समय महाकाव्य के रूप में कुमार सम्भवम् का मूल्यांकन

1.3.1 कालिदास का परिचय

कालिदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है, किन्तु विद्वत्समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। बचपन में इन्होंने कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं था। एक स्त्री के कारण इन्हें अनमोल विद्यारत्न प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है - महाराज सदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा बड़ी विदुषी और सुन्दरी थी। उसको अपनी विद्या पर बहुत गर्व था। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, उसी से मै अपना विवाह करुँगी। उस राजकुमारी के रुप , यौवन और विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर - दूर से विद्वान् आते थे , परन्तु शास्त्रार्थ में इससे पराजित होकर चले जाते थे। जब विद्वानो ने देखा कि यह राजकुमारी किसी प्रकार भी वश में नहीं आती है, सबको पराजित कर देती है, तब उसकी विद्वत्ता से लज्जित होकर सभी ने राय की कि किसी ढंग से इसका विवाह ऐसे महामूर्ख के साथ करा दिया जाय कि जिससे यह जीवन भर अपने अहंकार पर

पश्चाताप करती रहे। परिणामस्वरुप वे लोग एक मूर्ख की खोज में पड़ गये। एक दिन कहीं रास्ते में जाते हुए देखा कि भेड़ चराने वाला एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस डाल पर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। विद्वानों ने उसे देखकर समझा कि यह तो बहुत बड़ा मूर्ख है। इसी से विद्योत्तमा का विवाह हो जाय तो अच्छा है। बाद में बड़े प्रेम से नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम लोग तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी के साथ करा देंगे, परन्तु इस बात का ध्यान रखना कि राजसभा में मुँह से कुछ भी नहीं बोलना, जो कुछ भी कहना हो वह इशारे से कहना। लो, यह यह धोती , चादर , जामा , और पगड़ी पहन लो। पण्डित बनकर हम लोगों के साथ चलो तो तुम्हारा विवाह जरुर करा दिया जायेगा। इस प्रकार पण्डितों की बात पर विश्वास कर मुर्ख पण्डित बनकर राजभवन में पहुँच गया। पहले से ही उपस्थित विद्वानों ने उसका खूब सत्कार किया और उसे सबसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया। विद्योत्तमा से कहा कि बृहस्पति के समान ये विद्वान् आपके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आये हुए है। किन्तु इस समय ये तपस्या करने के कारण मौनव्रत लिये हुए हैं। शास्त्रार्थ में आपको जो कुछ कहना हो उसे संकेत से कहिये।

यह सुनकर राजकुमारी ने अपने मन में यह सोचकर कि ईश्वर एक है, एक अंगुली उठाई। उधर मूर्ख ने समझा कि यह एक अंगुली उठाकर मेरी एक ऑख फोड़ने का संकेत कर रही है। इसलिए उसकी दोनों ऑख फोड़ने के अभिप्राय से अपनी दो अंगुलियों को उठाया। इस पर विद्योत्तमा के विरोधी उपस्थित विद्वानों ने इसका अर्थ लगाया कि ये यह संकेत कर रहे कि आत्मा एक नहीं है किन्तु दो है; एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा। विद्वानों के इस कुचक्रूर के परिणामस्वरुप उस राजकुमारी को उससे हार मानकर पूर्व में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार अपना विवाह उस मूर्ख के साथ कर लेना पड़ा। रात के समय एकान्त में जब दोनों का मिलन हुआ, तब तक किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि कौन शोर मचा रहा है। उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि उट्र चिल्लाता है। राजकुमारी ने चौंककर फिर पूछा कि कैसा शोर है। तब वह उश्ट्र बोलता है श के बदले उष्ट्र बोलता है ष् कहने लगा , क्योंकि वह जन्म से महामूर्ख था , उष्ट्र का शुद्व उच्चारण कैसे कर सकता था। बाद में विद्योत्तमा को पण्डितों की धूर्तता का पता चल गया , इस पर वह पश्चात्ताप करती हुई फूट-फूट कर रोने लगी। बाद में अत्यन्त दुःखी होकर उस मूर्ख को घर के बाहर निकाल दिया और कहा कि तुम विद्वान् होकर आओगे तो मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। इधर वह मूर्ख इस व्यवहार से बड़ा ही लज्जित हुआ , पहले तो सोचा कि अपना प्राण दे दूँ फिर सोच- समझकर विद्योपार्जन हेतु परिश्रम करने लगा। भगवती काली की उसने बड़ी उपासना की , फलस्वरुप देवी की कृपा से थोड़े ही दिनों में वह एक प्रभावशाली विलक्षण विद्वान् हो गया जिसका नाम संस्कृत- साहित्य ही नहीं , विश्व के इतिहास में अजर - अमर हो गया। सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता है। ये ही हैं चरितनायक कविवर कालिदास , जो उपासना द्वारा भगवती काली की कृपा से महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जब वे कवि होकर अपने घर लौटे , तब घर का दरवाजा बन्द था। उसे खुलवाने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत में कहा कि 'अनावृतकपाटं द्वार देहि तब विदुषी पत्नी ने प्रश्न किया कि 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:' कवि ने अपनी पत्नी विद्योत्तमा के प्रश्न-भूत वाक्य के अन्दर वर्तमान - अस्ति, कश्चिद् और वाग् - इन तीन शब्दों से आरम्भ करके तीन काव्य बना डाले।

अस्ति शब्द से आरम्भ करके - कुमारसम्भव महाकाव्य।

कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके - मेघदूत खण्डकाव्य।

वाग् शब्द से आरम्भ करके - रघुवंश महाकाव्य।

विद्योत्तमा को इस प्रकार पति को एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि के रुप में पाकर जैसा आनन्द का अनुभव हुआ होगा , वह लिखे के बाहर है। इसी प्रकार कालिदास और विक्रमादित्य तथा कालिदास और भोज के सम्बन्ध

में भी कई किंवदन्तियॉ विद्वत्समाज में प्रसिद्ध है , जिन्हें यहॉ लिखकर भूमिका का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं। कालिदास कब हुए , कहॉ हुए किस वंश में और उन्होंने कितने ग्रन्थ लिखे , इत्यादि प्रश्नों का अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। क्योंकि उन्होने अपने सम्बन्ध में अपने ग्रंथों के अन्दर कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी विद्वानों ने उनके ग्रन्थों के आधार पर अब तक जो कल्पनाएँ की हैं , उसी के आधार पर बराबर ही विचार होता आ रहा है।

1.3.2 कालिदास के ग्रन्थ

किस कालिदास ने कौन-से ग्रन्थ लिखे हैं ? इसका निर्णय करना एक प्रकार से असम्भव - सा है। फिर भी अधिक आलोचकों तथा विद्वानों के मत में उज्जयिनीनरेश महाराजा विक्रमादित्य की अभिरुपभूयिष्ठा सभा को अलंकृत करने वाले कालिदास के 8 ग्रन्थ माने जाते हैं। दो महाकाव्य - एक कुमार - सम्भव , दूसरा रघुवंश ; एक खण्डकाव्य - मेघदूत ; दो स्फुट काव्य - ऋतुसंहार और श्रृंगारतिलक तथा तीन नाटक - एक अभिज्ञानशाकुन्तल , दूसरा मालविकाग्निमित्र ,तीसरा विक्रमोर्वशीय। कुछ लोग नलोदय और श्रुतबोध को भी इन्ही की कृति मानते हैं। विद्वानो की परम्परा में अनेक कालिदास होने की बात प्रसिद्ध हैं। दशम शताब्दी में वर्तमान राजशेखर कवि ने अपने काव्यमीमांसा में तीन कालिदासों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त एकादश शताब्दी में राजा भोज के दरबार में भी एक कालिदास थे , इसका पता वल्लाल कवि - प्रणीत भोजप्रबन्ध से लगता हैं। अनेक कालिदासों को देखकर कुछ आलोचकों ने यह भी माना है कि जैसे आद्यस्वामी शंकराचार्य की परम्परा पर चलने वाले आगे के संन्यासियों को शंकराचार्य कह दिया जाता है , वैसे ही आदि कालिदास के समान कविता करने वाले कवि को भी कालिदास कहने लग गये थे। इसलिए संस्कृत में अनेक कालिदासों की उपलब्धि विभिन्न समयों में होती है। जो कुछ हो , विद्वान् लोग इस कल्पना कैसे स्वयं समझ लें।

1.3.3 कालिदास की प्रसिद्धि का कारण

अन्य ग्रन्थों के रहते हुए भी प्राच्य और पाश्चात्य देशों में कालिदास की इतनी महती प्रतिष्ठा का कारण उनका अभिज्ञानशाकुन्तल है। जब कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस सर विलियम
जोन्स ने शाकुन्तल का अंग्रेजी में अनुवाद किया , तो उसे पढ़कर पाश्चात्य विद्वानों की ऑखे खुली और कालिदास की कवि - कल्पना पर मुग्ध होकर उन्होंने बड़े हर्ष के साथ कालिदास को " भारतीय शेक्सपीयर " की उपाधि से विभूषित किया और संस्कृत की तरफ उनकी रुचि यहॉ तक बढ़ी कि वेदों तक की भी छान - बीन शुरु हो गयी।

देखिए – पाश्चात्य विद्वानों की कैसी श्लाघनीय गुणग्राहिता हैं ? इसी से वे इतनी शीघ्रता से अपनी इतनी उन्नति कर गये हैं। एक तरफ पाश्चात्य विद्वान् हैं , जिन्होंने अपने देश के कवियों की तो बात ही क्या हैं , कहीं के भी विद्वानों के गुण प्रकाश करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। दूसरी तरफ भारतीय विद्वान् हैं ,जिन्हें इस दिशा में थोड़ी भी अभिरुचि नहीं हैं। खेद का विषय है कि पाश्चात्य अनुकरण करने में प्रवीण भारतीय विद्वानों में भी विशेष अभिरुचि नहीं। कालिदास ही क्या महाराजाधिराज विक्रमादित्य , भोज , भास , भारवि , माघ , श्रीहर्ष , बाणभट्ट और प्रातः स्मरणीय स्वामी शंकराचार्य आदि विद्वानों का वास्तविक स्वरुप ही भारतीय विद्वानों ने अभी तक नहीं समझा हैं। पाश्चात्य विद्वान् इनका जो कुछ मूल्यांकन कर देते हैं , उन्हीं के बल पर ये भी कुछ कहने लग जाते हैं। जहॉ विदेशों में एक शेक्सपीयर की कृतियों की आलोचना की असंख्य पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और बराबर लिखी भी जा रही हैं , वहॉ भारतीय विद्वान् मौनावलम्बन में मस्त हैं। यह बड़े खेद का विषय हैं।

1.3.4 कालिदास की जन्मभूमि

इसी प्रकार कालिदास की जन्मभूमि तथा समय के सम्बन्धमें भी विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। बंगदेशीय विद्वान् इन्हें बंगाली मानते हैं और नवद्वीप को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं। बहुत से विद्वान् कहते हैं कि इनकी जन्म-भूमि कश्मीर हैं क्योंकि इन्होंने हिमालय का जैसा सुन्दर वर्णन किया है , वैसा दूसरे का नहीं। कुछ लोग इन्हें पंजाबी , कुछ लोग मालवीय मानते हैं। किन्तु विशिष्ट विद्वान् इन्हें उज्जयिनी - निवासी कहते हैं , क्योंकि इन्होंने उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात दिखलाया हैं , जिससे इनकी जन्मभूमि उज्जयिनी ही मालूम पड़ती हैं ।

इनके मेघदूत में कान्ता - विरही यक्ष रामगिरि से सीधे उत्तर अलकापुरी जाने वाले मेघ के लिए रास्ता टेढ़ा होने पर भी सकलसम्पत्सम्पन्न उज्जयिनी को देखने के लिए मेघ से आग्रह करते हुए कहता है कि यदि तुम उज्जयिनी के विशाल महलों और मृगाक्षी रमणियों के कटाक्षों को देखने से वंचित रह गये तो तुम्हारा जीवन ही निष्फल हैं। मेघदूत में कालिदास ने उज्जयिनी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का जैसा सूक्ष्म वर्णन करते हुए छोटी से छोटी नदियों का नाम -
निर्देश किया है और उनका जमकर वर्णन किया है ,वैसा अन्यत्र नहीं।
इस प्रकार उज्जयिनी के प्रति विशेष पक्षपातपूर्ण वर्णन तथा भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी के ही निवासी थे। पर्वतों में हिमालय , नगरियों में उज्जयिनी , देवताओं में शिव , अलंकारों में उपमा और छन्दों में मन्दाक्रान्ता कालिदास को परमप्रिय थे। इसका भौगोलिक ज्ञान बहुत ही समुन्नत हैं ,जिसका पता मेघदूत , रघुवंश में रघु की दिग्विजय और इन्दुमती के स्वयंवर में देश-देश के राजाओं के वर्णन से स्पष्ट मालूम पड़ता है ।कुमारसम्भव ,मेघदूत और शकुन्तला के वर्णन से स्पष्ट है कि इन्हें हिमालय तथा उत्तर भारत जितना प्रिय था , उतना विन्ध्य तथा दक्षिण भारत नहीं।

1.3.5 कालिदास का समय

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक मानी है। इस सम्बन्ध में प्रधान रुप से दो मत हैं। एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन प्राचीन मत के पोषक संस्कृत के भारतीय विद्वान् हैं और अर्वाचीन मत के अनुयायी अंग्रेजी के पाश्चात्य विद्वान् तथा इसके अनुकरण करने वाले कुछ भारतीय विद्वान् हैं।

धन्वन्तरी क्षपणकामरसिंह षङ्कुवेतालभट्ट-घटखर्पर - कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ।।

इस जनश्रुति के आधार परभारतीय संस्कृति के विद्वान् मानते हैं कि कविवर कालिदास विद्वत्प्रिय विक्रमसंवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा महाराजाधिराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे , जिनके बिना महाराज को एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था। इसकी अद्भूत कवि-कल्पना पर महाराजा सदा मुग्ध रहते थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रमादित्य के दरबार में रहने का संकेत मिलता हैं। शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम की अभिरुपभूयिष्ठा परिषद् में विश्वविख्यात शकुन्तला नाटक का अभिनय करने का संकेत हैं। विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि राजा पुरुरवा नायक हैं , तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है। " अनुत्सेकः खलु विक्रमा-लंकारः " इत्यादि वचनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। रामचन्द्र महाकाव्य में तो स्पष्ट उल्लेख हैं कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बहुत बड़ी ख्याति की थी। देखिए - " ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना "। इसलिए

जब तक परम्परागत इन जनश्रुतियों के खण्डन करने के लिए इसके विरुद्व कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता , तब तक ' नहा्रमूला जनश्रुतिः ' के आधार पर यह मानना सर्वथा न्यायसंगत है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे । पाश्चात्य विद्वानों में से केवल सर विलियम जोन्स महोदय ने भारतीय प्राचीन मत को ही प्रामाणिक माना है और अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद किया है।

कालिदास के समय के सम्बन्ध में विभिन्न मतभेद

कालिदास ने प्रथम शताब्दी के शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को अपने माल-विकाग्निमित्र नाटक का नायक बनाया है और षष्ठ शताब्दी के महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार के महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः कालिदास का समय ई0 पू0 एक से लेकर षष्ठ शताब्दी के बीच में कहीं होना चाहिए। इस आधार पर कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रधान रुप से तीन मत उपस्थित होते हैं।

1. कालिदास षष्ठ शताब्दी में थे।
2. कालिदास गुप्तनरेशों के समय में थे।
3. कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम शताब्दी में थी।

(1.) **पहला मत** - इतिहास में विक्रम-उपाधिधारी चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है ,जिनके सम-सामयिक होने के कारण कालिदास का समय विभिन्न शताब्दियों में मानना पड़ता हैं। डा0 हार्नली मानते है कि यशोवर्मन ने बलादित्य नरसिंहगुप्त की सहायता से कारुर के युद्व में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की और अपनी इस बड़ी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम नाम का एक नया संवत् चलाया। इसे प्राचीन सिद्व करने की इच्छा से इसे 600 (छह सौ) वर्ष पहले से ही प्रचारित किया गया । यह नई कल्पना डा0 फर्गूसन साहब के मस्तिष्क की उपज थी। कालिदास के समय - निरुपण के लिए डा0 हार्नली ने भी इसका उपयोग करते हुए यह दिखलाया है कि यशो-धर्मन् की राज्य -सीमा से रघु की दिग्विजय का वर्णन बिल्कुल मिलता - जुलता है। और एक आलोचक ने कुमारसम्भव की देवस्तुति के सांख्यसिद्धान्त को छठी शताब्दी में लिखी गई ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका के आधार पर अव-लम्बित मानकर उससे आशय ग्रहण करनेवाले कालिदास का समय भी छठी शताब्दी माना है। म0 म0 हरप्रसाद शास्त्री ने कौतुकपूर्ण अनेक युक्तियों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कालिदास भारवि के बाद छठी शताब्दी में हुए हैं।

समीक्षा - हूणों को पराजित करने वाले यशोधर्मन् हूणारि कहे जा सकते हैं , शकारि नहीं और न उसने शिलालेखों में कहीं विक्रम संवत् स्थापना की चर्चा है। 6 सौ वर्ष पहले से यशोधर्मन् द्वारा विक्रम की स्थापना भी इतिहास के विरुद्ध है , क्योंकि इतिहास-प्रसिद्ध है कि मालव संवत् के नाम से यह संवत् चला आता था , विक्रमादित्य ने शकों की विजय के उपलक्ष्य में इसका नाम विक्रम संवत् रख दिया। दूसरी बात यह है कि ४७३ ई0 में कुमारगुप्त की प्रशस्ति के लेखक वत्सभट्टि कवि ने अपने ग्रन्थ में कालिदास के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है। इसलिए कालिदास को पंचम शताब्दी के बाद मानना अप्रामाणिक और इतिहास के विरुद्व हैं।

(2.) **दूसरा मत -** बहुत से विद्वानों ने सर्वतः समृद्ध शान्तिमय गुप्त - नरेशों के स्वर्ण युग में कालिदास की सत्ता मानी है। इनमें भी पूना के प्रोफेसर के0 पी0 पाठक का मत है कि कालिदास स्कन्दगुप्त के समकालिक थे। क्योंकि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित महाराज रघु की दिग्विजय से स्कन्दगुप्त की विजय में अधिक समानता है । किन्तु डा0 रामकृष्ण भण्डारकर, पं0 रामा-वतार शर्मा और बहुसंख्यक पाश्चात्य विद्वान् मानते है कि कालिदास के आश्रयदाता गुप्तनरेशों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय थे। क्योंकि शकों को भारत से बाहर निकाल देने वाले विक्रमादित्य पदवीधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में सब तरह से शान्ती

थी और भारतीय कला -कौशल की उन्नति चरमसीमा तक पहुँच गई थी । कालिदास के ग्रन्थों के समान गम्भीर विचार के ग्रन्थ ऐसे ही शान्तिमय समय में स्थिर चित्त से लिखे जा सकते हैं और रघुवंश के छठे सर्ग के ७५ वें श्लोक में वर्णित शान्ति का समुचित समय चन्द्रगुप्त - द्वितीय का ही समय था । इसके अतिरिक्त इन्दुमती के स्वयंवर में सम्मिलित मगधराज के लिए चन्द्रमा की जो उपमा दी गई है। उसमें चनद्रगुप्त नाम का ही संकेत हैं ।

समीक्षा - गुप्तकाल के स्वर्णयुग में कालिदास की सत्ता मानना भी ठीक नहीं , क्योंकि केवल चन्द्रगुप्त -द्वितीय ही विक्रमादित्य नहीं थे , किन्तु इससे पूर्व मालवा में राज्य करने वाले विक्रमादित्य का पता इतिहास को मालूम है । दूसरी बात यह है कि यदि कालिदास गुप्तकाल में होते तो प्रयाग के स्कन्दगुप्त के स्तम्भ पर कालिदास की रचना न होकर साधारण पण्डित हरिसेन से क्यों लिखवाया जाता ? इसलिए कालिदास को गुप्तकाल में मानना सर्वथा असंगत हैं ।

(2.) तीसरा मत - उपर्युक्त कल्पनाओं से असन्तुष्ट होकर कुछ विद्वानों ने 68 ईसवी की गाथासप्तशती के पद्य में दानशील राजा विक्रमादित्य का स्पष्ट उल्लेख मिलने के आधार पर ईसा पुर्व विक्रमादित्य की संवत् प्रामाणिक रुप से स्थिर मानी हैं । इनके शकारि होने में किसी प्रकार की आपत्ती नहीं है , क्योंकि ईसा से 150 वर्ष पूर्व भारत में आने वाले शकों का पता इतिहास में पाया जाता हैं । अतः इन्हीं की सभा में कालिदास की सत्ता मानना युक्ति-युक्त एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है । रघुवंश के षष्ठ सर्ग के श्लोक में पाण्डय-नरेश का वर्णन करते हुए कालिदास ने उरगपुर को उनकी राजधानी बतलाया है । उरियापुर का ही संस्कृत रुप उरगपुर जान पड़ता है । इतिहास के अनुसार प्रथम शताब्दी में उरियापुर पाण्डय-नरेशों की राजधानी थी । इसलिए कालिदास को प्रथम शताब्दी में मानना ठीक ही है ।

दूसरी बात यह है कि अभिज्ञानशाकुन्तल के मंगलाचरण में सूचित धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से भी मालूम पड़ता है कि कालिदास ऐसे समय में हुए थे जब कि लोग बौद्वधर्म के प्रभाव से देवी-देवताओं के विषय में श्रद्धाविहीन होते जा रहे थे । ऊर्ध्वांकित पद्य में ' प्रत्यक्षाभिः ' इस पद का प्रयोग करके कालिदास ने देवता-विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयास किया है । जिस भूतभावन भगवान् शिव का जल , अग्नि , यजमान , सूर्य ,चन्द्रमा , आकाश , पृथ्वी और वायु - इन आठ रुपो में हमें सर्वदा प्रत्यक्ष दर्शन होता है , उनके विषय में अश्रद्धा कैसे हो सकती है । इसी प्रकार शकुन्तला के षष्ठ अंक में दुष्यन्त की अंगूठी को बेचने के समय राजपुरुषों द्वारा पकड़े जाने पर मछली मारना अपनी जाति का कर्त्तव्य बतलाता हुआ धीवर कहता है कि भगवान् ने जिस जाति को जो भला-बुरा काम दे दिया है , वह छोड़ा नहीं जाता है । देखिए - पशुओं को मारना तो बुरा काम है , परन्तु बड़े-बड़े दयावान और वेद जानने वाले ब्राह्मण भी यज्ञ में पशुओं को मारते थे । इस वर्णन से मालूम पड़ता है कि कालिदास ने बौद्वधर्म के प्राबल्य के कारण यज्ञों के विषय में होने वाली हिंसाजन्य निन्दा और अश्रद्धा को दूर करने का प्रयास करते हुए आवश्यक कर्तव्य होने के कारण हिंसा होने पर भी ब्राह्मणों को यज्ञ करना जातीय धर्म बतलाया हैं । अतः कुलपरम्परागत जातिधर्म का त्याग करना उचित नहीं , यज्ञों का अनुष्ठान करना ब्राह्मणों के लिए सर्वथा श्रेयस्कर है । इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कालिदास उस समय थे , जब वर्ण-व्यवस्था और यज्ञादि का खण्डन करने के कारण बौद्व-धर्म के प्रति अश्रद्वा बढ़ती जा रही थी और ब्राह्मणधर्म का अभ्युदय हो रहा था । यह समय ई0 पू0 द्वितीय शताब्दी के बाद शुंगवंशीय नरेशों के बाद का है , इसलिए कालिदास का जन्म प्रथम शताब्दी मानना न्यायसंगत है । प्रथम शताब्दी में वर्तमान कनिष्क की सभा के महापण्डित बौद्वकवि अश्वघोष ने अपने बुद्वचरित में कालिदास के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है । दोनों के काव्यों में अत्यधिक साम्य है । कथानक की सृष्टि और

विकास , वर्णन-शैली , अंलकारों का प्रयोग , छन्दों का चयन एवं शब्दों का विन्यास-दोनों कलाकारों में से एक-दूसरे से
प्रभावित है। जैसे -

रघुवंश में - अलं महीपाल तव श्रमेण।

बुद्वचरित में - मोघ श्रमं नार्हसि मारकैतुम्।

इसी प्रकार कालिदास ने रघुवंश के सप्तम सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर से लौटे हुए अज को देखने के लिए उत्सुक स्त्रियों का जैसा सुन्दर वर्णन किया है , ठीक वैसा ही वर्णन अश्वघोष ने अपने बुद्वचरित के तृतीय सर्ग में शुद्धोदन की समृद्ध नगरी में प्रथम बार प्रवेश करते हुए राजकुमार सिद्धार्थ को देखने क लिए अत्युत्कण्ठापूर्वक दौड़ती हुई नारियों का किया है। इन दोंनों महाकवियों के वर्णन में बहुत बड़ी समानता है। अश्वघोष द्वारा कालिदास का अनुकरण करने के बल पर यह सिद्ध होता है। कि कालिदास अश्वघोष के पहले ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी में उत्पन्न महाकवि है।

1.3.6 कालिदास की काव्य-कला

कविकुल कलाधर कविवर कालिदास की कमनीय-कलेवर-कोमल-कविता विश्व के किस सहृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती है । इनकी कविता में प्रसादगुण की अगाधता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश, कोमलकान्तपदावली, उपमाकी अपूर्वता, अलंकारों की रमणीयता, छन्दों की छटा और भाव-सौष्ठव आदि पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण इनकी कविता विश्वविख्यात बन गयी है। इनके काव्यों को जिस दृष्टि से देखा जाये, उसी से काव्य-कला की कमनीयता प्रकट होती है। इनकी कविता में सरल-सरल-सुबोध तथा सुन्दर-सुन्दर शब्दों एवं भावों का साम्राज्य मन को मुग्ध कर देता है।

वास्तव में कालिदास की कविता में सहृदयों की तो बात ही क्या है, साधारण व्यक्ति को भी जैसा प्रसादगुण का रसास्वादन, शब्द और अर्थ की निर्दोषता , गुण और अलंकारों का चमत्कार मिलता है। वैसा दूसरे किसी कवि में नहीं मिलता। व्यंग्यार्थ-प्रतिपादन की विलक्षण शैली , रसप्रकर्ष का प्रकाशन, विस्तृत विषय का थोड़े में वर्णन , वर्ण्य-विषय को सुन्दर क्रम से रखकर रोचक बनाना स्वाभाविक भाव के द्वारा लोकोत्तरानन्दप्रदान का ढंग आदि कालिदास की कविता के स्वाभाविक गुण हैं। ध्वनिकाव्य का उत्तम गुण व्यंजना-व्यापार कालिदास के सभी ग्रन्थों में अनुभूत है। कालिदास संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय महाकवि माने जाते हैं। इनकी कविता की मधुरिमा के सामने अन्य कवियों की कविता फीकी पड़ जाती है। मानव-हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का आपने जैसा निरीक्षण किया है, वैसा अन्य कवियों ने नहीं। कालिदास अन्तर्जगत् तथा बाह्राजगत्-दोनों के सुक्ष्मनिरीक्षक एवं पारखी कवि है। समष्टि से अन्य कवियों की अपेक्षा इनका उपमा अंलकार स्वभावतः सुन्दर होता है और इनकी कविता में प्रसादगुण सर्वत्र प्राप्त होता है। ये उपमा के तो बेजोड़ कवि माने जाते है। एक आलोचक ने ठीक ही कहा
है - **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।।

वाल्मीकि और व्यास के बाद विद्वत्समाज में सर्वप्रथम महाकवि के नाम से कालिदास ही प्रसिद्ध है। कवि में जितने गुण होने चाहिए, वे सभी कालिदास में पूर्ण रुप से विद्यामान हैं। इनकी नैसर्गिक रचना में पात्रानुकूल भाव भरने की अद्भुत कला है। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और मानव-हृदय के अन्त-र्निहित भावों को व्यक्त करने में कालिदास को स्वतः सिद्धि प्राप्त हैं। इसलिए विदेशों के समीक्षक विद्वान् भी मुक्तकण्ठ से कालिदास की कविता-कला की प्रशंसा करते हुए इनके काव्यों का आदर करते हैं। मल्लिनाथ ने तो स्पष्ट कहा है कि

कालिदास की वाणी का रहस्य तो केवल तीन व्यक्तियों ने ही समझा है- एक तो विधाता ब्रह्मादूसरी वाग्देवी सरस्वती तथा स्वयं कालिदास।

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः ।।

कवि ने शकुन्तला की विदाई के समय केवल आश्रमवासी मनुष्यों को ही नहीं, किन्तु मृग, मयूर, चक्रवाक और निर्जीव लताओं को भी रुला दिया है। यह अद्भुत कला शकुन्तला के प्रति महर्षि कण्व का उपदेश और दुष्यन्त के प्रति सन्देश तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदरणीय और आचरणीय है। तपोवन के पावन वातावरण में पली हुई शकुन्तला मानो साक्षात् प्रकृति की कन्या है। वहॉ जीवों के प्रति उसका हृदय बान्धव-स्नेह से आप्लुत है।

कालिदास को वैदिक-धर्म पर पूर्ण विश्वास और वर्णाश्रम-व्यवस्था को पूर्णरुपेण मानते है। इन्हें धर्म, अर्थ काम , और मोक्ष पर अपार श्रद्वा है। ये सभी को त्याग और तपस्या की शिक्षा देते है। इनको नगर-निवासी की अपेक्षा तपोवन का जीवन बहुत अच्छा लगता है। ये आशुतोष भगवान् के परम उपासक महाकवि है। इन्होंने अपने तीनों नाटकों और रघुवंश के मंगलाचरण में शिव का ध्यान किया है और इनके सभी ग्रन्थो में शिव की महिमा विशेष पायी जाती है। इनके नाटकों के भरत-वाक्य से मालूम होता है। कि ये भगवान् सदाशिव से विश्व-कल्याण की कामना करते है। ये व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देते हैं। और सभी को लोककल्याणार्थ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।ये आशावादी कवि है, निराशावादी नहीं ये सत्कार्यो के सम्पादन द्वारा परलोक-मार्ग को सुगम बनाना मानव-जीवन का वास्तविक सदुपयोग और अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के भरत-वाक्य में भगवान् सदा-शिव से पुनर्जन्म को दूर करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

" ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।। "

कालिदास भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक महाकवि थे। इसका आभास उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलता है। रघुवंशमहाकाव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त बनाकर उदारचरित पुरुषों का स्वभाव पाठकों के समक्ष रखा हैं। और उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश प्राणिमात्र के लिए दिये है। चक्रवर्ती राजा दिलीप द्वारा २२ दिन महर्षि वसिष्ठ की नन्दिनी गौ की सेवा कराकर वरदान के रुप में पुत्र-प्राप्तिरुप मनोरथसिद्धि एवं इन्द्र द्वारा दिलीप के आश्वमेधिक अश्वहरण के बाद गोमूत्र को नेत्र में लगाते ही रघु को दिव्य-दृष्टिप्राप्त करना , गो-सेवा का अलौकिक फल दिखलाकर संसार को गो-सेवा से अपने - 2 मनोरथों को पूर्ण करने का निर्देश किया है और गो-सेवा की अपूर्व महिमा बतलायी है। इसी प्रकारमहर्षिवरतन्तु के शिष्य कौत्स को अपार धनराशि देकर अज को पुत्र रुप में प्राप्त करना ब्राह्मण भक्ति का अनुपम उदाहरण है। राम के चरित्र जैसा भारतीय संस्कृति के आदर्श का दिग्दर्शन तो कहीं अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं हो सकता है। भारतीयों का अनुपम आदर्श , अतिथि-सत्कार और महाराजा रघु द्वारा कौत्स को अपार धनराशि देकर विद्यादान के प्रति अटल श्रद्धा व्यक्त की हैं।कुमारसम्भव में दिव्य नायक का दिव्य चरित्र वर्णित है , किन्तु लौकिक काम और श्रृंगार रस की सूक्ष्म भावनाओं का वर्णन करने के लिए उन्होंने मेघदूत लिखा। महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भवम् का मूल्यांकन विश्वविख्यात कविकुलकलाधर महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित ग्रन्थों में कुमारसम्भव एक अन्यतम महाकाव्य हैं। यह १७ सर्गो में विभक्त हैं। इसमें प्रधानरुप में भगवान् शंकर तथा भगवती पार्वती के विवाह एवं कुमार (कार्तिकेय) के जन्म का सहेतुक विस्तृत वर्णन है। कुमार के जन्म की घटना के आधार पर इसका नाम कुमारसम्भव पड़ा है –

' कुमारस्य सम्भवो नामाभूतिर्महिमा चेति यस्मिन् काव्ये तत्कुमारसम्भवम्।'

कुमारसम्भव की कथा महाभारत, ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण , कालिका-पुराण और शिवपुराण में मिलती है , परन्तु शिवपुराण के साथ कुमारसम्भव की कथा अधिक मिलती-जुलती है ।साहित्य की दृष्टि से कुमारसम्भव बहुत ही सुन्दर काव्य है , किन्तु रघुवंश की अपेक्षा इसकी रचना कुछ शिथिल-सी लगती है । फिर भी कितने अंशों में यह रघुवंश से बढ़कर हैं । भाषा-भाव और काव्य-शैली के आधार पर कुछ लोग मानते है कि कुमारसम्भव के प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा निर्मित हैं । शेष 9 से 17 सर्ग किसी अन्य कवि की रचना है । परन्तु यह ठीक नहीं है , क्योंकि ' अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:' की कथा से सिद्ध है कि कालिदास ने रघुवंश के पहले ही कुमारसम्भव को लिखा है । इसलिए पूरा ग्रन्थ कालिदास-कृत ही है ।

कुमारसम्भव वैदर्भी रीति का महाकाव्य है और इसमें आरम्भ से अन्त तक प्रसादगुण ओतप्रोत है । इसमें उपमा , उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास अलंकार विशेष रुप से मिलते है । इसकी भाषा सरल ,सरस , सुबोध और परिष्कृत है । इसमें प्रायः प्रसिद्व शब्दों का ही प्रयोग हुआ है । छन्दों का चुनाव भी अर्थो के अनुरुप ही हुआ है । यह श्रृंगाररस-प्रधान काव्य है । इसमें तीव्र तपस्या के द्वारा पार्वती के शिव-विषयक मनोरथ की सफलता का वर्णन करते हुए कवि-वर कालिदास ने तपस्या में अपना अटल विश्वास व्यक्त किया है । इसका मत है कि जो वस्तु किसी प्रकार से भी

प्राप्त नहीं हो सकती, वह तपस्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है –

यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम् ।
तत्सवँ तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रम: ।।

उग्र तपस्या द्वारा प्राप्त शक्ति से उद्दण्ड होकर संसार को दुःख देनेवाले वज्रनाभ के पुत्र दुर्दान्त तारकासुर को मारने के लिए देवताओं का प्रयास विश्व-कल्याण की भावना की और संकेत करता है । धन्य है कविवर कालिदास और धन्य है उनका यह महाकाव्य ।

अभ्यास प्रश्न 1 -

निम्नलिखित के एक शब्द में उत्तर दीजिए -

(1) विद्योत्तमा के पिता का क्या नाम था ?
(2) जिस डाल पर बैठा उसी को जड़ से कौन काट रहा था ?
(3) कालिदास को किसकी उपासना से विद्या प्राप्त हुई ?
(4) कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके कालिदास ने किस खण्ड़काव्य की रचना की ?
(5) उज्जयिनी नरेश का क्या नाम था ?
(6) कालिदास के महति प्रतिष्ठा का कारण क्या था ?
(7) कालिदास को कौन सा अंलकार परमप्रिय था ?
(8) कालिदास का जन्मस्थान कहा माना जाता है ?
(9) अभिज्ञान शकुन्तला का अग्रेजी अनुवाद किसने किया है ?
(10) कालिदास के प्रथम शताब्दी के राजा कौन थे ?

उपमा कालिदासस्य

काव्य में अलंकार -प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक बड़ी रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है --

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध: शब्दत्र्यो भवेत् ।
अपृथग्- यत्ननिर्वर्त्य: सोऽलंकरो ध्वनौ मत: ।।

रस के द्वारा अक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के प्रथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, वहीं सच्चा अलंकार है - ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम होती है रस की अनुभूति और तदनन्तर होती है उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति तथा शब्दाभिव्यक्ति -- दोनों एक ही प्रयास के परिणत फल है। कोई कलाकार जिस चित्तप्रयास द्वारा रस - विधारण करता है उसी चित्तप्रयास द्वारा अलंकारादि के माध्यम से रसप्रस्फुटन करता है ; उसके लिए उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत नहीं होती। रससंवेग द्वारा ही अलंकार के स्वतः प्रकाशन का यह सिद्धान्त ध्वनिवादियों को ही मान्य नही है , प्रत्युत प्रख्यात आलोचक कोचे भी इसमे पूर्णतया सहमत है। चित्त की सहजानुभूति (इन्टयूसन) एवं अभिव्यंजना (एक्सप्रेशन) - इन दो वस्तुओं को वे दो प्रक्रियाओ से उत्पन्न नहीं मानते। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि कला की अभिव्यंजना की सम्भावना बीज-रूप् में हृदय की रसानुभमति में ही निहित रहती है; जैसे निहित रहती है एक विराट वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें, किसलय-पल्लव, फूल आदि की रेखाओं की प्रकाशन-संभावना एक छोटे से बीज में। साहित्य के रस एवं साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है। अभिनवगुप्त ने बड़े मार्मिक शब्दो का यह समस्त सौन्दर्य - कटककुण्डलादिवत् कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता प्रत्युत वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह-धर्म होता है। अभिनव - गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यती। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

वाक् तथा अर्थ का - काव्य अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यंजक शब्द का-परस्पर नित्य सम्बन्ध है, चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रय बिना शक्ति की लीला नहीं , शक्ति के बिना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं ; वह शवमात्र होता है। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वति - दोनों ही एक दूसरे के आश्रित है। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुमति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी। कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया गया है उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है (कुमारसम्भव ३।४२)

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरंगम्
अन्तश्चराणां मरूतां विरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम्

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निरूद्ध कर पर्यंङबन्ध में स्थिर अचंचल भाव से बैठे है; जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो (जल को धारण करने वाला अम्बु वाह किसी भी क्षण में बरस सकता है) , तरंग से हीन समुद्र हो (चंचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरंगहीन अचंचल हो ' अपामिवाधार ' शब्द की यही ध्वनि है) तथा निवातनिष्कम्प प्रदीप हो। यहाँ तानों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगराज की अचंचल स्थिरता की अभिव्यंजना कर उसके गौरव की एक रेखा खींचते हुये प्रतीत होते हैं।

रघुवंश (३/२) में कलिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का बड़ा सुन्दर चित्र उपमा के द्वारा खींचा है

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।।

आसन्नप्रसवा सुदक्षिणा मानों प्रभातकल्पा रजनी हो। रजनी दिन को प्रकाश देने वाले सूर्य का प्रसव करती है, वैसे ही रानी वंशकर्त्ता उज्जवलमूर्ति रघु को प्रसव करने जा रही है। सूर्यरूपी पुत्र को गर्भ में धारण करनेवाली

आसन्नप्रसवा विराट रजनी की महिमामयी मूर्ति होती है, सुदक्षिणा की मूर्ति में वह गौरव प्रस्फूटित हो रहा है। शरीर की कृशता के कारण हीरे, जवाहिरों के भूषण स्वयं खिसक पड़े है, जैसे रजनी में टिमटिमाते तारे स्वयं खिसक जाते हैं और दो चार ही बच रहते हैं। लोध्र के समान ईशत-पीला मुख पीले पड़ जानेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशहीन हो गया है। गर्भिणी के स्वाभविक चित्रण के साथ ही प्रभातप्राया निशा का कितना समुचित वर्णन हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है। कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्तमर्मस्पर्शी है। औचिन्त्य तथा सन्दर्भ को शोभन बनाने की कला उसमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मण्डित होने वाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलाई गई है (कुमार. ५/४४)। स्तनों के भार किंचित् झुकी हुई आतपसन्नभ लालवस्त्र को धारण करने वाली पार्वती फूलों के गुच्छों से झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है --

पर्याप्त-पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव। स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहॉ राजाओं की विशश्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति इस उपमा के
द्वारा बड़ी सुन्दरता से की गई है --

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।

इसी उपमा-प्रयोग के सौन्दर्य के कारण यह महाकवि ' दीपशिखा कालिदास ' के नाम से कविगोष्ठी में प्रसिद्ध है। कालिदास उपमा की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह ' स्थानीय ' (लोकल कलरिंग) से रंजित है और इसमें श्रोता के चक्षुःपटल के सामने समग्र चित्र को प्रस्तुत कर देती परास्त किये जाने पर पुनः वंगीय नरेश रघु के चरण-कमल के ऊपर नम्र होकर उन्हें फलों से समृद्ध बनाते हैं, जिस प्रकार उस देश के धान के पौधे (रघु. ४। ३७)। कलिंग-नरेश के मस्तक पर तीक्ष्ण प्रताप के रखने वाले रघु की समता गंभीरवेदी हाथी के मस्तक पर तीक्ष्ण अंकुश रखने वाले महावत से की गई है (रघु. ४। ३८)। प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के नरेश रघु के आगमन पर उसी प्रकार झुक जाते हैं जिस प्रकार हाथियों के बाँधने के कारण कालागुरू के पेड़ झुक जाते है (रघु. ४। ४८१)। इन समस्त उपमाओं में ' स्थानीय रंजन ' का आश्चर्यजनक चमत्कार है। प्रकृति से गृहीत उपमाओं में एक विलक्षण आनन्द है। राक्षस के चंगुल से बचने पर बदहोश उर्वशी धीरे-धीरे होश में आ रही है। उसकी समता के लिए कलिदास चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार से छोड़ी जाती हुई (मुच्यमाना) रजनी , रात्रीकाल में धूमराषि से विरहित होने वाली अग्नि की ज्वाला, बरसात में तट के गिरने के कारण कलुषित होकर धीरे-धीरे होने वाली गंगा के साथ देकर पाठकों के नेत्रों के सामने तीन सुन्दर दृश्य को एक साथ उपस्थित कर देते हैं। ये तीनों उपमायें औचित्यमण्डित होने से नितान्त रसाभिव्यंजक हैं (विक्रमोर्वशीय १।९)

आविर्भूते शशिनि तसमा मुच्यमानेव रात्रि -
नैंषस्यार्चिहुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गंगा रोधःपतनकलुषा गृहृतीव प्रसादम् ।।

1.3.7 कालिदास का पात्र-चित्रण

कालिदास के पात्र जीवनी शक्ति से सम्पन्न जीते-जागते प्राणी हैं। उनकी शकुन्तला प्रकृति की कन्या, आश्रम की निसर्ग बालिका है, जिसके जीवन को बाह्य प्रकृति ने अपने प्रभाव से कोमल से कोमल तथा स्निग्ध बनाया है। हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या तथा पातिव्रत का अपूर्व प्रतीक हैं, जिसके कठोर तपश्चरण के आगे

ऋषिजन भी अपना माथा टेकते हैं। धीरता की मूर्तिधारिधीणी, चपल प्रेम की प्रतिमा मालविका,उन्मत्त प्रेम की अधिकारिणी उर्वशी, पारस्परिक ईर्ष्या तथा प्रणसमान की प्रतिनिधि इरावती - संस्कृत - साहित्य के अवि-स्मरणीय स्त्री-पात्र हैं। आदर्श पात्रों के सर्जन में रघुवंश अद्वितीय है। देवता और बाह्मण में भक्ति, गुरूवाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी की परिचर्या, अतिथि की इष्टपूर्ति के लिए धरिणीधर राजा की व्याकुलता, लोकरंजनके निमित्त तथा अपने कुल को निष्कलंक रखने के लिए नरपति के द्वारा अपनी प्राणोपमा धर्मपत्नी का निर्वासन-कलिदासीय आदर्श सृष्टि के कतिपय के दृष्टान्त हैं। कालिदास रमणी-रूप के चित्रण में ही समर्थ नहीं है; प्रत्युत नारी के स्वाभिमान तथा उदात्त रूप् के प्रदर्शन में भी कृतकार्य है। मेघदूत भारतीय कवि की अद्भूत प्रतिभा के द्वारा चित्रित भारतश्री का एक नितान्त सरस चित्रण है।' ऋतुसंहार' में समस्त ऋतुएँ अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत होकर पाठको का मनोरंजन करती है।

अभ्यास प्रश्न 2 - बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) अपनी विद्यापर बहुत गर्व था -

(क) द्रौपदी (ख) विद्योत्तमा

(ग) शकुन्तला (घ) इन्दुमति

(2) कुमारसम्भव है –

(क) महाकाव्य (ख) खण्डकाव्य

(ग) नाटक (घ) गद्य काव्य

(3) कालिदास के कुल ग्रन्थ माने जाते है -

(क) 6 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 8

(4) कालिदास के कुल नाटक है -

(क) 5 (ख) 2

(ग) 3 (घ) 7

(5) कुमारसम्भव कुल सर्गो में विभक्त है -

(क) 18 (ख) 17

(ग) 20 (घ) 14

(6) कौन सा छन्द कालिदास को परम प्रिय था -

(क) मन्दाक्रान्ता (ख) अनुष्टुप

(ग) शिखरिणी (घ) स्रग्धरा

(7) कालिदास के प्रिय देव थे -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) नारद (घ) शिव

(8) विक्रमादित्य को सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे -

(क) भारवि (ख) श्रीहर्ष

(ग) कालिदास (घ) बाणभट्ट

1. 4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास का परिचय क्या है, वे किस शताब्दी में हुए थे। कालिदास के ग्रन्थ क्या है ? इसके विषय में परिचित होगें। कालिदास के आठ ग्रन्थ हैं। इनके परिचय को जानते हुए उनके महत्त्व को भी समझेंगे। कालिदास का व्यक्तित्व महान था। वे कवियों में सबसे श्रेष्ठ कवि माने गये हैं। उनकी पत्नी का नाम विद्योत्तमा था , वे महान विदुषी थी ,कालिदास की कविता विश्व के ह्रदय को भी आनन्दमय कर देती है। इनकी कविता में प्रसाद गुण की अगाधता ,माधुर्य का सन्निवेश ,उपमा की अपूर्वता आदि विश्व विख्यात माने जाते हैं।

1. 5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
विद्योपार्जन	विद्या का उपार्जन
अनावृत कपाटं	बन्द फाटक को
अस्ति	है
कश्चित	कौन
वाग	वाणी
विरही	बेचैन
मृगाक्षी	मृग के नेत्र के समान आँख वाली
अलं	पर्याप्त
तव	तुम्हारे
श्रमेण	श्रम से
कालिदासस्य	कालिदास का
भारवेरर्थ गौरवम्	भारवी का अर्थ गौरव
सन्ति तयो गुणाः	तीन गुण है।
कालिदास गिरां	कालिदास के वाणी को
ममापि	मेरा भी
कुमारस्य	कुमार का

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – (1) महाराज सदानन्द (2) कालिदास (3) मॉ काली (4) मेघदूत खण्ड़काव्य (5) महाराजा विक्रमादित्य (6) अभिज्ञानशाकुन्तल (7) उपमा अलंकार (8) उज्जयिनी (9) सर विलियम जोन्स महोदय (10) अग्निमित्र।

2- बहुविकल्पीय प्रश्न – (1) (ख) (2) (क) (3) (घ) (4) (ग) (5) (ग)
(6) (क) (7) (घ) (8) (ख)

1.7 सन्दर्भ

1 . पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास , लेखक का नाम - कपिलदेव द्विवेदी
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1 . पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कालिदास के जन्म समय के विषय में परिचय दीजिये।
2. कालिदास की शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. कालिदास की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
4. कुमारसम्भव का महाकाव्य के रूप में मूल्यांकन कीजिए।

इकाई.2 महाकवि भारवि का परिचय एवं किरातार्जुनीयम्

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 महाकवि भारवि - परिचय एवं समय
    2.3.1 भारवि का जीवनवृत्त
    2.3.2 भारवि का समय
    2.3.3 भारवि का ग्रन्थ
    2.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य
2.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्
    2.4.1 महाकाव्य का लक्षण
    2.4.2 किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 उपयोगी पुस्तकें
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

कवि कालिदास अपने युग में श्रेष्ठतम, साहित्य को जन्म दे चुके थे। कवि और नाटककार के रूप में उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के उच्चतम मानदण्ड स्थापित कर दिये थे। उनके बाद के कवि लाख प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी उन मानदण्डों का स्पर्श न कर सके, परिणामस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए कवियों ने चमत्कार और विद्वता का सहारा लेकर अलंकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। समय की गति के साथ परिष्कृत संस्कृत शैली, अत्यन्त गूढ़ उपमाओं तथा जटिल वाक्य रचनाओं के कारण भाराक्रान्त हो उठी तथा कविता की आत्मा इस नगर के नीचे कुचल कर रह गई। परवर्ती युग के कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन, वाक् चातुर्य और अनुकरण का पथ अपना लिया। इन कवियों में भारवि माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है। इन कवियों में भारवि निःसन्देह एक उच्चकोटि के कवि है। उनका एकमात्र महा काव्य किरातर्जुनीयम् संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत अग्रणी रूप में रखा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से आप सर्वशास्त्रमय कवि कुल भूषण भारवि का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत भारवि के जीवन-परिचय, उनके कृतित्व एवं महाकाव्य के रूप में उनके द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् का स्वरूप समझ सकेगें ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- भारवि के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें।
- इसके माध्यम से आप किरातर्जुनीयम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेगें।
- इसके अध्ययन से आप महाकाव्य के लक्षणों को बता सकेगें।
- इसकी सहायता से आप भारवि विषयक प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें ।

2.3 महाकवि भारवि - परिचय एवं समय

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे। भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है।

2.3.1 भारवि का जीवनवृत्त

संस्कृत के अन्य महान् कवियों के समान भारवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियों और अप्रामाणिक सूचनाओं का समुदाय प्राप्त होता हैं दण्डी के द्वारा रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ है, जिसका एक नाम अवंतिसुन्दरी कथासार भी है। उसमें भारवि के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचना दी गयी है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का

वर्णन भी किया हैं भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई० के लगभग)।

'किरातार्जुनीयम् ' के द्वितीय सर्ग के श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (30) को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें भारवि का योगदान कहा गया है। भारवि को सभी विद्वान् दाक्षिणात्य मानते हैं। सदारऋजन राय ने भारवि द्वारा समुद्र में सूर्यास्त-वर्णन करने के कारण भारवि को पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तट का निवासी सिद्ध किया है।

2.3.2 भारवि का समय

भारवि का समय मुख्यतः वाह्य प्रमाणों पर ही आश्रित है। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' में ऐसा कोई संकेत इन्होंने नहीं दिया है जिससे इनके काल का निश्चय हो सके। बाह्य प्रमाणों में सबसे महत्त्वपूर्ण ' ऐहोल का शिलालेख ' है जो कर्नाटक राज्य के बादामी जिले में मेगुती नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ी पर बने जैन मन्दिर की बाहरी दीवार पर अंकित हैं। इसका समय 634 ई० (' शकसंवत् 556) हैं रविकीर्ति नामक कवि ने इस मन्दिर (जिनवेश्म) का निर्माण करके कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के श्लोक की रचना कर इसमें उत्कीर्ण कराये थे। उनमें अन्तिम (37 वाँ) पद्य इस प्रकार है-

येनायोजि नवेऽष्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।

यहाँ रविकीर्ति ने अपने आपकों काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवि की कीर्ति का आश्रय लेने वाला कहा है। स्पष्टतः भारवि 634ई० तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रसिद्धि की अवधि के विषय में विद्वानों ने अनुमान किये हैं। कीथ का मत है कि उन्हें 550 ई० के आसपास माना जा सकता है। सरदारऋजन राय ने उक्त संकेत से 150-200 वर्ष पूर्व अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ई० में भारवि को मानने का सुझाव दिया है। किन्तु अन्य स्रोतों से इस विषय पर अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है। दण्डि-कृत 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के एक अंश का उद्धरण जो, हरिहरशास्त्री ने निम्नांकित रूप में किया है ,जिसमें दामोदर द्वारा भारवि के माध्यम से विष्णुवर्धन नामक राजा की कृपा प्राप्त करने का निर्देश है - यतः कौशिककुमारो (दामोदरो) महाशैवं महाप्रभाव प्रदीप्तभांस भारवि रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्यकर्माणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्। विष्णुवर्धन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय (पुलिकेशिन्-द्वितीय) का अनुज था, उसने सेनापति के रूप में नर्मदा - तट पर हर्षवर्धन को पराजित किया था। उसी ने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य - वंश की स्थापना 615 में की थी। भारवि से मित्रता के कारण विष्णुवर्धन ने उन्हें अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार 615ई० के आस पास भारवि का भी समय माना जा सकता है। 634ई० में उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि के कारण रविकीर्ति ने उनका उल्लेख किया भारवि के समय के निर्धारण का एक अन्य सूत्र भी उक्त 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होता है। काञ्ची के पल्लव-नरेश सिंहविष्णु (शासनकाल 575-600ई०) ने भी भारवि को आश्रय दिया था। बाद में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रम ('मत्तविलासप्रहसन' का लेखक) के आश्रय में भी भारवि रहे। भारवि को मनोरथ नामक पुत्र था। यही मनोरथ दण्डी के पितामह थे। यह सूचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होती है। एक दानपत्र से भी भारवि के काव्य का सम्बन्ध प्राप्त होता है। कोंकण के गंग - नरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत (समय 580ई०) था जिसने 'बृहत्कथा' (गुणाढ्य-कृत पैशाची भाषा में निबद्ध लोककथा - संगह) का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' के नाम से किया था तथा किरातार्जुनीयम् के 15 वें सर्ग (चित्रकाव्य से पूर्ण सर्ग) पर टीका भी लिखी थी। यह दानपत्र 'मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट (1916) में पृष्ठ 36 पर मुद्रित है - **''श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारती निबद्ध - बृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन''।** इन सूत्रों से यह अनुमान हो

सकता है कि भारवि का समय 550 ई० से 620 ई० के बीच होगा। अष्टाध्यायी की वृत्ति 'काशिका' (660ई०) में जयादित्य ने किरातार्जुनीय के एक पद्यखण्ड (3/14) ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः का उद्धरण दिया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' की रचना स्पष्टतः भारवि के महाकाव्य की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में ही की थी। माघ का समय 675 ई० के आसापास माना जाता है। अतः भारवि को इन रचनाओं के कुछ पूर्व उक्त कालावधि में रखा जा सकता है। बाण द्वारा अपने हर्षचरित के प्रस्तावना में भारवि का उल्लेख न होना कुछ विद्वानों को खटकता है किन्तु इसे दो कारणों से स्पष्ट किया जा सकता है। पहली बात यह है कि बाण के समय (7वी शताब्दी का पूर्वार्ध) में उत्तरभारत में भारवि अधिक विख्यात नहीं हुए होंगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाण के आश्रयदाता महाराज हर्षवर्धन के शत्रु पुलिकेशिन् के अनुज की राजसभा में भारवि थे। अतः बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया।

2.3.3 भारवि का ग्रन्थ

किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसीलिए इसका शीर्षक है-किरातर्जुनीयम् । किरातः (किरातवेशधारी शिवः) च अर्जुनश्च-किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातर्जुनीयम् (द्वन्द्वाच्छः से छ अर्थात् ईय प्रत्यय)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाये गये हैं। 15 वें सर्ग में युद्ध के क्रम में चित्रकाव्य की छटा दिखायी गयी है। इस महाकाव्य में सर्गों की कथा इस प्रकार है-द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजा-पालन-नीति का वर्णन सुनाना, द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण (सर्ग-1) युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद (सहसा विदधीत न क्रियाम्), व्यास का आगमन (सर्ग-2); व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग-विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान (सर्ग-3) इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन (सर्ग-4); हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्दिय-संयम का उपदेश (5); अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन (6); गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन-विहार, पुष्पचयन (7); गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन (8); सांयकाल, चन्द्रोदय, मान मानभश् , दूती-प्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन (9); अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता (सर्ग-10); मुनि-रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन-संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश (11); अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन, किरातवेशधारी शिव का आगमन (12); शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण-प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण कथन (13) वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव का युद्ध हेतु आना (14); युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन (15) शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध (16); शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध (17) बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन (सर्ग-18)।

स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन, क्रीड़ादि-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर हृदयावर्जक संवादों, काल्पनिक चित्रों तथा रमणीय वर्णनों से इसे भरकर नवीन दिशा का प्रवर्तन किया है। श्रंगार चेष्टाओं के वर्णन में मुक्तक काव्य की चित्रात्मकता इसमें उन्होंने भरी है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक के अन्तराल को ऐसे ही वर्णनों से भरा गया है। युद्ध का लम्बा वर्णन भी महाकाव्य की विशालता को भले ही रेखाकिंत करे,फिर भी उसमें कविता की आत्मा तिरोहित हो गयी है।

इस महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त कोटि के हैं। वीर रस प्रमुख है, श्रंगार रस अंश के रूप में है। इस महाकाव्य पर मल्लिनाथ ने टीका लिखी है, 15 वें सर्ग पर दुर्विनीत ने भारवि के काल में ही टीका लिखी थी। माघ ने इस काव्य की सभी विशिष्टताओं का अनुकरण करके
'शिशुपालवध' की रचना की। इस महाकाव्य के प्रथम तीन सर्ग बहुत लोकप्रिय हैं। इसमें मुख्य
रूप से भारवि का राजनीति-ज्ञान प्रकट हुआ है।

2.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

भारवि मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं जिनका ध्यान काव्य के बहिरश: पर अधिक रहा है। अर्थपक्ष में गम्भीरता तथा सार्वजनीनता का निवेश भी उन्होंने किया है। चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले वे प्रथम संस्कृत कवि हैं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह प्रकट किया है कि संस्कृत काव्य कितना दुरूह हो सकता है। किन्तु ऐसी शब्द-क्रीड़ा उनके काव्य में सीमित है, केवल 15वें सर्ग में चित्रकाव्य है और 5वें सर्ग में यमक का प्रयोग है। सामान्यतः भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें अल्पसमासों का प्रयोग होता है। व्याकरणशास्त्र के दुरूह नियमों के प्रति कवि की अभिरुचि अवश्य है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी भारवि में बहुत अधिक है। किन्तु इस समस्त कृत्रिमता के मध्य उनमें भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है जो सामान्य स्थलों में विपुल रूप से प्राप्त होती हैं भावों के अनुसार ही इन्होंने काव्य-कला का प्रयोग किया है, अर्थगौरव से पूर्ण सामान्य उक्तियों में प्रसादगुण है तो चित्रात्मक वर्णनों में ओजगुण के प्रयोग में भी कवि को संकोच नहीं है। अनेक अलंकारों और छन्दों का निवेश भी कवि ने भावों की आवश्यकता के अनुरूप ही किया है। इनकी शैली के विषय में जितना अन्य विद्वानों ने कहा है, उससे न्यूनतर स्वयं भारवि ने नहीं कहा। इससे प्रकट होता है कि कवि अपनी भाषा-शैली के प्रति पूर्ण जागरुक है।

भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं जैसे-भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुरा भारविगिरः (अभिनन्द), नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः (मल्लिनाथ) इत्यादि इनमें भारवि की शैली की स्वाभाविक मधुरता के अतिरिक्त बाह्य-रूक्षता तथा अन्तः सरसता एवं अर्थगौरव की प्रशंसा की गयी है। इन पर विचार किया जायेगा। स्वयं भारवि ने अपने काव्य के विविध पक्षों में वचोविन्यास के विशिष्ट गुणो का निर्देश किया है जैसे-

(1) स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।। (किरातार्जुनीय 1/3)

वनेचर शब्द-सौष्ठव तथा औदार्य (अर्थसम्पत्ति) से शोभा पाने वाली निश्चित अर्थ से युक्त वाणी का प्रयोग कर रहा था। वाणी में शब्द की सामर्थ्य तथा अर्थ की समग्रता तो हो ही,साथ ही साथ विषय-वस्तु प्रमाण-सिद्ध हो अर्थात् असत्य न हो।

(2) स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।

रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्विचत् ।। (किरात. 2/27)

यहाँ भीम की वाणी की प्रशंसा में युधिष्ठिर कहते हैं। कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन है (प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः, 2/28) जिसके शब्दों में स्फुटता (स्पष्टता) हो, अर्थ-गौरव (अर्थ का प्राचुर्य) विद्यमान हो, बातों में पृथगर्थता (पुनरुक्ति का अभाव या परस्पर विरोध का अभाव) हो और शब्दों की परस्पर आकांक्षा (सामर्थ्य) भी उपस्थित हो। भाषा के इन गुणों का भारवि ने उपदेश
ही नहीं दिया है,अपितु पालन भी किया है।

(3)विविक्तवर्णाभरण सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती
प्रवर्तन नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ।। (किरात॰ 14/3)

यहाँ अर्जुन किरातवेशधारी शिव से कहते हैं कि परस्पर असंकीर्ण वर्णों के आभूषण से युक्त, सुनने में सुखद (श्रुतिकटु-दोष से रहित), शत्रुओं के मन को भी प्रसन्न करने वाली तथा प्रसाद-गुण एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त वाणी पुण्यकर्म के बिना प्रवृत्त नहीं होती। काव्य में भी ऐसी भाषा-शैली वाञ्छनीय है। इसी क्रम में अर्जुन आगे भी कहते हैं -

(4) स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।
इति स्थितायां प्रतिपुरुष रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।। (किरात॰ 14/5)

अर्थात् कुछ लोग वाणी की वाच्यार्थ-सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं, तो दूसरे विद्वान् केवल उक्ति (अर्थात् शब्द-सामर्थ्य) की प्रशंसा करते हैं इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पृथक्-पृथक् विचारों की स्थिति में सभी लोगों को प्रसन्न करने वाली (शब्दार्थसमन्वित वाणी) अत्यन्त दुर्लभ होती हैं भारवि ने ऐसी ही वाणी की काव्य का उत्कर्ष समझा है।

कहीं-कहीं भारवि ने शास्त्रीय वैदुष्य का प्रदर्शन करते हुए सामान्य विषयों को भी गम्भीर रूप दे दिया है। किरातार्जुनीयम् के सत्रहवें सर्ग में वाणों के आधार पर अर्जुन की विजय-कामना की तुलना वैयाकरणों की शब्दाश्रित अर्थस्फुरण-कामना से की गयी हैं यह पद्य भारवि की अर्थगम्भीरता का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है-

संस्कारवत्त्वद् रमयत्सु चेतः प्रयोग-शिक्षागुण-भूषणेषु।
जयं यथार्थेषु परेशु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशंषसे ।। (किरात॰ 17/6)

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें समाससाहित्य या अल्पसमासता रहती है किन्तु कालिदास की शैली के समान कोमलता, पदलालित्य और परिष्कार का इसमें अभाव है। पाण्डित्य और कवित्व दोनों के प्रति समान आकर्षण के कारण भारवि भावों के सौन्दर्य पर तो ध्यान रखते हैं किन्तु शब्दों की मधुरता का बलिदान इनके पाण्डित्य के निकशोपल पर हो जाता हैं राजनीति-जैसे शुष्क विषय हो या शरद्-वर्णन-जैसा सरस विषय आये, भारवि की भाषा-शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है। नारियल ऊपर से रूक्ष ही नहीं, परस्पर रेशों के संघटन के कारण अभेद्य भी होता है, उसकी अन्तः सरसता ऊपर से नहीं जानी जा सकती। वही बात भारवि के काव्य के बहिरश् में (भाषा-शैली में) निहित है। किन्तु ऊपरी रेशों को दूर हटाकर जब भावों के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाता है तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक ओर बहिरश् प्रभाव उत्पन्न कररने में समर्थ है, तो दूसरी ओर अन्तरश् चित्त को द्रवित करता है। द्रौपदी के उत्तेजक भाषण में कवि ने दोनों क्षमताएँ दिखायी हैं जैसे-

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विश्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयुन्नुत्सहसे न बाधितुम् ।। (किरात. 1/36)

शब्दों में यमक का प्रयोग और भावों में युधिष्ठर को उपालम्भ-ये दोनों समान रूप से निविष्ट हैं। आप इन दोनों भाइयों (नकुल-सहदेव) की वर्तमान दुर्दशा देखकर भी अपने धैर्य और संयम को छोड़ नहीं पाते-आश्चर्य की

बात है। इस उपालम्भ की पराकाष्ठा तब होती है जब द्रौपदी युधिष्ठिर को धनुष छोड़कर हवन-कार्य में जीवन बिताने का व्यङ्.ग्य करती है (विहाय लक्ष्मीपलिक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सऋजुहुधीह पावकम् 1/44)। पात्रों के अनुरूप ओजस्विता और शमन का आधान करने में भारवि की प्रवीणता अनुपम है, द्रौपदी तथा भीम के ओज- पूर्ण वचन पाठक को उत्तेजित करते हैं तो युधिष्ठर और व्यास के वचनों में शान्ति का निवेश है। इनमें कवि की नीतिकुशलता सर्वत्र प्रकट हुई है। राजा का आदर्श युधिष्ठिर की दृष्टि में मृदुता और उग्रता का यथावसर प्रयोग ही है-

समवृत्तिरुपैति मार्दवं, समये यश्च तनोति तिग्मताम्।
अधितिष्ठति लोकमोजसा, स विवस्वानिव मेदिनीपतिः।। (किरात॰ 2/38)

'किरातार्जुनीय' के चतुर्थ सर्ग में शरद्-ऋतु का भव्य वर्णन करते हुए इसी शैली में कवि ने कतिपय सुन्दर शब्दचित्र अंकित किये हैं। वर्षा के कारण जो मार्ग पहले टेढ़े-मेढ़े थे, अब शरद् में खेतों का जल सूख जाने से सीधे हो गये है; उन मार्गों पर समीपवर्ती (अगल-बगल) पौधों को बैल खा गये; गाड़ियों के पहियों के चिह्न (लीक) बन जाने से कहीं-कहीं उन मार्गो पर कीचड़ घनी हो गयी है और लोगों के निरन्तर आाने-जाने से अब वे मार्ग स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं-

पपात पूर्वां जहतो विजिह्मतां, वृशोपभुक्तान्तिकसस्यसम्पदः।
रथाश्सीमन्तित-सान्द्रकर्दमान्, प्रसक्तसम्पात-पृथक्कृतान्पथः।। (किरात॰4/18)

इसी प्रकार हरे-हरे सुग्गों के अपनी लाल चोंचों से धान की पीली बालियां को लेकर उड़ने में कवि ने उस इन्द्रधनुष के सौन्दर्य की उपमा दी है-

मुखैरसौ विद्रुमश्लोहितैः शिक्षाः पिषशी कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला, धनुःश्रियंगोत्रभिदोऽनुगच्छति।।(किराता॰ 4/36)

इस महाकाव्य के पंचम सर्ग में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग करते हुए कवि ने 'यमक' अलंकार का ऐसा प्रयोग किया है कि माघ इसके अनुकरण के लिए उत्सुक हो उठे। हिमालय का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

पृथुकदम्ब-कदम्बक-राजितं ग्रथित-माल-तमाल-वनाकुलम्।।
लघु-तुषार-तुषारजलश्च्युतं धृत-सदान-सदानन-दन्तिनम्।।

अर्थात् यह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब पुष्पों के समूह से शोभित है, पंक्तियों में निबद्ध तमालवनों से भरा है, यहाँ बूँद-बूँद करके हिमजल चू रहा है और सुन्दर मुखवाले (सदानन) मतवाले (सदानन) हाथियों को यह धारण करता है। इस प्रसंशा में एक पद्य पाद-यपक के रूप में है-सकलहंसगणं शुचि मानसम् (सभी हंस-गणों से युक्त पवित्र मानसरोवर) तथा सकलहं सगणं शुचिमानसम् (अपनी पत्नी पार्वती से विवाद किये हुए, प्रथम आदि गुणों के साथ, पवित्र मनवाले भगवान् शिव को)। इन दोनो को हिमालय धारण करता है। (5/13)

इसी सर्ग में एक प्रसिद्ध उपमा प्रयुक्त है जिसमें यक्ष अर्जुन को समझाता है कि यहाँ स्थल-कमल के पराग आँधी (वात्या, चक्रवात) के द्वारा इस प्रकार उड़ाये जाते हैं कि आकाश मण्डलाकार बन जाता है । और स्वर्ण से निर्मित छत्र का रूप धारण कर लेता है -

उत्फुल्ल-स्थल-नलिनी-वनादमुष्म
दुद्धूतः सरसिज-सम्मभवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता
दाधत्ते कनकमयातपत्र-लक्ष्मीम्।। (किरात॰ 4/39)

इस उपमान के कारण कवि को 'आतपत्र-भारवि' भी कहा गया है। पंचम सर्ग में कवि ने अनेक छन्दों के प्रयोग की क्षमता भी दिखायी है। जैसे-द्रुतविलम्बित (1-16), औपच्छन्दसिक (17), क्षमा (18), प्रमिताक्षरा (20),

प्रभा (21), रथोद्धता (22), जलधरमाला (23), प्रहर्षिणी (26), जलोद्वतगति (27) वसन्ततिलका (28-30), पुष्पिताग्रा (32), शालिनी (36), वंशपत्रपतित (43), मालिनी (52),। भारवि के द्वारा प्रयुक्त वंशस्थ छन्द की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में की है। इस छन्द का उपयोग कवि ने प्रथम, चतुर्थ, अष्टम, चतुर्दश -इन सर्गों में मुख्य छन्द के रूप में किया हैं मुख्य छन्द के रूप में इन्होंने वियोगिनी (सर्ग-2), उपजाति (सर्ग-3,16,17), प्रमिताक्षरा (सर्ग-6), प्रहर्षिणी (सर्ग-7), स्वागता (सर्ग-9), पुष्पिताग्रा (सर्ग-10), अनुष्टप (सर्ग-11 तथा 15,) उद्गता (सर्ग-12), औपच्छन्दसिक (सर्ग-13 में 34वें पद्य तक, 35 से 70 तथा रथोद्वता) का प्रयोग किया है, सर्गान्त में छन्द के परिवर्तन की पद्धति भी रखी है । अठारहवें सर्ग में भी पंचम सर्ग के समान अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के वैविध्य का प्रदर्शन संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम भारवि ने ही में किया हैं यह उनके पाण्डित्य और विचित्र मार्ग के प्रवर्तन का परिचायक है ।

अलंकारों का स्वाभाविक वर्णन ऊपर दिये गये है। हिमालय-वर्णन के प्रसंग में 'रूपक' का निम्नांकित पद्य में बहुत सुन्दर प्रयोग है-

श्रीमल्लताभवनमोषधयः प्रदीपाः
शय्या नवानि हरिचन्दन-पल्लवानि।
अस्मिन् रतिश्रमनुदश्च सरोजवाताः
स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः।। (किरात॰ 4/28)

अर्थात् यहाँ शोभासम्पन्न लताकुंज ही भवन हैं, ओषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) दीपक हैं, हरिचन्दन (कल्पवृक्ष) के नये-नये पल्लव शय्या हैं; रति के श्रम को दूर करने वाले कम वन-जन्य समीरण सुरसुन्दरियों को स्वर्ग का स्मरण करने ही नहीं दे रहे हैं । भाव यह है कि हिमालय में प्राप्त भोग-सामग्री स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

प्रयत्न-साध्य अलंकारों में अर्थालंकार नहीं, शब्दालंकार ही हैं जो 'चित्रकाव्य' के रूप में प्रयुक्त हैं। इस दृष्टि से शिव और अर्जुन विचित्र युद्ध का वर्णन करने के लिए पंचदश सर्ग नियुक्त किया गया है। इस सर्ग में कहीं एकाक्षर पद्य हैं (श्लोक-14), कहीं दो अक्षरों का पद्य है (5,38); कहीं पादादि-यमक है (10), तो कहाँ पाद के आदि-अन्त में यमक है (8, माविह्मसिष्ट समरं समरन्तव्यसंयतः) कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (12) तो कहीं सर्वतोभद्र है (25); कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है (16 तथा 50); कहीं एक ही श्लोक सीधा-उलटा एक समान है (18 तथा 20) कहीं चारों पादों की एकरूपता से महायमक है (52 विकाशमीयुर्जगतीषमार्गणाः-चारों पादों में यही है); कहीं दो अर्थों वाले (16,50,), कहीं तीन अर्थो वाले (42) और कहीं चार अर्थों वाले पद्य भी हैं (52) । इस प्रकार भारवि ने प्रयत्नसाध्य चित्रालंकार का व्यापक रूप से इस सर्ग में प्रयोग किया है ।

यहाँ एकाक्षर (केवल एक व्यंजन 'न') प्रयोग वाले पद्य का उदाहरण दिया जाता है-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनों नानेना नुन्ननुन्ननुत् ।। (किरात॰ 14/14)

अर्थ इस प्रकार है- (नानाननाः) हे अनेक मुखवाले शिवसैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता हैं । (न-नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध-मुक्त नहीं हो सकता ।

इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृत्ति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो-दो अर्थ निकलते हैं-

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारवणोऽयुगलोचनस्य ।
घनं विदार्यार्जुनबाणपूर्ग ससार बाणो युगलोचनस्य ।। (किरात॰15/50)

'इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति - सम्पन्न (संसार) और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घने बाण-समूह को छिन्न-भिन्न करके व्याप्त हुआ और उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण घने अर्जुन वृक्ष, बाणवृक्ष और सुपारी (पूग) के वनों को चीर कर व्याप्त हुआ। एक पद्य में जो चारों चरण समान हैं वहाँ विकासमीयुर्जगतीशमार्गणाः (पद्य-52)-के चार अर्थ इस प्रकार हैं - (1) जगतीश - मार्गणाः विकासम् ईयुः = पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार का प्राप्त हुए। (2) जगति ईशमार्गणाः विकासम् ईयुः-संसार में शिव के बाण वि-कास (विषम गति) को प्राप्त हुए अर्थात् बिखर गये, टूट गये। (3) जगती-स-मर-गणाः विकासम् ईयुः = संसार को दुःख देने वाले (जगतीं ष्यन्ति तनूकुर्वन्ति इति) दानवों को मार डालने वाले शिवगण प्रसन्न हुए। (4) जगतीश-मार्गणाः वि-कासम् ईयुः-जगती के स्वामी शिव को ढूँढ़ने वाले (मार्गणाः) देवादि-समूह पक्षियों के स्थान पर (वि = पक्षी, काश = स्थान) अर्थात् आकाश में आ गये।

इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकार का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की उस क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है जो संसार के अन्य किसी भाषा में नहीं है। शब्द-विश्लेषण-शास्त्र (व्याकरण) का इसमें प्रभूत योगदान है। भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकनुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध सूक्तियों का भाण्डार है। इन सभी में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार निहित है। यहां कुछ सामान्य सूक्तियों के उद्धरण दिये जाते हैं -

(1) **हितं मनोहरि च दुर्लभं वचः** (1/4) - ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हित कर होने के साथ मन के अनुकूल भी हो ।

(2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोअपि सम महात्मभिः (1/5) - नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।

(3) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23)- बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही।

(4) वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (8/39) प्रेम में गुण बसते हैं, किसी भौतिक पदार्थ में नहीं।

(5) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12)-इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं, अन्तिमावस्था में वे सन्ताप ही देते हैं।

(6) सुलभा रम्याता लोको दुर्लभं हि गुणार्जनम् (11/11)- संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।

(7) सहसा विधदीत न क्रियाम् (2/30) - बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए।

(8) अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये, तथापि उसे देखकरा मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है।

(9) दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है।

(10) आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (9/64-) सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं।

(11) यथोलारेच्छा कि गुणेषु कामिनः (8/4)-कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं। (उपस्थित गुणों से संतुष्ट नहीं होते)।

(12) मात्सर्यरागोपहतामनां हि स्खलन्ति साधुश्वपि मानसानि। (3/53)-ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष-युक्त ही रहते हैं।

(13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर चाहते हैं भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इसलिए तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दी हैं। जैसे-प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (3/17 युद्ध

में विजय की प्राप्ति पराक्रम पर ही आश्रित होती है), तेजोविहीनं विजहाति दर्पः (17/16 निस्तेज के पास स्वाभाविकता कहाँ से होगी ?), अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः (1/33 क्रोध-शून्य व्यक्ति का न मित्र ही आदर करता है और न शत्रु ही उससे डरता है), ब्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (1/30 वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते हैं जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते), प्रकृतिः खुल सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया 2/21 बड़े लोगों का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरों के अभ्युदय को सह नहीं पाते)।

किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य है जैसे-ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी की वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं, वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (स्त्री की बात है या पुरुष की)। अर्थगौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उद्धृत किया जाता है -

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः। (किरात॰ 2/3)

नीतिशास्त्र बहुत दुर्गम है, फिर भी इसमें लोग प्रवेश करते ही हैं क्योंकि इसमें प्रवेश करने के लिए गुरुओं ने मार्ग बनाये हैं जलाशय में प्रवेश करने के लिए सोपान बना दिये जाने पर सभी लोगों का अवगाहन सरल हो जाता है वैसे ही भयावह नीतिशास्त्र की स्थिति हैं किन्तु वह व्यक्ति दुर्लभ होता है जो कृत्य (नीतिशास्त्र पक्ष में-करने योग्य कार्य, जलाशय पक्ष में-स्नानादि) के लिए उचित मार्ग बताये। नीतिक्षेत्र में उस व्यक्ति का महत्व है जो समय पर कर्तव्य के विषय में सही परामर्श दे। जलाशय के पक्ष में वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जो जलाशय में सोपान बना दे, स्नान करने वाले तो अनेक होंगे।

बोध प्रश्न -1

1. भारवि का समय मुख्यत: प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

अ. भारवि का समय ..... के बीच माना गया है।

ब. किरातार्जुनीयम् ..... विभक्त है।

4. सही या गलत का निशान लगायें -

अ. दण्डी भारवि के पुत्र थे ( )

ब . भारवि का एक नाम दामोदर था ( )

2.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्

भारवी का केवल एकमात्र 'किरातर्जुनीयम् ' महाकाव्य ही उपलब्ध है और कुछ विचारकों का तो कहना है कि संस्कृत के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् सर्वप्रथम है, जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरा है । इसी कारण महाकाव्यों की श्रेणी में यह महाकाव्य सर्वोपरि प्रतिष्ठित है । हम'किरातार्जुनीयम्' को एकदम यह स्थान प्रदान करें या न करें, पर इतना तो अवश्य है कि इस महाकाव्य ने अपनी प्रशंसित गुणों के कारण संस्कृतसाहित्य में विशिष्टस्थान प्राप्त किया है । और संस्कृतमहाकाव्य की वृहत्त्रयी (किरातर्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम्) में इसका प्रमुख स्थान है

तथा समस्त संस्कृत साहित्य में किरातर्जुनीयम् के समान दूसरा कोई ऐसा ओजपूर्ण तथा उग्र काव्य नहीं मिल सकेगा। आगे इसके महाकाव्यत्व के रूप को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

2.4.1 महाकाव्य का लक्षण

काव्य शास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्य दर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंश: क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते॥
अड्.गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत्।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः॥
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु॥

अब इसका हिन्दी रूपान्तरण देखिए। सर्वप्रथम महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है। नायक कोई देवता होता है या उच्च वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है। वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है। एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। प्रधान रस श्रृगाँर वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। कथावस्तु नाटक के समान होती है। वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है। नाटक में वर्णित सभी संधियॉ भी महाकाव्य में होती हैं। पुरुषार्थ - चतुष्ट्य का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है। महाकाव्य के आरम्भ में त्रिविध मंगलाचरणें में से एक होना चाहिए। वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा। सन्ध्या ,सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूलि, दिन, अन्धकार, प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह, उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते हैं। छन्द एक सर्ग में एक ही होता है। सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। कभी 7 कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते हैं। महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए। ये सर्ग न तो बहुत

छोटे हो और नहीं बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

2.4.2 किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के पूर्वोक्त सभी लक्षण भारवि की रचना किरातार्जुनीयम् में मिलते हैं। नायक उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न अर्जुन है। अर्जुन धीरोदात्त नायक की कोटि में आते है। जैसा की दशरूपककार धीरोदात्त नायक का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि-

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान विकत्थनः।
स्थिरो निगूढ़ाहंकारों धीरोदात्तों दृढ़व्रतः।।

अर्जुन शोक-क्रोध आदि से अभिभूत नहीं होते अति गम्भीर है, अनात्मश्लाघी है, स्थिर है, उनका अंहकार नियम से आच्छन्न हैं। तथा वे प्रतिभा से परिपूर्ण नायक है तथा अपने व्रत और वचन पर दृढ़ रहते है। इस महाकाव्य में प्रमुख रस वीर रस है तथा अपने कौशल से भारवि ने श्रृंगारादि रसों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक प्रयोग किया हैं कथानक इतिहास अर्थात् महाभारत से लिया गया है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थो का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। किन्तु उनमें एक पुरुषार्थ अर्थ अर्जुन द्वारा शस्त्र प्राप्ति प्रमुख है। महाकाव्य के आरम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग करके मंगल भी किया गया है और कथानक का निर्देश भी किया है।

श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीम्
प्रजासु वृत्तिं यमयुंक्त वेदितुम्।
स वर्णिर्लिंगी विहीतः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

वनेचर के उल्लेख से आगे किरातरूप में उपस्थित होने वाले शिव का भी संकेत कर दिया गया है। स्थान-स्थान पर दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा की गई है। जैसे प्रथम सर्ग में ही दुर्योधन के उत्तम नीतिका वर्णन करने के बावजूद खल के रूप में उसकी निन्दा भी की गई है। -विस{मानो दुरोदरक्षचमधितां तथापि जिह्वा। कथाप्रसंगेन तथासु कर्तु, भवन्ति माया विषु येन मायिनः।। आदि में उसकी कुशलता का वर्णन भी किया गया है। तथा एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। जैसे प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द किन्तु महाकाव्य के लक्षण का पालन करते हुए अन्त में छन्द बदल गया है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो छन्द मालिनी और पुष्पिताग्रा छन्द है।

विधि समय नियोगादीप्ति संहार जिह्वम्
शिथिल वसुमगाधे मग्न मापत्ययोधौ।
रिपु तिमिर मुदस्यो दियमानं दिनादौ
दिनकृत मिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।

सर्गो की लम्बाई न बहुत छोटी है और न बहुत लम्बी इस महाकाव्य में सबसे छोटा सर्ग चौथा सर्ग जो अड़तीस श्लोको का तथा सबसे लम्बा सर्ग एकादश-एक्यासी श्लोकों का है यह भी महाकाव्य के लक्षण के अनुरूप ही है। सर्गो की संख्या अठ्ठारह है जबकि महाकाव्य में आठ से अधिक माना गया है। सर्गो के अन्त में आगे में आने वाले सर्ग की कथावस्तु का भी संकेत किया गया है। लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः से आगे की घटना का संकेत है। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है सभी प्रकार का वर्णन जो महाकाव्य में होने चाहिए किरातार्जुनीय में पूरी तरह से वर्णित है। चौथे सर्ग में हिमालय का तथा ऋतुओं का पूरी तरिके से वर्णन मिलता

है यह वर्णन पाचवे और छठवें सर्ग में इन्द्र और स्वर्ग का वर्णन है। नवें सर्ग में संध्या रात्री चन्द्रोदय और प्रभात का भी मनोहारी और विस्तृत चित्रण है । सातवे से लेकर दसवें सर्ग तक अप्सराओं का और उनकी काम चेष्टओं एवं संम्भोग श्रृंगार का वर्णन है । अर्जुन और किरातवेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन पन्द्रहवें से अन्तिम सर्ग तक किया गया है । पन्द्रहवें सर्ग में शूकर का वर्णन मिलता हैं । मुनियों का भी वर्णन है तथा युद्ध के लिये शिव के सेना सहित रण-प्रयाण का वर्णन बड़ी विस्तार किया गया है । इस प्रकार वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के सभी लक्षणों का पूरी तरह चरितार्थ करता है ।

काव्य का नामकरण इसके नायक अर्जुन तथा किरातवेश धारी शिव के युद्ध की घटना के आधार पर किया गया है । प्रथम पद्य में ही किरात का उल्लेख है और अन्तिम पद्य में भी शिव किरात के रूपमें दिखाई देते हैं । इस प्रकार महकाव्य का नामकरण भी उचित है। सच तो यह है कि इस महाकाव्य को आदर्श मानकर ही बाद के कवियों अपने महाकाव्यों की रचना की है तथा माघ ने शिशुपालवध की और श्री हर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' की रचना की ।

बोध प्रश्न 2 -

अ . किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

ब. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . नि:श्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

रिक्त स्थानों को भरिए -

स. अंगानि ..... सर्वे नाटक सन्धय: ।

द .एकवृत्तमयै: ..... अन्यवृत्तकै: ।

सही गलत का निशान लगाएं -

य . अर्जुन धीरोदात्त कोटि के नायक हैं ( )

व. किरातार्जुनीयम् वृहत्रयी की कोटि में आता है ( )

2.5 सारांश

कालिदास द्वारा रचित रघुवंश महाकाव्य के रचना के उपरान्त किसी कवि में यह भाव शायद उत्पन्न भी नहीं हो रहा कि काव्य सृजन करें। परन्तु मध्यकाल में पुनः महाकवि भारवि ने जिस रूप में किरातार्जुनीयम् की रचना की वह अप्रतिम है। जिसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन और कृतिम अलंकार-सन्निवेश प्रधान हो गया और प्रतिमा-समस्त काव्य की स्वाभाविक गौड़ हों गयी। उनके द्वारा उस पाण्डित्यपूर्ण शैली का प्रवर्तन किया गया जिसकी छटा कहीं न कही बाद के कवियों में यत्र-तत्र दृष्टव्य हो ही जाते है। इस इकाई के माध्यम से महाकवि भारवि के जीवन तथा उनके कृतित्व - किरातार्जुनीयम् पर यथासम्भव प्रकाश डाला गया है जिसकी सहायता से आप कवि तथा कविकीर्ति का पूर्ण अध्ययन बड़ी ही सुगमता पूर्वक कर सकेगे, तथा कवि
विषयक अनेक समस्याओं का समाधान कर सकेगे ।

2.6 शब्दावली

भाराक्रान्त	-	भार से आक्रान्त
उच्चवंशोत्पन्न	-	उच्चवंश में उत्पन्न
अनात्मश्लाघी	-	आत्मश्लाघा से परे
आदिमध्यावसान	-	पूर्व मध्य तथा अन्त

अल्पसमासता	-	समास का कम प्रयोग
वैदूष्य	-	विद्वता
वैविध्य	-	विविधता

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 (अ) घ (ब) क (स) 550 से 620 ई0 द. सर्गों में

य. (गलत) व. (सही)

2 . अ . ख ब. क स. सर्वेपि रसा: द. पद्यैरवसाने य.सही

व . सही

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय	संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. आचार्य विश्वनाथ	साहित्य दर्पण

2.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. आचार्य धनंजय	दशरूपक
2. महाकवि भारवि	किरातार्जुनीयम्
3. डा॰ कपिलदेव द्विवेदी	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि भारवि का काल निर्धारण करते हुए उनके जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. सिद्ध कीजिए की-किरातार्जुनीयम् एक महाकाव्य है।

इकाई.3 कुमारसम्भवम्-प्रथम सर्ग
श्लोक संख्या 01 से 30 तक मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कुमारसम्भवम्-श्लोक संख्या 01से 30 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहित्य से सम्बन्धित यह खण्ड दो की तीसरी इकाई है । इसके पूर्व की इकाई में आपनें कालिदास के बारे में अध्ययन किया था । प्रस्तुत इकाई में आप कालिदास रचित कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग के 01 से 30 तक श्लोकों की व्याख्या से परिचित होंगे। कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में एक से लेकर तीस श्लोक में हिमालय का वर्णन करते हुए पार्वती के जन्म का भी वर्णन किया है । महाकविकालिदास ने हिमालय का वर्णन करते हुए यह कहा है कि भारत वर्ष के उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ विशाल हिमालय पर्वत मानों पृथ्वी की लम्बाई नापने वाला माप-दण्ड है जिसके दो पलड़ों के रूप में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दोनों समुद्र स्थित हैं । हिमालय का वर्णन करते हुए शिव की पूर्व पत्नी सती ने ही अपने पिता दक्ष द्वारा किये हुए यज्ञ में अपने पति को यज्ञीय भाग समर्पित न करने के कारण योगाग्नि द्वारा तत्क्षण अपने शरीर का उसी स्थान में परित्याग कर पुनः जन्म के लिए हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में अपने को आश्रित किया । उसके बाद पार्वती के रूप में पुनः जन्म लिया ।

अत: इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कुमारसम्भव के प्रारम्भिक तीस श्लोकों की व्याख्या करते हुए उनके महत्त्व को बता सकेंगे ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- कालिदास द्वारा बताए गये प्रकृति चित्रण से परिचित हो सकेंगे ।
- प्राप्त सूक्तियों की विशेषताओं को जानने में समर्थ होंगे।
- हिमालय, रत्नों का उत्पत्ति स्थान है, समझा सकेंगे ।
- हिमालय के महत्त्व को जानते हुए पार्वती के जन्म सम्बन्ध में परिचित होंगे ।
- हिमालय के महत्त्व को समझा सकेगें ।
- मेना का स्वरूप बता सकेंगे ।
- पार्वती जन्म और नामकरण की स्थिति का निरूपण कर सकेंगे ।
- कालिदास की भाषा शैली का निरूपण कर सकेंगे ।

3.3 कुमारसम्भवम्-श्लोक संख्या 01से 30 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।। 1 ।।

अन्वय - उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयः नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य पृथिव्याः मानदण्ड इव स्थितः अस्ति।

पदार्थ - उत्तस्यां = उत्तर (में) । दिशि = दिशा में । देवतात्मा = देवतास्वरूप । हिमालयो नाम = हिमालय नामक । नगाधिराजः = पर्वतों का राजा (पर्वतराज) पूर्वापरौ = पूर्व और पश्चिम (के)। तोयनिधी = (दोनों) समुद्रों को । वगाह्य = व्याप्त करके । पृथिव्याः = पृथ्वी के। मानदण्डः इव = मानदण्ड की तरह । स्थितः = स्थित । अस्ति = है ।

अनुवाद - (भारत वर्ष के) उत्तर दिशा में देवतास्वरूप (देवता-मय) हिमालय नामक (हिमालय नाम से प्रसिद्ध) पर्वतराज (समस्त पर्वतों का राजा) पूर्व और पश्चिम में स्थित (दोनों) समुद्रों को व्याप्त करके (पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा तक फैलकर) मानों पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित (विद्यमान) है।

समास - देवता आत्मा यस्य सः देवतात्मा (बहुव्रीहि) । हिमानाम् आलयः हिमालयः (षष्ठी तत्पुरूष)। न गच्छन्तीति नगाः (न´ञ् तत्पुरूष), अधिको राजा अधिराजः (प्रादि तत्पुरूष), नगानाम् अधिराजः नगाधिराजः (षष्ठी तत्पुरूष) । पूर्वश्च अपरश्च तौ पूर्वापरौ (द्वन्द्व)। तोयानां निधिः, तौ तोयनिधी (षष्ठी तत्पुरूष) । मानस्य दण्डः मानदण्डः (ष0त0) ।

व्याकरण - देवता-दीव्यतीति देवः, देव एव देवता, स्वार्थे तल्प्रत्यय 'तलन्तं स्त्रियाम्' इस नियम से इस पद को स्त्रीलिंग टाप् प्रत्यय हुआ। अधि + राजन् +टच्, 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति समासान्तष्टच् । वगाह्य-अवगाह्य = अव + गाह् + कत्वा (ल्यप्), भागुरि के मतानुसार अव के अ का लोप हो गया है । मानस् - भाव मे ल्युट् अथवा मीयतेऽनेनेति मानम् - करण में ल्युट् ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

छन्द - उपजाति । इस सर्ग के अधिकांश श्लोकों में उपजाति वृत्त है ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि भारत वर्ष के उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ विशाल हिमालय पर्वत मानों पृथ्वी की लम्बाई नापने वाला माप-दण्ड है जिसके दो पलड़ों के रूप में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दोनों समुद्र स्थित है । ।।1।।

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वान्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ।। 2 ।।

अन्वय - सर्व शैलाः यं वत्सं परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ दोग्धरि स्थिते (सति) पृथूपदिष्टां गोरूपधारिणीं) धरित्रीं भास्वन्ति रत्नानि महौषधी च (क्षीरत्वेन परिणताः) दुदुहुः।

पदार्थ - सर्व शैलाः = समस्त पर्वत। यम् = जिस (हिमालय) को। वत्सं = बछड़ा । परिकल्प्य = कल्पना करके । दोहदक्षे = दुहने में कुशल। मेरौ = मेरू पर्वत के । दोग्धरि = दुहने वाला । स्थिते = स्थित होने पर । पृथूपदिष्टाम् = पृथु राजा की आज्ञा से । धरित्रीम् = पृथ्वी को । भास्वन्ति = चमकते हुए । रत्नानि = रत्नों को (मरकतमणि आदि)। महौषधीः = महान् औषधियों को (मृतसंजीवनी आदि) दुदुहुः = दुहा ।

अनुवाद - समस्त पर्वतों ने जिस (हिमालय) को बछड़ा बनाकर दुहने में कुशल सुमेरू पर्वत के दुहने वाला होने पर पृथु राजा की आज्ञा से पृथ्वी के चमकते हुए रत्नों को और (संजीवनी आदि) महान औषधियों को दुहा ।

समास - सर्वे च ते शैलाः सर्वशैलाः (कर्मधारय)। दोहे दक्षः दोहदक्षः, तस्मिन् दोहदक्षे (सप्तमी तत्पुरूष । महत्यश्च ता ओषधयः, महौषधयः, ता महौषधीः (कर्म0) । पृथुना उपदिष्टा पृथुदिष्टा, ताम् पृथूपदिष्टाम् (तृतीया तत्पु0)। भास्वन्ति च भास्वत्यश्चेति भास्वन्ति (एक शेष) ।

व्याकरण - परिकल्प्य = परि + कल्प् + ल्यप् । दोग्धरि = दुह् + तृच् (स0ए0व0) । स्थिते - सति सप्तमी, इसे 'भावलक्षणा' सप्तमी भी कहते हैं । उपदिष्टाम् = उप + दिश् + क्त + टाप् (दि0ए0व0)। भास्वन्ति-भास्वत् शब्द का द्वितीया बहु-वचन, नपुंसकलिंग का रूप है तथा रत्नानि शब्द का विशेषण है । दुदुहः - दुह + लिट्, प्रथम पुरूष, बहुवचन ।

अलंकार - तुल्ययोगिता ।

विशेष - प्राचीन काल में नारायण के अंश से उत्पन्न सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ पृथु राजा ने प्रजा के कल्याण के लिए गोरूप पृथ्वी से अनेक रत्नों का दोहन किया था। उस समय समस्त पर्वतों ने पृथु राजा की आज्ञा से सुमेरू पर्वत को ग्वाला तथा हिमालय को बछड़ा बनाकर पृथ्वी रूपी गौ से मरकत आदि मणियों तथा मृत संजीवनी

आदि जड़ी-बूटियों का दोहन किया था। प्रस्तुत श्लोक से 16 श्लोक पर्यन्त हिमालय की शोभा का वर्णन है। ॥ 2 ॥

अनन्त-रत्न-प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥3॥

अन्वय - अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम्। हि गुणसन्निपाते एकः दोषः इन्दोः किरणेषु अङ्कः इव निमज्जति।

पदार्थ - अनन्तरत्नप्रभवस्य = असंख्य रत्नों के उत्पत्ति (उद्गम) स्थान। यस्य = जिस (हिमालय) का। हिमम् = बर्फ। सौभाग्यविलोपि = सौन्दर्य का विनाशक। न जातम् = नहीं हुआ। हि = क्योंकि। गुणसन्निपाते =गुणों के समूह में। एकः दोषः एक दोष। इन्दोः = चन्द्रमा की। किरणेषु = किरणों में। अङ्कः इव = कलङ्क की तरह। निमज्जति = छिप जाता है।

अनुवाद - असंख्य रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय के सौन्दर्य को हिम नष्ट नहीं कर सका, क्योंकि अनेक गुणों के समूह में एक दोष (अवगुण) चन्द्रमा की किरणों में कलंक की तरह विलीन हो जाता है।

समास - अविद्यमानः अन्तः येषां तानि अनन्तानि (बहु0), अनन्तानि च तानि रत्नानि अनन्तरत्नानि (कर्म0), अनन्तरत्नानां प्रभवः तस्य अनन्तरत्नप्रभवस्य (ष0 तत्पु0)। सौभाग्यं विलुम्पति तच्छील इति सौभाग्यविलोपि (उपपद तत्पु0)। गुणानां सन्निपातः गुणसन्निपातः तस्मिन् गुणसन्निपाते (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - अनन्तानि - अविद्यमानः अन्तः येषां तानि। यहाँ 'अविद्यमानः' में विद्यमान पद का वैकल्पिक लोप हुआ है। प्रभव-प्र + भू + अप्। सौभाग्यम् - सुभग् +ष्यञ्, सुभगस्य भावः सौभाग्यं 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इच्युभयपदवृद्धि। हिमम्-कर्त्ता है।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास, उपमा।

विशेष - हिमालय को अपरिमित रत्नों का भण्डार कहा गया है। इस पर्वत पर अनेक श्रेष्ठ वस्तुएँ उत्पन्न होती है। उमा नामक कन्यारत्न, वैदूर्यादि मणिरत्न, देवदारू प्रभृति वृक्षरत्न, मृतसंजीवनी आदि औषधीरूपी रत्न, गंगादि नदी रूपी, रत्न तथा सोमलता आदि यज्ञ द्रव्य का रूप रत्न हिमालय पर ही उत्पन्न होते हैं। इसीलिए कवि ने हिमालय के लिए अनन्तरत्न प्रभवस्य विशेषण का प्रयोग किया है। असंख्य रत्नरूपी गुण समूहों के कारण हिमालय का बर्फ रूपी एक दोष उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं कर सका, क्योंकि बहुत से गुणों के समूह में एक दोष उसी प्रकार विलुप्त हो जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है। तात्पर्य यह है कि हिम के कारण हिमालय की शोभा कम नहीं हुई ॥3 ॥

यश्चाप्सरो-विभ्रम-मण्डानानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेद-विभक्तरागामकाल-सन्ध्यामिव धातुमत्ताम्। 4।

अन्वय - यः च अप्सरोविभ्रममण्डानानां सम्पादयित्रीं बलाहकच्छेदविभक्तरागां धातुमत्ताम् अकालसन्ध्याम् इव शिखरैः बिभर्त्ति।

पदार्थ - यः = जो हिमालय। अप्सरोविभ्रममण्डानानाम् = अप्सराओं के विलासमय अलंकारों का। सम्पादयित्रीम् = सम्पादन करने वाली। बलाहक = मेघ। छेद = खण्डों (टुकड़ों में)। विभक्तरागाम् = रंग का संक्रमण करने वाली। धातुमत्ताम् = सिन्दूर, गैरकादि (गेरू आदि) धातु सम्पत्ति को। अकालसन्ध्याम् इव = असमय में प्राप्त संध्या की तरह। शिखरैः = शिखरों से। बिभर्ति = धारण करता है।

अनुवाद - जो (हिमालय) अप्सराओं के विलासमय अलंकरणों का सम्पादन करने वाली (अप्सराओं के श्रृंगार की उपादान भूत) और मेघ-खण्डों (आस-पास विचरण करने वाले बादल के टुकड़ों) में (अपनी लालिमा से)

रंग का संक्रमण (संचार करने वाली गेरू आदि धातुओं को असम्य (सूर्यास्त से अतिरिक्त समय) में प्राप्त संध्या की तरह शिखरों पर धारण करता है।

समास - विभ्रमेण मण्डनम् विभ्रममण्डनम् (तृ0तत्पु0), अप्सरसां विभ्रममण्डनम् तेषां अप्सरोविभ्रममण्डनानाम् (ष0 तत्पु0) बलाहकानां छेदाः बलाहकच्छेदाः (ष0 तत्पु0)। बलाहकच्छेदेषु विभक्तः (स0 तत्पु0) रागो यया ताम् बलाहकच्छेदविभक्तरागाम् (बहु0)। अकाले सन्ध्या ताम् अकालसन्ध्याम् (स0 तत्पु0)।

व्याकरण - सम्पादयित्रीम् - सम् + पद् + णिच् + तृण् + ङीप्। धातुमत्ताम्-धातु + मतुप् + तल् +टाप्, द्वितीया एक0। बिभर्ति- भृ + लट्, प्र0 पु0, एक0।

अलंकार - जात्युत्प्रेक्षा।

विशेष - हिमालय की कतिपय चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। कभी-कभी उन चट्टानों के समीप पहुँचे हुए बादल के टुकड़े उनकी छाया पड़ने पर संध्याकालीन बादलों के समान रंग-बिरंगे दिखलाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर वहाँ की अप्सराओं को संध्या होने के पूर्व ही संध्या का भ्रम हो जाता है और वे सायंकालीन नृत्य-गान के लिए श्रृंगार करना प्रारम्भ कर देती हैं। **॥ 4 ॥**

आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टि भिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ 5 ॥

अन्वय - सिद्धाः आमेखलं सञ्चतां घनानां अधः सानुगतां छायां निषेव्य, वृष्टिभिः उद्वेजिताः (सन्तः) यस्य आतपन्ति श्रृङ्गाणि आश्रयन्ते।

पदार्थ - सिद्धाः = सिद्ध लोग (अणिमा आदि सिद्धि को प्राप्त करने वाले अथवा विश्रवाबसु प्रभृति सिद्ध लोग)। आमेखलाम् = मध्यभाग (नितम्ब) पर्यन्त। सञ्चरताम् = विचरण करते हुए (संचरणशील)। घनानाम् = बादलों की। अधः सानुगताम् = शिखर के नीचे की। छायाम् = छाया का। निषेव्य = सेवन करके। वृष्टिभिः =वर्षा से। उद्वेजिताः = पीड़ित (होकर)। यस्य = जिस (हिमालय) के। आतपवन्ति = धूप से युक्त। श्रृंगाणि = शिखरों का। आश्रयन्ते = आश्रय
लेते हैं।

अनुवाद - सिद्ध लोग (हिमालय के) के मध्य भाग में संचरणशील मेघों की निम्न शिखर स्थित छाया का सेवन करके (पुनः) वर्षा से पीड़ित होकर जिसके धूप से युक्त शिखरों पर चले जाते हैं।

समास - मेखलामभिव्याप्य इति आमेखलम् (अव्ययी0)। अधः स्थितानि सानूनि अधः सानूनि (मध्यमपदलोपी कर्म0), अधःसानूनि गता अधःसानुगता ताम् अधः सानुगताम् (द्वि0तत्पु0)।

व्याकरण - संचरताम् - सम् + चर् + शतृ, (षष्ठी बहु)। 'समुपसर्ग-पूर्वकाज्वर्धातोः 'लृटः शतृशानचावप्रथममासमानाधिकरणे' इति शतृप्रत्यय। निषेव्य-नि + सेव् +ल्यप्। उद्वेजिताः - उद् + विज् + णिच + क्त, प्रथमा बहु0। आतपवन्ति-आतप + मतुप्, (द्वितीया बहु0)। आश्रयन्ते - आ + श्रि +लट्, प्र0 पु0, (बहु0)।

अलंकार - परिकर, काव्यलिंग।

विशेष - हिमालय की कतिपय चोटियाँ इतनी ऊँची हैं कि मेघ भी उनके मध्यभाग तक ही पहुँच पाता है, उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिए निम्न भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग अधिक वर्षा से पीड़ित होने पर बादलों के ऊपर उठे हुए हिमालय के उन शिखरों पर चले जाते हैं, जहाँ उस समय धूप होती है। तात्पर्य यह है कि हिमालय बादलों से भी ऊँचा है। **॥5॥**

पदं तुषार - स्रुतिधौत-रक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वाऽपि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ 6 ॥

अन्वय - यस्मिन्किराताः तुषारस्रु तिधौतरक्तं हतद्विपानां केसरिणां पदम् अदृष्ट्वा अपि नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलौ मार्गं विदन्ति।

पदार्थ - यस्मिन् = जिस (हिमालय) में। किराताः = किरात लोग। तुषारस्रुतिधौतरक्तम् = हिमस्राव से धुले रक्त से सने। हतद्विपानाम् = हाथियों को मारने वाले (गजहिंसक)। केसरिणाम् = सिंहों के। पदम् = पदचिन्ह् को। अष्दृष्ट्वा = न देखकर। अपि = भी। नखरन्ध्रमुक्तैः = नाखूनों के छिद्रों से गिरी हुई। मुक्ताफलैः = (गज) मुक्ताओं के द्वारा। मार्गम् = मार्ग को। विदन्ति = जानते हैं।

अनुवाद - जिस (हिमालय) में किरात लोग, हाथियों का वध करने वाले सिंहों के पदचिन्हों को, जिनका रक्त हिम की धारा से धुल गया है, न देखकर भी (जिनके) नखछिद्रों से गिरे हुए मोतियों के द्वारा उनके गन्तव्य मार्ग को जानते हैं।

समास - तुषाराणां स्रुतयः तुषारस्रुतयः (ष0 तत्पु0), तुषारस्रुतिभिः धौतं तुषारस्रुतिधौतम् (तृ0तत्पु0), तुषास्रुतिधौतं रक्तं यस्य तत् तुषारस्रुति-धौतरक्तम् (बहु0)। हता द्विपाः यैः ते हतद्विपाः तेषाम् हतद्विपानाम् (बहु0)। नखानां रन्ध्राणि नखरन्ध्राणि (ष0तत्पु0), नखरन्ध्रेभ्यो मुक्तानि तैः नखरन्ध्रमुक्तैः (ष0 तत्पु0)। मुक्ता एवं फलानि, तैः मुक्ताफलैः (कर्म0)।

व्याकरण - स्रुति-स्रवणं श्रुतिः, स्रुघातोः 'स्त्रियां क्तिन्' इति भावे क्तिन्प्रत्ययः। द्विपानाम्-द्वाभ्यां पिबन्तीति द्विपाः, द्वि + पा + क। केसरिणाम्-केसर + इन्, 'अत इनि ठनौ' इति केसरशब्दा न्नित्य योगे इनि -प्रत्ययः। अदृष्ट्वा - न दृष्ट्वा - नञ् +दृश् + क्त्वा।

अलंकार - उदात्त।

विशेष - हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले सिंह जब हाथियों का शिकार करके चले जाते हैं तब रक्त से लाल उनके पंजों की छाप, पिघलने के कारण निरन्तर प्रवाहित हो रही हिम की धारा से धुल जाती है। फिर भी उन सिंहों के नखों से गिरी हुई गजमुक्ताओं को देखकर वहाँ के किरात यह पता लगा लेते हैं कि सिंह किस दिशा में गयें। **।।6 ।।**

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दु-शोणाः।
व्रजन्ति विद्याधर-सुन्दरीणामनंगलेख-क्रियोपयोगम् ।।7 ।।

अन्वय - यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुंजरबिन्दुशोणाः भूर्जत्वचः विद्याधर-सुन्दरीणाम् अनग्ङलेखक्रियया उपयोगं व्रजन्ति।

पदार्थ - यत्र = जहाँ। धातुरसेन = धातुरस (सिन्दूर आदि द्रव)। न्यस्ताक्षराः = लिखे गये वर्ण। कुज्'रबिन्दुशोणाः = गजबिन्दु के समान लाल। भूर्जत्वचः = भोजपत्र। विद्याधरसुन्दरीणाम् = विद्याधरियों (विद्याधरों की स्त्रियों) के। अनग्ङलेखक्रियया = प्रेम-पत्र लिखने के। उपयोगम् = काम में। व्रजन्ति= आते हैं।

अनुवाद - जहाँ विद्याधरों की सुन्दरियाँ, भोजपत्रों को-जिनपर सिन्दूर द्रव (अथवा गेरू आदि के द्रव) से लिखे गये अक्षर गजबिन्दु के समान लाल मालूम पड़ते हैं-प्रेमपत्र लिखने के काम में लाती हैं।

समास - धातूनां रसः तेन धातुरसेन (ष0 तत्पु0)। न्यस्तानि अक्षराणि यासु ताः न्यस्ताक्षराः (बहु0 व्री0)। कुंजराणां बिन्दवः इति कुंजर'बिन्दवः (ष0 तत्पु0), कुंजरबिन्दव इव शोणाः कुंजरबिन्दव इव शोणाः कुंजरबिन्दुशोणाः (उपमित् कर्म0)। भूर्जानां त्वचः भूर्जत्वचः (ष0 तत्पु0)। विद्याधराणां सुन्दर्यः तासाम्, विद्याधरसुन्दरीणाम् (ष0 तत्पु0)। अनंगस्य लेखाः (ष0 तत्पु0), अनंगलेखानां क्रिया तया अनंगलेखक्रियया (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - न्यस्त - नि + अस् + क्त। भूर्जत्वचः-कर्तृपद है।

अलंकार - लुप्तोपमा।

विशेष - तात्पर्य यह है कि हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले भोजपत्रों पर लिखे गए अक्षर हाथी की सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों के समान प्रतीत होती हैं **॥7॥**

बोध प्रश्न-1

अभ्यास प्रश्न - 1

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. हिमालय भारत के किस दिशा में स्थित है

क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

2.किससे रत्नों और ओषधियों को धुलवाया

क. पृथ्वी ख. हिमालय ग. सुमेरू घ. मैनाक

रिक्त स्थान भरिये -

3.अनन्त ..... यस्य।

4. नख छिद्रों से गिरे हुए .....से सिंहों के मार्ग जान जाते हैं।

सही गलत का निशान लगाएं -

5. हिमालय अनेक रत्नों का उत्पत्ति स्थान है ( )

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ 8॥

अन्वय - यः दरीमुखोत्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् पूरयन् उद्गास्यतां किन्नराणां तानप्रदायित्वम् उपगन्तुम् इच्छति इव।

पदार्थ - यः = जो (हिमालय) । दरीमुखोत्थेन = गुहामुख से उत्पन्न। समीरणेन = वायु के द्वारा । कीचकरन्ध्रभागान् = कीचक नाम के बाँसों में स्थित छिद्र प्रदेशों को । पूरयन् = भरता हुआ (बजाता हुआ) । उद्गास्यताम् = उच्च स्वर मे गाने वाले । किन्नराणाम् = किन्नरों (देवगायकों) को । तानप्रदायित्वम् = तान प्रदान करने की । उपगन्तुम् इच्छति इव = मानो इच्छा करता हैं।

अनुवाद - जो (हिमालय) गुफा रूपी मुख से उत्पन्न वायु के द्वारा वेण के छिद्रों को भरता हुआ उच्च स्वर में गाने वाले किन्नरों को मानों तान प्रदान करने की इच्छा करता है।

समास - दरी एवं मुखं दरीमुखं (कर्म0), दरीमुखादुत्तिष्ठतीति दरी - मुखोत्थः तेन दरीमुखोत्थेन (पं0 तत्पु0) । कीचकरन्ध्राणां भागाः तान् कीचक-रन्ध्रभागान् (ष0 तत्पु0) । तानं प्रदातुं शीलं यस्य सः, तस्य भावः तान प्रदायित्वम् (उपपद बहु0 व्री0)।

व्याकरण - उत्थेन-उद् + स्था + क्त, तृ0 एक0, 'आतश्चोपसर्गे' इति कर्तरि क्तः। पूरयन् - तृ + णिच् + शतृ, प्र0 एक0। उद्गास्यताम् - उद् + गै + स्य+शतृ, ष0 बहु0। तान- प्र + दा + णिनि + त्व, द्वि एक0, ' सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये ' इति तानप्रोपदात् दाधातोर्णिनिप्रत्ययः। 'तस्य भावस्तलौ' इति भावार्थे- त्व प्रत्ययः। उपगन्तुम् - उप + गम् +तुमुन्।

अलंकार - उत्प्रेक्षा।

विशेष - हिमालय पर्वत पर छेदवाले बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो देव गायक किन्नरों के साथ ये संगत कर रहे हों **॥8॥**

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥9॥

अन्वय - यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुं विघट्टितानाम् सरलद्रुमाणां स्रुतक्षीरतया प्रसूतः गन्धः सानूनि सुरभी करोति।

पदार्थ - यत्र = जहाँ। करिभिः = हाथियों के, कपोलकण्डूः = गालों की खुजली को। विनेतुम् = मिटाने के लिए। विघट्टितानां = रगड़े गये। सरलद्रुमाणाम् = देवदारू के वृक्षों से। स्रुतक्षीरतया = बहने वाले दुग्ध से। प्रसूतः उत्पन्न। गन्धः = सुगन्ध। सानूनि = शिखरों को। सुरभीकरोति = सुगन्धित करती हैं।

अनुवाद - जहाँ हाथियों के द्वारा अपने गालों (गण्डस्थल) की खुजली मिटाने के लिए रगड़ने गए देवदारू के वृक्षों से बहने वाले दूध से उत्पन्न गन्ध शिखरों को सुगन्धित करती हैं।

समास - कपोलयो कण्डूः कपोलकण्डूः (ष0 तत्पु0)। सरलाश्च ते द्रुमाः तेषाम् सरलद्रुमाणाम् (कर्म0)। स्रुतानि क्षीराणि येषां ते स्रुतक्षीराः तेषां भावस्तया स्रुतक्षीरतया (बहु0व्री0)।

व्याकरण - करिभिः - करः (शुण्डादण्डः) अस्ति येषां ते इति करिणस्तैः, करशब्दात् 'अत इनि ठनौ' इति नित्ययोगे इनिः, करि+इनि। विनेतुम्-वि + नी + तुमुन् (तुम्) 'तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'। प्रसूतः- प्र+सू + क्त, प्र 0 एक 0। सुरभीकरोति - सुरभि +च्वि + कृ, लट्, प्र0पु0, एक0।

विशेष - जब हिमालय पर निवास करने वाले हाथी अपनी कनपटी को खुजलाने के लिए देवदारू वृक्षों से माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहने लगता हैं। जिससे हिमालय की समस्त चोटियाँ सुरभिमान हो जाती है **॥ 9॥**

वनेचराणां वनिता-सखानां दरीगृहोत्संग-निषक्त-भासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥ 10 ॥

अन्वय - यत्र रजन्यां दरीगृहोत्सग्ङ निषक्तभासः ओषधयः वनितासखानाम् वनेचराणाम् अतैलपुराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति।

पदार्थ - यत्र = जहाँ। रजन्याम् = रात्रि में। दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः = (दरीगृह = गुफा, उत्संग गोद गुफाओं के भीतर प्रकाश को फैलाती हुई। ओषधयः वनेचरों के लिए। अतैलपुराः = तेल की अपेक्षा से रहित। सुरतप्रदीपाः= सम्भोगकालीन दीपक। भवन्ति = हो जाती हैं, काम करती हैं।

अनुवाद - जहाँ रात में गुफाओं के भीतर प्रकाश फैलाती हुई ओषधियाँ, (अपनी) प्रेमिकाओं के साथ (विहार करने वाले) वनेचरों के लिए, तेल की अपेक्षा से रहित संभोगकालीन दीपक का काम करती हैं।

समास - दर्या एव गृहाः दरीगृहाः (कर्म0), दरीगृहाणाम् उत्संगा: (ष0 तत्पु0), तेषु निषक्ताः (स0 तत्पु0), भासः (कर्म0) यासाम् ताः दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः (बहु 0 व्री0)। वनितानां सखायः वनितासखाः तेषाम् (ष0 तत्पु 0)। वने चरन्तीति वनेचराः तेषाम् (उपपद तत्पु0)। तैलेन पूर्यन्त इति तैलपुराः (उपपद तत्पु 0), न तैलपुराः अतैलपुराः (न´ तत्पु0)। सुरतेषु प्रदीपाः सुरतप्रदीपाः (स0 तत्पु0)।

व्याकरण - निषक्त - नि + सज् + क्त। वनितासखानाम् - वनितानां सखायः - वनितासखि + टच्। वनेचराणाम् - वने+ चर् + ट (अलुक् तत्पु0)।

अलंकार – संसृष्टि।

विशेष- हिमालय पर कुछ ऐसी औषधियाँ हैं, जो प्रौढ़ हो जाने पर, रात के समय, चतुर्दिक् प्रकाश फैलाती हैं। कवि यहाँ ऐसी औषधियों से भी संभोगकालीन दीपक का काम ले रहा हैं ॥10॥

उद्वेजयत्यंगलिपार्ष्णिभागान् मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥11॥

अन्वय - यत्र शिलीभूतहिमे अंगलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अपि मार्गे दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता अश्वमुख्यः मन्दां गतिं न भिन्दन्ति।

पदार्थ - यत्र = जहाँ (हिमालय पर) । शिलीभूतहिमे = बर्फ की चट्टानें । अंगलिपार्ष्णिभागान् = अंगुलियों एवं चरणतलों को । उद्वेजयति = अत्यन्त कष्ट देने वाली होती हुई । अपि = भी। मार्गे = मार्ग में । दुर्वहश्रोणिपयोधरार्त्ता = (दुर्वह = उठाने में असह्य, श्रोणि = नितम्ब, पयोधर = स्तन) नितम्बों और स्तनों के भार से पीड़ित । अश्वमुख्यः = किन्नरियाँ । मन्दाम् =(अपनी) मन्द । गतिम् = गति को) न भिन्दन्ति = नहीं छोड़तीं ।

अनुवाद - जहाँ (गमनकाल में) हिमशिलाओं द्वारा अंगुलियों एवं चरणतलों के खिन्न हो जाने पर भी, नितम्बों तथा स्तनों के भार से पीड़ित किन्नरियाँ मार्ग में (अपनी स्वाभाविक) मन्दगति को नहीं छोड़ पाती हैं।

समास - शिलीभूताः हिमाः यस्मिन् तत्र शिलीभूतहिमे (बहु0) । अंगलयश्च पार्ष्ण्यश्चेति अंगलिपार्ष्णि (द्वन्द्व), अंगलिपार्षणिनो भागाः तान्,अंगुलिपार्ष्णिभागान् (ष0 तत्पु0) । श्रीणयश्च पयोधराश्च श्रोणिपयोधरेण आर्त्ताः दुर्वहश्रोणिपयोधरार्त्ताः। अश्वानां मुखानीव यासां ताः अश्वमुख्यः (बहु0) ।

व्याकरण - शिलीभूत-अशिलाः भूताः शिलीभूताः, शिला+च्वि+भू + क्त । अंगलिपार्षणि - अंगलयश्च पार्ष्णी च अंगलिपार्ष्णि (द्वन्द्व), समाहार में एकवद्भाव । उद्वेजयति - उद् + विज्+ णि+ शतृ, स0 ए0 व0 । दुर्वह - दुर् + वह् + अच् ।

अलंकार – काव्यलिंग:।

विशेष - हिममय मार्ग पर नंगे पाँव चलती किन्नरियों के पैर के तलवे ठण्ड के कारण सुन्न-से हो जाते हैं। प्रायः ऐसी स्थिति में तेज चलना ही श्रेयस्कर होता है। किंतु नितम्बों एवं स्तनों के भार से खिन्न बेचारी किन्नरियाँ तेज चल ही कैसे सकती हैं ? **।।11।।**

दिवाकराद् रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवाऽन्धकारम् ।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ।।12।।

अन्वय - यः दिवाभीतम् इव गुहासु लीनं अन्धकारं दिवाकरात् रक्षति उच्चैः शिरसां शरणं प्रपन्ने क्षुद्रे अपि सति इव नूनं ममत्वम् (भवति) ।

पदार्थ - यः = जो (हिमालय) । दिवाभीतम् इव = मानो दिन में भयभीत । गुहासु = गुफाओं में । लीनम् = लीन । अन्धकारम् = अन्धकार को । दिवाकरात् = सूर्य से । रक्षति = बचाता है । उच्चैः शिरसाम् = श्रेष्ठ पुरूषों की । शरणम् = शरण में । प्रपन्ने = आये हुए । क्षुद्रे अपि = क्षुद्र व्यक्ति के प्रति भी । सति इव = सज्जन के समान । नूनम् = निश्चित रूप से । ममत्वम् (भवति) = आत्मीयता (होती है) ।

अनुवाद - हिमालय, मानो दिन में भयभीत एव गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार को सूर्य से रक्षा करता है (अथवा- जो दिन में डरे हुए उल्लू की तरह गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार को सूर्य से बचाता है) । निश्चित रूप से महापुरूषों की अपनी शरण में आये हुए नीच व्यक्ति के प्रति भी सज्जन के समान (ही) आत्मीयता होती है ।

समास - दिवा भीतः तम् दिवाभीतम् (अव्ययी0) । दिवा करोति इति, तस्मात् दिवाकरात् (उदपदसमास) । उच्चैः शिरः येषाम् ते, तेषाम् उच्चैः शिसाम् (बहु0) ।

व्याकरण - दिवाकरात् - दिवा + कृ + ट, पंचमी ए0 व0 । ममत्वम्- मम +त्वं, यहाँ पर मम पद अव्यय हैं ।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास ।

विशेष - ज्ञातव्य है कि, उल्लू दिन में नहीं निकलते एंव अन्धेरे में छिपे रहते हैं। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने गुहालीन अन्धकार को हिमालय की शरण में आये हुए उलूक की तरह कल्पित किया है । शरणापन्न अन्धकार की रक्षा करने के कारण हिमालय की महानता की व्यंजना की गई हैं **।।12 ।।**

लांगलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचि गौरैः ।
यस्याऽर्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ।।13 ।।

अन्वय - चमर्यः इतस्ततः लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः यस्य गिरिराजशब्दम् अर्थयुक्त कुर्वन्ति।

पदार्थ - चमर्यः = चमरी गायें। इतस्ततः = चारों ओर। लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः = (लांगूल = पूँछ, विक्षेप = हिलाना, विसर्पि = विस्तृत) (निरन्तर) पूँछों के हिलाने से विस्तृत शोभावाले। चन्द्रमरीचिगौरैः = (मरीचि = किरण, गौर = श्वेत) चन्द्रकिरणों के समान श्वेत। बालव्यजनैः चामरों के द्वारा। यस्य = जिस (हिमालय) की। गिरिराजशब्दम् = गिरिराज पदवी को। अर्थयुक्तम् = सार्थक। कुर्वन्ति = बनाते हैं।

अनुवाद - चमरी गायें, चारों ओर (अपनी) पूँछों को हिलाकर (एक विशेष) शोभा को फैलाती हुई, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत (हिलते) चामरों के द्वारा, हिमालय को 'गिरिराज' पदवी
को सार्थक (सी) बना रही हैं।

समास - लांगूलानां विक्षेपाः लांगूलविक्षेपाः (ष0 तत्पु0), लांगूलविक्षेपै विसर्पिण्यः (तृ0 तत्पु0), शोभाः येषाम् तैः लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः (बहु0) । चन्द्रस्य मरीचयः चन्द्र मरीचयः चन्द्र मरीचि (ष0 तत्पु0), चन्द्रमरीचिभिः इव गौराणि तैः चन्द्रमरीचिगौरैः (उपमित कर्म0)। बाला एव व्यजनानि तैः बालब्यजनैः (कर्म0) । गिरिराजश्चासौ शब्दः तम् गिरिराजशब्दम् (कर्म0)।

व्याकरण - 'विसर्पिशोभैः यहाँ गोस्त्रियोरूपसर्जन्सय' इस सूत्र से 'विसर्पिणी' में ह्रस्व हुआ हैं। अर्थयुक्तम् - अर्थ + युज् + क्त द्वितीय एक0। गिरिराज - गिरि + राजन् + टच्। ''राजाहस्सखिभ्यष्टच्'' इससे टच् प्रत्यय हुआ है।

अलंकार – काव्यलिंग:।

विशेष - छत्र, चँवर आदि से सुशोभित होने पर ही राजत्व की प्रतिष्ठा है। हिमालय पर पायी जाने वाली चमरी गायों की हिलती हुई पूँछों की, कवि ने यहाँ चँवर के रूप में कल्पना की है। इस प्रकार हिमालय के राजत्व को 'गिरिराज' पद से प्रतिष्ठित किया गया है **।।13 ।।**

यत्रांऽशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरूषाऽग्ङनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ।। 14।।

अन्वय - यत्र अंशुकालेपविलज्जितानां किम्पुरूषांऽगनानां यदृच्छया दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः
जलदाः तिरस्करिण्यः भवन्ति।

पदार्थ - यत्र = जहाँ (हिमालय में) । अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् = वस्त्र के अपहरण से अत्यन्त लज्जित। किम्पुरूषांगानानाम् = किन्नरियों के लिए। यदृच्छया = अकस्मात्, स्वेच्छा से, दैवगति से। दरीगृह = गुफा रूप भवन के। द्वारविलम्बिबिम्बाः = द्वार पर लटकने वाले। जलदाः = बादल। तिरस्करिण्यः = आवरण, पर्दे । भवन्ति = बन जाते हैं।

अनुवाद - जहाँ (जिस हिमालय में) वस्त्रापहरण से अतिलज्जित किन्नरियों के लिए स्वेच्छा से गुफारूपी भवन के द्वार पर लटकने वाले मेघ पर्दे बन जाते हैं।

समास - अंशुकानाम् आक्षेपः अंशुकाक्षेपः (ष0 तत्पु0), विशेषेण लज्जिताः (प्रादि तत्पु0), अंशुकाक्षेपेण विलज्जिताः तेषाम् अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् (तृ0 तत्पु0) । किम्पुरूषाणाम् अंगनाः तासाम् किम्पुरूषांगनानाम् (ष0 तत्पु0)। दरी एवं गृहम् दरीगृहम् (कर्म0), दरीगृहस्य द्वारम् दरीगृहद्वारं (ष0तत्पु0)। दरीगृहद्वारे विलम्बिनो (स0 तत्पु0) , बिम्बा येषाम् ते दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः (बहु0)।

व्याकरण - विलज्जित - वि + लज्ज् + क्त। जलदाः - जलं ददातीति - जल + दा + क। तिरस्करिण्यः - तिरस् + कृ + इन् + ङीप्, प्रथम बहु0।

अलंकार - परिणाम, रूपक।

विशेष - जब हिमालय की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ कामक्रीड़ा करती रहती हैं, तब उनके द्वारा वस्त्र खींच लेने पर वे अत्यन्त लज्जित हो जाती हैं। इस समय बादल उन गुफाओं के द्वार पर लटककर ओट करके अँधेरा कर देते हैं। इस प्रकार ये बादल किन्नर-बन्धुओं के लिए अकस्मात् लज्जा - कवच से बन जाते हैं **॥14॥**

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारूः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥ 15॥

अन्वय - भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् वोढा मुहुः कम्पितदेवदारूः भिन्नशिखण्डिबर्हः यद्वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते।

पदार्थ - भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् = (भागीरथी = गंगा, निर्झर = झरना, सीकर = जलबिन्दु) = गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को। वोढा = वह करने वाला। मुहुः = पुनः। कम्पितदेवदारू = जिसने देवदारू के वृक्षों को कम्पित किया हैं। भिन्नशिखण्डिबर्हः = (भिन्न = अलग, शिखण्डिबर्ह = मूयरपंख) = जिसने मयूरपंखों को अलग कर दिया है। यद्वायुः = जिसकी हवा। अन्विष्टमृगैः = मृगों के शिकारी। किरातैः = किरातों के द्वारा ।आसेव्यते = सेवित की जाती है।

अनुवाद - गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को वहन करने वाली, देवदारू के वृक्षों को बारंबार कम्पित करने वाली तथा मोरों के पंखों को अलग करने वाली हिमालय की हवा का मृगों के शिकारी लोग भली प्रकार सेवन करते हैं।

समास - भागीरथ्याः निर्झरः भागीरथीनिर्झरः (ष0तत्पु0), भागीरथी-निर्झरस्य सीकराः तेषाम् भागीरथी निर्झरसीकराणाम् (ष0 तत्पु0)। कम्पिता देवदारवो येन सः कम्पितदेवदारूः (बहु0)। भिन्नानि शिखण्डिना बर्हाणि येन सः भिन्नशिखण्डिबर्हः (बहु0)। यस्य वायुः यद्वायुः (ष0 तत्पु0)। अन्विष्टाः मृगाः यैः तैः अन्विष्टमृगैः (बहु0)।

व्याकरण - वोढा - वह् +तृच्, प्रथम पु0 एक0। भिन्नशिखण्डिबर्हः - शिखण्डः अस्यास्तीति शिखण्डी, खिण्ड + इति। शिखण्डिनां बर्हाणि (ष0 तत्पु0) शिखण्डिबर्हाणि येन सः। अन्विष्ट - अनु + इष् + क्त। आसेव्यते - आ + सेव् + य, लट्, प्रथम पु0, एक0 (कर्मणि रूपम्)।

अलंकार - स्वभावोक्ति।

विशेष - इस श्लोक द्वारा हिमालय पर बहने वाली हवा की शीतलता एवं पवित्रता व्यंजित की गयी है **॥ 15॥**

बोधप्रश्न-2

अभ्यास प्रश्न 2 -

एक शब्द में उत्तर दीजिए -

1- इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है
2- हिमालय कहॉ स्थित है
3- किन चोटियों पर गेरु आदि धातुओं की रगं विरंगी चट्टाने हैं
4- संन्ध्याकाल के समय चट्टानें किस प्रकार दिखायी देती हैं
5- हाथियों का शिकार करने वाले सिंह कहाँ निवास करते हैं

बहुविकल्पीय प्रश्न

1- बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं -

क-जंगल में ख - वन में
ग-घर में घ- हिमालय पर

2 - श्लोक संख्या दश में वर्णन है-
क- हाथी का ख- सिंह का
ग- मोर का घ- औषधियों का

3 - श्लोक संख्या ग्यारह में वर्णन है-
क- हाथी का ख- किन्नरियों का
ग- मोर का घ- औषधियों का

4 - श्लोक संख्या तेरह में वर्णन है-
क- हाथी का ख- किन्नरियों का
ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

5 - श्लोक संख्या चौदह में वर्णन है-
क- सप्तर्षियों का ख- किन्नरियों का
ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

रिक्त स्थनों की पूर्ति कीजिए

1. दिवाकराद्रक्षति .....।
2. गंगा के ..... को वहन करने वाला।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याऽग्रसरोरूहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ।। 16 ।।

अन्वय - सप्तर्षिहस्ताऽवचिताऽवशेषाणि यस्य अग्रसरोरूहाणि पद्मानि अधः परिवर्तमानः विवस्वान् ऊर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रबोधयति।

पदार्थ - सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि = सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुनने के बाद शेष । यस्य = जिसके। अग्रसरोरूहाणि = ऊपर के सरोवरों में उत्पन्न । पद्मानि = कमलों को । अधः = नीचे । विवस्वान् = सूर्य । ऊर्ध्वमुखैः =ऊपर की ओर फैलने वाली। मयूखैः = किरणों से। प्रबोधयति = विकसित करता है।

अनुवाद - सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुन लेने के बाद बचे हुए जिस (हिमालय) की ऊँचाई पर स्थित सरोवरों में उत्पन्न कमलों को नीचे घूमता हुआ सूर्य (अपनी) ऊपर की ओर फैलने वाली किरणों से विकसित करता हैं ।

समास - सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः (द्विगु), सप्तर्षीणां हस्ताः सप्तर्षिहस्ताः(ष0 तत्पु0), सप्तर्षिहस्तैः अवचितानि सप्तर्षिहस्तावचितानि (तृ0तत्पु0) सप्तर्षिहस्तावचितेभ्यः अवशेषाः तानि सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि (पं0 तत्पु0) । अग्रे सरांसि अग्रसरांसि (स0तत्पु0) अग्रसरस्यु रूहाणि अग्रसरोरूहाणि (स0 तत्पु0)। ऊर्ध्व मुखं येषाम् तैः ऊर्ध्वमुखैः (बहु0)।

व्याकरण - अवचित - अव + चि +क्त। परिवर्तमानः - परि + वृत् + शानच् प्रथमा एक0। विवस्वान् - वि + वस् + मतुप्, प्रथमा एकवचन। प्रबोधयति - प्र+बुध् + णिच् लट्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार - उदात्त।

विशेष - तात्पर्य है कि हिमालय इतना ऊँचा है कि सूर्य भी उसके मध्यभाग में ही घूमता रहता है, इसलिए ऊँचे शिखरों में स्थित सरोवरों में उत्पन्न कमलों को वह नीचे की ओर फैलने वाली किरणों से विकसित नहीं कर सकता है। केवल ऊपर की ओर फैलने वानी किरणों से ही विकसित कर पाता है । सप्तर्षियों के नाम हैं - (1)

मरीचि, (2) अंगिरा(3) अत्रि, (4) पुलस्त्य, (5) पुलह, (6) क्रतु, (7) वसिष्ठ - ये सात ऋषि सप्तर्षि कहे जाते हैं । कुछ लोगों के मतानुसार - (1) कश्यप, (2) अत्रि, (3) भारद्वाज, (4) विश्वामित्र, (5) गौतम, (6) जमदग्नि (7) वसिष्ठ - ये सात ऋषि सप्तर्षि माने जाते हैं ॥ 16 ॥

यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥ 17 ॥

अन्वय - यस्य यज्ञांगयोनित्वं धरित्रीधरणक्षमं सारं च अवेक्ष्य प्रजापतिः स्वयं कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं अन्वतिष्ठत् ।

पदार्थ - यस्य = जिस (हिमालय) की । यज्ञांगयोनित्वम् = यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं की उत्पत्ति की कारणता को । धरित्रीधरणक्षमम् = पृथ्वी को धारण करने योग्य । सारम् = सामर्थ्य को । अवेक्ष्य = देखकर । प्रजापतिः = ब्रह्मा ने । स्वयम् =स्वयं । कल्पितयज्ञभागम् = कल्पित यज्ञांश को देकर । शैलाधिपत्यम् = पर्वतों का स्वामित्व । अन्वतिष्ठत् = प्रदान किया ।

अनुवाद - जिस हिमालय की यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं की उत्पत्ति की कारणता को एवं जिसकी पृथ्वी धारण करने योग्य सामर्थ्य को समझकर, ब्रह्मा ने (जिसे) स्वयं कल्पित यज्ञांश को देकर पर्वतों का स्वामी बनाया।

समास - यज्ञस्य अंगानि (ष0 तत्पु0), यज्ञांगानां योनिः यज्ञांगयोनिः, तस्य भावः तत् यज्ञांगयोनित्वम् (ष0 तत्पु0), धरित्रीधरणक्षमम् (स0 तत्पु0) । यज्ञाय भागः यज्ञ भागः (ष0 तत्पु0) । कल्पित यज्ञभागः यस्मिन् तत् (बहु0) । शैलानाम् अधिपत्यम् शैलाधिपत्यम् (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - अवेक्ष्य - अव + ईक्ष् + क्त्वा (ल्यप्) । अधिपत्यम्-अधिपति-यक्, द्वितीया एक0 ।

अलंकार – काव्यलिंग:।

विशेष - ज्ञातव्य है कि हिमालय समग्र यज्ञीय सामग्रियों एवं विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का प्रादुर्भाव-स्थल हैं **॥17 ॥**

स मानसीं मेरूसखः पितृणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्माऽनुरूपां विधिनोपयेमे ॥ 18 ॥

अन्वय - मेरूसखः स्थितिज्ञः सः पितृणां मानसीं मुनीनाम् अपि माननीयाम् आत्मानुरूपां मेनां कन्यां कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे ।

पदार्थ - मेरूसखः = सुमेरू के मित्र । स्थितिज्ञः = मर्यादा को जानने वाले । सः = उस (हिमालय) ने । पितृणाम् = पितरों के लिए भी । मानसीम् = मनः संकल्प से उत्पन्न । मुनीनाम् अपि = मुनियों के लिए भी । माननीयाम् = पूजनीय । आत्मानुरूपाम् = अपने अनुरूप । स्थितये = कुल की प्रतिष्ठा के लिए । विधिना = शास्त्रोक्त विधि से । उपयेमे = विवाह किया ।

अनुवाद - सुमेरू पर्वत के मित्र एवं मर्यादा के पालक हिमालय ने पितरों के मनः संकल्प से उत्पन्न मुनियों के लिए भी पूजनीय, अपने गुणों के अनुरूप मेना नाम की कन्या से, वंश की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रीय विधि से विवाह किया **॥18 ॥**

समास - मेरोः सख मेरू सखः (ष0 तत्पु0) । स्थितिं जानतीति स्थितिज्ञः (उपपद तत्पु0)। आत्मनः अनुरूपाम् आत्मानुरूपाम् (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - मेरूसखः - मेरूसखि + टच् । स्थितिज्ञः - स्थिति+ज्ञा: क । मानसीम्, मनस् + अण् + डीप्, द्वितीया एक0 । अनुरूपाम्- रूपम् अनुगता - अनुरूपा, ताम् । उपयेमे - उप + यम्, लिट्, प्र0पु0 एक0 आत्मनेपद ।

अलंकार - परिकर ।

कालक्रमेणाऽथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्याः ।।19।।

अन्वय - अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगेप्रवृत्ते मनोरमं योवनम् उद्वहन्त्याः भूधरराजपत्न्याः गर्भः अभवत्।

पदार्थ - अथ = तदनन्तर। कालक्रमेण = समयानुसार। तयोः उन दोनों के। स्वरूपयोग्ये = सौन्दर्य (अथवा शास्त्र) के अनुकूल। सुरतप्रसंगे = मैथुन व्यापार के। प्रवृत्ते = आरम्भ होने पर। मनोरम् = चित्ताकर्षक। यौवनम् = यौवन को। उद्वहन्त्याः = धारण करने वाली। भूधराजपत्न्याः = (भूधराज = पर्वतराज) = पर्वतराज (हिमालय) की पत्नी (मेना) को। गर्भः अभवत् = गर्भ हुआ।

अनुवाद - तदन्तर उन दोनों (हिमालय और मैना) के स्वरूप के अनुकूल मैथुन व्यापार के आरम्भ होने पर, मनोहारी यौवन का धारण करने वाली हिमालय की पत्नी ने गर्भ धारण किया। **।। 19 ।।**

समास - कालस्य क्रमः कालक्रमः तेन कालक्रमेण (ष0 तत्पु0)। स्वरूपस्य योग्य स्वरूप योग्य स्वरूपयोग्यः, तस्मिन् स्वरूपयोग्ये (ष0 तत्पु0)। सुरतस्य प्रसंगः तस्मिन् सूरंतप्रसंगे (ष0 तत्पु0)। भुवः धराः भूधराः (ष0 तत्पु0), भूधराणां राजा भूधरराजः (ष0 तत्पु0) भूधराजस्य पत्नी तस्याः भूधराजपत्न्याः (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - प्रवृत्ते - प्र + वृत् + क्त, सप्तमी एक0। यौवनम् - यूनो भावः, युवन् + अण्। उद्वहन्त्याः - उद् +वह् + शतृ + ङीप्, षष्ठी एक0।

अलंकार - परिकर।

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम्।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रावववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ।। 20।।

अन्वय- सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधिबद्धसख्यं पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धेअपि कुलिशक्षतानाम् अवेदनाज्ञं मैनाकम् असूत।

पदार्थ - सा = उस (मेना) ने। नागवधूपयोग्यम् = नाग कन्याओं से विवाह करने योग्य। अम्भोनिधिबद्धसख्यम् = समुद्र के साथ मित्रता रखने वाले। पक्षच्छिदि = पंखों को काटने वाले। वृत्रशत्रौ = वृत्र के शत्रु (इन्द्र) के। क्रुद्धे अपि = कुपित होने पर भी। कुलिशक्षतानाम् = व्रज के प्रहारों की। अवेदनाज्ञम् = पीड़ा से अपिरिचित। मैनाकम् = मैनाक नामक। पुत्रम् = पुत्र को। असूत = जन्म दिया।

अनुवाद - मेना ने नागकन्या से विवाह योग्य सरित्पति (समुद्र) से मित्रता करने वाले पर्वतों के पंखों को छेदन करने के लिए प्रवृत्त इन्द्र के कुपित होने पर भी वज्रप्रहार की अतिशय पीड़ा से अपरिचित मैनाक को उत्पन्न किया।

समास - नागस्य वधूः नागवधूः, नागवध्वाः उपभोग्यः नावधूपभोग्यः (ष0 त0) तं नागवधूपभोग्यम्। अम्भसां निधिः अम्भोनिधिः, सख्युर्भावः सख्यम्, अम्भोनिधिना बद्धं संख्यं ये सः अम्भोनिधिबद्धसख्यः (बहु0) तम्। पक्षान् छिनत्तीति पक्षच्छिद् (उपपद स0) तस्मिन्। कुलिशस्य क्षतानि कुलिशक्षतानि, तेषां कुलिशक्षतानाम्। वेदनां जानातीति वेदनाज्ञः, न वेदनाज्ञः, अवेदनाज्ञः, तम् अवेदनाज्ञम् (नञ् तत्पु0)।

व्याकरण - पक्षच्छिदि - छिद् + क्विप्। ''सत्सूद्विष0'' इस सूत्र से यहाँ पर क्विप् प्रत्यय हुआ है। अवेदनज्ञं - जानातीति ज्ञः। ज्ञा + कः। यहाँ पर 'इगुपधज्ञा-प्री-किरः' इस सूत्र के क प्रत्यय हुआ है।

अलंकार - परिकर, विशेषोक्ति।

विशेष - शिव की पूर्व पत्नी सती ने ही अपने पिता दक्ष द्वारा किये हुए यज्ञ में अपने पति को यज्ञीय भाग समर्पित न करने के कारण योगाग्नि द्वारा तत्क्षण अपने शरीर का उसी स्थान में परित्याग कर पुनः जन्म के लिए

हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में अपने को आश्रित किया। इस कथा को विस्तार रूप से महाभारत में देखना चाहिए।। **20।।**

अथवाऽवमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वत्नी।
सती-सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ।।21। ।

अन्वय - अथ दक्षस्य कन्या भवपूर्ण पत्नी सती पितुः अवमानने प्रयुक्ता योगविसृष्टदेहाः सती जन्मने तां शैलवधं प्रपेदे।

पदार्थ - अथ = इसके बाद। दक्षस्य कन्या = दक्ष की कन्या। भवपूव पत्नी = (भव = शिव) = शिव की प्रथम पत्नी। सती = सती ने। पितुः = पिता के। अवमानने = अपमान से। प्रयुक्ता = प्रेरित होकर। योगविसृष्टदेहा सती = योग विधि से (अपने) शरीर को त्याग कर। जन्मने = पुनर्जन्म प्राप्त करने के लिए। ताम् = उस। शैलवधूम् = पर्वत् (हिमालय) की पत्नी (मेना के गर्भ) प्रपेदे = प्रवेश किया।

अनुवाद - इसके बाद दक्ष(प्रजापति) की कन्या तथा (भगवान्) शंकर की प्रथम पत्नी सती ने पिता द्वारा किये गये (अपने पति अर्थात् शिव के) अपमान से खिन्न होकर योगबल से अपने शरीर को छोड़कर पुनर्जन्म को प्राप्त करने के लिए हिमालय की पत्नी के गर्भ में प्रवेश किया।

समास - पूर्वा चासौ पत्नी पूर्वपत्नी (कर्म0) , भवस्य पूर्वपत्नी भवपूर्व- पत्नी (ष0 तत्पु0)। योगेन। विसृष्ट देहः यया सा योगविसृष्टदेहा (बहु0)। शैलस्य वधूः ताम् शैलवधूम् (ष0 तत्पु0)

व्याकरण - प्रयुक्ता - प्र + युज् + क्त टाप्, प्रथमा एकवचन। विसृष्ट - वि + सृज् + क्त। प्रपेदे - प्र + पद्, लिट्, एक0, आत्मनेपद।

अलंकार – यमक।

विशेष - पुराकाल में दक्षप्रजापति ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए उन्होंनें सभी ऋषियों, देवताओं आदि को निमन्त्रित किया। किन्तु अपने जामाता शिव से असन्तुष्ट होने के कारण नहीं बुलाया। जिस समय देवता लोग अपने विमानों पर चढ़कर उस यज्ञ में भाग लेने के लिए जाने लगे तो शिव के पास बैठी सती को वह दृश्य देखकर बड़ा कौतूहल हुआ, कारण पूछने पर शिव ने उनसे उनके पिता द्वारा आयोजित यज्ञ की बात बतायी। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि तुम्हारे पिता हम पर क्रुद्ध हैं। इसीलिए हमें नहीं बुलाया गया। यज्ञ की बात सुनकर सती के मन में उसे देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। जब सती ने यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की तो शिव ने जाने से मना किया। सती जाने की जिद पर अड़ गयीं तब बाध्य होकर शिव ने अनाहूत सती को अपने गणों के साथ भेज दिया। पिता के घर पहुँचने पर सती ने देखा कि यज्ञभूति में शिव के लिए कोई आसन नहीं था। इसे सती ने अपने पति का घोर अपमान माना तथा कुपित होकर उन्होंने यज्ञभूमि में ही योगबल से अपने शरीर को दग्ध कर दिया। कालक्रम से सती ने मेना के गर्भ में प्रवेश किया **।।21।।**

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्या मुदपादि भव्या।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीतौविवोत्साहनुगणेन् सम्पत् ।।22।।

अन्वय - भव्या सा भूधराणाम् अधिपेन समाधिमत्यां तस्यां सम्यक्प्रयोगात् अपरिक्षतायां नीतौ उत्साहगुणेन सम्पत् इव उदपादि ।

पदार्थ - भूधराणाम् = पर्वतों के। अधिपेन = राजा (हिमालय) ने। समाधिमत्याम् = एकाग्रचित्त वाली (नियमवती)। तस्याम् = उस (मेना) में। सम्यक्प्रयोगात् = उचित प्रयोग से। अपरिक्षतायाम् = नष्ट न होने वाली। नीतौ = नीति में। उत्साहगुणेन = उत्साहरूपी गुण से। सम्पत् इव = सत्पत्ति के समान। भव्या = कल्याणी। सा = उस कन्या को। उदपादि =

उत्पन्न किया ।

अनुवाद - पर्वतराज हिमालय ने नियमावली उस मेना में उचित प्रयोग से, नष्ट न होने वाली नीति में उत्साह रूपी गुण से सम्पत्ति के समान कल्याणमयी उस (कन्या) को जन्म दिया।

समास - भुवः धरा भूधराः, तेषां भूधराणाम् (ष0 तत्पु0) । सम्यक् चासौ प्रयोगच्श्र तस्मात्, सम्यक्प्रयोगात् (कर्म0) । न परिक्षता अपरिक्षता, तस्याम् अपरिक्षतायाम् (नञ् तत्पु0) । उत्साह एवं गुणः तेन उत्साहगुणेन (कर्म0) ।

व्याकरण - भूधराणाम् - धरतीति घरः, धृ + अप्, भुवः धरः - भूधरः, तेषाम् । अधिपेन - अधि +पा + क, तृ0एक0 । समाधिमत्याम् - समाधि + मतुप् + डीप्, एक0 । अपरिक्षतायाम् - न + परि +क्षण् + क्त + टाप्, स0 एक0 । उदपादि - उद् +पद् + णि + लुङ्, प्रथम पु0 एक0 ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी परिश्रमी व्यक्ति द्वारा सम्यक् प्रयोग से विफल न होने वाली नीति उत्साह का मेल पाकर बड़ी सम्पत्ति को उत्पन्न करती है उसी प्रकार हिमालय ने पतिव्रता मेना से उस मंगलमयी कन्या को जन्म दिया **।। 22 ।।**

प्रसन्न-दिक्पांसु-विविक्तवातं शख्डः-स्वनाऽनन्तर-पुष्पवृष्टि ।
शरीरिणां स्थावरजंगमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ।।23 ।।

अन्वयः - प्रसन्नदिक् पांसुविविक्तवातं शख्डस्वनानन्तरपुण्यवृष्टि तज्जन्मदिनं स्थावरजंगमानां शरीरिणाम् सुखाय बधूव ।

पदार्थ - प्रसन्नदिक् = (दिक् = दिशा) = निर्मल दिशाओं वाला । पांसुविविक्तवातम् (पांसु = धूल, विविक्त = रहित, वात = वायु) = धूलविहीन वायु वाला । शंखस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि = (स्वन = ध्वनि) शंखध्वनि के पश्चात् फूलों की वर्षा से युक्त । तज्जन्मदिनम् = तत् = पार्वती का) = उसका जन्म दिन । स्थावरजंगमानाम् = (स्थावर = अचर, जंगम = चर) चराचर । शरीरिणाम् = देहधारियों के । सुखाय = सुख के लिए । बभूव = हुआ ।

अनुवाद - स्वच्छ दिशाओं , धूलरहित पवन से युक्त तथा शंखध्वनि के अनन्तर पुष्प वर्षा से शोभायमान पार्वती का जन्मदिन चराचर प्राणियों को (अत्यन्त) आनन्द देने वाला हुआ **।।23।।**

समास - प्रसन्नाः दिशः यस्मिन् तत् प्रसन्नदिक् (बहु0) । पांसुभिः विविक्तः वातः यस्मिन् तत् पांसुविविक्तवातम् (बहु 0) । शख्डस्य स्वनः शख्डस्वनः (ष0 तत्पु0) शंखस्वनाद् अनन्तरम् शख्डस्वनान्तरं (ष0 तत्पु 0) शंखस्वनानन्तरं पुष्पवृष्टि यस्मिन् तत् शंखस्वानान्तरपुण्यवृष्टि (बहु0) । जन्मनः दिनम् जन्मदिनम् । (ष0 तत्पु0), तस्याः जन्मदिनं तज्जन्मदिनम् (ष0 तत्पु0) । स्थावराश्च जंगनाम् (द्वन्द्व) ।

व्याकरण - विविक्त - वि + विज् + क्त । शरीरिणाम् - शरीर + इन्, ष 0 बहु0 ।

अलंकार - परिकर ।

विशेष - पार्वती के जन्म दिवस पर सभी दिशाएँ निर्मल हो गयीं व स्वच्छ पवन प्रवाहित होने लगी तथा शंख ध्वनि के बाद पुष्प की वृष्टि हुई । सभी प्राणी आनन्दित हो उठे। इसमें कवि ने पौराणिक परम्पराओं की ओर संकेत किया है ।

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे ।
विदूरभूमिर्नमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव ।। 24।।

अन्वय - स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सवित्री विदूरभूमिः नवमेघशब्दात् उद्भिन्नया रत्नशलाकया इव सुतरां चकासे ।

पदार्थ - स्फुरत्प्रभामण्डलया = देदीप्यमान तेज-मण्डल से युक्त। तया = उस। दुहित्रा = पुत्री से। सवित्री = माता। विदूरभूमिः = विदूर पर्वत की भूमि। नवमेघशब्दात् = नूतन मेघ के गर्जन से। उद्भिनया = निकले हुए। रत्नशलाकया इव = रत्नांकुर से जिस प्रकार शोभामय हो उठती है (ठीक) वैसे ही (मेना पार्वती को पाकर)। सुतराम् = नितान्त। चकासे = सुशोभित हुई।

अनुवाद - चमकते हुए तेजपुंज से युक्त उस पुत्री से माता, नवीन मेघ के गर्जन से भूमि को भेद कर बाहर निकले हुए रत्न के अंकुर से विदुर पर्वत की भूमि (मणियों की खान) के समान नितान्त
सुशोभित हुई।

समास - प्रभाणां मण्डलम् प्रभामण्डलम् (ष0 तत्पु0), स्फुरत् प्रभामण्डलं यस्याः, तया स्फुरत्प्रभामण्डलया (बहु0)। विदूरस्य भूमिः विदूरभूमिः (ष0 तत्पु0)। मेघस्य शब्दः मेघशब्दः (ष0 तत्पु0), नवश्चासौ मेघशब्दः नवमेघशब्दः तस्मात् (कर्म0)। रत्नस्य शलाका रत्नशलाका तया रत्नलाकया (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - उद्भिन्नया - उद् +भिद् + क्त टाप्, तृ0 एक0। चकासे - कास् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 (आत्मनेपद)।

अलंकार - उपमा।

विशेष - कवि ने यहाँ पार्वती की उपमा रत्नांकुर से तथा मेना की उपमा विदूर भूमि से दी है। जिस प्रकार नवीन मेघों के गर्जन से उद्भिन्न रत्नांकुरों से विदूर पर्वत की भूमि प्रकाशमान् हो उठती है उसी प्रकार दीप्तिमान् तेजपुंज से युक्त पार्वती को गोद में पाकर मेना खिल उठीं ॥ 24 ॥

बोधप्रश्न-3

अभ्यास प्रश्न 3 .

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

1. हिमालय की पत्नी का नाम क्या था

क. मेना ख. रति ग. उर्वशी घ. मेनका

2. सूर्य पर्वत पर स्थित कमलों को कैसे विकसित करता है

क. नीचे पड़ती हुई किरणों से

ख. सामने पड़ती हुई किरणें से

ग. उपर उठती हुई किरणों से

घ. नहीं जानते

रिक्त स्थान भरिए -

3. दक्षस्य ..... पूर्व पत्नी।

4. दक्ष का अर्थ ..... है।

सत्य / असत्य का ज्ञान करें -

5. सती जन्म लेने के लिए मेना के गर्भ मे आयीं ( )

6. पार्वती के जन्म के समय दिशाएं प्रसन्न चित्त थी ( )

दिन-दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान् विशेषाज्योत्सनान्तराणीव कलान्तराणि ॥ 25 ॥

अन्वय - लब्धोदया दिने - दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्मयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणि कलान्तराणि इव पुपोष।

पदार्थ - लब्धोदया = (लब्ध = प्राप्त, उदय = जन्म) = उत्पन्न होकर। दिने- दिने = प्रतिदिन। परिवर्धमाना = हर ओर से वृद्धि को प्राप्त। सा = उसने। चान्द्रमसी = चन्द्रमा की। लेखा इव = रेखा की तरह। लावण्यमान् = सौन्दर्ययुक्त। विशेषान् = अंगों को। ज्योत्स्नान्तराणि = (ज्योत्स्ना = चन्द्रिका, अन्तराणि = अन्तर्हित) चन्द्रिका से अन्तर्हित। कलान्तराणि इव = चन्द्रमा की कलाओं के समान। पुपोष = पुष्ट किया।

अनुवाद - जन्म लेने के पश्चात् प्रतिदिन बड़ी होती हुई पार्वती ने अपने सौन्दर्यशाली अंगों को इस प्रकार विकसित किया जिस प्रकार (शुक्लपक्ष की) चन्द्रलेखा चाँदनी में अन्तर्हित (छिपी हुई) अपनी विभिन्न कलाओं को पुष्ट करती है। ॥ 25 ॥

समास - लब्धः उदयः यया सा लब्धोदया (बहु0)। ज्योस्नायामन्तर येषाम् तानि ज्योत्सनान्तराणि (बहु0)। अन्या कलाः कलान्तरम् तानि (मयूरव्यंसकादि अथवा सुप्सुपा समास) कलान्तराणि।

व्याकरण - परिवर्धमाना - परि + वृध् + शानच् + टाप् , प्र 0 एक 0। चान्द्रमसी - चन्द्र + मस् + अण् + ङीप्, प्र0 एक0। लावण्यमान् - लावण्य + मयट्, द्वि0 बहु0। पुपोष - पुष + लिट्, प्र0 एक0।

अलंकार - उपमा।

विशेष - शुक्लपक्ष की चन्द्रमा के समान पार्वती प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसके अंग-प्रत्यंग वैसे ही लावण्य से पूरित होने लगे जैसे ज्योत्सना से चन्द्रकलाएँ पूरित होती जाती हैं।

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव।
उ मेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥26॥

अन्वयः - बन्धुप्रियां तां बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना पार्वती इति जुहाव पश्चात् मात्रा उ मा इति तपसः निषिद्धा (सती) सुमुखी उमाऽऽख्यां जगाम।

पदार्थ - बन्धुप्रियाम् = स्वजनो (आत्मीयजनों) को प्रिय। ताम् = उस (पार्वती) को। बन्धुजनः = कुटुम्बियों ने। आभिजनेन नाम्ना = वंशानुगत नाम से। जुहाव = पुकारा । पश्चात् = बाद में। मात्रा = माता के द्वारा। उ = हे पुत्री (तप)। मा = मत करो। इति = इस प्रकार। तपसः = तप से। निषिद्धा = निवृत्त (होकर)। सुमुखी = सुन्दर मुख वाली। उमाऽऽख्याम् = उमा नाम को। जगाम = प्राप्त हुई।

अनुवाद - बन्धुओं को प्रिय उस (कन्या) को कुटुम्बीजन कुल के अनुसार पार्वती नाम से पुकारने लगे। बाद में (जब) माता ने 'हे पुत्री', तप मत करो' इस प्रकार उसे तप से निवृत्त किया (तब) वह सुन्दरी (पार्वती) 'उमा' नाम से प्रसिद्ध हुई **॥26॥**

समास - बन्धुनां प्रिया ताम् बन्धुप्रियाम् (ष0 तत्पु0)। बन्धुश्चासौ सौ जनः बन्धुजनः (कर्म0)। **व्याकरण -** आभिजनेन - अभिजन + अण्, तृ0 एक0। जुहाव - हु + लिट्, प्र0 पु0 एक0। निषिद्धा - नि + साध् + क्त + टाप्, प्र0 एक0। सुमुखी - सु +मुख +ङीप्, प्र0 एक0। जगाम - गम् + लिट्, प्र0 पु0, एक0।

अलंकार – काव्यलिंग।

विशेष - इसमें पार्वती के पार्वती व उमा नामकरण के कारणों को दर्शाया गया है। जो पौराणिक कथाओं की ओर संकेत करता हैं।

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसंगा: ॥ 27 ॥

अन्वय - पुत्रवतोऽपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्ति न जगाम। हि अनन्तपुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसंगा: (भवति)।

पदार्थ - पुत्रवतः = अनेक सन्तानों के होते हुए। अपि = भी। महीभृतः = (पर्वतराज की) हिमालय की। दृष्टिः = निगाह। तस्मिन् = उस। अपत्ये = सन्तति (पार्वती) में (निरन्तर लगी रहने पर भी)। तृप्तिम् = तृप्त। न जगाम

= न हुई। हि = क्योंकि। अनन्तपुष्पस्य = असंख्य पुष्पों से युक्त। मधोः = वसन्तकाल की। द्विरेफमाला = भ्रमरपंक्ति। चूते = आम्रमंजरी में (ही)। सविशेषसंगा: = विशेष रूचि रखती हैं।

अनुवाद - अनेक सन्तानों के होते हुए भी हिमालय की निगाह पार्वती में (ही निरन्तर लगी रहती थी फिर भी) तृप्त न हो पाती थी, क्योंकि विविध पुष्पों ये युक्त वसन्तकाल का भ्रमरसमूह आम्रमंज'री में ही विशेष रूचि रखता हैं ॥ 27 ॥

समास - पुत्राश्च दुहितरश्चेति पुत्राः, तद्वतः पुत्रवतः (एकशेष)। मही विभर्तीति महीभृत, तस्य (उपपद तत्पु0) महीभृतः। अविद्यमानः अन्तः येषाम् तानि अनन्तानि (नञ् बहु0) , अनन्तानि पुष्पाणि यस्य सः, तस्य अनन्तपुष्पस्य (बहु0)। द्वौ रेफौ येषाम् ते द्विरेफाः (बहु0), द्विरेफाणां माला द्विरेफमाला (ष0 तत्पु0)। विशेषेण सह सविशेषः (बहु0), सविशेषः सग्डो यस्याः सा सविशेषसग्डा (बहु0)।

व्याकरण - पुत्रवतः - पुत्र + मतुप्, ष0 एक0। महीभृतः - मही + भृ + क्विप् ष0 एक0। जगाम- गम् + लिट्, प्र0 पु0, एक0।

अलंकार – प्रतिवस्तूपमालंकार।

विशेष - हिमालय राज के अनेक सन्तानें थीं पर वे पार्वती से विशेष प्रेम करते थे। जैसे बसन्त ऋतु में भ्रमर समूह आम्रमंजरी से विशेष प्रेम करता है।

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥ 28॥

अन्वय - प्रभामहत्या शिखया दीपः इव, त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्ग इव संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव, तया स पूतः च विभूषितः च।

पदार्थ - प्रभामहत्या = अत्यन्त प्रकाशमान्। शिखया = लौ से। दीपः इव = दीपक की भाँति। त्रिमार्गया = (तीनों लोगों में प्रवाहित) गंगा से। त्रिदिवस्य = स्वर्ग के। मार्गा इव = मार्ग के समान। संस्कारवत्या = संस्कार-वान्। गिरी = वाणी से। मनीषी इव = विद्वान के समान। तया = उस (पार्वती) से। सः वह (हिमालय)। पूतः च = पवित्र हुआ। विभूषितः च और सुशोभित हुआ।

अनुवाद - अत्यन्त प्रकाशवान् लौ से दीपक के समान, गंगा से स्वर्ग के मार्ग के समान वह (हिमालय) पार्वती के द्वारा पवित्र और सुशोभित हुआ।

समास - प्रभाभि: महती तया प्रभामहत्या (तृ0 तत्पु0)। त्रयः मार्गाः यस्याः सा त्रिमार्गा तया त्रिमार्गया (बहु0)। तृतीया द्यौः तस्य त्रिदिवसस्य (द्विगु)। विशेषेण भूषितः विभूषितः (सुप्सुपासमासः)।

व्याकरण - त्रिदिवस्य - त्रि + दिव् +क = त्रिदिव् + अ = त्रिदिव षष्ठी एक0। संस्कारवत्या - संस्कार + मतुप् + ङीप्, तृतीया एक0। मनीषी - मनस् + ईषा - मनीषा + इति - मनीषिन् प्रथमा एक0। पूतः- पू + क्त, प्रथमा एक0। विभूषितः - वि + भूषः क्त, प्रथमा एक0।

अलंकार - मालोपमा।

विशेष - अर्थात् जिस प्रकार अत्यधिक प्रकाशवान् लौ से दीपक, गंगा से स्वर्ग का मार्ग पवित्र हो जाता है तथा व्याकरणजन्य शुद्ध वाणी से विद्वान् सुशोभित होता है, उसी प्रकार दैदीप्यमान तेजपुंज से युक्त कन्या को प्राप्त कर हिमालय पवित्र तथा सुशोभित हुआ **॥28 ॥**

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥29॥

अन्वय - सा बाल्ये क्रीडारसं निर्विशती इव सखीनां मध्यगता (सती) मन्दाकिनी सैकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैः च मुहुः रेमे।

पदार्थ - सा = वह (पार्वती) । बालेय = बाल्यावस्था में । क्रीडारसम् = (क्रीडा = खेल, रस = आनन्द) खेलकूद के रस का । निर्विशती इव = उपयोग करती हुई । सखीनाम् = सहेलियों के । मध्यगता = बीच । मन्दाकिनी = गंगा के । सैकत = रेतीले । वेदिकाभिः = वेदिका (मण्डपों) से । कन्दुकैः = गेदों के द्वारा । कृत्रिम = हस्तनिर्मित । पुत्रकैः = गुड़ियों से। च = और। मुहुः = पुनः । रेम = खेलती रहती थी ।

अनुवाद - पार्वती बचपन से ही सखियों के बीच क्रीडारस का (भरपूर) आस्वाद लेती हुई गंगा के तट पर कभी रेत-निर्मित वेदिकाओं से, कभी (विविध) गेदों के द्वारा, तो कभी कृत्रिम गुड़ियों से बार-बार खेला करती थी **।।29।।**

समास - क्रीडाया रसः तम् क्रीडारसम् (ष0 तत्पु0)। मध्यं गता मध्यगता (द्वि0तत्पु0)। मन्दाकिन्याः सैकतम् मन्दाकिनीसैकतम् (ष0 तत्पु0), मन्दाकिनी सैकतेषु वेदिकाः मन्दाकिनी सैकतवेदिकाः ताभिः मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः (स0 तत्पु0) । कृत्रिमाश्च ते पुत्रतकाः तैः कृत्रिमपुत्रकैः (कर्म0) ।

व्याकरण - बाल्ये - बालस्य भावः बाल्यम्, बाल + ष्य् । निर्विशती - निर् + विश् + शतृ + ङीप्, प्रथमा एक0 । रेमे - रम् + लिट्, प्र0 पु0, एक0 आत्मनेपद ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - बाल्यावस्था में पार्वती अनेक प्रकार के खेलों में रूचि रखती थीं। इसमें पार्वती के बाल्यावस्था का वर्णन है।

तां हंसमालाः शरदीव गंगा महौषधिं नक्तविवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ।।30 ।।

अन्वय - शरदि गंगा हंसमाला इव, नक्तं महौषधिम् आत्मभासः इव स्थिरोपदेशां तां उपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः प्रपेदिरे।

पदार्थ - शरदि = शरद् ऋत में। गग्ङा = गंगा को । हंसमाला इव = हंसों की पंक्ति के समान । नक्तम् = रात्रि में । महौषधिम् = महौषधियों को । आत्मभासः इव = अपने प्रकाश के समान। स्थिरोपदेशाम् = स्थायी विद्याभ्यास वाली । ताम् = उस (पार्वती) को उपदेशकाले = विद्याभ्यास के समय । प्राक्तन - जन्मविद्याः = पूर्वजन्म की विद्याएँ । प्रपेदिरे = प्राप्त हुई ।

अनुवाद - जैसे शरत्काल में गंगा में (स्वयमेव) हंस-पंक्ति उतर आती है, (अथवा) जैसे रात्रि में औषधियाँ अपने आप प्रकाशित हो उठती हैं (ठीक) वैसे ही स्थिर ग्रहणशक्ति वाली पार्वती को पूर्वजन्म की विद्याएँ (स्वतः) प्राप्त हुई ।। 30 ।।

समास - स्थिरः उपदेशः यस्याः सा, ताम् स्थिरोपदेशाम् (बहु0) । उपदेशस्य कालः तस्मिन् उपदेशकाले (ष0 तत्पु 0) । प्राक्तनं च तज्जन्म प्राक्तजन्म (कर्म0), प्रक्तनजन्मनः विद्याः प्राक्तनजन्मविद्याः (ष 0 तत्पु 0) । हंसस्य मालाः हंसमालाः (ष 0 तत्पु 0) । महती चासौ ओषधिः महौषधिः ताम् महौषधीम् (कर्म0) । आत्मनः भासः आत्मभासः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - उपदेशः - उप + दिश् + घञ् । विद्या - विद् + क्यप् + टाप् ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - शरद ऋतु में जिस प्रकार गंगा के तट पर हंस स्वयं आ जाते हैं व रात्रि में औषधियाँ अपने आप प्रकाशमान् हो जाती हैं । उसी प्रकार पूर्वजन्म की अर्जित विद्यायें पार्वती को अल्पाभ्यास से स्वतः ही प्राप्त हो गयीं ।

बोधप्रश्न-4

अभ्यास प्रश्न 4 -

एक शब्द में उत्तर दीजिए -

1 - इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है।

2 - सुमेरु पर्वत का मित्र कौन था।

3 - मैना का पुत्र कौन था।

4 - भगवान शंकर की पूर्व पत्नी का नाम क्या था।

5- पार्वती किसकी कन्या थी।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. बसन्त ऋतु में भ्रमर पंक्ति किस पर आसक्त रहती है

क. नीम ख. अमरूद ग. आम घ . अंगूर

2. पार्वती को पाकर कौन पवित्र औश्र विभूषित हुआ

क.हिमालय ख. सुमेरू ग. मैंनाक घ . रामगिरि

रिक्त स्थान भरिए

3. मंदाकिनी ..... वेदिकाभि:।

4. तां हंसमाला ..... गंगा।

सत्य/ असत्य का निर्धारण करें

5. पार्वती स्थिर अपदेया को ग्रहण करने वाली नहीं थी ( )

6. पार्वती गेंद और गुड्डों से खेलती थी ( )

3. 4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास ने कुमार सम्भव में हिमालय का वर्णन किया है। वह हिमालय प्रस्तर खण्डों एवं हिम शिलाओं से युक्त पाषाण मात्र नहीं है। वह मनुष्यों के पहुँच से उपर है। वह देवताओं की आत्मा है। हिमालय को अपरिमित रत्नों का भण्डार कहा गया है। इस पर्वत पर अनेक श्रेष्ठ वस्तुएँ उत्पन्न होती है। उमा नामक कन्यारत्न, वैदूर्यादि मणिरत्न, देवदारू प्रभृति वृक्षरत्न, मृतसंजीवनी आदि औषधीरूपी रत्न, गंगादि नदी रूपी, रत्न तथा सोमलता आदि यज्ञ द्रव्य का रूप रत्न हिमालय पर ही उत्पन्न होते हैं। हिमालय की कतिपय चोटियाँ इतनी ऊँची हैं कि मेघ भी उनके मध्यभाग तक ही पहुँच पाता है, उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिए निम्न भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग अधिक वर्षा से पीड़ित होने पर बादलों के ऊपर उठे हुए हिमालय के उन शिखरों पर चले जाते हैं, जहाँ उस समय धूप होती है। तात्पर्य यह है कि हिमालय बादलों से भी ऊँचा है। हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले सिंह जब हाथियों का शिकार करके चले जाते हैं तब रक्त से लाल उनके पंजों की छाप, पिघलने के कारण निरन्तर प्रवाहित हो रही हिम की धारा से धुल जाती है। हिमालय पर्वत पर छेदवाले बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। जब हिमालय की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ कामक्रीड़ा करती रहती हैं, तब उनके द्वारा वस्त्र खींच लेने पर वे अत्यन्त लज्जित हो जाती हैं। गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को वहन करने वाली, देवदारू के वृक्षों को बारंबार कम्पित करने वाली तथा मोरों के पंखों को अलग करने वाली हिमालय की हवा का मृगों के शिकारी लोग भली प्रकार सेवन करते हैं।

आपने जाना कि सप्तर्षिगण के तोड़ने से बचे पुष्पों को सूर्य किस प्रकार विकसित करता है। पुराकाल में दक्ष जाति ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए उन्होंनें सभी ऋषियों, देवताओं

आदि को निमन्त्रित किया। किन्तु अपने जामाता शिव को असन्तुष्ट होने के कारण नहीं बुलाया। जिस समय देवता लोग अपने विमानों पर चढ़कर उस यज्ञ में भाग लेने के लिए जाने लगे तो शिव के पास बैठी सती को वह दृश्य देखकर बड़ा कौतूहल हुआ, कारण पूछने पर शिव ने उनसे उनके पिता द्वारा आयोजित यज्ञ की बात बतायी। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि तुम्हारे पिता हम पर क्रुद्ध हैं। इसीलिए हमें नहीं बुलाया गया। यज्ञ की बात सुनकर सती के मन में उसे देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। जब सती ने यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की तो शिव ने जाने से मना किया। सती जाने की जिद पर अड़ गयीं तब बाध्य होकर शिव ने अनाहूत सती को अपने गणों के साथ भेज दिया। पिता के घर पहुँचने पर सती ने देखा कि यज्ञभूति में शिव के लिए कोई आसन नहीं था। इसे सती ने अपने पति का घोर अपमान माना तथा कुपित होकर उन्होंने यज्ञभूमि में ही योगबल से अपने शरीर को दग्ध कर दिया। कालक्रम से सती ने मेना के गर्भ में प्रवेश किया आदि -आदि। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग में हिमालय का वैभव किस प्रकार चित्रित है इसे जान सकेंगे।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
उत्तरस्यां	उत्तर (में)
दिशि	दिशा में
देवतात्मा	देवतास्वरूप
सर्व शैलाः	समस्तपर्वत
यम्	जिस (हिमालय) को
रजन्याम्	रात्रि में
करिभिः	हाथियो के
दिवाभीतम् इव	मानो दिनमें भयतीत। (उल्लू)
गुहासु	गुफाओं में।
अन्धकारम्	अन्धकार को।
भागीरथी	गंगा।
निर्झर	झरना
सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि	सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुनने के बाद शेष
यस्य	जिसके
अग्रसरोरूहाणि	ऊपर के सरोवरों में उत्पन्न
पद्मानि	कमलों को
विवस्वान्	सूर्य।
मरूसखः	सुमेरू के मित्र
दिने - दिने	प्रतिदिन।
परिवर्धमाना	हर ओर से वृद्धि को प्राप्त
लावण्यमान	सौन्दर्ययुक्त।
शरदि	शरद् ऋत में।
गंगा	गंगा को।

हंसमाला इव	हंसों की पंक्ति के समान।	नक्तम्
	रात्रि में।	
महौषधिम्	महौषधियों को।	
आत्मभासः इव	अपने प्रकाश के समान।	
स्थिरोपदेशाम्	स्थायी विद्याभ्यास वाली।	

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्नोत्तर -1

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. ग 2. क 3. रत्न प्रभवस्य 4. गजमुक्ता से 5. सही

बोधप्रश्नोत्तर -2

अभ्यास प्रश्न 2 -

(1) हिमालय का (2) उत्तर दिशा में (3) हिमालय की चोटियों पर (4) रंग विरंगी (5) हिमालय पर

2- बहुविकल्पीय प्रश्न -

(1) घ (2) घ (3) ख (4) ग (5) ख

बोधप्रश्नोत्तर -3

अभ्यास प्रश्न 3. 1. क 2. ग 3. भव 4. शंकर 5 . सही 6. सही

बोधप्रश्नोत्तर -4

अभ्यास प्रश्न 4. (1) राजा दक्ष का (2) हिमालय (3) मैनाक (4) सती (5) राजा दक्ष की

बहुविकल्पीय प्रश्न - (1) घ (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 . पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास
लेखक का नाम - कपिलदेव द्ववेदी प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भवम् महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

3. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्लोक संख्या चार की व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या 9 की विशेषताएं लिखिए।
3. श्लोक संख्या 1 से 5 तक की व्याख्या पर एक निबन्ध लिखिए।
4. हिमालय पर्वत के वैभव पर एक निबन्ध लिखिए।
5. श्लोक 16 से 20 तक की व्याख्या करें।
6. श्लोक संख्या 25 की सन्दर्भ सहित व्याख्या करें।
7. प्रस्तुत इकाई पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई.4 कुमारसम्भवम्-प्रथम सर्ग
श्लोक संख्या 31 से 60 तक मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4. 2 उद्देश्य

4.3 कुमारसम्भवम् श्लोक संख्या 31 से 60 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीतिसाहित्य से सम्बन्धित यह खण्ड दो की यह चौथी इकाई है । इस इकाई में तीस श्लोकों की व्याख्या की गयी है । कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में इकतीस से लेकर साठ श्लोकों में पार्वती का वर्णन करते हुए उनके यौवना अवस्था, पार्वती और शिव के विवाह की सम्भावना , शिव की तपस्या तथा तपस्वी शिव की पार्वती द्वारा सेवा का वर्णन किया है। कालिदास ने पार्वती का वर्णन करते हुए पार्वती के किशोरावस्था के समाप्त होने पर वह यौवन को प्राप्त हुई । कवि द्वारा उनके मनोहर अंगों का वर्णन किया गया है । देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था। वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे । देवर्षि नारद ने पार्वती को ऊँ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था । शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है आदित्यादि।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप पार्वती का सौन्दर्य वर्णन, शिव - पार्वती विवाह आदि तथ्यों का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे ।

कालिदास ने किस शैली में किया है ।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- पार्वती के सौन्दर्य से परिचित होगें ।
- पार्वती की विशेषताएं बता सकेंगे ।
- पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण अपने शब्दों में कर सकेंगे।
- श्लोक संख्या पैतीस की विशेषता बता सकेंगे ।
- श्लोक संख्या चालीस के विषय में टिप्पणी कर सकेंगे ।
- पार्वती के नेत्रों की शोभा के विषय में आप परिचित होगें ।
- पार्वती को ब्रह्मा ने रचा । इसके विषय में जान सकेंगे।
- देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी । इसके विषय में आप परिचित होगें
- शिव पार्वती विवाह की सम्भावनाओं को समझा सकेंगे ।
- कालिदासकी काव्यकला को बता सकेंगे ।
- इस इकाई में किन- किन छन्दों का प्रयोग हुआ है , यह भी बताएंगे ।

4.3 कुमारसम्भवम् श्लोक संख्या 31 से 60 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

असम्भृतं मण्डनमांगयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्पं साऽथ वयः प्रपेदे ।।31।।

अन्वय - अथ सा अंगयष्टेः असम्भृतं मण्डनम् अनासवाख्यं मदस्य करणं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तम् अस्त्रं बाल्यात् परं वयः प्रपेदे ।

पदार्थ - अथ = तदनन्तर । सा = वह (पार्वती) । अग्ङयष्टेः = मनोहर अंगों का । असम्भृतं = स्वाभाविक । मण्डनं = अलंकार । अनासवाख्यम् = मदिरा से रहित । मदस्य = मद का । करणम् = साधन । कामस्य =

कामदेव का। पुष्पव्यतिरिक्तं = फूलों के अतिरिक्त। अस्त्रम् = अस्त्ररूपी। बाल्यात् = किशोरावस्था से। परम् = उत्तरवर्ती (बाद में आने वाले)। वयः = यौवनावस्था को। प्रपेदे = प्राप्त हुई।

अनुवाद - किशोरावस्था के समाप्त होने पर पार्वती उस यौवन को प्राप्त हुई जो उसके मनोहर अंगों का स्वाभाविक अलंकार था, मद्य के अभाव में मद का साधन था तथा पुष्पों के अतिरिक्त कामदेव का (कोई अन्य) अस्त्र था ॥ 31 ॥

समास - अंगयष्टिरिव तस्य अंगयष्टेः (उपमित् कर्म 0)। न सम्भृतम् असम्भृतम् (नञ् तत्पु 0)। आसवश्चासौ आख्या आसवाख्या (कर्म 0), अविद्यमाना आसवाख्या यस्य तत् (बहु0), न आसवाख्यम् अनासवाख्यम् (नञ् तत्पु0)। विशेषेण अतिरिक्तम् व्यतिरिक्तम् (सुप्सुषा), पुष्पेभ्यः व्यतिरिक्तम् (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - असम्भृतम् - न + सम् + भृ + क्त। करणम् - क्रियतेऽनेनेति, कृ + ल्युट् (= अन्)। व्यतिरिक्त - वि + अति + रिच् + क्त। बाल्यात् - बाल + ष्य्ं, प0 एक0। प्रपेदे - प्र + पद् + लिट्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार - परिणाम, विभावना।

विशेष - इसमें पार्वती के अंगों की अतिशय सुन्दरता का वर्णन है। जो उन्हें यौवनावस्था से प्राप्त हुई है।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवाऽरविन्दम् ।
बभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥32 ॥

अन्वय - नवयौवनेन विभक्तं तस्या वपुः तूलिकया उन्मीलितं चित्रम् इव, सूर्यांशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्त्रशोभि बभूव।

पदार्थ - नवयौवनेन = नवीन यौवन से। विभक्तम् = अभिव्यक्त। तस्याः = उस (पार्वती) का। वपुः = शरीर। तूलिकया = कूँची (तूलिका) से। उन्मीलितम् = चित्रित। चित्रम् इव = चित्र के समान। सूर्यांशुभिः = सूर्य की किरणों से। भिन्नम् = खिले हुए। अरविन्दम् इव = कमल के समान। चतुरस्त्रशोभि = सर्वांग रूप से सुशोभित। बभूव = हुआ।

अनुवाद - नवयौवन से अभिव्यंजित उस (पार्वती) का शरीर, तूलिका के अंकित चित्र की भाँति (तथा) सूर्य की रश्मियों से विकसित कमल की भाँति, हर ओर से पूर्णरूपेण सुशोभित हुआ।

समास - नवं च तद् यौवनं नवयौवनम्, तेन नवयौवनेन (कर्म0)। सूर्यस्य अंशवः सूर्यांशवः, तैः सूर्यांशुभिः (ष 0 तत्पु 0)। चतस्त्रः अस्त्रयः यस्य तत् चतुरस्त्रम् (बहु0), चतुरस्त्रं शोभते इति, तत् चतुरस्त्रशोभि (उपपद तत्पु 0)।

व्याकरण - विभक्तम् - वि + भज् + क्त, प्र 0 एक 0। उन्मीतिलम् - उद् + मील् + क्त, प्रथमा एकव 0। भिन्नम् - भिद् + क्त, प्रथमा एक0। शोभि- शुभ् + णिनि। वभू - भू +लिट्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार - मालोपमा।

विशेष - जिस प्रकार तूलिका से रंग भरने पर चित्र सुन्दर प्रतीत होता है तथा सूर्य की रश्मियों का स्पर्श पाकर कमल खिल उठता है उसी प्रकार पार्वती का शरीर नवयौवन में सौन्दर्य से भर उठा **॥ 32 ॥**

अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥33 ॥

अन्वय - अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् उद्गिरन्तौ इव तच्चरणौ पृथिव्याम् अव्यवस्थां स्थलारविन्दश्रियम् आजह्रतुः।

पदार्थ - अभ्युन्नत = ऊपर को उठे हुए। अंगुष्ठ = अँगूठों (के)। नख = नखों (की)। प्रभाभिः = चमक से। निक्षेपणाम् = भली प्रकार रखने से। रागम् = लालिमा (का)। उद्गिरन्तौ = वमन करते हुए। इव = मानो। तच्चरणौ = उसके (दोनों) चरण। पृथिव्याम् = भूमि पर। अव्यवस्थाम् = जंगम (=चलने वाले)।

स्थालविन्दश्रियम् (स्थालरविन्द = स्थलकमल, श्रियम् = सौन्दर्य को) = स्थलकमल के सौन्दय को। आजह्नतुः = प्राप्त कर रहे थे। या चुरा रहे थे।

अनुवाद - पार्वती के दोनों चरण (जब) भूमि पर पड़ते थे तो (अपने उठे हुए अँगूठों के नखों की कान्ति से (वे) लालिमा का मानो वमन करते हुए (और तब इस प्रकार) चलने वाले स्थलकमल के सौन्दर्य को प्राप्त कर रहे थे ॥ 33 ॥

समास - अगुंष्ठयोः नखौ (ष0 तत्पु0) अंगुष्ठनखौ, अंगुष्ठनखयोः प्रभा अंगुनखप्रभा (ष0 तत्पु0), अभ्युन्नता चासौ, अगुंनखप्रभा अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभा ताभिः (कर्म0)। तस्याः चरणा तच्चरणौ (ष0तत्पु0)। अविद्यमाना व्यवस्था यस्याः सा, ताम् अव्यवस्थाम् (बहु0)। स्थलस्य अरविन्दम् (ष0 तत्पु0), स्थालाविन्दस्य श्रीः ताम् स्थलारविन्दश्रियम् (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - अभ्युन्नत - अभि + उद् + नम् + क्त। निक्षेपणात् - नि +क्षिप् + ल्युट् (=अन), प0 एक0। उद्गिरन्तौ - उद् + गृ + शतृ, प्र0 द्वि0। आजह्नतुः - आजह्नतुः - आ + हृ + लिट्, प्र0पु0 द्वि0।

अलंकार - उपमेय। निदर्शनालंकार।

विशेष - इसमें पार्वती के चरण व अंगुष्ठ के नखों की क्रांतिमयी लालिमा का वर्णन है। ध्यातव्य है कि - देवताओं के सुन्दरता का वर्णन पादागुंष्ठ से व मनुष्यों के सुन्दरता का वर्णन केश से प्रारम्भ किया जाता है।

सा रजहंसैरिव सन्नतांगी गतेषु लीलांजितविक्रमेषु।
व्यनीयत प्रत्युप्रदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिंचितानि ॥ 34 ॥

अन्वय - प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसंजितानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नतांगी सा लीलांजितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव।

पदार्थ - प्रत्युपदेशलुब्धैः = प्रत्युपदेश (= प्रतिरूप उपदेश) के लोभी। नूपुरसंजितानि = नूपुरध्वनि (पायल की झनकार) को। आदित्सुभिः = सीखने के इच्छुक। राजहंसैः = राजहंसों के द्वारा। सन्नतांगी = (स्तनों के भार से) झुके अंगोवाली। सा = वह (पार्वती)। लीलांजित विक्रमेषु = सविलास चरणविन्यास से युक्त। गतेषु = गमन में। व्यनीयत इव = मानो विशेष रूप से शिक्षित की गई।

अनुवाद - प्रत्युपदेश से उत्सुक राजहंसों ने (पार्वती से) नूपुरध्वनि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मानो उन्हें सविलास चरणविन्यास से युक्त गमन (क्रिया) में विशेष रूप से शिक्षित किया।

समास - उपदेशस्य प्रतिदानम् प्रत्युपदेशः (प्रादि तत्पु0), प्रत्युपदेशे लुब्धाः तैः प्रत्युपदेशलुब्धैः (स 0 तत्पु 0)।

व्याकरण - लुब्ध - लुभ् +क्त। आदित्सुभिः - आ + दा + सन्, तृ0 बहु0। सन्नत - सम् + नम् + क्त। अलंकार - उत्प्रेक्षा, परिवृत्ति।

विशेष - कहने का आशय यह है कि पार्वती की चाल राजहंसों की चाल की तरह अत्यन्त मनोहर थी ॥ 34 ॥

वृत्तानुपूर्वे च न चाऽतिदीर्घे जंघे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषांगनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ॥ 35 ॥

अन्वय - वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे शुभे तदीये जघडे सृष्टवतः विधातुः शेषांगनिर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्नः आस इव।

पदार्थ - वृत्तानुपूर्वे = (वृत्त = गोलाकर, अनुपूर्वे = अनतिह्रस्व) = वर्तुल एवं गोपुच्छ के आकार वाले। न च अतिदीर्घे = अतिदीर्घे (= जो बहुत लम्बे नहीं थे)। शुभे = शुभ गुणों से युक्त । जघडे = जंघाओं को। सृष्टवतः = सृष्टि करने वाले। विधातुः = ब्रह्मा को। शेषांगनिर्माणविधौ = अन्य (अर्थात् जंघाओं के अतिरिक्त) अंगों के

निर्माण हेतु। उत्पाद्ये = अपेक्षित। लावण्ये = सौन्दर्य (को सृष्ट करने) में। यत्नः = उद्योग। आस इव = (सा) करना पड़ा।

अनुवाद - गोपुच्छ के आकार वाले एवं नातिदीर्घ शुभ गुणों से युक्त जंघाओं के निर्माण में समग्र सौन्दर्य के समाप्त हो जाने पर, (जंघाओं के अतिरिक्त) अन्य अंगों की रचना के लिए ब्रह्मा को अपेक्षित सौन्दर्य को सृष्ट करने में उद्योग-सा करना पड़ा।

समास - वृत्ते च ते अनुपूर्वे वृत्तानुपूर्वे (कर्म0), पूर्वमनुगता अनुपूर्वा, ते (प्रादि0 तत्पु0)। अत्यन्तं दीर्घा अतिदीर्घा, ते अदिदीर्घे (सुप्सुपा तत्पु0)

व्याकरण - तदीये - तत् + छ (ईय्), स0 एक0। सृष्टवः सृज् + तवत्, एक0। विधातुः - वि + धा + ष0 एक0। निर्माण - निर् + मा + ल्युट् (अन्)। उत्पाद्ये - उत् + पद + ण्यत्, स0 एक0। आस - 'बभूव' के अर्थ में अव्यय है अथवा ''वभूव'' के स्थान पर प्रामादिक प्रयोग है।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

विशेष - कवि का आशय यह है कि पार्वती के जंघाओं के निर्माण में ब्रह्मा का सारा रचना-चातुर्य समाप्त हो गया। फलतः अन्य अंगों की रचना करने के लिए विशेष नूतन सौन्दर्य की उद्भावना करनी पड़ी ।।35।।

नागेन्द्रहस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः ।।
लब्धवाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्दूर्वो रूपमानबाह्याः ।।36 ।।

अन्वय - नागेन्द्रहस्ताः त्वचिकर्कशत्वात् कदलीविशेषाः एकान्तशैत्यात् लोके परिणाहि रूपं लब्ध्वाऽपि तदूर्वोः उपमानबाह्याः जाताः।

पदार्थ - नागेन्द्रहस्ताः = गजेन्द्रों के हाथों (सूँड़ों) । त्वचिकर्कशत्वात् = त्वचा के कठोर होने के कारण। कदलीविशेषाः = केले के खम्भे । एकान्तशैत्यात् = अत्यन्त शीतल होने के कारण। लोके = लोक में । परिणाहि = विशाल । रूपम् = आकार को । लब्ध्वाऽपि = प्राप्त करके भी । तदूर्वोः = उस (पार्वती) के उरूओं के। उपमानबाह्या: = उपमान नहीं। जाताः हुए।

अनुवाद - हाथी की सूँड़ त्वचा के अत्यन्त कठोर होने के (तथा केले के खम्भे अत्यन्त शीतल होने के कारण संसार में विशाल आकार प्राप्त करके भी उस (पार्वती की जंघाओं के उपमान् (तुलना) योग्य नहीं हो सके ।। 36 ।।

समास - नागानाम् इन्द्राः (ष0 तत्पु0) नागेन्द्राणां हस्ताः नागेन्द्रहस्ताः (ष0 तत्पु0) । त्वचि कर्कशत्वात् त्वचिकर्कशत्वात् (अलुक् तत्पु0) । कदलीनां विशेषाः कदलीविशेषाः (ष0 तत्पु0) । एकान्तं शैत्यम् तस्मात् एकान्तशैत्यात् (कर्म0), तस्या ऊरू तयोः तदूर्वोः (ष0 तत्पु0) । उपमाने वाह्याः उपमानबाह्याः (स0 तत्पु0) ।

व्याकरण - कर्कशत्वात् - कर्कश + त्व (प0 एक0 व0) । शैत्यात् - शीत + ष्य़ । लब्ध्वा - लभ् + क्त्वा । बाह्या: - बहिष् + य´, प्र0 बहु0 ।

अलंकार - व्यतिरेक ।

विशेष - इसमें पार्वती की सुडौल जंघाओं का वर्णन है ।

एतावता नन्वनुमेयशोभि कांचीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमंकम् ।। 37 ।।

अन्वय - यत् पश्चात् गिरिशेन अनन्यनारीकमनीयम् अंकम् आरोपितम् अनिन्दितायाः कांचीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि ।

पदार्थ - यत् = जो । पश्चात् = बाद में । गिरिशेन = शिव के द्वारा । अनन्यनारीकमनीयम् = (अनन्य = दूसरी, नारी = स्त्रियों को, कमनीय = दुर्लभ) दूसरी स्त्रियों के लिए दुर्लभनीय । अंकम् = गोद में । आरोपितम् = रखा

गया। अनिन्दितायाः = सर्वांगसुन्दरी (पार्वती) कांचीगुणस्थानम् = (कांची = करधनी की, गुण = लड़ियों का, स्थानम् = स्थल) = नितम्ब की। एतावता = इसी से (अर्थात् गोद में आरोपित करने से)। ननु = निश्चित रूप से। अनुमेयशोभि = शोभा का अनुमान लगाया जा सकता हैं।

अनुवाद - निश्चित् रूप से इतने मात्र से ही अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के नितम्ब की शोभा का अनुमान लगाया जा सकता है, जिसे (विवाह के) पश्चात् शिव ने अन्य स्त्रियों के लिए दुष्प्राप्य (अपनी) गोद में (भली प्रकार से) रखा।

समास - गिरौ शेते गिरिशः तेन गरिशेन (अलुक् तत्पु0)। अन्याश्च ता नार्यः अन्यनार्यः (कर्म0), अन्यनारीणां कमनीयः (ष 0 तत्पु 0) न अन्यनारी कमनीय तम्। अन्यनारीणां कमनीयम् (नञ् तत्पु 0)। न निन्दिता अनिन्दिता तस्याः अनिन्दितायाः (नञ्तत्पु0)। कांचयागुणः - कांचीगुणः (ष0 तत्पु 0), कांचीगुणस्य स्थानम् कांचीगुणस्थानम् (ष0 तत्पु0)। अनुमेया शोभा यस्य तत् अनुमेयशोभि (बहु 0)।

व्याकरण - गिरिशेन - गिरि + शी + ड, तृतीया एक0, अथवा गिरि + श, तृतीया एक0। कमनीयम् - कम् + अनीयर्, द्वितीया एक0। आरोपितम् - आ + रूप् + ण + क्त, प्रथमा एक0। अनिन्दितायाः - न + निन्द् + टाप्, षष्ठी एक0। एतावता - एतद् + वतुप्, तृतीया एक0। अनुमेय - अनु + मा + यत्। शोभि - शुभ + इनि, नपुं0, प्रथमा एक0।

अलंकार - अनुमान।

विशेष - ज्ञातव्य है कि पार्वती ने अत्यन्त उग्र तप करके शिव को पति के रूप में प्राप्त किया था।

अतः तपोलभ्य शिव द्वारा अंक में आरोपित करने से पार्वती के अत्यन्त सौन्दर्यशाली नितम्ब की व्यंजना की गयी हैं। ॥ 37 ॥

बोध प्रश्न-1

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अति संक्षेप में दीजिए -

1- -इस इकाइ में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है

2 - पार्वती के यौवन के सौन्दर्य की तुलना किससे की गई है।

3- पार्वती की चाल किसके चाल की तरह अत्यन्त मनोहर थी।

4- पार्वती ने अत्यन्त उग्र तप करके पति के रूप में किसको प्राप्त किया था।

5- पार्वती किसके समान कृशोदरी थी।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- षोडश वर्षीया है-

क-पार्वती ख- गौरी

ग-शकुन्तला घ- मैना

2- - त्रिवली को धारण किया,

क- हाथी ख-पार्वती

ग- मोर घ- औषधियों

3- कवि ने पार्वती की नेत्र की उपमा किससे दी है-

क - कमल से ख- अंकुर से

ग - मोर से घ- औषधियों से

4- श्लोक संख्या बयालीस में वर्णन है-

क - हाथी का ख- किन्नरियों का

ग - पार्वती के पयोधरों का घ- औषधियों का

5- श्लोक संख्या पैतालीस में वर्णन है-

क- सप्तर्षियों का ख- पार्वती के मधुर वाणी का

ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्र रराज तन्वी नवलोमराजिः ।

नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवाऽर्चिः ।। 38।।

अन्वय - नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रं प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखला मध्यमणेः अर्चि इव रराज ।

पदार्थ - नीवीम् = कटिवस्त्र के बन्ध को । अतिक्रमय = लाँघकर । नतनाभिरन्ध्रम् = नीचे नाभि छिद्र में। प्रविष्टा = प्रविष्ट होती हुई । तन्वी = पतली। तस्याः = उस (पार्वती) की । नवलोमराजिः = नवीन रोम पंक्ति। सितेतरस्य = श्वेत से भिन्न नीले रंग की। तन्मेखलामध्यमणेः = उसकी करधनी के मध्य में स्थित (इन्द्रनील) मणि की । अर्चिः = कान्ति (सी) । इव = मानो । रराज = सुशोभित हुई ।

अनुवाद - नीवी का अतिक्रमण करके निम्न नाभि विवर में प्रविष्ट उनकी पतली नवीन रोमपंक्ति करधनी के मध्य में स्थित इन्द्रनीलमणि की क्रान्ति के समान मालूम पड़ती थी ।

समास - नाभेः रन्ध्रम नाभिरन्ध्रम् (ष0 तत्पु0), नतच्′ तत् नाभिरन्ध्रम् नतनाभिरन्ध्रम् (कर्म0) । नवानि च तानि लोमानि नवलोमानि (कर्म0), नवलोम्ना राजिः नवलोमराजिः (ष0 तत्पु0) । सिताद् इतरः सितेतरः, तस्य सितेतरस्य (पंचमी तत्पु0) । तस्या मेखला तन्मेखला (ष0 तत्पु0) मध्यश्चासौ मणिः मध्यमणिः (कर्म0), तन्मेखलाया मध्यमणिः तन्मेखलामध्यमणिः, तस्य तन्मेखलामध्यमणेः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - अतिक्रम्य - अति + क्रम् + क्त्वा (ल्यम्) । प्रविष्टा - प्र + विश् + क्त + टाप्, प्रथमा एक0 । तन्वी - तनु + ङीप्, प्रथमा एक0। रराज - राज् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - नवयौवन के कारण नाभि तक रोमों की जो पतली रेखा बन गई थी उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो मेखला के मध्य में जड़ा हुआ नीलम चमक उठा हो **।।38।।**

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलियत्रयं चारू बभार बाला ।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ।। 39 ।।

अन्वय - वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारूवलित्रयं कामस्य आरोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तं सोपानम् इव बभार ।

पदार्थ - वेदिविलग्नमध्या = (विलग्न = कृश) = वेदी के समान कृश उदर वाली। सा = उस। बाला = (षोडश वर्षीया) कुमारी ने । मध्येन = मध्यभाग में । चारू = मनोहर । वलित्रयम् = त्रिवली का । कामस्य = कामदेव के । आरोहणार्थम् = चढ़ने के लिए । नवयौवनेन = नवयौवन से । प्रयुक्तम् = निर्मित । सोपानम् इव = सोपान (= सीढ़ी) के समान । बभार = धारण किया ।

अनुवाद - वेदी के समान कृशोदरी षोडश वर्षीया पार्वती ने (अपने) मध्य भाग में मनोहारी त्रिवली को धारण किया, जो (मानो) कामदेव के आरोहण के लिए नवयौवन द्वारा विरचित सीढ़ी (-सी मालूम पड़ती) थी ।

समास - वेदिः इव विलग्नः मध्यः यस्याः सा वेदिविलग्नमध्या (बहु0) । वलीनां त्रयम् वलियत्रम् (ष0 तत्पु0) । नवं च तद् यौवनम् नवयौवनम् तेन नव यौवनेन (कर्म0) । आरोहणाय इदम्

आरोहणार्थम् (चतु0 तत्पु0)।

व्याकरण - आरोहण - आ +रूह् + ल्युट् (= अन) । प्रयुक्तम् - प्र + युज् + क्त। बभार - भृ + लिट्, प्र 0 पु0, एक0 । अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - यहाँ मध्यभाग में स्थित त्रिवली में प्रयोजन पर कवि द्वारा उत्प्रेक्षा की गयी हैं। कालिदास इस त्रिवली को कामदेव के चढ़ने के लिए नवयौवन द्वारा निर्मित सीढ़ी मानते हैं **॥39॥**

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ 40 ॥

अन्वय - अन्योन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं तथा प्रवृद्धम्, श्याममुखस्य तस्य मध्य यथा मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् (आसीत्)

पदार्थ - अन्योन्यम् = एक दूसरे को । उत्पीडयत् = दबाते हुए । पाण्डु = गोरे । उत्पलाक्ष्याः = कमलनयनी (पार्वती) के । स्तनद्वयम् = दोनों स्तन । तथा = इस प्रकार । प्रवृद्धम् = बढ़ गये । (कि) । श्याममुखस्य = काले अग्रभाग वाले तस्य= उस स्तनयुगल (दोनों स्तनों) के । मध्ये = मध्य में । मृणालसूत्रान्तरम् = कमलनाल के तन्तु मात्र का अन्तर । अपि = भी । अलभ्यम् = दुर्लभ । आसीत् = था ।

अनुवाद - (नील) कमल के सदृश नेत्रोंवाली पार्वती के एक दूसरे से (अत्यन्त) सटे हुए गौर वर्ण के दोनों स्तन इतने बढ़ गये कि काले अग्र भाग वाले उन दोनों (स्तनों) के बीच मृणालसूत्र रखने (तक) का भी अवकाश (खाली स्थान) न था ।

समास - उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा उत्पलाक्षी, तस्याः उत्पलाक्ष्याः (बहु0) स्तनयोः द्वयम् स्तनद्वयम् (ष0 तत्पु0) । प्रकर्षेण वृद्धम् प्रवृद्धम् (सुप्सुपा समास)। श्यामं मुखं यस्य तत् श्याममुखम्, तस्य श्याममुखस्य (बहु0) । मृणालय सूत्रम् मृणालसूत्रम् (ष0 तत्पु0), मृणालसूत्रस्य अन्तरम् मृणालसूत्रान्तरम् (ष0 तत्पु0) । न लभ्यम् अलभ्यम् (नञ्तत्पु0)।

व्याकरण - उत्पीडयत् - उत् +पीड + शतृ, एक0 । प्रवृद्धम् - प्र + वृध् +क्त, प्रथमा एक0। अलभ्यम् - लभ्यम्, लभ् + यत् ।

अलंकार - अतिशयोक्ति ।

विशेष - गौरवर्णी दोनों स्तनों के बीच मृणालसूत्र रखने तक के अवकाश का भी न होना पार्वती के विशाल स्तन अतएव उनके पूर्ण यौवन का व्यंजक हैं । कवि ने मनोहर स्तनों की विशालता के कारण ही उन्हें अन्यत्र (श्लोक सं0 34) ''सन्नतांगी'' कहा है **॥40 ॥**

शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति में वितर्कः ॥
पराजितेनाऽपि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥41॥

अन्वय - यौ पराजितेन अपि मकरध्चजेन हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ तदीयौ बाहू शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ इति में वितर्कः (अस्ति)॥

पदार्थ - यौ = जो (दोनों) । पराजितेन अपि = पराजित होने पर भी । मकरध्वजेन = कामदेव द्वारा । हरस्य = शिव के । कण्ठपाशौ = गले के हार । कृतौ = बनाये गये । तदीयौ = उसकी (दोनों) । बाहू = बाहें । शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ = शिरीष पुष्पों से भी अधिक कोमल (हैं)। इति = ऐसा । में = मेरा वितर्कः = अनुमान । (अस्ति = हैं)।

अनुवाद - पराजित होने पर भी कामदेव ने जिन्हें शिव का कण्ठपाश बना दिया (निश्चय ही) पार्वती की वे बाहें शिरीष पुष्पों से भी अधिक कोमल हैं ऐसा मेरा अनुमान (हैं) ।

समास - मकरः ध्वजः सः, तेन मकरध्वजेन (बहु0) । कण्ठपाशौ = कण्ठस्य पाशौ (ष0 तत्पु0) । शिरीषस्य पुष्पम् (ष0 तत्पु0), शिरीषपुष्पाद् अधिकं शिरीषुपुष्पाधिकं (प0 तत्पु0), शिरीषपुष्पाण्यधिकं सौकुमार्यं ययोः तौ (बहु0) । विशिष्टः तर्कः वितर्कः (कर्म0) ।

व्याकरण - पराजितेन - परा + जि + क्त, तृ0 एक । कृतौ - कृ +क्त, प्रथमा द्वि । तदीयौ - तद् + छ (= इय), प्रथमा द्वि0। सौकुमार्यौ - सु + कुमार + ष्य´ प्रथमा द्वि0 ।

अलंकार – परिणाम ।

विशेष - सर्वविदित है कि शिव ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से काम को जला डाला था। अतएव कामदेव शिव का स्वाभाविक बैरी है । उस बैर - शोधन के लिए ही मानों कामदेव ने शिरीषपुष्पों से भी अधिक कोमल पार्वती के बाहों के पाश में शिव को बांध दिया।। 41।।

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योन्यशोभाजननाद् बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ।। 42 ।।

अन्वय - स्तनबन्धुरस्य तस्याः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योन्यशोभाजननात भूषणभूष्यभावः साधारणः बभूव ।

पदार्थ - स्तनबन्धुरस्य = पयोधरों से उन्नत । तस्याः = उस (पार्वती) के । कण्ठस्य = गले के। निस्तलस्य मुक्ताकपालस्य च = (निस्तल = वर्तुल, वृत्ताकार । तथा वर्तुल मुक्ताहार के । अन्योन्यशोभाजननात् = परस्पर भूषित करने से । भूषणभूष्यभावः = अलंकार - अलंकार्य भाव । साधारणः = समान । बभूव = हो गया ।

अनुवाद - पयोधरों से उन्नत पार्वती के कण्ठ की गोल मोतियों की माला अलंकृत करती थी तथा गोल मौक्तिकमाला को उनका स्तनोन्नत कण्ठ सुशोभित करता था (इस प्रकार) एक दूसरे को विभूषित करने से (उन दोनों का) अलंकार-अलंकार्य भाव समान हो गया **।। 42 ।।**

समास - स्तनाभ्यां बन्धुरः स्तनबन्धुरः तस्य स्तनबन्धुरस्य (तृ0 तत्पु 0) । निर्गतस्तलात् निस्तलस्य (प्रादि तत्पु 0) मुक्तानां कलापः मुक्ताकलापः तस्य मुक्ताकलापस्य (ष0 तत्पु0) । अन्योन्यस्य शोभा अन्योन्यशोभा (ष 0 तत्पु 0) । भूषणं च भूष्यच्च भूषणभूष्यः (द्वन्द्व) भूषणभूष्ययोः भावः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - जनन - जन् +ल्युट् (= अन) । भूषण - भूषण - भूष् + ल्युट् (= अन) । भूष्य - भूष + यत् । बभूव - भू + लिट्, प्र 0 पु 0 एक 0 ।

अलंकार - अन्योन्य ।

विशेष - इसमें पार्वती के कण्ठभाग की सुन्दरता वर्णित है जो मोतियों की माला में भी सुशोभित कर रही हैं ।

चन्द्रं गता पद्म गुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ।। 43 ।।

अन्वय - लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता (सती) पद्मगुणान् न भुंक्ते, पद्माश्रिता (सती) चान्द्रसमीम् अभिख्यां (न भुंक्ते), उमामुखं प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयां प्रीतिम् अवाप ।

पदार्थ - लोला = चंचल । लक्ष्मीः = श्री (कान्ति की अभिमानिनी देवी) । चन्द्रं गता = चन्द्रमा ◌ के पास पहुंचकर । पद्मगुणान् = (पद्म = कमल, गुण = विशेषता) कमल (अनिन्द्य सौरभ आदि) के गुणों को । न भुङ्क्ते = नहीं प्राप्त करती । उपामुखम् = पार्वती के मुख को । प्रतिपद्य = प्राप्त करके । द्विसंश्रयाम् = (चन्द्रमा और कमल) दोनों (की विशेषताओं) पर निर्भर करने वाले ।
प्रीतिम् = आनन्द को । अवाप = प्राप्त किया ।

अनुवाद - चंचला (सौन्दर्य) लक्ष्मी (रात में) चन्द्रमा पर स्थित होकर कमल के सौरभ आदि गुणों से वंचित हो जाती है तथा (दिन में) कमल पर विराजमान होकर चन्द्रमा के आह्लादक आदि गुणों से हीन हो

जाती है। (किन्तु) पार्वती के मुख पर विराजमान (सौन्दर्य) लक्ष्मी ने चन्द्रमा और कमल के विशिष्ट गुणों पर निर्भर करने वाले आनन्द को एक साथ (ही) प्राप्त किया।

समास - पद्मस्य गुणाः तान् पद्मगुणान् (ष0 तत्पु0)। पद्म आश्रिता पद्माश्रिता (द्वि0 तत्पु0)। उमायाः मुखम् उमामुखम् (ष0 तत्पु0)। द्वे संश्रयः यस्याः ताम् द्विसंश्रयाम्।

व्याकरण - भुङ्क्ते - भुज् + लट्, प्र0 पु0 एक0, आत्मनेपद। चान्द्र - मसीम् - चन्द्रमसः इमाम्, चन्द्रसेन + अण् + ङीप्, द्वितीया एक0। प्रतिपद्य - प्रति + पद्, क्त्वा (ल्यप्)। अवाप - अव + आप् + लिट्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार - व्यतिरेक।

विशेष - इस श्लोक में कवि ने पार्वती के मुख के सौन्दर्य को कमल और चन्द्रमा में वर्तमान सौन्दर्य से उत्कृष्ट बतलाकर उनके मुख के अलौकिक सौन्दर्य की व्यजंना की है। पार्वती के मुख में कमल के सौरभ आदि गुण तो वर्तमान है ही, साथ ही साथ उसमें चन्द्रमा की आह्लादकता आदि विशेषताएँ भी विद्यमान हैं **।। 43 ।।**

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यात्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः स्मितस्य ।। 44 ।।

अन्वय - पुष्पं प्रवालोपहितं स्यात् यदि मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थं (स्यात् यदि) । ततः विशदस्य ताम्रोष्ठपर्यस्तरूचः तस्या स्मितस्य अनुकुर्यात्।

पदार्थ - (यदि) पुष्पम् = (यदि श्वेत) फूल। प्रवालोपहितम् = नवीन पत्ते पर रखा हुआ। स्यात् = हो। मुक्ताफलम् = मोती। स्फुटविद्रुमस्थं = स्वच्छ मूँगे पर स्थित हो। ततः = तब। विशदस्य = शुभ्र वर्ण के। ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः = लाल वर्ण वाले होठों पर फैली हुई कान्ति। तस्याः = उस (पार्वती) के। स्मितस्य = मुस्कान का । अनुकुर्यात् = अनुकरण कर सकती है।

अनुवाद - (यदि श्वेत) फूल नवीन कोमल पत्ते पर रखा हुआ हो अथवा यदि स्वच्छ मूँगे पर मोती रखा हो (और तब इस प्रकार जो शोभा उत्पन्न होगी वह) लाल होठों पर फैली हुई कान्ति वाली उस (पार्वती) की मन्द मुस्कान का अनुकरण कर सकती है **।।44 ।।**

समास - प्रवाले उपहितम् प्रवालोपहित् (स0 तत्पु0)। मुक्ता एवं फलम् मुक्ताफलम् (मयूरव्यंसकादि)। स्फुटश्चासौ विद्रुमश्च इति स्फुटविद्रुमः, स्फुट विद्रुपे ओष्ठः ताम्रौष्ठः(कर्म0), ताम्रौष्ठे पर्यस्ता ताम्रौष्ठार्यस्ता (स0 तत्पु0) ताम्रौष्ठ पर्यस्तं रूक् यस्य तस्य ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः (बहु0)।

व्याकरण - उपहितम् - उप+धा + क्त। विद्रुमस्थम् - विद्रुम् + स्था + क। पर्यस्थ - परि + अस् + त। अनुकुर्यात् - अनु + कृ + विधिलिङ् प्र0 पु0 एक0।

अलंकार - अतिशयोक्ति।

विशेष - इसमें पार्वती के लालिमायुक्त ओष्ट, श्वेत दन्त, मन्द मुस्कान की व्यंजना की गयी है।

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रारिव ताड्यमाना ।। 45।।

अन्वय - अभिजातवाचि तस्याम् अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायाम् अन्यपुष्टा अपि ताडय्माना वितन्त्रीः इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा।

पदार्थ - अभिजातवाचि = मधुरभाषिणी। तस्याम् = उस (पार्वती) के। अमृतस्रुता = अमृत की वर्षा करने वाले। स्वरेण = स्वर से। प्रजल्पितायाम् = बातचीत करने पर। अन्यपुष्टा = कोयल (की बोली)। अपि = भी। ताड्यमाना = आहत। वितन्त्रीः = विस्वर वीणा। इव = के समान। श्रोतुः = सुनने वाले को। प्रतिकूलशब्दा = कर्णकटु प्रतीत होती थी।

अनुवाद - मधुरभाषिणी पार्वती जब (अपने) अमृतवर्षी स्वर में बोलने लगतीं तो (उस समय उनकी वाणी के) श्रोता को कोयल की बोली भी विस्वर वाणी के समान कर्णकटु प्रतीत होती थी

समास - अभिजाता वाक् यस्याः सा तस्याम् अभिजातवाचि (बहु0) अमृतं स्रवतीति तेन, अमृस्रुता (उपपदतत्पु0) । प्रकर्षेण जल्पिता तस्याम् (प्रादि तत्पु0) । अन्यैः पुष्टा अन्यपुष्टा (तृ0 तत्पु0) । विषमबद्धा तन्त्रीः (मध्यमपदतोपितत्पु0) । प्रतिकूलः शब्दः यस्याः सा प्रतिकूलशब्दा (बहु0) ।

व्याकरण - अमृतस्रुत्, तृ0 एक0। प्रजल्पितायाम् - प्र +जल्प + क्त + टाप्, स0एक0। ताड्यमाना - ताड् + य + शानच् + टाप् । वितन्त्री: - यह स्त्रीलिंग शब्द जीवन्त नहीं है अतः 'सु' का लोप नहीं हुआ है। श्रोतुः - श्रोतृ, ष0 एक0।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - पार्वती की मधुरवाणी के आगे कोयल के स्वर की क्या विसात । उस अमृतवर्षी स्वर को सुन लेने के बाद कोयल की कूक ऐसी लगती जैसे किसी अनाड़ी द्वारा छोड़ी गई विस्वर वाणी ।। 45 ।।

प्रवात नीलोत्पल - निर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।

तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः ।। 46 ।।

अन्वय - प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयताक्ष्या तया मृगाग्ङनाभ्यः गृहीतं नु, मृगांगनाभिः ततो गृहीतं नु ।

पदार्थ - प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् = (प्रवात = अत्यधिक वायु वाला स्थल, नीलोत्पल = कमल, निर्विशेषम् = समान) अत्यधिक वायु वाले स्थल में हिलते हुए कमल के समान । अधीर = चंचल । विप्रेक्षितम् = अवलोकन को । आयताक्ष्या = बड़े-बड़े नेत्रों वाली । तया = उस (पार्वती) के द्वारा । मृगांगनाभ्य: = हिरणियों से । गृहीतं नु = ग्रहण किया गया ? मृगांगनाभिः = (अथवा) हिरणियों ने । ततः = उस (पार्वती) से । गृहीतं नु = सीखा क्या ?

अनुवाद - तेज वायु वाले स्थल में हिलते हुए नीलकमल के सदृश, चंचल अवलोकन को
विशाल नेत्रों वाली उस (पार्वती) ने हिरणियों से सीखा? अथवा हिरणियों ने पार्वती से सीखा?

समास - प्रवातम् - प्रकृष्टा वाता यत्र तत् प्रवातम् (स0 तत्पु 0), नीलोत्पलम् - नीलं च तद् उत्पलम् (कर्म0), निर्विशेषम् - विशेषात् निर्गताम् (प्रादितत्पु0), प्रवाते नीलोत्वलम् प्रावतनीलोत्पलम् (स0 तत्पु0), विशिष्टं च तत् प्रेक्षितम् विप्रेक्षितम् (कर्म0) । अधीरं च तत् विप्रेक्षितम् अधीर विप्रेक्षितम् (कर्म0) आयते अक्षिणी यस्याः सा, तया आयताक्ष्याः (बहु0) ।

व्याकरण - विप्रेक्षितम् - वि + प्र + ईक्ष् + क्त, प्र 0 एक0 । गृहीतम् - ग्रह् + क्त, प्र0 एक0। ततः - तत् + तसिल् - पंचम्यास्तसिल् ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा और सन्देह का संकर ।

विशेष - पार्वती का अवलोकन हिरणियों के चंचल अवलोकन की तरह था अथवा नीली आँखों वाली पार्वती के चंचल अवलोकन सा था - यह कहना कठिन है ।

तस्या: शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या।

ता वीक्ष्य लीलाचतुरामनंग स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।। 47।।

अन्वय - आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाज्ंननिर्मिता इव या कान्तिः लीलाचतुरां तां वीक्ष्य अनग्ङ स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।

पदार्थ - आयतलेखयोः = विस्तीर्ण रेखा वाले । तस्याः = उस (पार्वती) के । भ्रुवोः = भौंहों को । शलाकांजननिर्मिता = तुलिका की स्याही से विरचित । इव = मानो । या = जो । कान्तिः = शोभा ।

लीलीचतुराम् = विलाससुभग । ताम् = उस (शोभा) को । वीक्ष्य = देखकर । अनंग = काम ने । स्वचापसौन्दर्यमदम् = अपने धनुष के सौन्दर्य के गर्व को । मुमोच = छोड़ दिया ।

अनुवाद - पार्वती की लीलाचतुर दीर्घ भौंहों की सुषमा को, जो तूलिका की स्याही से चित्रित मालूम पड़ती थीं - (जिसे) देखकर कामदेव ने अपने धनुष के सौन्दर्य पर घमण्ड करना छोड़ दिया **॥ 47 ॥**

समास - आयता लेखा ययोः ते आयतलेखे, तयोः आयलेखयोः (बहु 0) । शलाकायाः अंजनम् शलाकांजनम् (ष 0 तत्पु 0), तेन निर्मिता शलाकांजनम् ।

व्याकरण - आयत - आ + यम् + क्त । निर्मिता - निर् + मा + क्त + टाप्, प्र 0 एक 0 । वीक्ष्य - वि + ईक्ष् + कत्वा - ल्यप् । मुमोच - मुच्, लिट्, प्र0 एक0 ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति ।

विशेष - पार्वती की भौहें धनुष के आकार की थी । पार्वती की भौहें की विलासमयी शोभा को देखकर कामदेव ने धनुष के सौन्दार्याभिमान को त्याग दिया ।

लज्जा तिरश्चा यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः ।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युः बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ॥ 48 ॥

अन्वय - तिरश्चा चेतसि लज्जा स्याद् यदि असंशयं पर्वत - राजपुत्र्याः तं केशपाशं प्रसमी श्चमर्यः बालप्रियत्वं शिथिलं कुर्युः ।

पदार्थ - तिरश्चा = पशु-पक्षियों के । चेतासि = हृदय में । लज्जा स्याद् यदि = यदि लज्जा (निवास करती) हो । असंशयम् = (तो) निःसन्देह । पर्वराजपुत्र्याः = शैलराज पुत्री (पार्वती) के। तम् = उस । केशपाशम् = केशजाल को । प्रसमीक्ष्यं = अच्छी तरह देखकर । चमर्यः = चमरी गायें। बालप्रियत्वम् = बालप्रियता (केशाभिमान) को । शिथिलं कुर्युः = छोड़ देतीं ।

अनुवाद - (मनुष्यों के समान) पशु-पक्षियो के मन में (भी) यदि लज्जा (की भावना) होती तो निश्चय ही पार्वती के उन सुन्दर केशों को देखकर चमरी गायें अपने केशाभिमान का परित्याग (अवश्य) कर देतीं ।

समास - संशस्य अभावः असंशयम् (अव्ययीभाव) । पर्वतानां राजा पर्वतराजः (ष0 तत्पु0), पर्वतराजस्य पुत्री तस्याः पर्वतराजपुत्र्याः (ष0 तत्पु0) । केशानां पाशः तम् केशपाशम् (ष0 तत्पु0) । बालाः प्रिया यासाम् ताः बालप्रियाः तासां भावः' बालप्रियत्वम् (बहु0) ।

व्याकरण - तिरच्श्राम् - तिर्यच्श्र, ष0 बहु0 । प्रसमीक्ष्य = प्र +सम् + ईक्ष् + क्त्वा (=ल्यम्) । बालप्रियत्वम् - बालप्रिय +त्व, द्वि0 एक0 ।

अलंकार - काव्यलिंग् ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि पार्वती के केशजाल की अपने केशों पर अभिमान करने वाली चमरी गायों के केशसमूह से क्या तुलना ? **॥ 48 ॥**

सर्वोपमाद्रव्यमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥49॥

अन्वय - सा विश्वसृजा एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव प्रयत्नात् यथाप्रदेशं विनिवेशितेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता ।

पदार्थ - सा = वह । विश्वसृजा = ब्रह्मा के द्वारा । एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया = एक ही स्थान पर सौन्दर्य दर्शन की इच्छा से । इव = मानो । प्रयत्नात् = प्रयत्नपूर्वक । यथाप्रदेशं = यथाचित (विभिन्न) अवयवों में । विनिवेशितेन = निहित। सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन = सकल उमानभूत पदार्थो से । निर्मिता = निर्मित की गयी ।

अनुवाद - जगन्निर्माता ब्रह्मा ने मानों एक ही स्थान पर (निखिल) सौन्दर्य को देखने की इच्छा से प्रयत्न करके यथोचित अवयवों में विन्यस्त सकल उपमानभूत पदार्थो से उस (पार्वती) को रचा।

समास - विश्वं सृजतीति तेन विश्वसृजा (उपपद तत्पु0)। एकस्मिन् तिष्ठतीति एकस्थम् (उपपद तत्पु0), एकस्यं सौन्दर्यम् एकस्थसौन्दर्यम् (कर्म0), एकस्थसौन्दर्यस्य दिदृक्षया (ष0 तत्पु0)। प्रकृष्टः यत्नः प्रयत्नः तस्मात् प्रयत्नात् (प्रादि तत्पु0)। प्रदेशम् अनतिक्रम्य यथाप्रदेशम् (अव्ययी0)। विनिवेशितेन् - विशेषेण निवेशितः विनिवेशितेन (सुप्सुपासमास)। उपामाया द्रव्याणि उपमाद्रव्याणि (ष0 तेत्पु0) सर्वाणि च तानि उपद्रव्याणि सर्वोपमाद्रव्याणि (कर्म0), सर्वोपमाद्रव्याणां समुच्च्यः' तेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्च्येन (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - विश्वसृजा - विश्वसृज + टा, तृ0 एक0। एकस्थ - एक + स्था + क। दिदृक्षया - दृश् + सन् + टाप, तृ0 एक0। विनिवेशितेन - वि + नि + विश् +णि + क्त, तृ0 एक0। निर्मिता - निर् + मा + क्त + टाप् + प्र0 एक0।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

विशेष - उपमान भूत पदार्थो के रूप में कवियों द्वारा चन्द्र, किसलय, कमल आदि मुख, अधर, चरण आदि के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने यह भाव व्यंजित किया है कि ब्रह्मा ने समग्र उपमानभूत पदार्थो से पार्वती की मानो इसलिए रचना की, जिससे कि वे एक ही स्थान पर (चराचर में व्याप्त) समस्त सौन्दर्य का अवलोकन कर सके **॥49॥**

तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥50॥

अन्वय - कदाचित् कामचरः नारदः पितुः समीपे कन्यां ता तां प्रेक्ष्य किल प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धहराम् एकवधुं भवित्री समादिदेश।

पदार्थ - कदाचित् = एक बार। कामचरः = स्वेच्छा से विचरण करने वाले। नारदः = नारद ने। पितुः = पिता (हिमालय) के। समीपे = पास। कन्यां ताम् = उस कन्या को। प्रेभ्य = देखकर। प्रेम्णा = प्रेम से। हरस्य = शिव की। शरीराद्वहराम् = अर्थांगिनी। एकवधूम् = एक पत्नी। भवित्रीम् = होगी। समादिदेश = (ऐसा) कहा।

अनुवाद - एक बार स्वेच्छाचारी नारद ने पिता (हिमालय) के समीप (बैठी हुई) उस कन्या (पार्वती) को देखकर कहा कि (यह कन्या) प्रेम से भगवान् शंकर की अर्धांगिनी (तथा) एक पत्नी होगी ॥50॥

समास - कामेन चरतीति कामचरः (उपपद तत्पु0)। अर्धं हरतीति अर्धहरा, (उपपद तत्पु0) शरीरस्य अर्धहरा शरीरार्धहरा ताम् (ष0 तत्पु0)। एका चासौ वधूः, ताम् (कर्म0)

व्याकरण - कामचरः - काम + चर् + ट्, प्र 0 एक0। नारदः = नारं (ज्ञानं) ददातीति नारद - नर +दा + क, नारः - नगरस्य भावः, नारः - नर + अण्। प्रेक्ष्य - प्रे + ईक्ष् +क्त्वा (=ल्यप)। अर्धहराम् - अर्ध + ह + अच् + टाप्, ताम्। भवित्रीम् - भू + तृच् +ङीप्, द्वि0 एक0। समादिदेश - सम् +आ + दिश्, लिट्, प्र0 एक0।

अलंकार – अनुप्रास।

विशेष - देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था। वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे। देवर्षि नारद ने पार्वती को ऊँ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था। शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है।

गुरूः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः।
ऋषे कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥ 51।

अन्वय - गुरूः अतः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराऽभिलाषः तस्थौ। हि मन्त्रपूतं हव्यं कृशानोः ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति।

पदार्थ - गुरूः = पिता (हिमालय) अतः = इसलिए। अस्याः इसके। प्रगल्भे वयसि = यौवनावस्था में। अपि = भी। निवृत्तान्यवराभिलाषः = (किसी) अन्य वर की अभिलाषा को छोड़कर। तस्थौ = बैठे रहे। (क्योंकि) कृशानोः = अग्नि के। ऋते = बिना। अपराणि = दूसरे। तेजांसि = (सुवर्ण आदि) तेज। मन्त्रपूतम् = मंत्र से पवित्र। हव्यम् = हव्य (को ग्रहण करने में)। नार्हन्ति = असमर्थ हैं।

अनुवाद - (ऋषि नारद की भविष्यवाणी पर विश्वास करने के कारण) पिता हिमालय ने पार्वती के यौवनावस्था में (कदम रखने पर) भी किसी अन्य वर की (यह सोचकर) अभिलाषी नहीं की कि अग्नि ने अतिरिक्त (सुवर्णादिक) अन्य तेज अभिमन्त्रित हव्य को (ग्रहण करने में कदापि) समर्थ नहीं हैं। **।।51।**

समास - अन्यश्चासौ वरः अन्यवरः (कर्म0)। अन्यवरे अभिलाषः अन्यवराभिलाषः (स0 तत्पु0), निवृत्तः अन्यवराभिलाषः यस्य सः निवृत्तान्यवराभिलाषः (बहु0)। मन्त्रेण पूतम् मन्त्रपूतम् (तृ0 तत्पु0)

व्याकरण - निवृत्तः - नि + वृत् + क्त। तस्थौ - स्थाः लिट्, प्र0 एक0। पूतम् - पू´ + क्त, द्वि0 व0। हव्यम् - हू + यत्, द्वि0 एक0व0। कृशानोः - ऋते के योग में पंचमी। अर्हन्ति - अर्ह् + लट्, प्र0 बहु0।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

विशेष - देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी। ऐसी कथा शिवमहापुराण में प्राप्त होती हैं।

अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभंगभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ।।52 ।।

अन्वय - अद्रिः अयाचितारं देवदेवं सुतां ग्राहयितुं न शशाक। हि साधुः अभ्यर्थनाभग्ङभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थ्यम् अवलम्बते।

पदार्थ - अद्रि = हिमालय। अयाचितारम् = मांग करने वाले। देवदेवम् = देवों के देव (महादेव) से। सुताम् = कन्या को। ग्राहयितुम् = ग्रहण कराने के लिए (विवाह का प्रस्ताव रखने के लिए)। न शशाक = साहस न कर सके। हि = क्योंकि। साधुः = सज्जन। अभ्यर्थनाभंगभयेन = प्रार्थना के विफल होने के भय से। इष्ट अपि अर्थे = इच्छित वस्तु में भी। माध्यस्थ्यम् = उदासीनता का। अवलम्बते = आश्रय लेता है।

अनुवाद - प्रार्थना करने वाले महादेव के समक्ष हिमालय अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव नहीं रख सके, क्योंकि सज्जन लोग अपनी प्रार्थना के विफल होने के भय से अभीष्ट वस्तु (को प्राप्त करने) में भी उदासीनता का आश्रय लेते हैं। (अर्थात् प्रार्थना भंग के भय से अपने मनोरथ को प्रकट नहीं करते **।। 52 ।।**

समास - न याचिता अयाचिता, तम् अयाचितारम् (नञ. तत्पु0.)। देवानां देवः देवदेवःख्, तम् देवदेवम् (ष0 तत्पु0)। अभ्यर्थनाभंगभयम्, तेन अभ्यर्थनाभंगभयेनः (ष0 तत्पु 0)।

व्याकरण - अयाचितारम् - न + याच् + तृच, द्वि0 एक0। ग्राहयितुम् - ग्रह् + णिच् + तुमुन्। शशाक - शक् + लिट्, प्र 0 एक0। इष्टे - इष्ट् + क्त, स0 एक0व0। माध्यस्थ्यम् - मध्यस्थ: ष्य´, द्वि0 एक0 व0। अवलम्बते - अव + लम्ब्, लट्, प्र 0 एक0।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

विशेष - तात्पर्य यह है कि महान् और सज्जन व्यक्यिों का अयाचना का व्रत बड़ा कठोर होता है हिमालय भी अयाचक शिव के समक्ष पार्वती के विवाह की प्रार्थना कैसे कर सकते हैं।

बोध प्रश्न-2

अभ्यास प्रश्न -2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अति संक्षेप में दीजिए -

1- -इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है

2- पार्वती के भौंहों की तुलना किससे की गई है।

3- किसने कहा पार्वति का विवाह शिव के साथ होगा।

4- ओं नमः शिवाय का जाप पार्वती को जपने के लिये किसने कहा।

5- -नारद को किसका आशीर्वाद प्राप्त था

बहुविकल्पीय प्रश्न -3

1- पार्वति का निर्माण किया -

क- ब्रह्मा ख-गौरी

ग- शकुन्तला घ- मैना

2- ओं नमः शिवाय का जाप किया-

क- हाथी ख-पार्वती

ग- मोर घ- औषधियों

3- हिमालय के शिखर पर तपस्या की-

क- गौरी ने ख- शिव ने

ग- मोर ने घ- औषधियों ने

4- श्लोक संख्या पचपन में वर्णन है-

क- हाथी का ख- किन्नरियों का

ग- शिव के गणों का घ- औषधियों का

5- श्लोक संख्या साठ में वर्णन है-

क- सप्तर्षियों का ख - पार्वती ने शिव सेवा का

ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात्सुदती ससर्ज।

तदा प्रभृत्येव विमुक्तसंग: पतिः पशुनामपवरिग्रहोऽभूत्।। 53।।

अन्वय - सुदती सा पूर्वे जनने (पूर्व ज्वलने वा) यदा दक्षरोषात् शरीरं ससर्ज तदा प्रभृति एव पशुनां पतिः विमुक्तसग्ङ सन् अपरिग्रहः अभूत्।

पदार्थ - सुदती = मनोहर दन्तपङ्क्ति से सुशोभित। सा = उस (पार्वती) ने। पूर्वे जनने = पूर्व जन्म में। यदा = जब। दक्षरोषात् = (पिता) दक्ष के प्रति क्रोध करके। शरीरम् = शरीर को। ससर्ज = छोड़ दिया। तदा प्रभृति एव = तब उस समय से ही। पशूनां पतिः = शिव।

विमुक्तसंग:= विषयों के संग का त्याग कर। अपरिग्रहः = विरक्त। अभूत = हो गये।।

अनुवाद - मनोहर दन्तपंक्ति से सुशोभित पार्वती ने पूर्वजन्म में जब (पिता) दक्ष के प्रति कुपित होकर (अपने) शरीर को (यज्ञाग्नि में) छोड़ दिया तो उस समय से ही शिव विषयों से विमुख होकर विरक्त हो गये ॥ 53 ॥

समास - शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती (बहु0)। दक्षे रोषः तस्ताम् दक्षरोषात् (स0 तत्पु0)। विमुक्तः संगः ये सः विमुक्तसंगः (बहु 0)। अविद्यमानः परिग्रहः यस्य सः अपिग्रहः (बहु0)।

व्याकरण - सुदती - सु +दन्त + ङीप् , प्र0 एक0। ससर्ज - सृज् + लिट्, प्र0 पु0 एक0। अभूत् - भू लुङ्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार – काव्यलिंग।

विशेष - यहाँ पर सती के प्राण त्यागने व शिव के तपस्या में निरत रहने के पौराणिक कथा की ओर संकेत किया गया है। इसमें सती के सतीत्व के साथ शिव के उनके प्रति निष्ठा भी सूचित है

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू।
प्रस्थं हिमोद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्क्वणत्किन्नमध्युवास ॥ 54 ॥

अन्वय - कृत्तिवासाः यताम्मा सः तपसे गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू मृगनाभिगन्धि क्वणत्किन्नरं किंचित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास।

पदार्थ - कृत्तिवासाः = चर्मवस्त्रधारी। यतात्मा = इन्द्रियों को वश में रखने वाले। सः = वह (शिव)। तपसे = तपस्या करने के लिए। गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू = गंगा के जल प्रवाह से सिंचित देवदारू वृक्षों से युक्त। मृगनाभिगन्धि = कस्तुरी से सुगन्धित। क्वणत्किन्नरं = किन्नरों के गान से युक्त। किंचित् = किसी। हिमाद्रेः = हिमालय के। प्रस्थम् = शिखर पर। अध्युवास = निवास करने लगे।

अनुवाद - मृग का चर्म धारण करने वाले, समाहितचित्तवाले वह (महादेव, सती के द्वारा देह परित्याग करने के अनन्तर) तपस्या करने के लिए, गंगा के जलप्रवाह से सिंचित, देवदारू वृक्षों से युक्त, कस्तूरी की गन्ध से सुवासित, किन्नरों के गान से गुंजित हिमालय के किसी शिखर पर निवास करने लगे **॥54॥**

समास - कृत्तिः वासः यस्य सः कृत्तिवासाः (बहु0)। यतः आत्मा यस्य सः यतात्मा (बहु0)। गंगायाः प्रवाहः गंगाप्रवाहः (ष0 तत्पु0), गंगा प्रवाहेण उक्षिताः गंगाप्रवाहोक्षिताः (तृ0 तत्पु0)।
गंगाप्रवाहेण उक्षिताः देवदारवः यस्तिमन् तत् गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारू (बहु0)। हिमस्य अद्रिः यस्य हिमाद्रेः (ष0 तत्पु0)।

व्याकरण - कृत्तिवासाः - कृत्ति + वासस्, प्र0 एक0। मृगनाभिगन्धि - मृगनाभिगन्धः + इनि, नपुं0 , प्र0 एक0। अध्युवासा - अधि + वस् + लिट्, प्र0पु0 एक0 अधि के योग में द्वितीया होती है, अतः 'प्रस्थम्' में द्वि0 का प्रयोग हुआ है।

अलंकार - परिकर अलंकार।

विशेष - सती के प्राण त्यागने पर विरक्त शिव के हिमालय में तप करने का वर्णन इसमें किया गया है।

गणानमेरूप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।
मनः शिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ॥ 55॥

अन्वयः - गणाः नमेरूप्रसवावतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वचः दधानाः मनः शिला-विच्छुरिताः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः।

पदार्थ - गणाः = (शिव के प्रथम आदि) गण। नमेरूप्रसवावतंसाः = नमेरू (वृक्ष) के फूलों को कानों में पहने हुए। स्पर्शवतीः = मुलायम। भूर्जत्वचः = भोजपत्रों को। दधानाः (वस्त्ररूप में) धारण किये हुए। मनः शिला-विच्छुरिताः = (मनःशिला = मैनसिल = एक द्रव्य विशेष) मैनसिल से अनुलिप्त। शैलेयनद्धेषु = शिलाजीत से व्याप्त। शिलाततेषु = (पत्थर की) शिलाओं पर। निषेदुः = बैठ गये।

अनुवाद - (तपस्या के लिए हिमालय के शिखर पर शिके आसीन हो जाने पर उनके) गण नमेरू वृक्ष के फूलों को कानों में पहनकर, मुलायम भोजपत्रों को (वस्त्ररूप में) धारण करके तथा शरीर पर मैनसिल का लेप करके शिलाजीत से पुती हुई चट्टानों पर बैठ रहते थे **॥55॥**

समास - नमेरूणां प्रसवाः (ष0 तत्पु0) । नमेरूप्रसवा अवतंसाछ वेषाम् ते नमेरूप्रसवावतंसाः (बहु0)। भूर्जानां त्वचः भूर्जत्वचः (ष0 तत्पु0) । मनश्शि-लाभिः (विच्छुतर मनःशिलाविच्छुरिताः (तृ0 त्पु0) । शैलेयेन नद्धानि तेषु शैलेयनद्वेषु (तृ0 तत्पु0) । शिलानां तलम् शिलातलम् तेषु (ष0 तत्पु0)। शिलातलेषु ।

व्याकरण - स्पर्शवतीः - स्पर्श + मतुप्, ङीप्, द्वि0 बहु0। दधानाः - धा + शानच्, प्र0 बहु0। विच्छुरिताः - वि + छुर् + क्त। (प्र0 ब0 व0)। नद्धेषु - नह् + क्त, स0 बहु0। निषेदुः - नि + सद् + लिट्, प्र0 पु0 बहु0 ।

अलंकार – स्वाभावोक्ति ।

विशेष - यहाँ तात्पर्य यह है कि जब शिव हिमालय के शिखर पर तपस्या करने लगे, तब उनके गण भी निकट की पत्थरों की चट्टानों पर बैठे रहते थे।

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः कुकुद्मान् ।
दृष्टः कथंचिद्गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरून्ननाद ।। 56।।

अन्वय - तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः विविग्नैः गवयैः कथंचित् दृष्टः कुकुद्मान् असोढसिंहध्वनिः (सन्) उन्नाद ।

पदार्थ - तुषारसंघातशिलाः = घनीभूतहिमशिलाओं को । खुराग्रैः = खुर के अग्रभाग से । समुल्लिखन् = तोड़ता हुआ। दर्पकलः = मद से (मत्त होकर) रँभाने वाला । विविग्नैः = भयभीत । गवयैः = गो सदृश पशुओं से। कथंचित् = किसी प्रकार । दृष्टः = देखा गया । कुकुद्मान् = बैल । असोढसिंहध्वनिः = सिंहनाद को सहन न करता हुआ (नन्दी)। उन्नाद = गरजता (रहता) था।

अनुवाद - घनीभूत हिमशिलाओं को अपने खुर के अग्रभाग से तोड़ता हुआ, मद से मतवाला होकर रम्भाने वाला (वह), भयभीत गो सदृश पशुओं से किसी प्रकार देखा गया (शिव का) बैल
(नन्दी) सिंहनाद को सहन न करता हुआ गरजता रहता था **।। 56 ।।**

समास - तुषाराणां सङ्घाताः तुषारसङ्घाताः (ष0 तत्पु0) ।, तुषारसङ्घाता एव शिलाः ताः तुषारसुघ्ङातशिलाः (कर्म0) । खुराणाम् अग्राणि खुराग्राणि तैः खुराग्रैः (ष0 तत्पु0) । दर्पेण कलः दर्पकलः (तृ0 तत्पु0) । सिंहाना ध्वनिः सिंहध्वनिः (ष0 तत्पु0) । असोढा सिंहध्वनिर्येन सः ओढसिंहध्वनिः (बहु0) । सिंहध्वनिः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - समुल्लिखन् - सम् + उद् + लिख् + शृत, प्र0 एक0। दृष्ट - दृश् + क्त, प्र0 एक0 । ककुद्मान् - कुकुद् + मतुप्, प्र0 एक0। उन्ननाद् - उद् + नद् + लिट्, प्र0 एक0।

अलंकार - स्वभावोक्ति ।

विशेष - यहाँ कहने का भाव यह है कि जैसे महान लोग दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकते हैं, तो महाबलिष्ठ नन्दी सिंह की गर्जना को कैसे सहन कर सकता है ।

तत्राऽग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्ति।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनाऽपि कामेन तपश्चचार ।। 57 ।।

अन्वय - तपसः फलानां स्वयं विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वम् एव मूर्त्यन्तरं समित्समिद्धम् अग्निम् आधाय केन अपि कामेन तपः चचार ।

पदार्थ - तपसः = तपस्या के । फलानाम् = फलों के । स्वयं विधाता = स्वयं प्रदाता । अष्टमूर्तिः = आठ रूपों वाले शिव । स्वमेव = अपनी ही । मूर्त्यन्तरम् = (एक) विशेष मूर्ति । सत्समिद्धम् = समिधा से उद्दीप्त । अग्निम् = अग्नि को । आधाय = अस्थापित करके । केनापि कामेन = न जाने किस फल की कामना से । तपः चचार = तप करने लगे ।

अनुवाद - तपस्या के फल को स्वयं प्रदान करने वाले, अष्टमूर्ति (भगवान्) शिव समिधा से उद्दीप्त अपने ही (एक) अन्य रूप अग्नि को प्रतिष्ठापित करके किसी अज्ञात प्रयोजन (की शुद्धि) के लिए वे तप करने लगे **।। 57 ।।**

समास - अष्टौ मूर्तयो यस्य सः अष्टमूर्ति (बहु0)। अन्याः मूर्तिः तत् मुर्त्यन्तरम् (मयुरव्यंसकादि समास)। समिद्धिः समिद्धः तम् समित्समिद्धम् (तृ0 तत्पु0)।

व्याकरण - विधाता - वि + धा + तृच्, प्र0 एक0। सिद्धम् - सम् + इन्ध् + क्त, द्वि0 एक0। आधाय - आ + धा + कत्वा (ल्यप्)। चचार - चर् + लिट् प्र 0 एक0।

अलंकार - अनुप्रास।

विशेष - तात्पर्य यह है कि शिव तो स्वयं प्रकाम पूर्ण ईश्वर हैं। उनके लिए तपस्या का क्या अर्थ हो सकता है। साथ ही वे अवस्था विभक्त होकर सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त हैं। फिर भी न जाने किस अज्ञात प्रयोजन की सिद्धि के लिए वे अग्नि का आधान करके तप में लीन हो गये **।।57।।**

अनर्ध्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनायाऽस्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम् ।।58।।

अन्वयः - अद्रिनाथः अनर्घ्यं स्वर्गों कसाम् अर्चितं तम् अर्घ्येण अर्चयित्वा अस्य आराधनाय सखीसमेतां प्रयतां तनूजां समादिदेश।

पदार्थ - अद्रिनाथः = पर्वतराज (हिमालय) अनर्घ्यम् = अतिदुर्लभ। स्वर्गोंकसाम् = देवताओं के। अर्चितम् = पूजनीय। तम् = उनकी (शिव की)। अर्घ्येण = अर्घ्य जल से। अर्चयित्वा = पूजा करके। अस्य = इनकी। आराधनाय = आराधना के लिए। सखीसमेतां- सखियों समेत प्रयतां- निष्ठा युक्त। तनूजां समादिदेश - पुत्री को आदेश दिया ।

अनुवाद - पर्वतराज (हिमालय) ने अतिदुर्लभ, देवताओं के पूजनीय उन (शिव) की अर्घ्यजल से अर्चना करके, उनकी आराधना करने के लिए सखियों सहित, निष्ठायुक्त (अपनी) पुत्री (पार्वती) को आदेश दिया **।। 58।।**

समास - अद्रीणां नाथः अद्रिनाथः (ष0 तत्पु0)। न अर्घ्यः अनर्घ्यः तम् अनर्घ्यम (नञ् तत्पु0)। स्वर्गः लोकः येषाम् ते स्वर्गोकसः तेषाम् स्वर्गोकसाम् (बहु0)। सखीभ्यां समेता ताम् सखीसमेताम् (तृ0 तत्पु0)।

व्याकरण - अनर्घ्यम् - अर्घ + य - अर्घ्य, न अर्घ्यम् - अनर्घ्यम् , द्वि0 एक0। अर्चितम् - अर्च् + क्त, द्वि 0 एक0। प्रयताम् - प्र + यम् + क्त + टाप्, द्वि0 एक0। समादिदेश - सम् + आ + दिश्, लिट् , प्र 0 पु0 एक0।

अलंकार – अनुप्रास।

विशेष - कहने का भाव यह है कि जब भगवान शिव हिमालय पर तपस्या करने गये तब हिमालय राज ने उनके स्वागत के लिए अपनी पुत्री को आदेश दिया।

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेन।
विकारहेतौ सति विक्रयन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।। 59।।

अन्वय - गिरिशः समाधेः प्रत्यर्भिूताम् अति शुश्रुषमाणां ताम् अनुमेन, विकाहेतौ सति येषां चेतांसि न विक्रियन्ते ते एव धीराः (सन्ति)।

पदार्थ - गिरिशः = शिव ने। समाधेः = समाधि की। प्रत्यर्थिभूताम् = विघ्नस्वरूप (होती हुई)। अपि = भी। शुश्रुमाणाम् = सेवा में संलग्न रहने वाली। ताम् = उस (पार्वती) को। अनुमेन = स्वीकार कर लिया। विकाहेतौ = चित्त के स्खलन का कारण। सति = होने पर भी। येषाम् = जिनके। चेतांसि = मन। न विक्रयन्ते = विकार युक्त नहीं हो पाते। त एव = वे ही। धीराः = धीरपुरूष (महापुरूष)। (सन्ति = होते हैं)।

अनुवाद - समाधि के लिए (एक) विघ्न का कारण होती हुई भी सेवा में तत्पर उस (पार्वती) को शिव ने (शुश्रुषा करने से) नहीं रोका। विकार का कारण (साथ में) होने पर भी जिनके चित्त विकार रहित होते हैं (वास्तव में) वे ही (तो) महापुरूष होते हैं **॥ 59 ॥**

समास - प्रत्यर्थिनी भूता ताम् प्रत्यर्थिभूताम् (सुप्सुपासमासः) । विकारस्य हेतुः विकारहेतुः, तस्मिन्, विकारहेतौ (ष0 तत्पु0)। गिरौ शेते गिरिशः (अलुक् समास)।

व्याकरण - प्रत्यर्थिभूताम् - प्रति +अर्थ + इनि - प्रत्यर्थिन + ङीप् - प्रत्यर्थिनी + भू + क्त + टाप्, ताम, द्वि0 एक0। शुश्रुषमाणाम् - श्रु + सन् + शानच् + टाप्, द्वि0 एक0। अनुमेने - अनु + मन् + लिट्, प्र0 एक0। (आत्मनेपद)। विक्रियन्ते - वि + कृ + य्, लट्, प्र0 बहु0 (भावे प्रत्ययः)।

विशेष - यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि महापुरूषों के लिए कोई भी कार्य करना असम्भव नहीं होता व महायोगियों की एकाग्रता में कोई भी वस्तु व्यधान नहीं होती है। इसलिए पार्वती भी भगवान शिव की तपस्या व एकाग्रता में बाधक नहीं हो सकतीं।

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥ 60॥

अन्वय - सुकेशी सा अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां च उपनेत्री (सती) तच्छिरच्श्रन्द्रपादैः नियमितपरिखेदा (सतो) प्रत्यहं गिरिशम् उपचचार।

पदार्थ - सुकेशी = सुन्दर केशों वाली। सा = वह (पार्वती)। अवचितबलिपुष्पा = (बलि = पू जा) पूजा के लिए फूल चुनकर। वेदि = सम्मार्गदक्षता = वेदी के सम्पार्जन (सफाई) में कुशल। नियमविधिजलानाम् = नित्यानुष्ठान के लिए जलों का। बर्हिषाम् = कुशों का। उपनेत्री = चयन करने वाली। तच्छिरच्श्रन्द्रपादैः = उनके सिर पर स्थित चन्द्रमा की किरणों से। नियमितपरिखेदा = (अपनी) थकान को दूर कर। प्रत्यहम् = प्रतिदिन। गिरिशम् = शिव को। उपचचार = सेवा करने लगी।

अनुवाद - सुन्दर केशों वाली पार्वती पूजा के लिए फूल चुनकर, वेदी के सम्पार्जन में दक्ष, नित्यानुष्ठान के लिए जलों तथा कुशों का चयन करने वाली भगवान शंकर के सिर पर स्थित चन्द्रकिरणों से (अपनी) थकान मिटाकर प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगीं **॥60 ॥**

समास - बलेः पुष्पाणि बलिपुष्पाणि (ष0 तत्पु0)।, अवचितानि बलि-पुष्पाणि यया सा अवचितबलिपुष्पा (बहु0)। वेदेः सम्मागः वेदिसम्मार्गः (ष0 तत्पु0) तस्मिन् दशा वेदिसम्मार्गदक्षा (स0 तत्पु0)। निमयस्य विधिः नियमविधिः (ष0 तत्पु0), नियमविधेः जलानि तेषाम् नियमविधिजलानाम् (ष0 तत्पु0) तच्छिरसि चन्द्रपादाः तैः तच्छिरश्चन्द्रपादैः (स0 तत्पु0)। नियमितः पारिखेदः यस्याः सा नियमित परिखेदा (बहु0)। अहनि अहनि प्रत्यहम् (अव्ययी0)।

व्याकरण - सुकेशी - सु + केश + ङीप्, प्र0 एक0। उपनेत्रो - उप + नी + तृच् + ङीप्। प्रत्यहम् - अहनि अहनि, विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव। उपचचार- उप + चर्, लिट्, प्र0 पु0 एक0।

अलंकार – परिकर।

विशेष - यहाँ का तात्पर्य यह है कि सुन्दर सुशील, संस्कारवती पार्वती विभिन्न प्रकार से भगवान शिव के सेवा में निरत हो गयीं।

4.4 सारांश

यह सर्वविदित है कि शिव ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से काम को जला डाला था। अतएव कामदेव शिव का स्वाभाविक बैरी है। उस बैर-शोधन के लिए ही मानों कामदेव ने शिरीषपुष्पों से भी अधिक कोमल पार्वती के बाहों के पाश में शिव को बांध दिया। इसी प्रकार कवि ने पार्वती के सभी अगों का वर्णन किया है। पयोधरों से उन्नत पार्वती के कण्ठ की गोल मोतियों की माला अलंकृत करती थी तथा गोल मौक्तिकमाला को उनका स्तनोन्नत कण्ठ सुशोभित करता था (इस प्रकार) एक दूसरे को विभूषित करने से (उन दोनों का) अलंकार - अलंकार्य भाव समान हो गया । कवि ने पार्वती के मुख के सौन्दर्य को कमल और चन्द्रमा में वर्तमान सौन्दर्य से उत्कृष्ट बतलाकर उनके मुख के अलौकिक सौन्दर्य की व्यजंना की है। पार्वती के मुख में कमल के सौरभ आदि गुण तो वर्तमान है ही, साथ ही साथ उसमें चन्द्रमा की आह्लादकता आदि विशेषताएँ भी विद्यमान हैं ।

आपनें जाना कि जब भगवान शिव हिमालय पर तपस्या करने गये तब हिमालय राज ने उनके स्वागत के लिए अपनी पुत्री को आदेश दिया। सुन्दर केशों वाली पार्वती पूजा के लिए फूल चुनकर, वेदी के सम्पार्जन में दक्ष, नित्यानुष्ठान के लिए जलों तथा कुशों का चयन करने वाली भगवान शंकर के सिर पर स्थित चन्द्रकिरणों से (अपनी) थकान मिटाकर प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगीं। देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी। ऐसी कथा शिवमहापुराण में प्राप्त होती हैं। समाधि के लिए (एक) विघ्न का कारण होती हुई भी सेवा में तत्पर उस (पार्वती) को शिव ने (शुश्रुषा करने से) नहीं रोका। विकार का कारण (साथ में) होने पर भी जिनके चित्त विकार रहित होते हैं (वास्तव में) वे ही (तो) महापुरूष होते हैं

महापुरूषों के लिए कोई भी कार्य करना असम्भव नहीं होता व महायोगियों की एकाग्रता में कोई भी वस्तु व्यधान नहीं होती है। इसलिए पार्वती भी भगवान शिव की तपस्या व एकाग्रता में बाधक नहीं हो सकतीं। देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था। वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे। देवर्षि नारद ने पार्वती को ऊँ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था। शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है ।इस इकाईके अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि किस प्रकार ब्रह्मा सभी उपमानभूत द्रव्यों को एक स्थान पर देखने की इच्छा से पार्वती के अंगों का निर्माण किया तथा नारद पार्वती के पिता से उसके विवाह से सम्बन्धित तथ्य बताते हैं तथा हिमालय भी तपस्या में लीन भगवान शिव की सेवा में सखियों के साथ पार्वती को लगाकर शिव की सेवा कराते हैं। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि पार्वती किशोरावस्था समाप्त होने के बाद युवावस्था में प्रवेश करतीं हैं। अनके भिन्न शारीरिक अवयवों का विश्लेषण कवि नें विभिन्न उपमाओं का सहारा लेकर मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें नखशिख वर्णन उपलब्ध हैं।

4. 5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अंगयष्टेः	मनोहर अंगों का
मण्डनम्	अलंकार
अनासवाख्यम्	मदिरा से रहित
मदस्य	मद का
नवयौवनेन	नवीनयौवनसे
तूलिकया	कूँची
चारू	मनोहर

वलित्रयम्	त्रिवली का
अधीर	चंचल
विप्रेक्षितम्	अवलोकन को
आयताक्ष्या	बड़े - बड़े नेत्रों वाली
तया	उस (पार्वती) के द्वारा
मृगांगनाभ्य:	हिरणियों से
गृहीतं नु	ग्रहण किया गया
मृगांगनाभिः	(अथवा) हिरणियों ने
ततः	उस (पार्वती) से
आयतलेखयोः	विस्तीर्ण रेखा वाले
विलास सुभग	वीक्ष्य देखकर
अनंग	काम ने
स्वचापसौन्दर्यमदम्	अपने धनुष के सौन्दर्य के गर्व को
मुमोच	छोड़ दिया
चेतासि	हृदय में
लज्जा स्याद् यदि	यदि लज्जा (निवास करती) हो
बालप्रियत्वम्	बालप्रियता (केशाभिमान) को

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर-1

अभ्यास प्रश्न 1- (1) पार्वती के सौन्दर्य का (2) कमल से (3) राजहंसों की चाल की तरह (4) शिव को (5) वेदी के समान

विकल्पीय - (1) क (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

बोध प्रश्नोत्तर-2

अभ्यास प्रश्न 2 -

(1) पार्वती के विवाह का (2) धनुष से (3) नारद ने (4) नारद ने कहा
(5) ब्रह्मा का

अभ्यास प्रश्न 3 – (1) क (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 . पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास लेखक का नाम - कपिल दिवेदी
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास

प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्लोक संख्या पैतालीस की व्याख्या करें।
2. पार्वती का सौन्दर्य वर्णन पर एक निबन्ध लिखिए।
3. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपनें शब्दों में लिखिए।
4. श्लोक संख्या 48 से 50 तक की सन्दर्भ सहित व्याख्या करें।
5. इस इकाई का महत्त्व अपने शब्दों में लिखिए।
6. प्रस्तुत इकाई के किन्हीं तीन श्लोकों की व्याख्या कीजिए।

इकाई.5 किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग
श्लोक संख्या 01 से 25 तक (मूलार्थ, अन्वय एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 1से 15 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या
- 5.3.1 काव्य एवं वनेचर के कथन का उपक्रम
- 5.3.2 वनेचर की उक्ति
- 5.3.3 दुर्योधन की नीति का वर्णन
- 5.3.4 सेवकादि के प्रति व्यवहार
- 5.3.5 त्रिवर्ण का वर्णन
- 5.3.6 उपाय चतुष्टय का वर्णन

5.4 किरातार्जुनीयम् श्लोक संख्या 16 से 25 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या
- 5.4.1 वनेचर की उक्तियॉ
- 5.4.2 धन सम्पति कृषि और प्रजासुख का वर्णन
- 5.4.3 योद्धागण एवं गुप्तचर का वर्णन
- 5.4.4 मित्रता एवं धार्मिकता का वर्णन
- 5.4.5 वनेचर का प्रस्थान एवं युधिष्ठिर का आगमन
- 5.4.6 द्रोपदी के कथन का उपक्रम
- 5.4.7 द्रोपदी की उक्तियॉ

5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 अन्य उपयोगी पुस्तकें
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वेद व्यास द्वारा रचित महाकाव्य महाभारत से सम्बन्धित एक कथा को एक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करना और वो भी संस्कृत साहित्य के वृहत्त्रयी के अन्तर्गत स्थान पाना उनमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान, महाकवि भारवि की ज्ञान - गरिमा को एक प्रतिष्ठित स्थान देता है। भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् महाभारत के वनपर्व के अर्जुनाभिगमन नामक खण्ड और उसी पर्व के कैरात पर्व से ली गई है। यद्यपि महाभारत की कथा का वर्णन ही यह महाकाव्य करता है। परन्तु कवि नें अपनी काव्य प्रतिभा से बहुत कुछ परिवर्तन एक बहुत सी सामग्रीयों को जोड़ने का सफल प्रयास किया है और मूल कथा से कहीं भी अलग न हटते हुए अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया है। इस इकाई में कवि नें वनेचर के द्वारा अपनें कार्य सम्पादन में लगे हुए गुप्तचर के गुण दोषों तथा कार्य में लगाये गये वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर राजा को अक्षरश: बतानें का वर्णन किया गया है।

सुन्दर छाया की भाँति भारवि की प्रतिभा जिससे अधिक हो गई है ऐसे छत्र सदृश भारवि के वंशस्थ छन्द की विचित्रता अवर्णनीय और अलौकिक है । अर्थ गौरव के साथ-साथ पदों की विशदार्थता अपुनरूक्तार्थता पदों का परस्पर साकाडक्षत्व प्रभृति गुण भारवि उत्तम वाणि में मानते थे। भारवि के वर्णन की शक्ति के विषय में कोई सन्देह नहीं उनकी वर्णन शक्ति विविक्तवर्णाभरणा है, सुख श्रुति है , प्रसन्नगम्भीर पद है, तथा सबके चित्त को प्रसन्न करने वाली है उनकी शैली के उत्कृष्ट रूप में एक प्रसन्न औदार्य रहता है, जो कि निश्चित ही मनोहर है भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है संस्कत भाषा पर उनके अधिकार की पराकाष्ठा हम चित्रबन्ध में पाते हैं।

चित्रबन्ध निबन्धन यदि एक काव्य की दृष्टि से उत्तम नहीं कहा जा सकता तो दूसरी ओर यह भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार व्यक्त करना है। भारवि अपने समय के प्रतिनिधि कवि है इनकी शैली उदात्त है तथा वीर रस के सर्वथा अनुरूप है भारवि राजनीति के विषम घटना-चक्र के वर्णन में पूर्ण रूप से सफल भी दिखते है वही उन्होंने अपने ग्रन्थ में सूक्तियों का एक विशाल स्वरूप भी खड़ा किया है। अपने विषय पर पकड़ और कवित्त्व चातुरी का बड़े सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है।

इस इकाई के माध्यम से प्रथम सर्ग के अन्तर्गत वनेचर के आगमन का एक कुशल राजा द्वारा अपने गुप्तचर की वार्ता को सुनने के लिए प्रेरित करना तदुपरान्त वनेचर द्वारा दुर्योधन के राज्य कौशल सम्बन्धी विभिन्न स्वरुपों का निर्धारण किया गया है। भारवि ने एक राज्य में अपने राजस्व को स्थापित करने के लिये दुर्योधन द्वारा किये गये समस्त उपायों को बड़ी ही गम्भीरता और सावधानी के साथ वनेचर के द्वारा प्रस्तुत कराया है। कवि के वृहद स्वरूप के साथ-साथ उनकी राजनीति विषयक स्वरूप से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। कवि के वृहद स्वरूप के साथ-साथ उनकी राजनीति विषयक स्वरूप से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। उनकी भाषा तथा शब्द सौष्ठव का एक सुन्दर चित्रण इस इकाई के माध्यम से आप विश्लेकषित कर सकेगें। आप अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा अपनी प्रतिभा को और ऊपर ले जा सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् के वर्ण्य विषय से अवगत हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम एक कुशल गुप्तचर के कर्तव्यों को समझा सकेंगे।

- इस इकाई के माध्यम से एक कुशल शासक के व्यवहार से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई की सहायता से वनेचर द्वारा कथित बातों की व्याख्या कर सकेंगे।
- दुर्योधन के प्रजा तथा उनके सुखादि से आप अवगत हो सकेंगे।
- द्रौपदी दारा युधिष्ठिर के समक्ष स्त्रीरूप की स्थापना से परिचित हो सकेगे।
- भारवि की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेगे।
- सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर कुशलता से दे सकेंगे।

5.3 किरातार्जुनीयम्–प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 01 से 15 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

5.3.1 काव्य एवं वनेचर के कथन का उपक्रम

भारवि ने अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के साथ श्री शब्द से किया है। श्री शब्द मंगल का सूचक है। जो कि काव्य को सुखान्त तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। तथा वनेचर द्वारा आगमन में कथा का मूल उपक्रम है। जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥ 1 ॥

अन्वय- कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यं (वनेचरं युधिष्ठिरः) अयुङ्क्त। वर्णिलिङ्गी सः वनेचरः विदितः द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ।

हिन्दी अनुवाद - कुरुदेश के राजा (दुर्योधन) के, राज्यलक्ष्मी का पालन करने वाले, प्रजाविषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, ब्रह्मचारीवेशधारी वह वनेचर समस्त वृत्तान्त जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

व्याख्या - दुर्योधन से द्यूत में पराजित होकर युधिष्ठिर द्वैतवन में वनवास का समय व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने एक किरात (वनेचर) को यह पता लगाने का कार्य सौंपा है कि प्रजा के साथ दुर्योधन कैसा व्यवहार कर रहा हैं ? और उसके प्रति प्रजा की क्या धारणा है ? किरात ब्रह्मचारी के वेश में गुप्त रुप में सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर वापस आता है और युधिष्ठिर से निवेदन करने के लिए उनके पास जाता है।

टिप्पणी - इस श्लोक के चतुर्थ चरण में 'वने वनेचरः' में छेकानुप्रास अलङ्कार है। वंशस्थ छन्द है। वंशस्थ का लक्षण है- 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ' अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण हों उसे वंशस्थ कहते हैं।

शब्द-रचना - कुरूणाम्- यहाँ ''कुरु'' शब्द कुरुदेश का वाचक है। वेदितुम्- विद् + तुमुन्। अयुङ्क्त- युज् धातु, लङ्कार, प्रथम पुरुष, एक वचन। वर्णिलिङ्गी- वर्णी का अर्थ है- ब्रह्मचारी। लिङ्ग का अर्थ है चिह्न। लिङ्गी का अर्थ है चिह्नवाला। वर्णिनः लिङ्गं वर्णिलिङ्गम्, षष्ठी तत्पुरुष। विदितः- विद् धातु, कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय, इसका अर्थ है- विदितवान्, जानकर। वनेचरः- वने चरति इति वनेचरः- वने+चर् +ट । तत्पुरुष समास । युधिष्ठिरं- युधि स्थिरः युधिष्ठिरः तम्। तत्पुरुष समास।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार प्रथम सर्ग की कथा एक ही छन्द वंशस्थ में निबद्ध है। सर्ग के अन्त में 45वें और 46वें श्लोक में छन्द बदल दिए गए हैं। अतः 44वें श्लोक तक वंशस्थ छन्द की समझना चाहिए।

5.3.2 वनेचर की उक्ति

दूत का गुण है- अमौढयममान्धममृषाभाषित्वमव्युहकत्वं चेति चार गुणाः। इन गुणों से युक्त वनेचर अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित होकर शब्द सौष्ठव तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त वचन बोलना प्रारम्भ करता है।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।। 2 ।।

अन्वय- कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे। हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद- प्रणाम करने के बाद, शत्रु द्वारा जीती गई पृथ्वी का वृत्तान्त राजा (युधिष्ठिर) से निवेदन करते समय उस (वनेचर) का मन व्यथित नहीं हुआ, क्योंकि हितैषी लोग असत्य प्रिय बात नहीं कहना चाहते।

व्याख्या- वनेचर शिष्टाचारस्वरूप सर्वप्रथम युधिष्ठिर को प्रणाम करता है। तत्पश्चात् राज्य के विषय में ज्ञात वृत्तान्त से उन्हें अवगत कराता है। यह राज्य ऐसा है, जो शत्रु द्वारा जीत लिया गया है। सर्वप्रथम दुर्योधन ने द्यूतक्रीडारूप कपट से राज्य प्राप्त किया और अब अपने व्यवहार से, नीति से प्रजा का सम्मान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है और सफल भी हो रहा है। इस प्रकार राज्य पर उसका वास्तविक अधिकार स्थापित हो रहा है। यद्यपि यह वृत्तान्त सत्य है, किन्तु युधिष्ठिर के लिए कटु भी हो सकता है। तो क्या वनेचर प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करे ? कवि का कथन है कि वह सत्य ही कहता है, भले ही वह कटु हो। इस कटु सत्य को कहने में उसे कोई पीड़ा नहीं होती, क्योंकि वह राजा युधिष्ठिर का कल्याण चाहता है। दवा कड़वी होती है, किन्तु स्वास्थ्यप्रद होती है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर युधिष्ठिर उसके अनुरूप योजना बनायेंगे और सफल होंगे। केवल प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करने वाला शुभेच्छु नहीं हो सकता। वनेचर का कटु सत्य कथन-एक विशेष बात है और इसका समर्थन एक सामान्य तथ्य द्वारा किया गया है कि हितैषी जन असत्य प्रिय भाषण नहीं करते। अतः सामान्य से विशेष का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' यह वाक्य सूक्ति है। सुन्दर कथन को सूक्ति या सुभाषित कहते हैं। सूक्तियाँ व्यापक लौकिक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

शब्द रचना - कृतप्रणामस्य - कृतः प्रणामः येन सः कृतप्रणामः, तस्य कृतप्रणामस्य। बहुव्रीहि समास। महीभुजे - महीं भुनक्ति इति महीभुक्, तस्मै। मही + भुज् + क्विप्। निवेदयिष्यतः - नि + विद् + णिच् + लृट् + शतृ। निवेदयिष्यत् का षष्ठी विभक्ति, एक वचन का यह रूप 'तस्य का विशेषण है। विव्यथे - व्यथ् धातु का लिट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन में रूप। हितैषिणः - हितम् इच्छन्ति इति हितैषिणः। हित + इष् + णिनि।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेष शालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।। 3।।

अन्वय- सः द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् इति वाचम् आददे।

हिन्दी अनुवाद - वनेचर ने शत्रुओं के विनाश हेतु उद्योग करने की इच्छा वाले राजा (युधिष्ठिर) की अनुमति लेकर एकान्त में शब्दसौष्ठव और अर्थगाम्भीर्य से सुशोभित ऐसा (आगे कहा जाने वाला) वचन अपनाया (कहना आरम्भ किया) ।

व्याख्या- युधिष्ठिर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हैं। राज्य-प्राप्ति के लिए शत्रुओं का विनाश आवश्यक है । अतः शत्रु-विनाश हेतु कुछ उपाय करने की बात युधिष्ठिर सोच रहे हैं।

इस दृष्टि से गुप्तचर द्वारा एकत्र सूचना महत्वपूर्ण है । अतः उनकी अनुमति लेकर वनेचर एकान्त में सुन्दर शब्दों में गरिमा - मण्डित प्रामाणिक बात कहता है ।

इस श्लोक में उल्लिखित 'इति' शब्द वनेचर के कथन का संकेत करता है। यह कथन आगे श्लोकों में वर्णित है। वनेचर के कथन की विशेषताओं के माध्यम से कवि ने भाषा-शैली के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है ।

शब्द रचना - भूभृतः- भुवं विभर्ति इति भूभृत् , तस्य । भू + भृ +क्विप् । षष्ठी विभक्ति, एक वचन । सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् - सुष्ठुःइति अस्य भाव: सौष्ठवम् (सुष्ठु + अञ्) । उदारस्य भावः औदार्यम् (उदार + ष्यञ्) सौष्ठवंच औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये (इतरेतरद्वन्द्व समास), तयोः विशेषः सौष्ठवौदार्यविशेषः(षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्य विशेष शालिनी, ताम् । विनिश्चितार्थाम् - विशेषेणः निश्चितः विनिश्चितः। प्रादि तत्पुरुष । विनिश्चितः अर्थः यस्याः सा, ताम् । बहुव्रीहि समास । आददे - आ + दा + लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन ॥ 3 ॥

क्रियासु युक्तैनृप चारचक्षुषो
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥ 4 ॥

अन्वय- हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वंचनीयाः। अतः असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्हसि । हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम् ।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन्! कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे गुप्तचररूपी नेत्रवाले स्वामी को धोखा न दें। इसलिए प्रिय अथवा अप्रिय (जो कुछ मैं कहूँ, उसे) आप क्षमा करें। क्योंकि हितकर और मधुर (प्रिय लगने वाले) वचन दुर्लभ होते हैं ।

व्याख्या- दुर्योधन के उत्कर्षरूप कटु सत्य का निवेदन करने से पूर्व वनेचर युधिष्ठिर से क्षमा याचना करता है । युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए वह कहता है -

हे राजन्! राजा द्वारा विशेष कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे स्वामी को यथार्थ से अवगत करा दें । स्वामी को तात्कालिक तनाव से दूर रखने के लिए, चाटुकारिता की दृष्टि से या अन्य किसी कारण से स्वामी के सामने यथार्थ को, सत्यभूत अर्थ को छिपाने का अर्थ है- स्वामी को धोखा देना। क्योंकि राजा के नेत्र गुप्तचर ही होते हैं । गुप्तचरों के माध्यम से ही उसे राज्य के स्थिति, प्रजा की प्रतिक्रिया आदि का ज्ञान होता है । इसलिए अपने कर्तव्य के अनुरूप आपसे यथार्थ-निवेदन करूँगा । मेरी बात आपको प्रिय लगे या अप्रिय, मुझे क्षमा करें। संसार में कल्याणकारी और प्रिय वचन दुर्लभ होते हैं ।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में गुप्तचर के कर्तव्य का निर्देश किया गया है । चतुर्थ चरण 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' सूक्ति है । साभिप्राय विशेषण के प्रयोग के कारण यहाँ परिकर अलङ्कार है। तृतीय चरण के विशेष अर्थ का चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ से समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

शब्द रचना - चरन्ति इति चाराः। चर् धातु से कर्ता अर्थ में अच् प्रत्यय करने पर 'चर' बनता है ।

'चर' से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर 'चार' बनता है। 'चार' शब्द का बहुवचन है 'चाराः'।
चाराःएवं चक्षूषि येषां ते चारचक्षुषः। बहुब्रीहि समास। यह पद 'प्रभवः' का विशेषण है। अनुजीविभिः - अनुजीवितं शीलम् एषाम् इति अनुजीविनः, तैः। अनु + जीव + णिनि। अनुक्त कर्ता में तृतीया। मनोहारि - मनो हर्तुं शीलमस्य इति। उपपद तत्पुरुष। मनस् + हृ + णिनि।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संश्रुणुते स किंप्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।। 5 ।।

अन्वय- यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा। यः हितात् न संश्रृणुते सः किंप्रभुः। हि नृपेषु अमात्येषु च अनुकूलेषु सर्वसम्पदः सदा रतिं कुर्वते।

हिन्दी अनुवाद- जो (परामर्श देने वाला) स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता वह कुमित्र (बुरा मित्र) है, जो (स्वामी) हितैषी से (हितवचन) नहीं सुनता वह निन्दनीय स्वामी है। क्योंकि राजाओं और मन्त्रियों के एक मत रहने पर ही सभी समृद्धियाँ अनुराग करती हैं।

व्याख्या- पूर्व श्लोक में अपने कर्तव्य का निर्देश करने के बाद वनेचर इस श्लोक में यह कहना चाहता है कि आपको (युधिष्ठिर को) मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए। वह कहता है कि जो व्यक्ति अपने स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता, वह सच्चा हितैषी नहीं है, और जो राजा या स्वामी अपने हितैषी की बात को ध्यान से नहीं सुनता, बात पर ध्यान नहीं देता वह राजा या स्वामी निन्दित स्वामी है। क्योंकि दोनों के परस्पर अनुरागयुक्त रहने से ही समृद्धि होती है। ऐसा न होने पर विनाश हो जाता है। अतः आपको मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए।

परामर्श-दाता मन्त्री तथा राजा की परस्पर विश्वसनीयता ही समृद्धि का कारण है- इस राजनीतिक तथा लोकोपयोगी तथ्यों का निरूपण इस श्लोक में किया गया है। पूर्वार्द्ध के अर्थसामर्थ्य से सिद्ध तथा निर्दिष्ट राजा और मन्त्री की विश्वसनीयता - रूप कारण का सर्वसम्पत्ति सिद्धि-रूप कार्य द्वारा समर्थन के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। श्लोक का पूर्वाध सूक्ति है।

शब्दरचना- किंसखा - कुत्सितः सखा किंसखा। कर्मधारय समास। किंप्रभुः - कुत्सितः प्रभुः किंप्रभुः। कर्मधारय समास। सर्वसम्पदः - सर्वाः सम्पदः सर्वसम्पदः। कर्मधारय। शास्ति - शास् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। द्विकर्मकधातु। संशृणुते - सम् + श्रु + लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। 'सम्' उपसर्ग लगने से अकर्मक धातु। कुर्वते - कृ धातु का लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन आत्मनेपद का रूप।

5.3.3 दुर्योधन के नीति का वर्णन

सिंहासन पर आसीन होकर भी दुर्योधन पराजय की शंका करता हुआ उत्तम प्रजानीति द्वारा पृथ्वी के राज्य को अपने वश में करने के लिये किस प्रकार प्रयत्न कर रहा है इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ।। 6 ।।

अन्वय - निसर्गदुर्बोधं भूपतीनां चरितं क्व। (अन्यत्र) अबोधविक्लवाः (मादृशाः) जन्तवः क्व। (तथापि) मया विद्विषाम् निगूढतत्त्वं नयवर्त्म यत् अवेदि अयम् तव अनुभावः।

हिन्दी अनुवाद - स्वभाव से ही दुर्बोध राजाओं का चरित्र कहाँ ? और अज्ञान से अभिभूत मेरे जैसा क्षुद्र प्राणी कहाँ ? फिर भी मैं शत्रुओं के गूढ रहस्यवाले नीतिमार्ग को जो जान सका हूँ, वह आप का ही प्रभाव है।

व्याख्या - वनेचर अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए राजाओं के व्यवहार की रहस्यात्मकता और राजनीति की सूक्ष्मता पर प्रकाश डालता है। राजाओं का व्यवहार रहस्यात्मक होता है। उसे समझ पाना सामान्य जन के वश की बात नहीं है। किस दृष्टि से कौन सा कार्य हो रहा है, इसका परिणाम क्या होगा, यह समझना कठिन होता है। सफल राजा अपनी चेष्टाओं से कार्यों का, उद्देश्यों का पता नहीं लगने देता। राजकार्य की सफलता गोपनीयता पर निर्भर रहती है। वनेचर कहता है कि मेरे पास इतनी बुद्धि कहाँ है कि राजनीति की गम्भीरता को समझ सकूँ। तथापि मैंने जो समझा है, वह आप की कृपा से ही सम्भव हो सका है। राजाओं के रहस्यात्मक चरित्र और सामान्य व्यक्ति की अज्ञानता में परस्पर विषमता का निरूपण किया गया है, अतः विषम अलंकार है।

शब्दरचना- निसर्गदुर्बोधम् - निसृज्यते इति निसर्गः, दुःखेन कुमते इति दुर्बोधम्, निसर्गेण दुर्बोधम् निगर्सदुर्बोधम्। तृतीया तत्पुरुष समास। 'चरितम्' का विशेषण है। भूपतीनाम् - भुवः पतिः भूपतिः, तेषाम्। षष्ठी तत्पुरुष समास। अबोधविक्लवाः - न बोधः अबोधः। नञ् तत्पुरुष। अबोधेन विक्लवाः अबोधविक्लवाः। तुतीया तत्पुरुष। निगूढतत्त्वम् - नितराम् गूढं तत्त्वं यस्य तत् निगूढतत्त्वम्। बहुब्रीहि। नयस्य वर्त्म नयवर्त्म। षष्ठी तत्पुरुष। अवेदि - विद् धातु लुङ् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन, कर्मवाच्य।

विशंकमानो भवतः पराभवं
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥ 7 ॥

अन्वय- नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः दुरोदरच्छद्मजितां नयेन जेतुं समीहते।

हिन्दी अनुवाद- सिंहासन पर आरूढ रहता हुआ भी दुर्योधन, वनवासी आप (युधिष्ठिर) से पराजय की आशंका करता हुआ, द्यूत के व्याज से जीती गई पृथ्वी को नीति से वश में करने की चेष्टा कर रहा है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन राजगद्दी पर बैठा हुआ है, साधनसम्पन्न है, फिर भी जंगल में रहने वाले साधनविहीन आप से पराजय की शंका करता रहता है। इसीलिए प्रजा का मन जीतने के लिए, प्रजा को अपने पक्ष में करने के लिए, नीति का आश्रय ले रहा है। उसने द्यूत के माध्यम से राज्य प्राप्त किया है, वास्तव में उसके पास कोई जनाधार नहीं है। उसके प्रशासन का मूल प्रजा में नहीं है। अपनी इस दुर्बलता को वह जानता है। इसीलिए लोकप्रियता अर्जित करने का प्रयास कर रहा है।

यहाँ ' पृथ्वी को नीति से वश में करने ' के कारण स्वरूप 'दुरोदरच्छद्मजिताम् ' का कथन हुआ है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

शब्दरचना- नृपासनस्थः - नृपस्य आसनम् नृपासनम्। षष्ठी तत्पुरुष। नृपासने तिष्ठति इति नृपासनस्थः। उपपद तत्पुरुष। नृपासन + स्था + क। वनाधिवासिनः - वनम् अधिवसति। इति वनाधिवासी, तस्मात्। उपपद तत्पुरुष। वन + अधि + वस् + णिनि। सुयोधनः - सुखेन युध्यते इति सुयोधनः। सु + युध्+युच्। उपपद तत्पुरुष। विशङ्कमानः - वि + शङ्क + शानच्। समीहते - सम् + ईह्। लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्रं गुण सम्पदा यशः।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद्

वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।। 8।।

अन्वय- तथापि जिह्म: सः भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधः अपि अनार्यसङ्गमात् वरम् ।

हिन्दी अनुवाद- इस रूप में भी (सशङ्कित और नीतिपरायण रहता हुआ भी) कुटिल वह (दुर्योधन) आपको जीतने की इच्छा से गुणसमृद्धि द्वारा निर्मल यश फैला रहा है । ऐश्वर्यवृद्धिकारक महात्माओं के साथ विरोध भी दुर्जनों के साथ की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन आप से (युधिष्ठिर से) भयभीत रहता है । अतः लोकप्रिय बनने के लिए नीति का आश्रय ले रहा है। यद्यपि वह स्वाभाविक रूप से कुटिल हैं, किन्तु आप से प्रतिस्पर्धा रखने के कारण आपकी अपेक्षा स्वयं को उत्कृष्ट बनाने की इच्छा से गुणों द्वारा कीर्ति अर्जित कर रहा है। दुर्जनों की मित्रता की अपेक्षा महात्माओं के साथ शत्रुता भी श्रेयस्कर है। महापुरुष से विरोध होने पर उन्हें नीचा दिखाने के लिए गुणों का आश्रय लेना पड़ेगा । अतः व्यक्ति का उत्कर्ष ही होगा ।

यहाँ 'ऐश्वर्य में वृद्धि करना' महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता का कारण है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है और महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता द्वारा 'दुर्याधन द्वारा कीर्ति-अर्जन' का समर्थन किया गया । अतः काव्यलिंग से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

श्लोक का चतुर्थ चरण सूक्ति है ।

शब्दरचना- भवज्जिगीषया - जेतुमिच्छा जिगीषा, भवतः जिगीषा भवज्जिगीषा। षष्ठी तत्पुरुष। तया, हेतु अर्थ में तृतीया । अनार्यसङ्गमात् - न आर्याः अनार्याः। नञ् तत्पुरुष । अनार्याणां सङ्गमः अनार्यसङ्गमः, तस्मात् षष्ठी तत्पुरुष। महात्मभिः - महान् आत्मा येषां ते महात्मानः तैः। बहुव्रीहि । समुन्नयन् - सम् + उत् + नी + शतृ । तनोति - तन् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष, एकवचन ।

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी-

मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।

विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा

वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ।। 9।।

अन्वय- कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तन्दिवं विभज्य, नयेन पौरुषं वितन्यते ।

अनुवाद- षड्विध शत्रुसमुदाय पर विजय प्राप्त कर, मनु द्वारा निर्दिष्ट दुर्गम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, आलस्य का त्याग कर वह (दुर्योधन) रात-दिन का विभाजन करके पुरुषार्थ का नीतिपूर्वक विस्तार कर रहा है।

व्याख्या- दुर्योधन मनुष्य के छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय प्राप्त कर चुका है । मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजापालन की दुर्गम नीति का अनुसरण करना चाहता है। वह आलस्य त्याग कर उचित समय पर कर्तव्य का अनुसरण करता हुआ पुरुषार्थ-सिद्धि में लगा हुआ है। अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है ।

श्लोक के द्वितीय चरण में 'प' तथा चतुर्थ में 'त' और 'न' की असकृत् अर्थात् बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास है ।

शब्दरचना- कृतारिषड्वर्गजयेन - षण्णां वर्गः षड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष । अरीणां षड्वर्गः अरिषड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष । कृतः अरिषड्वर्गस्य जयः येन सः कृतारिषड्वर्गजयः तेन। बहुव्रीहि। अगम्यरूपां - न गम्यं रूपं यस्याः सा अगम्यरूपां, ताम्। बहुव्रीहि । नक्तन्दिवं - नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् । द्वन्द्व समास । अस्ततन्द्रिणा - अस्ता

तन्द्रिः यस्य सः तेन। बहुव्रीहि । पौरुषम् - पुरुषस्य कर्म पौरुषम् । पुरुष + अण् । विभज्य - वि + भज् + क्त्वा (ल्यप्)।

टिप्पणी- मनुस्मृति में वर्णाश्रम - धर्म का सविस्तर प्रतिपादन है । ग्रन्थ का एक बड़ा अंश राजा के कर्तव्य, दण्डविधान आदि से परिपूर्ण है। इस मार्ग का अक्षरशः पालन दुष्कर कार्य है।

बोध प्रश्न 1 -

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

क. श्रिय: शब्द का क्या अर्थ है -

क. सरस्वती ख. लक्ष्मी ग. दुर्गा घ . वाग्देवी

ख. युधिष्ठिर के समक्ष गुप्त बातें बताता है

क. दुर्योधन ख. नारद ग. अर्जुन घ . वनेचर

रिक्त स्थान भरिए -

ग. युधिष्ठिर के दूत का नाम ..... है।

घ. हितकारी और ..... वचन दुर्लभ है।

सही और गलत के निशान लगाएं -

ङ. दुर्योधन का मित्र वनेचर है। ( )

च. राजाओं और मन्त्रियों के अनुकूल रहने पर सभी सम्पत्तियॉं अनुराग करती हैं। ( )

5.3.4 सेवकादि के प्रति व्यवहार

दुर्योधन द्वारा अपने सेवकों आदि के सम्मानपूर्ण व्यवहार केवल दिखावटी नहीं अपितु हृदय से भली भाँति करता है। जिसके द्वारा वह अपने सेवकों के लिए प्रिय बन सके।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः

समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः

कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ।। 10 ।।

अन्वय- गतस्मयः सः अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् इव , सुहृदः बन्धुभिः समानमानान् , इव च, बन्धुतां कृताधिपत्याम् इव सन्ततं साधु दर्शयते।

हिन्दी अनुवाद- अहङ्कार रहित वह (दुर्योधन) बड़ी निपुणता से सेवकों को प्रिय मित्र जैसा, मित्रों को पारिवारिक व्यक्ति जैसा और पारिवारिक व्यक्तियों को राजा बनने जैसा बोध कराता है।

व्याख्या- दुर्योधन विनम्रभाव से कुशलतापूर्वक ऐसा व्यवहार करता है कि सेवक प्रिय मित्र लगते हैं अर्थात् सेवकों के साथ प्रियमित्र जैसा व्यवहार करता है। मित्रों के साथ पारिवारिक व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है और पारिवारिक व्यक्तियों के साथ ऐसा व्यवहार करता है मानों वे स्वयं अधिपति हों। यहाँ छेकानुप्रास, उपमा तथा चतुर्थ चरण में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

शब्दरचना- गतस्मयः - गतः स्मयः यस्य सः । बहुव्रीहि समास । समानमानान् - समानं मानं येषां ते समानमानाः तान् । बहुव्रीहि । सुहृदः - शोभनं हृदयं येषां ते सुहृदः, तान् । बहुव्रीहि । बन्धुतां - बन्धूनां समूहो बन्धुता, ताम् । बन्धु + तल् + टाप् । कृताधिपत्यामिव - अधिपाति इति अधिपतिः। प्रादि तत्पुरुष । अधिपतेः भावः आधिपत्यम् । कृतम् आधिपत्यम् यस्याः सा कृताधिपत्या, ताम् । बहुव्रीहि ।

5.3.5 त्रिवर्ग का वर्णन

दुर्योधन का सुखोपभोग धर्म के विपरीत नहीं है। और न ही अर्थ तथा काम। इन तीनों के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए वह त्रिवर्ण को बड़ी कुशलता के साथ अपनाता हुआ राज का भोग कर रहा है।

असक्तमाराधयतो यथायथं

विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्

न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्॥ 11॥

अन्वय - यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परं न बाधते।

अनुवाद - उचित विभाजन करके समान दृष्टि से श्रद्धापूर्वक निर्लेप भाव से सेवन करते हुए इस (दुर्योधन) के धर्म, अर्थ तथा काम गुणानुराग के कारण मानो मित्रता को प्राप्त हो गये हैं और परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते।

व्याख्या- मानव -जीवन के लक्ष्य को चार भागों में विभक्त किया गया है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष , इन्हें पुरुषार्थ कहते हैं। इनमें से प्रथम तीन पुरुषार्थ लौकिक जीवन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आती हैं, जब यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि इसे किस रूप में देखा जाय ? धर्म के रूप में, अर्थ के रूप में या काम के रूप में ? इन तीनों को विभाजित करने वाली रेखा का निर्धारण कठिन कार्य है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य इनमें से किसी एक को अधिक महत्त्व देता है और दूसरे की उपेक्षा कर देता है। एक के प्रति उसकी अधिक आसक्ति हो जाती है। फलस्वरूप उसका जीवन असन्तुलित हो जाता है तो वह असफल हो जाता है। जीवन को सन्तुलित बनाए रखने के लिए, सफलता के लिए, जीवन के सभी पक्षों को उचित महत्त्व देना पड़ता है। दुर्योधन के जीवन में सन्तुलन है। वह धर्म, अर्थ, काम की सीमा का निर्धारण करके तीनों को समान महत्त्व देता है। अतः उसके जीवन में इन तीनों में परस्पर संघर्ष की स्थिति नहीं, अपितु समन्वय है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि लगता है कि दुर्योधन के गुणों से अनुराग होने के कारण इन्होंने परस्पर मित्रता स्थापित कर ली है। क्योंकि बिना मित्रता के एक आश्रय में रहना कठिन है।

शब्दरचना- असक्तम् - न सक्तम् असक्तम्। नञ् तत्पुरुष। असक्तं यथा स्यात्तथा। क्रियाविशेषण। नञ् + सन्ज् + क्त। समपक्षपातया - पक्षे पातः पक्षपातः। सुप्सुपा। समः पक्षपातः यस्यां सा समपक्षपाता, तया। बहुव्रीहि। गुणानुरागात् - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, तस्मात्। सप्तमी तत्पुरुष। त्रिगणः - त्रयाणां गणः त्रिगणः। षष्ठी तत्पुरुष। आराधयतः - आ + राध् + णिच् + शतृ। षष्ठी विभक्ति एक वचन। ईयिवान् - इ + लिट् + क्वसु, प्रथमा एकवचन।

5.3.6 उपाय चतुष्टय का वर्णनः

साम, दान, दण्ड, भेद इन्हें उपाय चतुष्टय कहा गया है। अतः दुर्योधन भी इन उपायों को अपने राज्य विस्तार के लिये यथास्थानवत भाव के द्वारा प्रयोग करता रहता है।

निरत्ययं साम न दानवर्जितं

न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।

प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी

गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया॥ 12॥

अन्वय- तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न प्रवर्तते। (तस्य) भूरि दानं सत्क्रियां विरहय्य न (प्रवर्तते)। (तस्य) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न (प्रवर्तते)।

हिन्दी अनुवाद- उस दुर्योधन की बाधा रहित सामनीति का प्रयोग धनदान के बिना नहीं होता, प्रभूत धनदान सत्कार - रहित नहीं होता और विशिष्ट सत्कार गुणानुबन्ध के बिना नहीं होता।

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की साम और दण्ड नीति का निरूपण करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन सामनीति का प्रयोग करता है, किन्तु उसके साथ धनदान भी करता है। केवल मधुर बात ही नहीं करता बल्कि उसके साथ धन देकर सामनीति को और पुष्ट कर देता है। दान भी यदि अनादरपूर्वक किया जाय तो, उस दान का कोई फल नहीं होता। अतः सम्मानपूर्वक

दान देता है। जिस किसी व्यक्ति का सम्मान करना भी अनुचित है। अतः वह गुणवानों का ही

सत्कार करता है। इस प्रकार प्रशंसनीय बनने का पूर्ण प्रयास कर रहा है।

यहाँ पूर्व-पूर्व वाक्य के विशेषण के रूप में उत्तर - उत्तर वाक्य की स्थापना होने से एकावली अलङ्कार है।

शब्दरचना- निरत्ययं - निर्गतः अत्ययः यस्मादिति निरत्ययम् - निर् + अति + इ + अच्। बहुव्रीहि। दानवर्जितं - दानेन वर्जितं दानवर्जितम्। तृतीया तत्पुरुष। विशेषशालिनी - विशेषेण शालते इति विशेषशालिनी। उपपद समास। गुणानुरोधेन - गुणानाम् अनुरोधः, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। अनु + रुध् + घञ्। प्रवर्तते - प्र + वृत् + लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्॥ 13॥

अन्वय- वशी सः न वसूनि वान्छन्, न मन्युना (अपितु) निवृत्तकारणः स्वधर्मः इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ वा सुतेऽपि धर्मविप्लवं निहन्ति।

हिन्दी अनुवाद- जितेन्द्रिय वह दुर्योधन न तो धन के लाभ से, और न ही क्रोध के कारण, अपितु बिना किसी कारण के,'मेरा धर्म है' ऐसा मानकर गुरूजनों द्वारा निर्दिष्ट (दण्ड-विधान के अनुरूप) दण्ड द्वारा शत्रु अथवा पुत्र द्वारा किये गए धर्मातिक्रमण को रोकता है।

व्याख्या- दुर्योधन पूर्वाग्रह-मुक्त होकर केवल कर्तव्य-भावना से दण्डविधान के अनुरूप अपराधी को दण्ड देता है। दण्ड देते समय वह उपने और पराये का भेद नहीं करता। व्यक्ति की दृष्टि से दण्ड देने पर न्याय नहीं हो सकता, जिससे प्रजा राजा से खिन्न हो सकती है। दुर्योधन न्याय करता है। अतः इस विषय में प्रजा की खिन्नता का भी प्रश्न नहीं उठता।

इस श्लोक में 'वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना' इस अंश में व और न की असकृत् अर्थात् बार -बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा धर्मविप्लव के निवारण में हेतुभूत स्वधर्म का कथन होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

शब्दरचना- वशी - वशः अस्ति अस्य इति। वश + इनि। वसूनि - वसु शब्द का द्वितीया विभक्ति बहुवचन का रूप है। वसु का अर्थ है धन। मन्युना - मन्यु शब्द का तृतीया एकवचन का रूप है। मन्यु का अर्थ है 'क्रोध'। निवृत्तकारणः - निवृत्तं कारणं यस्मात् सः। बहुव्रीहि समास। निवृत्तं + नि + वृत् + क्त। कारणम् - कृ + णिच् + ल्युट्। धर्मविप्लवम् - धर्मस्य विप्लवः धर्मविप्लवः तम्। षष्ठी तत्पुरुष। स्वधर्मः - स्वस्य धर्मः स्वधर्मः। षष्ठी तत्पुरुष। गरुपदिष्टेन - गुरुभिः उपदिष्टः गुरूपदिष्टः तेन। तृतीया तत्पुरुष। निहन्ति - नि + हन् + लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

विधाय रक्षान् परितः परेतरा-
नशङ्कितोकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः

कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ।। 14।।

अन्वय- शंकितः (सः) परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्कितिाकारम् उपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कुतज्ञतां वदन्ति।

हिन्दी अनुवाद- सशंकित होता हुआ वह (दुर्योधन) चारों ओर आत्मीयजनों को रक्षक नियुक्त करके निःशंक-सा हो जाता है। कार्य सम्पन्न हो जाने पर सेवकों को दी जाने वाली सम्पत्तियाँ इसकी कृतज्ञता प्रकट करती हैं ।

व्याख्या- मनुष्य की विचारधारा विशेष परिस्थिति में बदल भी सकती है। कभी-कभी अपने भी पराये हो जाते हैं। इसीलिए शासक को किसी पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। किन्तु सब को सन्देह की दृष्टि से देखने पर विश्वसनीय भी अविश्वसनीय हो सकते हैं और धोखा दे सकते हैं। बुद्धिमानी यह है कि मन में सन्देह होते हुए भी उसे अपनी चेष्टा या व्यवहार द्वारा परिलक्षित न होने दें। दुर्योधन आत्मीयजनों को, विश्वसनीय लोगों को ही रक्षक नियुक्त करता है, किन्तु रक्षक नियुक्त करके भी उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखता है। अपने व्यवहार से यह आभास नहीं होने देता कि वह शङ्का करता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई सेवक निर्दिष्ट कार्य सम्पन्न कर देता है, तो उसे पारितोषिक देकर अपनी कृतज्ञता भी प्रदर्शित करता है।

इस श्लोक में र और त की बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- परेतरान् - परेभ्यः इतरे परेतरे तान् परेतरान् । पन्चमी तत्पुरुष । रक्षान् - रक्षन्ति इति रक्षाः तान्। रक्ष् +अच्। विधाय - वि + धा + ल्यप्। अशङ्कितिाकारम् - शङ्का सन्जाता अस्य इति शङ्कितः। शङ्का + इतच् । न शङ्कितः अशंकितः। नञ् तत्पुरुष । अशंकितस्य आकारः अशंकितिाकारः तम् । षष्ठी तत्पुरुष । आकारः - आ + कृ + घञ् । क्रियापवर्गेषु - क्रियाणाम् अपवर्गाः क्रियापवर्गाः, तेषु । षष्ठी तत्पुरुष । अपवर्गः - अप + वृज् + णिच् +घञ् । अनु + जीविसात्कृताः - अनुजीविनां सात्कृताः इति अनुजीविसात्कृताः। अनुजीविन् + साति + कृ + टाप्। कृतज्ञताम् - कृतं जानाति इति कृतज्ञः, तस्य भावः कृतज्ञता, ताम्। कृत + ज्ञा + क = कृतज्ञः, कृतज्ञ + तल् + टाप् । उपैति - उप + इ + लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता

विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।

फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-

रुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ।। 15।।

अन्वय- तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः सङ्घर्षम् उपेत्य इव परिवृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) उचित स्थानों पर भलीभाँति विभाजित करके विनियोगरूपी सत्कार को प्राप्त कराए गए (प्रयोग में लाए गए) साम, दान, दण्ड, भेद रूप उपाय (एक दूसरे से) मानो प्रतिस्पर्धा करते हुए उत्तरोत्तर वृद्धिकारिणी अर्थसम्पत्तियों को निरन्तर उत्पन्न करते रहते हैं ।

व्याख्या- उपाय की सार्थकता क्रियान्वयन में है,अर्थात् लागू करने में है । इसके साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि कब किस परिस्थिति में कौन सा उपाय लागू किया जाय ? दुर्योधन उपयुक्त अवसर पर उचित उपाय का प्रयोग करता है। राजनीति के चार उपाय हैं- साम, दान, दण्ड, भेद । इन उपायों का उचित विनियोग (प्रयोग) ही इनका सत्कार है । दुर्योधन द्वारा उचित विनियोग-रूप सम्मान से सम्मानित ये उपाय उसे अर्थसम्पत्ति प्रदान करने में (समृद्ध बनाने में) परस्पर एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते हैं अर्थात् अधिकाधिक सिद्धि प्रदान करने में लगे हुए हैं । यहाँ उपायों में परस्पर स्पर्धा की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

शब्दरचना- विनियोगसत्क्रियाः - विनियोग एव सत्क्रियाः येषां विनियोगसत्क्रियाः। विनियोग - वि + नि + युज्। परिबृंहितायतीः - परिबृंहिता आयतिः यासां ताः। बहुव्रीहि। परिबृहिता - परि + बृह + णिच् +क्त+टाप्। आयतिः - आ + यम् +क्तिन्। उपेत्य - उप + इ + क्त्वा (ल्यप्)।
तुक् का आगम। अनारतम् - न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष।

बोध प्रश्नः2 -

बहुविकल्पीय प्रश्नः-

क. पुरूषार्थ चतुष्टय में नहीं आता

(क) धर्म (ख) दण्ड

(ग) अर्थ (घ) काम

ख . सेवक आदि के प्रति व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 10 वें (ख) 11 वें

(ग) 12 वें (घ) 13 वें

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(ग) दुर्योधन अपने सेवकों को..... देता है।

(घ) अनारतं ..... लम्भिता।

नीचे कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगायें-

(ङ) दुर्योधन की सामनीति दान के बिना पूरी नहीं होती ( )

(ख) दुर्योधन इन्द्रियों को वश में करके कार्य सम्पादन करता है ( )

5.4 किरातार्जुनीयम् श्लोक संख्या 16 से 25 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

5.4.1 वनेचर की उक्ति

युधिष्ठिर दारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित सुचनाओं को प्राप्त करने के उपरान्त वनेचर सभा में उपस्थित होकर एक-एक करके सभी एकत्रित स्वरूप को यथावत स्थापित करने का सफल प्रयास करता है दुर्योधन के नीति का वर्णन से वकादि के प्रति व्यवहार ही वर्ग तथा धनसम्पत्ति के वर्णनोपरान्त उसके योद्धागण , गुप्तचर , मित्रता तथा धर्म-सम्पत्ति का

है जिसका अध्ययन आप आगे करेंगे।

अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ।। 16 ।।

अन्वय- अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति।

हिन्दी अनुवाद- सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध के समान गन्धवाला राजाओं द्वारा उपहार में दिए गए हाथियों का मदजल, अनेक राजाओं के रथों और अश्वों से भरे हुए उसके (दुर्योधन के) सभाभवन के प्राङ्गण को अत्यधिक गीला बना रहा है।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए कहता है कि दुर्योधन के सभा भवन में अनेक राजा उपस्थित रहते हैं। उनके वाहनों से सभा भवन का प्राङ्गण भरा रहता है। दरबार में आने वाले राजा साथ में उपहार भी लाते हैं। ऐसे ही उपहार में प्राप्त श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से प्राङ्गण गीला बना रहता है।

वनेचर का भाव यह है कि दुर्योधन के बढ़ते प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के राजा दुर्योधन से मैत्री-सम्बन्ध बनाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ते हैं और उसे प्रसन्न करने के लिए उपहार भी लाते हैं।

शब्दरचना- न युग्मः अयुग्मः। नञ् तत्पुरुष। अयुग्माः छदाः अस्य इति अयुग्मच्छदः। बहुव्रीहि। अयुग्मच्छदस्य विकारः पुष्पम् अयुगमच्छदम्। अयुग्मच्छद + अण्। अयुग्मच्छदस्य गन्धः अयुग्मच्छदगन्धः। षष्ठी तत्पुरुष। अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः अयुग्मच्छन्दगन्धिः। बहुव्रीहि। नृपोपायनदन्तिनाम् - नृपाणाम् उपायनानि नृपोपायनानि। षष्ठी तत्पुरुष। नृपोपायनानि दन्तिनः नृपोपायनदन्तिनः। कर्मधारय। तेषाम् नृपोपायनदन्तिनाम्। आस्थान - निकेतनाजिरम् - आस्थानस्य निकेतनम् आस्थाननिकेतनम्। षष्ठी तत्पुरुष। आस्थाननिकेतनस्य अजिरम् आस्थाननिकेतनाजिरम्। षष्ठी तत्पुरुष। अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् - न एके अनेके। नञ् तत्पुरुष। अनेके राजन्याः अनेकराजन्याः। कर्मधारय। रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम्। समाहार द्वन्द्व। अनेकराजन्यरथाश्वेन सङ्कुलम् इति अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम्। तृतीया तत्पुरुष।

टिप्पणी- युग्म का अर्थ है जोड़ा। छद का अर्थ है पत्ता। जिस पेड़ के गुच्छे में जोड़ पत्ते नहीं होते, उसे अयुग्मच्छद कहेंगे। एक वृक्ष है, जिसमें एक गुच्छे में सात पत्ते होते हैं, इसीलिए इसे 'सप्तमपर्ण' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'विषमच्छद' है। 'विषमच्छद' का ही पर्याय है- अयुग्मच्छद। श्रेष्ठ हाथियों के गण्डस्थल से चूने वाले मदजल की गन्ध सप्तपर्ण के फूल की गन्ध के समान होती है। आस्थान का अर्थ है- सभा।

5.4.2 धन- सम्पत्ति, कृषि और प्रजासुख का वर्णन

दुर्योधन अपने राज्य में उपहार के रूप में लाए गऐ हाथियों और अश्वों जहाँ आँगन को अर्थ
सम्पतियों से पूर्ण वैभवशाली बना रहा है वही खेती की समृद्धि तथा किसानों के सुख का
उल्लेख कर अपने प्रजा पालन की दक्षता दर्शाता है। श्लोक संख्या 17 के वर्णन में इसको निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है -

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति ।। 17 ।।

अन्वय- चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति (सति) अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

हिन्दी अनुवाद - चिरकाल तक उसके (दुर्योधन के) द्वारा (प्रजा का) हित-सम्पादन होने पर वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला कुरुदेश, कृषकों द्वारा मानो बिना जोताई के ही अनायास प्राप्त होने वाली फसलों को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

व्याख्या -दुर्योधन के प्रशासन की विशेषता का प्रतिपादन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन प्रजा के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। इसी का परिणाम है कि आज उसके राज्य में कृत्रिम् नदियों और नहरों का जाल बिछा हुआ है। अब प्रजा को वर्षा के जल पर आश्रित नहीं रहना पड़ता। सिंचाई की पर्याप्त

सुविधा के कारण किसान कृषिकार्य में कठिनाई का अनुभव नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि ये बिना जोताई वगैरह किए ही बड़ी आसानी से फसल प्राप्त कर लेते हैं। किसानों द्वारा उगाई गई फसल से सम्पूर्ण कुरुदेश सस्यसमृद्ध हो गया है। किसी देश की प्रमुख समस्या खाद्य-समस्या होती है। खाद्य-समस्या का समाधान कृषकों द्वारा ही सम्भव है। खेती के लिए कृषकों को उचित साधन उपलब्ध कराना राजा का कर्तव्य है। खेती में सबसे बड़ी समस्या सिंचाई की होती है। दुर्योधन ने सिंचाई की समुचित व्यवस्था कर दी है। इसका परिणाम यह है कि किसान पर्याप्त फसल उगा रहे हैं और कुरुदेश धनधान्य-परिपूर्ण हो गया है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी - जो देश वर्षा के जल से सिंचित होने वाली फसल पर आश्रित रहता है, उसे देवमातृक कहते हैं, और जो देश नदी के जल से सिंचित फसल पर आश्रित रहता है, उसे नदीमातृक कहते हैं। कवि ने यहाँ कुरुदेश के लिए 'अदेवमातृकाः' विशेषण का प्रयोग किया है अर्थात् वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला। वर्षा के जल पर आश्रित न रहने का अर्थ है- कृत्रिम साधनों अर्थात् नदियों या नदियों से निकलने वाली नहरों के जल पर आश्रित रहना।

शब्दरचना- वितन्वति - वि + तन् + लट् शतृ, सप्तमी एकवचन। अदेवमातृकाः - देवः एव माता येषां ते देवमातृकाः। बहुव्रीहि। न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। नञ् तत्पुरुष। कुरवः - कुरूणां निवासाः कुरवः। तस्य निवासः से अण्। कुरु + अण्। अण् का लोप। अकृष्ट पच्याः - कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः, न कृष्टपच्याः अकृष्ट पच्याः। नञ् तत्पुरुष। कृषीवलैः - कृषिः अस्ति येषां ते कृषीवलाः तैः। कृषिः - कृष् + इ। कृषि + वलच्। वलच् के कारण इ का दीर्घ। सस्यसम्पदः - सस्यानां सम्पदः सस्यसम्पदः। षष्ठी तत्पुरुष।

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ।। 18 ।।

अन्वय- उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे।

हिन्दी अनुवाद- अतियशस्वी, दयालु, पूर्ण सुरक्षा के कारण निर्विघ्न रूप से प्रगति की वृद्धि करने वाले, कुबेर - सदृश इसके (दुर्योधन के) गुणों से द्रवित पृथ्वी अपने आप प्रभूत धन देती है।

व्याख्या- दुर्योधन अपने राज्य की पूर्ण सुरक्षा करता है। सुरक्षित राज्य की उन्नति में कोई व्यवधान नहीं हो पाता। किसी व्यक्ति को गाय का दूध प्राप्त करने के लिए बछड़े का सहारा लेना पड़ता है। बछड़े के प्रति प्रेम के कारण गाय द्रवित हो जाती है और उसके थन में दूध आ जाता है, किन्तु उसे दूध को निकालने के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है। दुर्योधन के गुणों से द्रवित पृथ्वी उस गाय के समान है, जो अपना दूध स्वयं दे देती है। इसके लिए अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। पृथ्वी स्वयं प्रभूत धनसम्पत्ति प्रदान करती है अर्थात् राज्य बाहरी आक्रमण आदि से मुक्त होकर निरन्तर समृद्धि की ओर बढ़ रहा है।

यहाँ पृथ्वी का वर्णन है, किन्तु वर्णन के आधार पर अप्रस्तुत 'गाय' की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है।

शब्दरचना- उदारा कीर्तिः यस्य सः उदारकीर्तिः, तस्य। बहुव्रीहि। उद् + ऋ घञ् उदारः, कृत + क्तिन् कीर्तिः। दयावतः - दया अस्ति अस्य इति दयावान्, तस्य। दया + मतुप् (वतुप्)। प्रशान्तबाधम् - प्रशान्ता बाधा यथा स्यात्तथा। अव्ययीभाव समास, क्रियाविशेषण। वसूपमानस्य - वसुः उपमानम्, उप + मा + ल्यूट्। अभिरक्षा - अभितः रक्षा अभिरक्षा, तया। दिशतः - दिश् + लट् शतृ, षष्ठी एकवचन, अस्य का विशेषण। प्रदुग्धे - प्र + दुह् + लट् कर्मकर्ता अर्थ में। प्रथमपुरुष एकवचन।

5.4.3 योद्धा गण एवं गुप्तचर का वर्णन

दुर्योधन के राज्य में उसके सैनिक अपने युद्ध कौशल से अन्य राजाओं के मन में भय उत्पन्न कर देते हैं तथा अपनी प्राणों की आहुति देने से नहीं डरते। वहीं दुर्योधन द्वारा लगाये गये गुप्तचर अपने राजा के प्रति इमानदारी से सारी बातें प्रस्तुत करते हैं।

महौजसो मानधना धनार्चिता

धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः।

नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः

प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।। 19।।

अन्वय- महौजसः मानधनाः धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्त्तयः, नसंहताः नभिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुं वाञ्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद- महाबलशाली, स्वाभिमानी, धन से सम्मानित, युद्ध में ख्याति पाये हुए,
स्वार्थवश संगठित न होने वाले और परस्पर विपरीत आचरण न करने वाले धनुर्धारी (अपने) प्राणों से (भी) उसका (दुर्योधन का) कल्याण करना चाहते हैं।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन की लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहता है कि दुर्योधन का हित चाहने वाले वीर अपने प्राणों की भी बाजी लगाने के लिए तैयार है कवि ने वनेचर के इस कथन में वीरों के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है। जो प्रकारान्तर से दुर्योधन की सफलता की सम्भावना व्यक्त करते हैं।

दुर्योधन की सहायता के लिए तत्पर योद्धा बलशाली हैं। उन्हें युद्ध में पराजित करना आसान नहीं है। स्वाभिमानी हैं, अतः अपने पथ से विचलित होने वाले नहीं है। उनकी युद्ध-कला युद्ध में प्रमाणित हो चुकी है, अतः उसमें सन्देह का कोई कारण नहीं है। धन से सत्कृत हैं। अतः धन के लोभ में पड़कर दुर्योधन को धोखा दें, ऐसी भी सम्भावना नहीं है। स्वार्थ के कारण योद्धाओं में न तो कोई संगठन है और न ही परस्पर कोई विरोध है। यदि कोई संगठन होता, जो स्वार्थपूर्ति के लिए बना हो, तो स्वार्थपूर्ति के अभाव में विद्रोह भी हो सकता है। यदि उन योद्धाओं के व्यवहार परस्पर विरोधी हों तो भी दुर्योधन की सफलता सन्दिग्ध हो जाती। योद्धाओं का एक ही लक्ष्य है- दुर्योधन का हित सम्पादन और इसके लिए वे अस्त्र उठाए हुए प्राणों की बाजी लगाने के लिए तत्पर हैं। अतः दुर्योधन को पराजित करना कठिन कार्य है।

इस श्लोक में विशेषणों का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है, अतः परिकर अलङ्कार है।

शब्दरचना- महौजसः - महत् ओजः येषां ते। बहुव्रीहि। मानधनाः - मानः एव धनं येषां ते। बहुव्रीहि। धनार्चिताः - धनेन अर्चिताः। तृतीया तत्पुरुष। अर्चिताः - अर्च+णिच् + क्त। धनुर्भृतः - धनुः बिभ्रति इति धनुर्भृतः ते। उपपद समास। धनुष् + भृ + क्विप्। लब्धकीर्त्तयः - लब्धा कीर्त्तिः यै, ते। बहुव्रीहि। नसंहताः - न संहताः नसंहताः। सुप्समा। संहताः - सम् + हन् + क्त। नभिन्नवृत्तयः - भिन्नाः वृत्तयः तेषां ते भिन्नवृत्तयः। बहुव्रीहि। न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः। सुप्सुपा। भिन्नाः - भिद् + क्त+टाप्। वृत्तिः - वृत् + क्तिन्। समीहितुम् - सम् +ईह् + तुमुन्। वन्छन्ति - वान्छ + लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः

स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।

महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः

प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।। 20।।

अन्वय- अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद। धातुः इव तस्य ईहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

हिन्दी अनुवाद- (अपने) सभी कार्यों को सम्पन्न कर चुका वह (दुर्योधन) उत्तम चरित्रवाले गुप्तचरों के माध्यम से राजाओं की गतिविधियों का पता लगाता रहता है। ब्रह्मा की तरह उसकी (दुर्योधन की) चेष्टा उत्कृष्ट कल्याणप्रद परिणामों द्वारा (ही) ज्ञात होती है।

व्याख्या- एक कुशल राजा अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन नहीं रहता। सर्वप्रथम उसे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्य राजाओं की गतिविधियों की जानकारी रखनी चाहिए। गुप्तचरों के माध्यम सी अन्य राजाओं की गतिविधि का ज्ञान हो सकता है। अतः गुप्तचर को सच्चरित्र होना चाहिए। शासन में गोपनीयता आवश्यक है। अपनी योजना को गुप्त रखना चाहिए। दुर्योधन अपने कर्तव्य के प्रति सजग है। वह अपना कर्तव्य पूरा करके सदाचारी गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं के विषय में सूचना एकत्र करता रहता है, साथ ही अपनी चेष्टा को छिपाये रहता है। कार्यसिद्धि होने पर ही इसकी चेष्टा का ज्ञान हो पाता है।

शब्दरचना- अशेषितक्रियः - न शेषिताः अशेषिताः। नञ् तत्पुरुष । अशेषिताः - क्रियाः येन सः अशेषितक्रियः। बहुव्रीहि। शिष् + णिच् + क्त +टाप्। सच्चरितैः - सत् चरितं येषां ते सच्चरिताः तैः। बहुव्रीहि। चरैः - चरन्ति इति चराः, तैः। चर् + अच्। महीभृताम् - महीं विभ्रति इति महीभृतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। मही + भृ + क्विप्। निःशेषम् - निर्गतः शेषः यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा। वेद - विद् + लट् प्रथम पुरुष, एकवचन । महोदयैः - महान् उदयः येभ्यः तानि महोदयानि, तैः। बहुव्रीहि । हितानुबन्धिभिः - हितम् अनुबध्नन्ति इति हितानुबन्धीनि, तैः। उपपद तत्पुरुष। हित +अनु +बन्ध् + णिनि। प्रतीयते - प्रति + इ +लट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

5.4.4 मित्रता एवं धार्मिकता

दुर्योधन के प्रति अन्य अधीन राजाओं के प्रति शस्त्र उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। राजाओं के साथ हमेशा मित्रवत् व्यवहार ही रखता है और अपने कनिष्ठ भ्राता दुःशासन को युवराज नियुक्त कर पुरोहित के आज्ञानुसार धर्माचरण में लगा हुआ है।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ।। 21 ।।

अन्वय- तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम्। वा आननं कोपविह्वं न कृतम्। नराधिपैः अस्य शासनं गुणानुरागेण माल्यम् इव शिराभिः उह्यते।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) कभी न तो चढ़ी हुई प्रत्यन्चा वाला धनुष उठाया गया और न क्रोधवश मुँह टेढ़ा किया गया। राजाओं द्वारा इसका आदेश गुणों (दुर्योधन के दया, दाक्षिण्य आदि) के प्रति अनुराग के कारण माला (सुगन्ध, सुन्दरता आदि गुणों के कारण प्रिय) की भाँति शिर पर धारण किया जाता है।

व्याख्या- दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का वर्णन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन को कभी धनुष् उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी और न ही किसी ने कोई ऐसा अप्रिय कार्य किया कि उसे क्रोध करना पड़े। दूसरे राजा उसके गुणों से इस तरह प्रभावित हैं कि उसके आदेश को ससम्मान स्वीकार करते हैं। मनुष्य जिस प्रकार सुगन्ध, सौन्दर्य आदि से आकृष्ट होकर पुष्पमाला को शिर पर से गले में धारण करता है, उसी तरह राजा उसके आदेश को नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं ।इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। पूर्णोपमा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ उपमा के चारों तत्त्व शब्द रूप में गृहीत होते हैं। यहाँ ' शासन ' उपमेय, 'माला ' उपमान 'इव' सादृश्यवाचक शब्द तथा 'अनुराग ' साधारण धर्म है।

शब्द रचना- क्वचित् अव्यय है। सज्यम् - ज्यया सह वर्तते इति सज्यम्। 'तेन सहेति तुल्योगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास। वोपसर्जनस्य' सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है। कोपविजिह्मम् - कोपेन विजिह्मम् कोपविजिह्मम्। तृतीय तत्पुरुष। गुणानुरागेण - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः तेन। सप्तमी तत्पुरुष। हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति। नराधिपैः - नराणाम् अधिपाः नराधिपाः तैः। षष्ठी तत्पुरुष। अधिपः - अधि + पा + क। माल्यम् - माला एवं माल्यम्। माला +ष्यञ्। शिरोभिः - शिरस् शब्द का तृतीया बहुवचन का रूप है।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिनोऽनुमतः पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ।। 22 ।।

अन्वय- इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतं दुःशासनं यौवराज्ये निधाय पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः (सन्) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसं धिनोति।

हिन्दी अनुवाद- अनतिक्रमणीय आज्ञावाला वह (दुर्योधन) अभिनव यौवन से धृष्ट दुःशासन को युवराज बनाकर, स्वयं पुरोहित की अनुमति से आह्लादपूर्वक यज्ञों में हवनीय पदार्थों द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर रहा है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन की आज्ञा का कोई अतिक्रमण नहीं करता। वह अपने अनुज को युवराज बनाकर, उस पर राज्यसंचालन का दायित्व सौंप कर स्वयं धार्मिक कार्य में लगा रहता है। उसे राज्य की चिन्ता नहीं है, क्योंकि राज्य के सभी अंग मन्त्री, सेवक आदि अपने - अपने कार्य में लगे हुए हैं। अतः राज्य के सामान्य कार्यों के संचालन के लिए उसने परिपक्व बुद्धिवाले अपने अनुज को नियुक्त कर दिया है। स्वयं राज्य-कार्यभार से मुक्त होकर पुरोहित के निर्देश के अनुसार यज्ञ-सम्पादन में तल्लीन रहता है।
यहाँ द्वितीय चरण में व्यन्जनों की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

शब्दरचना - इद्धशासनः - इद्धं शासनं यस्य सः। बहुव्रीहि। इद्धम् - इन्ध् +क्त। शासनम् - शास् + ल्युट्। नवयौवनोद्धतम् - यूनो भावः यौवनम्। यौवन - युवन् + अण्। उद्धतम् - उद् + हन् + क्त। दुःशासनम् - दुःखेन शास्यते इति दुःशासनम्। दुर् + शास् +युच्। तम्। यौवराज्ये - युवा चासौ राजा च युवराजः। कर्मधारय। युवराजस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन्। युवराज + ष्यञ्-यौवराज्यम्। हिरण्यरेतसम् - हिरण्यं रेतो यस्य सः हिरण्यरेताः, तम्। बहुव्रीहि। धिनोति - धिन्व + लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

बोध प्रश्न 3.

बहु विकल्पीय प्रश्न-

(क) दुर्योधन के राज्य मे बिना जुताई ही मानो फसल तैयार हो रही थी

(क) कुरूक्षेत्र में (ख) पालित राज्यों में
(ग) दोनों में (घ) किसी में नहीं

(ख) दुर्योधन के राज्य के धनुर्धारी क्या देकर उसका कल्याण चाहते हैं

(क) धन से (ख) प्राणों से
(ग) खेती से (घ) व्यवसाय से

रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिए-

(ग) पृथ्वी मण्डल से समुद्र पर्यन्त तक का राज्य.....का है।
(घ) महीभृतां ..... क्रियाः।

नीचे कुछ वाक्य दिये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष (√) तथा गलत वाक्यो के समक्ष गलत (x) का निशान लगाइये-

(ङ) धन सम्पत्ति , कृषि तथा प्रजासुख का वर्णन श्लोक संख्या 17 में किया गया है। ( )

(च) योद्धागण एवं गुप्तचर का वर्णन श्लोक संख्या 21 में किया गया है। ( )

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती-
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।। 23।।

अन्वय- सः प्रलीनभूलापम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वत् एष्यतीः भियः चिन्तयति एव। अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता।

हिन्दी अनुवाद- वह (दुर्योधन) शत्रुराजाओं से रहित, चिरस्थायी, समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासन करता हुआ भी आप (युधिष्ठिर) से सम्भावित विपत्तियों के विषय में सोचता ही रहता है। आश्चर्य है, बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखद होता है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन समुद्रपर्यन्त भूमण्डल पर शासन कर रहा है। कोई प्रतिद्वन्द्वी राजा अवशिष्ट नहीं रह गया है। शासन में स्थिरता भी प्रतीत हो रही है, तथापि वह पाण्डवों से भयभीत रहता है। दुर्योधन के भयभीत होने का औचित्य प्रतिपादित करते हुए वनेचर पुनः कहता हैं कि बलवानों के साथ शत्रुता का परिणाम भयावह होता है। ऊपर से निश्चिन्त जैसा प्रदर्शन होने पर भी मन में एक भय व्याप्त रहता है। बलवान् शत्रु द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संकट उत्पन्न न किए जाने पर भी भावी संकट की सम्भावना से वर्तमान में भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं होता। यहाँ चतुर्थचरण सूक्ति है। इस सूक्ति द्वारा पूर्व कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- भुवं पालयन्ति इति भूपालाः। उपपद समास। प्रलीनाः भूपालाः यस्मिंस्तत् प्रलीनभपालम्, तत्। बहुव्रीहि। स्थिरायति - स्थिरा आयतिः यस्य तत्। बहुव्रीहि। आवारिधि - आ वारिधिभ्य इति आवारिधि। अव्ययीभाव समास। प्रशासत्+प्र + शास् + शतृ। प्रथमा एकवचन। एष्यतीः - इ + लृट् + शतृ। द्वितीय बहुवचन। बलवद्विरोधिता - बलवता विरोधिता बलवद्वरोधिता। सुप्सुपा।

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृता-

दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।

तवाभिधानाद् व्यथते नतानन:

सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ।। 24 ।।

अन्वय- कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नतानन: (सः) कथाप्रसङ्गेन उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् मन्त्रपदात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नतानन: उरगः इव व्यथते।

हिन्दी अनुवाद- बातचीत के प्रसंग में लोगों द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य आपके नाम (को सुनने) से अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाने से झुके हुए शिर वाला (दुर्योधन), विषवैद्य द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य, गरुड़ और वासुकि सर्प के नाम से युक्त मन्त्रपद से गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण करने वाले (अतः) नतमस्तक सर्प की भाँति पीड़ित होता है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि हे महाराज! बातचीत के प्रसंग में जब कोई आप का नाम लेता है तब दुर्योधन को अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाता है, उसका शिर झुक जाता है और वह पीड़ा का अनुभव करने लगता है। इसकी उपमा देते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन उस सर्प के समान हो जाता है जो विषवैद्य द्वारा उच्चरित मन्त्र में आए हुए गरुड़ और वासुकि के नाम को सुनकर गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण कर दुःखी हो जाता है और शिर झुका लेता है।

शब्दरचना- कथाप्रसंगेन - कथायाः प्रसंग कथाप्रसंग: तेन। षष्ठी तत्पुरुष। कथाप्रससंग: -

विषवैद्यः तेन। उदाहृतात् - उद् + आ + हृ+क्त। तस्मात्। तवाभिधानात् - तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी। द्वन्द्व समास। तवयोः अभिधानं यस्मिन् तत् तवाभिधानम्, तस्मात्। बहुव्रीहि। अभिधानम् - अभि + धा +ल्युट्। अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः - (उरगपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुष। तस्य विः आखण्डलसूनुविः। षष्ठी तत्पुरुष। अनुस्मृतः

आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि।

(दुर्योधनपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुष। आखण्डलसूनोः विक्रमः आखण्डलसूनुविक्रमः। षष्ठी तत्पुरुष। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि। नताननः - नतम् आननं यस्य सः। बहुव्रीहि। व्यथते - व्यथ् लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

तदाशु कर्तुं त्वयि निह्नमुद्यते
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।। 25।।

अन्वय - तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम्। परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु।

हिन्दी अनुवाद - इसलिए आपके (युधिष्ठिर के) प्रति कुटिल व्यवहार करने में तत्पर उसके प्रति (दुर्योधन के प्रति) उचित प्रतिकार शीघ्र कीजिए। दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र होते हैं।

व्याख्या- युधिष्ठिर से हस्तिनापुर का वृत्तान्त निवेदन करने वाला वनेचर अपने कथन का

उपसंहार करते हुए कहता है कि दुर्योधन आपके प्रति कपट पूर्ण व्यवहार कर रहा है। अतः आप उसके प्रति शीघ्र ही उचित प्रतिकार करें।

वनेचर ने 'विधेयम्' अर्थात् 'उचित' शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया है कि कर्तव्य का निर्देश करना गुप्तचर का कार्य नहीं है। यदि गुप्तचर ऐसा करता है, तो वह अपनी सीमा का, मर्यादा का उल्लंघन करता है।

श्लोक के तृतीय और चतुर्थ चरण में वह गुप्तचर की कार्यपद्धति का भी निर्देश करता है। गुप्तचर गुप्तरूप में लोगों की बात सुनता है। उस बात में से अपने लिए उपयोगी अंश को ग्रहण करता है। यही वचन का चयन है। इस प्रकार उपलब्ध सभी अंशों का पर्यालोचन करता हुआ वह एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। यह निष्कर्ष ही समाचार या वृत्तान्त ही उसके कथन का सार है। 'प्रवृत्तिसार' अर्थात् 'वृत्तान्तरूप सार' कहने का एक अभिप्राय यह है कि वनेचर यह स्पष्ट करना चाहता है कि मेरी ओर से इस वृत्तान्त में कुछ जोड़ा नहीं गया है। बल्कि मैंने जो सुना है, उसका ही सार है। यदि गुप्तचर पूर्वाग्रहयुक्त होकर अपनी धारणा के अनुरूप परिस्थितियों का विश्लेषण करने लगता है और उपलब्ध तथ्यों को गौण बना देता है, तब वह सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। ऐसी स्थिति में वास्तविकता से अनभिज्ञ राजा की योजना विफल हो सकती है और राज्य नष्ट हो सकता है। यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास है।

शब्दरचना- उद्यते - उद् + यम् + क्त । तस्मिन् । विधेयम् - वि + धा + यत् । उत्तरम् - अतिशयेन उत् इति उत्तरम् - उत् + तरप् अथवा उद् + तृ + अप् । परप्रणीतानि - परैः प्रणीतानि, इति। तृतीया तत्पुरुष। प्रवृत्तिसाराः - प्रवृत्तिः सारः यासां ताः। बहुव्रीहि । चिन्वताम् - चि + लट् शतृ। षष्ठी बहुवचन ।

5.4.5 वनेचर का प्रस्थान एवं युधिष्ठिर का आगमन

दुर्योधन के राज्य संचालन से संबंधित प्राप्त विषय वस्तु को कुशलता के साथ युधिष्ठिर के समक्ष स्थापित करने के उपरान्त वनेचर प्रस्थान करता है तथा युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा कथित वृतान्त द्रोपदी से कहते हैं ।

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम् ।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः।। 26 ।।

अन्वय- वनसन्निवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः आचचक्षे ।

हिन्दी अनुवाद - वनवासियों के स्वामी (वनेचर) के ऐसा कह कर तथा (पुरस्कार से) सम्मानित होकर चले जाने के बाद राजा (युधिष्ठिर) ने द्रौपदी के पास जाकर भाइयों के सामने उस वृत्तान्त को कहा ।

व्याख्या - वनेचर की बात सुनकर युधिष्ठिर कार्यनिष्पन्न करने के लिए उसे पुरस्कृत करते हैं ।

पुरस्कार-रूप सम्मान पाकर वनेचर चला जाता है । इसके बाद युधिष्ठिर द्रौपदी के पास जाते हैं । वहाँ भाइयों के समक्ष दौपदी से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहते हैं। भाइयों की उपस्थिति में द्रौपदी से वृत्तान्त निवेदन का प्रयोजन यह है कि वर्तमान परिस्थिति में भावी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया जा सके ।

शब्दरचना- वनसन्निवासिनाम् - वने सन्निवसन्ति इति वनसन्निवासिनः तेषाम् । उपपद तत्पुरुष। वन + सत् + नि +वस् + णिनि । ईरयित्वा - ईर + णिच् + क्त्वा । आत्तसत्क्रिये - आत्ता सत्क्रिया येन स आत्तसत्क्रियः, तस्मिन् । बहुव्रीहि । आत्ता - आ + दा +क्त, सत्क्रिया - सत् + कृ + श। महीभुजा - महीं भुनक्ति इति महीभुक् तेन । उपपद तत्पुरुष । मही + भुज् + क्विप् । कृष्णासदनम् - कृष्णायाः सदनम् इति कृष्णासदनम् । षष्ठी तत्पुरुष । अनुजसन्निधौ - अनु पश्चात् जायन्ते ये ते अनुजाः । उपपदतत्पुरुष । अनुजानां सन्निधिः अनुजसन्निधिः, तस्मिन् । षष्ठी तत्पुरुष । अनुजः - अनु + जन् + ड । सन्निधिः - सम् + नि + धा + किः। आचचक्षे - आङ् + ख्या (चक्षिङ्) + लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

5.4.6 द्रोपदी के कथन का उपक्रम

शत्रुओं की समृद्धि और उन्नति का समाचार सुनकर द्रोपदी अपने भावावेग को रोक नहीं पाती औंर राजा के क्रोध एव उत्साह को बढ़ाने के लिए अपने क्रोध का सहारा लेकर कहने के लिए उधृत होती है ।

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती-
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी-
रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः।। 27 ।।

अन्वय- ततः द्रुपदात्मजा द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहार ।

हिन्दी अनुवाद - तब द्रौपदी ने शत्रुओं के उत्कर्ष को सुनकर उससे उठने वाले मानसिक विकारों को रोकने में असमर्थ होकर राजा (युधिष्ठिर) के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने के लिए कहना आरम्भ किया।

व्याख्या- युधिष्ठिर के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के बाद द्रौपदी कौरवों के उत्कर्ष की बात सुनकर तिलमिला उठती है। अपने मनोविकारों को वह नियन्त्रित नहीं कर पाती है और युधिष्ठिर के प्रति ऐसे मार्मिक वचन कहती है, जो युधिष्ठिर के क्रोध को प्रदीप्त कर दे और वे राज्य प्राप्ति हेतु उद्योग करने लगे।

इस श्लोक में ' त ' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। मनोविकारों को न रोक पाना ही उत्तेजक वचन का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

शब्दरचना - द्रुपदात्मजा - द्रुपदस्य आत्मजा द्रुपदात्मजा। षष्ठी तत्पुरुष। ततस्त्याः - ततः आगताः इति ततस्त्याः। ततस् + त्यप् टाप्। अक्षमा - न क्षमा अक्षमा। नञ् तत्पुरुष। मन्युव्यवसाययोः दीपिन्यः मन्युव्यवसायदीपिन्यः, ताः। षष्ठीतत्पुरुष। व्यवसायः - वि + अव+सो +घञ्। दीपिनी - दीप् + णिनि + ङीप्।

5.4.7 द्रोपदी की उक्तियाँ

द्रोपदी अपने पति युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्सुक करने के लिए पूर्व में हुई घटनाओं को याद दिलाती हुए स्त्रियों की वार्ता के विषय में कहती है।

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः।। 28 ।।

अन्वय- भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेपः इव भवति। तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति।

हिन्दी अनुवाद- आप जैसे लोगों के विषय में स्त्रियों द्वारा कहा गया उपदेशवचन अपमान-सदृश होता है। तथापि नारी की मर्यादा को नष्ट करने वाली मानसिक व्यथायें मुझे कहने के लिए बाध्य कर रही हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से अपनी बात कहने से पहले अपनी विवशता प्रकट करती है। युधिष्ठिर जैसे ज्ञानी व्यक्ति को स्त्री द्वारा उपदेशवचन तिरस्कार जैसा है। उनके ज्ञान और विवेक पर प्रश्नचिह्न लगाने वाला है। द्रौपदी यह अनुभव करती है, फिर भी स्वयं को नियन्त्रित नहीं कर पा रही है। अपनी बात कहने जा रही है। पत्नी पति को उपदेश दे, यह मर्यादा का अतिक्रमण है। किन्तु अतिक्रमण करना या न करना द्रौपदी के वश में नहीं है। उसके मन की पीड़ा उसे कहने के लिए बाध्य कर रही है। द्रौपदी का यह कथन उसकी मानसिक पीड़ा की तीव्रता व्यक्त करता है।

शब्दरचना- प्रमदाजनोदितम् - प्रमदा चासौ जनश्च प्रमदाजनः। कर्मधारय। प्रमदाजनेन उदितं प्रमदाजनोदितम्। तृतीया तत्पुरुष। प्रमदा - प्रमद् + अच् + टाप्। उदितम् - वद् +क्त। निरस्तनारीसमयाः - नारीणां समयाः नारीसमयाः। षष्ठी तत्पुरुष। निरस्ताः नारीसमयाः यैः ते निरस्तनारीसमयाः। बहुव्रीहि। निरस्तः निर् +अस् + क्त। समयः - सम् + इ +अच्। दुराधयः - दुष्टाः आधयः दुराधयः। प्रादि तत्पुरुष। अनुशासनम् - अनु +शास् +ल्युट्। वक्तुम् - वच् + तुमुन्। व्यवसाययन्ति - वि +अव् + सो + णिच् + लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता।। 29 ।।

अन्वय- आखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् अखण्डं धुता मही त्वया मदच्युता मतंगजेन स्रक् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता।

हिन्दी अनुवाद - इन्द्र के समान तेजस्वी अपने पूर्वज राजाओं द्वारा चिरकाल तक पूर्णरूप से धारण की गई पृथ्वी तुम्हारे द्वारा अपने हाथ से उसी तरह दूर कर दी गई जैसे मतवाले हाथी द्वारा अपनी सूँड़ से दूर फेकी गयी माला।

व्याख्या - द्रौपदी युधिष्ठिर के अहंकार को, स्वाभिमान को उद्दीप्त करने के लिए अपने कुल के गौरवपूर्ण इतिहास का स्मरण करा रही है। वह कहती है कि जिस राज्य को पूर्वजों ने अपने पराक्रम से बहुत दिनों तक अपने अधीन रखा था, उस राज्य को आपने सहज की त्याग दिया। जिस प्रकार हाथी माला के गुणों को न पहचान कर उसे दूर फेंक देता है, उसी तरह आपने राज्य के महत्त्व को नहीं पहचाना और उसे अपने हाथ से निकल जाने दिया। द्रौपदी यहाँ तक भी बताना चाहती है कि आपके पास सामर्थ्य है। यदि आप चाहते तो राज्य की रक्षा कर सकते थे। आपने रक्षा नहीं की। इसलिए मैं समझती हूँ कि आपने स्वयं ही राज्य को छोड़ दिया है।

शब्दरचना- आखण्डलतुल्यधामभिः - आखण्डयति पर्वतान् इति आखण्डलः इन्द्रः। आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः तैः। बहुव्रीहि। यह पद 'भूपतिभिः' का विशेषण है। आखण्डलः - आ + खण्ड + कलच्। धामन् - धा + मनिन्। स्ववंशजैः - स्वस्य वंशः स्ववंशः। षष्ठी तत्पुरुष। स्ववंशात् जायन्ते ये ते स्ववंशजाः तैः। उपपद तत्पुरुष। मदच्युता - मदं च्योतति इति मदच्युत्, तेन। उपपद तत्पुरुष। मद + च्युत् + क्विप्। मतंगजेन - मतंगात् जायते इति मतंगजः तेन। उपपद तत्पुरुष। मतङ्ग + जन् + ड। आत्महस्तेन - आत्मनः हस्तः आत्महस्तः, तेन।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्
असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥ 30 ॥

अन्वय- मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति। हि शठाः तथाविधान् असंवृतांगान् निशिताः इपवः इव प्रविश्य घ्नन्ति।

हिन्दी अनुवाद - विवेकहीन वे लोग पराजित होते हैं, जो कपटपूर्ण व्यवहार करने वाले लोगों के प्रति कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते। क्योंकि धूर्त्त लोग इनका विश्वासपात्र बनकर इन्हें वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे कवच आदि से अनाच्छादित शरीर वाले व्यक्ति के अन्दर प्रवेश करके तीक्ष्ण बाण उसे नष्ट कर देते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति का अनुसरण करने के लिए कह रही है। उसका कहना है कि जिन्हें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है, जो समय और परिस्थिति के अनुरूप आचरण नहीं करते, उनका विनाश अवश्यम्भावी है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर होती है। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। वहाँ माया को अंग के आवरणरूप में प्रस्तुत किया गया है। धूर्त्त लोगों से रक्षा के लिए माया कवच है। जिस प्रकार कवच अंग नहीं अपितु अंग का रक्षक है, वैसे ही माया को स्वभाव नहीं समझना चाहिए, उसे गुणरूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में उसका

आश्रय लेना चाहिए। विशेष परिस्थिति में अर्थात् मायावियों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार अहितकर होता है। इस श्लोक में काव्यलिंग तथा उपमा के कारण संसृष्टि अलंकार है।

शब्दरचना- मूढधियः - मूढा धीः येषां ते। बहुव्रीहि। मूढा - मुह् + क्त +टाप्। धीः - ध्यै +क्विप्। मायाविषु - माया अस्ति एषाम् इति मायाविनः, तेषु। माया + विनि। मायिनः - माया अस्ति एषाम् इति मायिनः। माया + इनि। असंवृताङ्गान् - न संवृतम् असंवृतम्। नञ् तत्पुरुष। असंवृतानि अंगानि येषां ते असंवृतांगा: तान्। बहुव्रीहि। निशिताः - नि +शो + क्त। प्रविश्य - प्र + विश् + क्त्वा (ल्यप्)। घ्नन्ति - हन् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

टिप्पणी- इस श्लोक का पूर्वार्द्ध सूक्ति है।

बोध प्रश्न .4

क. अहोदुरन्ता बलवद्विरोधिता , किसके लिए कहा गया है -

क. वनेचर ख. युधिष्ठिर ग. दुर्योधन घ. श्रीकृष्ण

ख. द्रोपदी उद्योग करनेके लिए किससे कहती है

क. भीम से ख. अर्जुन से ग. युधिष्ठिर से घ. दुर्योधन से

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

ग. युधिष्ठिर वृत्तान्त सुनने के बाद ..... महल में जाते हैं।

घ. अर्जुन के पराक्रम का स्मरण मात्र से ..... सिर झुक जाता है।

निम्नलिखित में सही गलत का निशान लगाइये

ङ. वनेचर युधिष्ठिर का सैनिक है ( )

च. महाभारत काल स्त्री प्रधान काल था ( )

5.5 सारांश

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग का यह भाग भारवि द्वारा एक सेवकों के अपने स्वामी के प्रति उन सभी कर्तव्यों का बोध कराता है। जिनके कि एक सेवक के अन्दर समाहित होने चाहिए। सेवक का कार्य केवल सेवा ही नहीं अपितु वे सभी कार्य जिससे की वह अपने स्वामी की रक्षा कर सके। वह एक सच्चा हितैषी भी है। राजा का कर्तव्य है कि वह अपने हितैषी के सभी वचनों को ध्यान से, बिना किसी मध्यवार्ता के सुनते रहे और सेवक का कर्तव्य है कि वह सत्य बात ही राजा के समक्ष प्रस्तुत करें। वनेचर अपने स्वामी युधिष्ठिर के आदेशानुसार प्राप्त सूचना उनके समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे दुर्योधन के धन ऐश्वर्य मित्रों के उसका व्यवहार धर्म परायणता सेवकादि के प्रति व्यवहार आदि का स्थापना करता है इसके पश्चात युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर के वृतान्त को बताते हैं इसके बाद द्रोपदी राजा को युद्ध के लिए प्रेरित करने वाले वचनों को कहती है। जिसका सम्पूर्ण अध्ययन आप इकाई के माध्यम से प्राप्त कर लिए होंगे। इस इकाई में राजा का राज्य के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए तथा एक स्त्री का पति के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए इन बातों का स्थापन किया गया है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर होती है। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप किरातार्जुनीयम् में वर्णित युधिष्ठिर तथा वनेचर के मध्य वार्ता को बड़े ही सरल

तरीके से अध्ययन कर सकेंगे, प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगें तथा सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर सरलता पूर्वक दे सकेंगे।

5.6 शब्दावली

वशी	–	जितेन्द्रिय
हितैषिणः	-	हित चाहने वाले
अनुजीविभिः	-	सेवकों द्वारा
निसर्गदुर्बोधम्	-	स्वाभाविक रूप से जानने में कठिन
नयेन	-	नीति से
असक्तं	-	अनासक्त भाव से
क्रियापवर्गेषु	-	कार्य सम्पन्न होने पर
मूढधियः	-	विवेकहीन, मन्दबुद्धि वाले लोग
द्रुपदात्मजा	-	द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी
निशम्य	-	सुनकर
मन्युव्यसायंदीपिनीः	-	क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली
अपाकृतीः	-	विकारों को, भावों को
प्रमदाजनोदितम्	-	स्त्रियों द्वारा कहा गया
आखण्डलतुल्यधामभिः	-	इन्द्र के समान तेजस्वी
निशिताः	-	तीक्ष्ण

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर-1

1. क. (ख)
   ख. (घ)
   ग. वनेचर
   घ . मनोहारी
   ङ. गलत
   च .सही

बोध प्रश्नोत्तर-2

2. क. (ख)
   ख. क 10 वें
   ग. प्रचुर धन
   घ . तेन पदेषु
   ङ. गलत
   च. सही

बोध प्रश्नोत्तर-3

3. क. क ख . ख ग. दुर्योधन घ . सच्चरितैश्चरैः

ङ. सही च . गलत

बोध प्रश्नोत्तर-4

4. क. ग ख. ग ग. द्रोपदी घ .दुर्योधन का ङ. गलत च.गलत

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्
2. वामनशिवरामआप्टे - संस्कृत हिन्दी कोश

5.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
2. छन्दालंकारमन्जरी - डा0 वाकेलाल मिश्र
3. सिद्धान्त कौमुदी – वरदराजाचार्य
4. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
2. दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित नीतियों की व्याख्या कीजिए।
3. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
4. दुर्योधन के प्रजा सम्बन्धित स्वरूप की स्थापना कीजिए।
5. द्रोपदी द्वारा कथित वाक्यों की व्याख्या कीजिए।

इकाई .6 किरातार्जुनीयम्-प्रथम सर्ग
श्लोक संख्या 31 से 46 तक मूलार्थ,अन्वय एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 द्रोपदी की उक्तियाँ
6.3.1 शत्रु द्वारा राजलक्ष्मी का हरण
6.3.2 पाण्डवों के स्वरूप का वर्णन
6.3.3 युधिष्ठिर के पूर्व - जीवन का वर्णन
6.3.4 क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन
6.3.5 शान्ति की नीति की आलोचना
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें
6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। भाषा शब्दमय होती है और भाव अर्थ रूप होते हैं। शब्द और अर्थ का साहचर्य ही साहित्य है। भारवि शब्द और अर्थ के प्रति विशेष जागरूक है क्योंकि इन्हें गम्भीर और व्यापक अर्थ के सन्निवेश की दृष्टि से शब्द-योजना करनी है। यह स्पष्ट है कि विशेष अर्थ के लिए विशेष शब्द का चयन करने में कवि को विशेष प्रयास करना पड़ता है। अतः काव्य में स्वाभाविकता का अभाव तो होता ही है। प्रायः क्लिष्टता भी आ जाती है। भारवि भी मानते है कि बड़े पुण्य से ऐसी वाणी प्राप्त होती है, जिसका अर्थ तत्काल ज्ञात हो जाए और वह अर्थ गम्भीर भी हो। भारवि की भाषा भावग्रहण में पूर्ण सक्षम है। वर्ण्य-विषय के अनुरूप वह कहीं सरल गति से चलती है तो कहीं वक्र गति का आश्रय लेती है प्रथम सर्ग में कवि ने वंशस्थ छन्द में राजनीति का वर्णन करके यह मान्यता स्थापित की है कि राजनीति निरूपण के लिये उपयुक्त छन्द वंशस्थ ही है। सर्ग के आरम्भ में वनेचर युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन की शासन व्यवस्था का वर्णन करता है। वह वर्णन यथार्थ परक है। द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्तेजित करना चाहती है। उसकी वाणी में तीक्ष्णता है।

इस इकाई के माध्यम से आप द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का अध्ययन करेंगे। द्रोपदी अपने सम्मान तथा अपने पतियों के सम्मान को पुनः प्राप्त कराने के लिये युधिष्ठिर के समक्ष किन-किन बातों का सहारा लेती है इस इकाई का मुख्य विषय है। भारवि ने इस चित्र का बड़े ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। वे जिस वर्ण्य को प्रस्तुत करते हैं उसका वर्णन करते ही जाते है। जिससे मूलकथा विच्छिन्न - सी प्रतीत होने लगती है। किन्तु यह उनकी विशेषता है क्योंकि कथानक अतिसंक्षिप्त है। इसे वर्णन द्वारा ही विस्तृत किया जा सकता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन कर पायेंगे।
- द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का वर्णन कर सकेंगे।
- क्रोधशून्य व्यक्ति का कोई आदर नही करता यह बता पायेंगे।
- श्लोंको की व्याख्या कर सकेंगे।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार बता पायेंगे।

6. 3 द्रोपदी की उक्तियाँ

युधिष्ठिर के द्वारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य में भेजे गये वनेचर के द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्राप्त करने के बाद युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा प्राप्त सभी सूचनायें द्रोपदी को बताते हैं। जिस पर द्रोपदी अपने आपको रोक नहीं पाती तथा प्रत्युत्तर में युधिष्ठिर से उनके सहित पूरे पाण्डवों के दुःखों का वर्णन करते हुए युद्ध के लिये प्रेरित करने का प्रयास करती है।

6.3.1 शत्रु द्वारा राजलक्ष्मी का हरण

जिस तरह दूसरों से अपनी पत्नी का अपहरण कराना लज्जापरक और मानहानिकारी होता है उसी प्रकार राजलक्ष्मी का भी शत्रुओं से अपहरण कराना महालज्जा का कारक है। यही बात द्रोपदी युधिष्ठिर को समझाते हुए कहती है।

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः

कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।

परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-

न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्॥ 31॥

अन्वय- अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वत् अन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव (गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमां) श्रियं परैः अपहारयेत्।

हिन्दी अनुवाद- अनुकूल साधनों वाला, अपने वंश पर गर्व करने वाला आपके अतिरिक्त कौन-सा राजा, गुणों से प्रेम करने वाली, गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और मन को प्रिय लगने वाली भार्या के समान (राजनीति के छः) गुणों के कारण प्रेम करने वाली, वंशपरम्परा से प्राप्त हुई मनोहर राजलक्ष्मी को (स्वयं ही) शत्रुओं द्वारा अपहृत कराएगा।

व्याख्या- द्रौपदी राजलक्ष्मी की तुलना एक पत्नी से करती हुई युधिष्ठिर को उस पति के समान बताना चाहती है, जो अपने पास सामर्थ्य होते हुए भी शत्रुओं द्वारा अपनी प्रिय पत्नी के अपहरण का विरोध नहीं करता और निन्दा का पात्र बन जाता है।

पति का अर्थ है-रक्षक। पति पत्नी का रक्षक है। यदि पत्नी गुणवती न हो, उच्च कुल की न हो और प्रिय न हो तो उसकी उपेक्षा सम्भव है। किन्तु गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और प्रिय पत्नी का अपहरण हो रहा हो और रक्षा करने में समर्थ होता हुआ भी पति उसकी रक्षा न करे तो वह लोकनिन्दा का पात्र बन जाता है। ऐसा पति अपहरण का समर्थक ही माना जाएगा।

आप राजलक्ष्मी के पति हैं। यह राजलक्ष्मी राजनीति के छः गुणों- सन्धि-विग्रह-मान-आसन-संश्रय-द्वैधीभाव- के कारण आप से प्रेम करने वाली है, आपको वंश-परम्परा से प्राप्त है और प्रिय भी है। ऐसी राजलक्ष्मी का आपके सामने शत्रुओं द्वारा अपहरण हुआ और सामर्थ्य रहते हुए भी आपने उसका प्रतिरोध नहीं किया। अतः यही कहा जाएगा कि आपने स्वयं ही राजलक्ष्मी का अपहरण कराया है। राजलक्ष्मी वंशपरम्परा से पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है, अतः उसे स्वेच्छा से नष्ट करने का भी अधिकार आपको नहीं है। दूसरी बात यह है कि आप को भी अपने कुल का अभिमान है। एक ओर कुल का अभिमान और दूसरी ओर कुल के उत्तराधिकार में प्राप्त राजलक्ष्मी का अपहरण करवाना - ये दोनों बातें असंगत है।आपके अतिरिक्त कोई राजा ऐसा असंगत आचरण नहीं करेगा । यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है।

शब्दार्थ - अनुरक्तसाधनः - अनुरक्तं साधनं यस्य सः। बहुव्रीहि। अनुरक्तम् - अनु + रञ्ज् + क्त। साधनम् - साध् + णिच् + ल्युट्। कुलाभिमानी - कुलस्य अभिमानः कुलाभिमानः षष्ठी तत्पुरुष कुलाभिमानः अस्ति अस्य इति कुलाभिमानी। अभिमानः - अभि +मन् + घञ्। गुणानुरक्ताम् - गुणेषु अनुरक्ता गुणानुरक्ता, ताम्। तृतीया तत्पुरुष। कुलजाम् - कुलात् कुले वा जाता कुलजा, ताम्। उपपद तत्पुरुष। कुल + जन् + ड + टाप्। मनोरमाम् - रमयति इति रमा। मनसो रमा मनोरमा, ताम्, षष्ठी तत्पुरुष। रमा - रम् + णिच् + अच् + टाप्। आत्मवधूम् - आत्मनः वधूः आत्मवधूः, ताम्। षष्ठी तत्पुरुष। अपहारयेत् - अप् + हृ + णिच् + विधिलिङ् प्रथम पुरुष एकवचन।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते

विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि।

कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः

शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ।। 32 ।।

अन्वय- नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन ! इस समय मनस्वी लोगों द्वारा निन्दित मार्ग पर चलने वाले आपको उद्दीपित क्रोध सूखे हुए शमीवृक्ष को धधकती आग की तरह क्यों नहीं जला देता।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करना चाहती है। इसीलिए ऐसी बातें कहती है, जो उनके मर्म पर प्रहार कर सकें। किन्तु युधिष्ठिर क्रोध करने का नाम नहीं लेते। वह कहती है- शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई जिस प्रकार की दुर्गति आप भोग रहे हैं, वह स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है। इस स्थिति में आप का क्रोध स्वयं तो उद्दीप्त नहीं ही हो रहा है, दूसरों द्वारा उद्दीपित किये जाने पर भी उद्दीप्त होकर आपको नहीं जला रहा है, यह आश्चर्य की बात है। कोई स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं द्वारा बार-बार किये गये अपमान को इस तरह चुपचाप सह नहीं सकता। अतः आपको अपमान के प्रतिशोध और राज्य-प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

इस श्लोक में 'त' और 'न' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा उपमा अलंकार है।

शब्दरचना - एतर्हि - इदम् + र्हिल् । 'इदम्' को 'एत' आदेश । मनस्विगर्हिते - प्रशस्तं मनः एषाम् इति मनस्विनः। मनस्विभिः गर्हितं मनस्विगर्हितं, तस्मिन्। तृतीया तत्पुरुष । मनस्विन् - मनस् + विनि। गर्हितम् - गर्ह + क्त । विवर्तमानं - वि + वृत् + लट् (शानच्) । उदीरितः - उद् + ईर् + णिच् + क्त । शमीतरुम् - शमी चासौ तरुश्च इति, तम्। कर्मधारय । उच्छिखः - उद्गता शिखा यस्य सः उच्छिखः । बहुव्रीहि ।

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां

भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना

न जातहार्देन न विद्विषादरः।। 33।।

अन्वय- अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति । अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरः न, विद्विषा च (सता) दरः न (भवन्ति)।

हिन्दी अनुवाद - जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता है और जो (निर्धनतारूप) विपत्तियों को (धन देकर) नष्ट करने वाला है, उसके वंश में सभी प्राणी स्वयं अधीन हो जाते हैं । क्रोधहीन क्षुद्र (अदाता) प्राणी के मित्र बन जाने पर कोई उसका आदर नहीं करता और शत्रु बन जाने पर भय (भी) नहीं करता ।

व्याख्या- द्रौपदी कहती है कि हे राजन! जिस व्यक्ति का क्रोध निष्फल नहीं होता और जो समय-समय पर धन देकर लोगों की कठिनाइयों को दूर करता है, उसके वश में सभी प्राणी अनायास ही हो जाते हैं । किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं है और कुछ देता भी नहीं है, ऐसा व्यक्ति यदि मित्र रहे, तो लोग उसका आदर नहीं करते और शत्रु रहे, तो उससे डरते भी नहीं हैं ।

युधिष्ठिर शत्रुओं पर क्रोध नहीं कर रहे हैं और राज्यविहीन होने के कारण धन देकर लोगों की सहायता करने की स्थिति में भी नहीं है । अतः इनसे मित्रता और शत्रुता का कोई अर्थ नहीं है । स्वार्थ या भय के कारण ही लोग अनुराग रखते हैं । द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि शत्रुओं पर आक्रमण करके युधिष्ठिर को अपना राज्य प्राप्त करना चाहिए और प्रजा का कष्ट दूर करके उसका सम्मान प्राप्त करना चाहिए। ऐसा न करने पर वे महत्त्वहीन हो जायेंगे । यहाँ 'विद्विषादरः' में श्लेष अलङ्कार है ।

शब्दरचना- अबन्ध्यकोपस्य - न बन्ध्यः अबन्ध्यः। नञ् तत्पुरुष । अबन्ध्यः कोपः यस्य सः अबन्ध्यकोपः, तस्य । बहुव्रीहि । आपदाम् - आ + पद् + क्विप्, षष्ठी बहुवचन । विहन्तुः - वि + हन् +तृच् + षष्ठी एकवचन ।

वश्याः - वशं गताः वश्याः। वश् + यत् । प्रथमा बहुवचन । अमर्षशून्येन - न मर्षः अमर्षः। नञ् तत्पुरुष । अमर्षेण शून्यः अमर्षशून्यः तेन । तृतीया तत्पुरुष । जातहार्देन - हृदयस्य कर्म हार्दम् । जातम् - जन् +क्त । जातं हार्दम् अस्य असौ जातहार्दः, तेन । बहुव्रीहि ।

टिप्पणी -1- इस श्लोक का पूर्वार्द्ध सूक्ति है ।

2- 'विद्विषादरः' को दो रूपों में पढ़ना होगा-विद्विषा आदरः और विद्विषा दरः।

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः

पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।

महारथः सत्यधनस्य मानसं

दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः।। 34।।

अन्वय- लोहितचन्दनोचितः महारथः अयं वृकोदरः रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् सत्यधनस्य मानसं न दुनोति कच्चित् ।

हिन्दी अनुवाद- लालचन्दन लगाने वाले, विशाल रथ पर चलने वाले, ये भीम (इस समय) धूलिधूसरित, पैदल पर्वतों पर घूमते हुए (आप जैसे) सत्यवादी के मन को सन्तप्त नहीं करते क्या

व्याख्या- द्रौपदी भीम द्वारा पहले अनुभव किए गए सुख और इस समय अनुभव किए जा रहे दुःख का स्मरण कराते हुए युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयास कर रही है । वह कहती है कि जो भीम राजमहल में रहते हुए लालचन्दन का लेप लगाते थे, वही इस समय (वनवास काल में) धूलि से लिप्त रहते हैं । जो भीम पहले विशाल रथ पर चलते थे, वही इस समय पैदल चलते हैं । भीम को इस रूप में देखकर आपके मन में दुःख नहीं होता क्या ? यदि दुःख होता तो सच्चाई को ही अपना सर्वस्व मानकर आप इस तरह शान्त न रहते । यहाँ परिकर अलंकार है ।

शब्दरचना- लोहितचन्दनोचितः - लोहितं च तत् चन्दनं लोहितचन्दनम् । कर्मधारय । उचितं लोहिचन्दनम् अस्य इति लोहितचन्दनोचितः। बहुव्रीहि । महारथः - महान् रथः अस्य इति महारथः। बहुव्रीहि । वृकोदरः - वृकस्य उदरम् इव उदरम् यस्य सः वृकोदरः। बहुव्रीहि । रेणुरूषितः - रेणुभिः रूषितः। तृतीया तत्पुरुष । पदातिः पादाभ्याम् अतति इति पदातिः। उपपद तत्पुरुष। पाद + अत्+इञ् । अन्तर्गिरि गिरिषु अन्तः इति अन्तर्गिरि । अव्ययीभाव समास । परिभ्रमन् - परि +भ्रम् + लट् + शतृ । प्रथमा एकवचन । सत्यधनस्य सत्यं धनम् अस्य इति सत्यधनः, तस्य। बहुव्रीहि । दुनोति+ दु +लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

6.3.2 पाण्डवों के स्वरूप का वर्णन

पाण्डवों के वन आगमन के बाद उनके शरीर मन तथा आत्मा में जो निर्बलता आयी है उसको बताते हुए द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने का प्रयास कर रही है ।

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्

कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।

स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽहरन्

करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः।। 35।।

अन्वय- वासवोपः यः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यं वसु अयच्छत् धनन्जयः अधुना तव वल्कवांसासि आहरन् (तव) मन्युं कथं न करोति ?

हिन्दी अनुवाद - इन्द्रतुल्य जिस (अर्जुन) ने उत्तर कुरुदेश को जीतकर प्रभूत मात्रा में सोना-चाँदी रूप धन दिया था, वही अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र लाता हुआ आपके क्रोध को क्यों नहीं उत्पन्न करता ?

व्याख्या- इस पद्य में द्रौपदी अर्जुन की दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए युधिष्ठिर को उत्तेजित करने का प्रयास कर रही है। वह कहती है कि अर्जुन ने दिग्विजय के समय उत्तर कुरुदेश को जीतकर बहुत सा धन लाकर दिया था। वही पराक्रमी अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र ला रहे हैं। यह कार्य अर्जुन जैसे पराक्रमी के लिए उचित नहीं है। उनके पराक्रम का अपमान है, तथापि आप को क्रोध नहीं आ रहा है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है। अर्थात् अर्जुन को इस रूप में देखकर तो आप को क्रोध आना चाहिए।

यहाँ छेकानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- वासवः - उपमा यस्य सः वासवोपमः। बहुव्रीहि। विजित्य - वि + जि + क्त्वा ल्यप्, अकुप्यम् - न कुप्यम् अकुप्यम्। नञ् तत्पुरुष। कुप्यम् - कुप् + क्यप्। गुप् के ग को क हो जाताहै। कुप्य का अर्थ है, सोना-चाँदी से भिन्न धातु। सोना-चाँदी को अकुप्य कहते हैं। अयच्छत् - दा धातु लङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप। 'दा' को 'यच्छ' आदेश हो जाता है। धनन्जयः – धनं जयति इति धनन्जयः। उपपद तत्पुरुष। धन + जि +खच्। धन जीतने के कारण ही अर्जुन को धनंजय कहते हैं। वल्कवासांसि - वल्कानि एव वासांसि। कर्मधारय। आहरन् - आ + हृ + लट् +शतृ। प्रथमा एकवचन।

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम्॥ 36॥

अन्वय- वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सहसे।

हिन्दी अनुवाद- वन की भूमि पर सोने से कठोर शरीर वाले, चारों ओर बिखरे हुए बालों से ढके हुए, पर्वतीय हाथियों के समान इन दोनों यमलों (नकुल और सहदेव) को देखते हुए आप धैर्य और संयम का परित्याग करने के लिए क्यों नहीं उद्यत होते ?

व्याख्या- नकुल और सहदेव की दयनीय स्थिति का उल्लेख करती हुई द्रौपदी युधिष्ठिर को अपना धैर्य छोड़ कर युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। जंगल की भूमि पर सोने से नकुल और सहदेव का शरीर कठोर हो गया है। शिर के बाल चारों ओर शरीर पर बिखरे रहते हैं। पर्वतीय हाथी की भाँति शरीर नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की भावना का सम्मान करते हुए चुपचुप कष्ट सह रहे हैं। द्रौपदी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। इसका कहने का अभिप्राय यह है कि युधिष्ठिर को अपने लिए न सही, अपने प्रिय अनुजों की (नकुल और सहदेव की) इस अवस्था को देखकर तो धैर्य की सीमा तोड़ देनी चाहिए।

यहाँ 'कृताकृती' में छेकानुप्रास 'अगजौ गजौ' तथा 'सयमौ, यमौ' में यमक अलङ्कार तथा ''गजौ इव यमौ'' के कारण उपमा अलङ्कार है। तीनों अलङ्कारों की निरपेक्ष स्थिति है, अतः संसृष्टि अलङ्कार है।

शब्दरचना - वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती - वनस्य अन्तः वनान्तः। षष्ठी तत्पुरुष। वनान्तः एव शय्या वनान्तशय्या । कर्मधारय । वनान्तशय्यया कठिनीकृता वनान्तशय्याकठिनीकृता । तृतीया तत्पुरुष। वनान्तशय्याकठिनीकृता आकृतिः ययोः तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती। बहुव्रीहि । कचाचितौ - कचैः आचितौ कचाचितौ। तृतीया तत्पुरुष। आचितः - आ + चि + क्त। अगजौ - न गच्छति इति अगः। अगे जातौ अगजौ। उपपद तत्पुरुष। धृतिसंयमौ - धृतिश्च संयमश्च धृतिसंयमौ तौ। द्वन्द्व समास। विलोकयन् - वि+लोक् + णिच् + लट् (शतृ) प्रथमा एकवचन। बाधितुम् - बाध् + तुमुन्। उत्सहसे - उत् + सह् + लट् मध्यमपुरुष एकवचन।

इमामहं वेद न तावकीं धियं

विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥ 37 ॥

अन्वय- इमां तावकीं धियम् अहं न वेद । चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु। परां भवदापदं विचिन्तयन्त्या मम चेतः आधयः प्रसभं रूजन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- आपकी इस बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूँ। क्योंकि चित्तवृत्तियाँ (लोगों की चित्तवृत्तियाँ) विचित्र होती हैं। (किन्तु) आपकी महती विपत्ति पर विचार करने पर मानसिक व्यथायें मेरे मन को हठात् पीड़ित करती हैं ।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के धैर्य से ऊबकर उनकी बुद्धि पर आक्षेप कर रही है। कहती है कि मुझे समझ में नहीं आता कि आपकी बुद्धि कैसी है ? लोगों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। उनके सोचने के ढंग अलग-अलग होते हैं । आपकी इस दुर्दशा को सोच-सोच कर मैं तो दुःखी हो रही हूँ । किन्तु आपको स्वयं कोई पीड़ा नहीं हो रही और इसलिए आप इस दुर्दशा के निवारण का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। कैसी विचित्र बात है कि विपत्ति देखने वाला तो दुःखी हो रहा है ।

द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि इतनी बड़ी विपत्ति को चुपचाप सह लेना उचित नहीं है। अतः आपको इसका निवारण करना चाहिए ।

शब्दरचना- तावकीम् - तव इयं तावकी, ताम् । युष्मद् + अण्-ङीप् । युष्मद् के स्थान पर तवक आदेश हो जाता है । धियम् - ध्यै + क्विप् । चित्तवृत्तयः - चित्तानां वृत्तयः चित्तवृत्तयः। षष्ठी तत्पुरुष । विचित्ररूपाः - विचित्रं रूपं यासां, ताः विचित्ररूपाः। बहुव्रीहि । भवदापदं - भवतः आपद् इति भवदापद्, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष । आपद् - आ + पद् + क्विप् । विचिन्तयन्त्याः - वि + चिन्त् + णिच् + लट् शतृ-ङीप् । षष्ठी एकवचन । रुजन्ति - रुज् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन ।

6.3.3 युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन

द्रोपदी युधिष्ठिर के वनागमन से पूर्व के जीवन जो कि एक राज्य का राजा रहते हुए अनेक सुख-सुविधाओं में रहा हो और अब एक भिखारी के समान जंगलों में भटक रहा है, इसको बताते हुए युद्ध के लिये प्रेरित कर रही है ।

पुराऽधिरूढः शयनं महाधनं
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः ।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥ 38 ॥

अन्वय- यः (त्वं) महाधनं शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमङ्गलैः पुरा विबोध्यसे सः (त्वं) अदभ्रदर्भां स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रां जहासि ।

हिन्दी अनुवाद- जो (आप) पहले बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए स्तुति और गीति रूप मांगलिक शब्दों से जगाये जाते थे, वही (आप इस समय) कुशों से भरी हुई वन भूमि पर सोकर अमाङ्गलिक श्रृगालीशब्दों से जगाये जाते हैं ।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को पूर्व की सुखानुभूति का स्मरण कराकर वर्तमान की दुःखानुभूति
की तीक्ष्णता का बोध कराना चाहती है। तीक्ष्णता के बोध के साथ ही दुर्योधन के प्रति आक्रोश
उत्पन्न होगा और युधिष्ठिर युद्ध के लिए उद्योग कर सकते हैं। वह कहती है कि पहले आप बहुमूल्य शय्या पर सोते थे और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीत से जगाये जाते थे, किन्तु आज कुशों से भरी वन की ऊँची-नीची

जमीन पर सोते हैं, और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीतों के स्थान पर शृगालियों के अशुभ शब्दों को सुनते हुए जगते हैं।

यहाँ 'शिवैः शिवां' में छेकानुप्रास है।

शब्दरचना- महाधनं - महत् धनं यस्य तद् महाधनम्। बहुव्रीहि। शयनम् - शय्यते अस्मिन् इति शयनम्। शी + ल्युट् । स्तुतिगीतिमङ्गलैः - स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः। द्वन्द्व । स्तुतिगीतयः एव मङ्गलानि स्तुतिगीतिमङ्गलानि, तैः। कर्मधारय । विबोध्यसे - वि + वुध् + णिच् + लट्, मध्यमपुरुष एकवचन । अदभ्रदर्भाम् - अदभ्राः दर्भाः यस्यां सा अदभ्रदर्भा, ताम्। बहुव्रीहि। अधिशय्य - अधि + शी + क्त्वा- ल्यप्। अधिवैः - न शिवानि अशिवानि तैः। नञ् तत्पुरुष। शिवारुतैः शिवानां रुतानि शिवारुतानि, तैः। षष्ठी तत्पुरुष। जहासि - हा + लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

टिप्पणी- दिन के प्रथम पहर में शृगाली का शब्द अशुभ माना जाता है।

बोध प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क . दुर्योधन ने युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी का किया था।

(क) दुर्योधन (ख) अपहरण

(ग) अपमान (घ) बहिष्कृत

ख. वृकोदर किसे कहा गया है

(क) युधिष्ठिर (ख) अर्जुन

(ग) भीम (घ) सहदेव

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) वनान्तशय्या ..... कृताकृती।

(घ) विचित्ररूपा: खलु..... ।

पुरोपनीतं नृप रामणीयकं
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं
परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ।। 39 ।।

अन्वय - नृप ! यत् एतत् (वपुः) पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतं वन्यफलाशिनः ते तद् वपुः अद्य यशसा समं परं कार्श्यं परैति।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन् ! जो यह शरीर पहले ब्राह्मणों के भोजन के अवशिष्ट अन्न से पुष्ट होकर सुन्दर लगता था, जंगली फल खाने वाले आपका वही शरीर आज यश के साथ-साथ अत्यधिक क्षीण हो रहा है।

व्याख्या- युधिष्ठिर जब राजा थे, तब सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भोजन कराते थे, तत्पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। उस समय उच्छिष्ट भोजन से भी शरीर पुष्ट था, अतः सुन्दर लगता था। वनवासी युधिष्ठिर वन में सुलभ फल खाने के लिए विवश हैं। पहले स्वेच्छा से उच्छिष्ट भोजन होता था। कोई विवशता नहीं थी, अभाव नहीं था। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। घर में प्रचुर भोज्य सामग्री रहने पर भोजन न करने वाला व्यक्ति उपहास का पात्र नहीं होता, दुर्बल होता हुआ भी

अभावग्रस्त नहीं माना जाता। किन्तु वास्तव में अभावग्रस्त व्यक्ति यदि भोजन की अनिच्छा प्रकट करता है, तो उसकी अनिच्छा अविश्वसनीय होगी। यही सामाजिक स्थिति है। द्रौपदी युधिष्ठिर से इसी सामाजिक स्थिति की बात कर रही है। वह कहना चाहती है कि आपके धैर्य और सत्यनिष्ठा की चर्चा तो दूर की बात है, लोग आप के पराक्रम पर भी ऊँगली उठायेंगे। अतः पराक्रम का आश्रय लेकर अपनी कीर्ति की रक्षा कीजिए। यहाँ सहोक्ति अलंकार है।

शब्दरचना- द्विजातिशेषेण - द्वे जाती जन्मनी येषां ते द्विजातयः। बहुव्रीहि। द्विजातीनां शेषं द्विजातिशेषम्, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। अन्धसा - अद्यते इति अन्धस्, तेन। अद् + असुन्। रामणीयकम् - रमणीय + वुञ् (अक)। उपनीतम् - उप + नी + क्त। वन्यफलाशिनः वने भवं वन्यं। वन्यम् फलं वन्यफलम्। कर्मधारय। वन्यफलम् अश्नाति इति वन्यफलाशी, तस्य। उपपद। वन्य - वन + यत्। फलाशी - फल +अश् + णिन्। पैरैति - परा + इ + लट् + प्रथम पुरुष, एकवचन।

अनारतं यौ मणिपीठशायिना-

वरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः।

निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते

मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥ 40॥

अन्वय- अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरःस्रजां रजः अरञ्जयत् तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां वनेषु निषीदतः।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन्! सदैव रत्ननिर्मित पादपीठ पर सुखपूर्वक रहने वाले जिन चरणों को राजाओं के शिर की पुष्पमाला की धूलि अलङ्कृत करती रहती थी, आपके वे ही दोनों चरण इस समय हरिणों और ब्राह्मणों द्वारा छिन्न शिखावाले कुंशों के जंगल में पड़े हुए हैं।

व्याख्या- सिंहासनारूढ युधिष्ठिर के चरण रत्ननिर्मित पादपीठ पर रहते थे और देश-देशान्तर के राजा जब उन चरणों पर शिर टेक कर प्रणाम करते थे, तब उन राजाओं के शिर पर स्थित पुष्पमाला के पराग उन चरणों को सुवासित कर देते थे। आज वनवास के समय वे ही चरण कुशों वाली वनभूमि पर पड़े हुए हैं। कहाँ वे सुख के क्षण और कहाँ यह दुःख की वेला! दुःख की वेला में सुख के क्षणों की स्मृति दुःख को असह्य बना देती है। द्रौपदी युधिष्ठिर के समक्ष इसी स्थिति का वर्णन कर रही है। यहाँ जकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- अनारतम् - न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष। मणिपीठशायिनौ - मणिनिर्मितं पीठं मणिपीठम्। शाकपार्थिवादि समास। मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनी। उपपद तत्पुरुष। राजशिरःस्रजाम् - राज्ञां शिरांसि राजशिरांसि। षष्ठी तत्पुरुष। राजशिरसां स्रजः राजशिरःस्रजः, तासाम्। षष्ठी तत्पुरुष। अरंजयत् - रंज + णिच् + लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। मृगद्विजालूनशिखेषु - मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजाः। द्वन्द्व समास। मृगद्विजैः आलूनाः मृगद्विजालूनाः। तृतीया तत्पुरुष। मृगद्विजालूनाः शिखाः येषां तेषु मृगद्विजालूनशिखेषु। बहुव्रीहि। बर्हिषाम् - बर्हिष् +आम्। षष्ठी बहुवचन। निषीदतः - निः + सद् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन।

6.3.4 क्षत्रियोचित्त व्यवहार का वर्णन

द्रोपदी युधिष्ठिर को 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की भावना को याद दिलाने का प्रयास करती है कि क्षत्रिय हमेशा शत्रु के साथ शत्रुता का व्यवहार करते है, शान्ति की नीति नहीं अपनाते। अतः आप भी क्षत्रियोचित व्यवहार कीजिए।

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः ।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ॥ 41 ॥

अन्वय - यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मीलयति इव । परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवोऽपि उत्सवः एव ।

हिन्दी अनुवाद - (हे राजन्!) चूँकि यह दशा शत्रुओं के कारण हुई है, इसलिए मेरे मन को समूल उत्पाटित-सा कर रही है। शत्रुओं जिनके पराक्रम को अभिभूत नहीं किया है, ऐसे मनस्वी व्यक्तियों के लिए अपमान भी उत्सव ही होता है।

व्याख्या- द्रौपदी अपनी मानसिक वेदना का कारण स्पष्ट करती हुई वेदना के औचित्य का प्रतिपादन कर रही है और युधिष्ठिर के स्वाभिमान को जागृत करने का प्रयास कर रही है । वह कहती है कि-

चूँकि यह दुखावस्था शत्रुजनित है, इसलिए मेरा मन पूर्ण रूप से क्षुब्ध हो उठा है। यदि यह दुखावस्था भाग्य के कारण होती तो मुझे कष्ट न होता । पुरुषार्थ करने के बाद यदि सफलता न मिले तब भाग्य को कारण माना जा सकता है । किन्तु आपका (युधिष्ठिर का) पुरुषार्थ, आपका पराक्रम अभी अप्रयुक्त है, अतः अपराजित है । शत्रुओं ने आपका तिरस्कार किया है, आपके पराक्रम का नहीं । जिनका पराक्रम अभी थका नहीं है, अर्थात् पराजित नहीं हुआ है, ऐसे स्वाभिमानी लोगों के लिए तिरस्कार भी एक चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए । जिसके पास पराक्रम है, वही चुनौती स्वीकार कर सकता है । वीर पुरुषों को चुनौती स्वीकार करने में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, जैसा उत्सव में । आपके अप्रतिहत पराक्रम के होते शत्रुकृत यह अपमान मेरे लिए असह्य हो उठा है ।

यहाँ उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास तथा वृत्त्यनुप्रास अलंकारों की संसृष्टि है ।

शब्दरचना- 'यत्' अव्यय है । यम् धातु से क्विप् प्रत्यय । 'गमादीनामिति वक्तव्यम्' वार्तिक से अनुनासिक 'म्' का लोप और 'तुक्' का आगम होकर 'यत्' बनता है । द्विषन्निमित्ता - द्विषन्तः निमित्तं यस्याः सा । बहुव्रीहि । द्विषत् - दिष् + लट् शतृ । 'द्विषोऽमित्रेद्' सूत्र से शतृप्रत्यय। समूलम् - मूलेन सह वर्तमानं समूलम्, तद्यथा स्यात् तथा । अपर्यासितवीर्य सम्पदाम् - न पर्यासिता अपर्यासिता । नञ् तत्पुरुष। वीरस्य भावः कर्म वा वीर्यम् । वीर्यमेव सम्पद् वीर्यसम्पद्। अपर्यासिता वीर्यसम्पद् येषां ते अपर्यासितवीर्यसम्पदः, तेषाम् । बहुव्रीहि । पर्यासिता - परि + अस् + णिच् + क्त + टाप् । वीर्यम् - वीर + यत् । सम्पद् - सम् + पद् + क्विप्। उन्मूलयति - उत् + मूल + णिच् + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन । पराभवः - परा + भू + अप् ।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः॥ 42॥

अन्वय- नृप! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तत् धाम पुनः सन्धेहि प्रसीद। निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति, भूभृतः न ।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन! शान्ति का परित्याग करके शत्रुओं के वध के लिए कृपया (अपना) वह तेज धारण कीजिए । संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं ।

व्याख्या- द्रौपदी यहाँ स्पष्ट शब्दों में युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित कर रही है । वह कहती है कि युधिष्ठिर शान्ति का मार्ग छोड़कर क्षत्रियों - चित तेज आश्रय ले । शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है । वे संयम द्वारा, शम

द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्मसाक्षात्काररूप सिद्धि प्राप्त करते हैं। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राजसमुदाय के लिए उचित नहीं है। शान्ति द्वारा न तो शत्रु जीते जा सकते है, न राज्यप्राप्ति - रूप प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

इस श्लोक में 'प्रसीद' शब्द 'कृपया' के लिए प्रयुक्त है अर्थात् यदि युधिष्ठिर शान्ति का परित्याग कर क्षत्रियोचित तेज का आश्रय लेते हैं तो द्रौपदी और अन्य पाण्डवों के ऊपर उनकी कृपा ही होगी। अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- शान्तिम् - शम् + क्तिन्, ताम्। विहाय - वि +हा + क्त्वा - ल्यप्। वधाय - हन् + अप् तस्मै। हन् को वध आदेश हो जाता है। सन्धेहि - सम् + धा + लोट् मध्यम पुरुष, एकवचन। निःस्पृहाः - निरस्ता स्पृहा येषां ते। बहुव्रीहि।

6.3.5 शान्ति की नीति की आलोचना

द्रोपदी किसी भी रूप में शान्ति का मार्ग अपनाना नहीं चाहती और न ही युधिष्ठिर के द्वारा ही चाहती है। वह तो पराक्रमी पुरुष के हाथ में धनुष का अर्थ युद्ध ही जानती है। क्योंकि धनुष धारण करने वाले हमेशा युद्धोचित वार्ता ही करते तथा कभी भी शान्ति की बात नहीं करते आप जैसे योद्धा को भी यह शोभा नहीं देता।

पुरःसरा धामवतां यशोधनाः

सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।

भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं

निराश्रया हन्त! हता मनस्विता ।। 43 ।।

अन्वय- धामवतां पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः सुदुःसहं ईदृशं निकारं प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त, निराश्रया मनस्विता हता।

हिन्दी अनुवाद- तेजस्वियों में अग्रणी, कीर्ति को ही धन मानने वाले आप जैसे लोग यदि इस दुःसह अवज्ञा का अनुभव करके सन्तोष कर लें, (तब) बड़े कष्ट की बात है कि आश्रयरहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि आप (युधिष्ठिर) तेजस्वियों में अग्रगण्य हैं। यश ही आप का सर्वस्व है, फिर भी आप अपशब्द-प्रयोग, राज्यापहरण, वनवास आदि के रूप में शत्रुकृत पराभव का अनुभव करके शान्त बैठे हुए हैं। यदि आप जैसा व्यक्ति भी पराभव सह ले, तो इसका अर्थ यह है कि स्वाभिमान नाम का कोई पदार्थ रह ही नहीं गया। क्योंकि स्वाभिमानी के पास ही स्वाभिमान रहेगा या स्वाभिमान के कारण ही कोई स्वाभिमानी कहा जाता है। आपके पास स्वाभिमान नहीं है। इसीलिए आप स्वाभिमानी नहीं रह गये है। किन्तु यदि आप जैसे लोगों के पास भी स्वाभिमान नहीं रहेगा तो उसे और कहाँ आश्रय मिलेगा ? क्या यह समझ लिया जाय कि अब स्वाभिमान का अस्तित्व ही नहीं है।

शब्दरचना- धामवतां - धाम अस्ति एषाम् इति धामवन्तः, तेषाम्। बहुव्रीहि। धामन् + मतुप्, के स्थान कर वतुप्। पुरःसुराः - पुरः सरन्ति इति पुरःसराः, पुरस् +सृ + ट। सुदुःसहम् - अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहम्। प्रादि तत्पुरुष। निकारम् - नि + कृ + घञ्, तम्। मनस्विता - प्रशस्तं मनः अस्य अस्ति एषाम् इति मनस्विनः, मनस्विनां भावो मनस्विता। मनस् + विनि मनस्विन्, मनस्विन् + तल् + टाप्।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-

श्रिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।

विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं

जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम् ।। 44 ।।

अन्वय- अथ निरस्तविक्रमः चिराय क्षमाम् एव सुखस्य साधनं पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः सन् इह पावकं जुहुधि।

हिन्दी अनुवाद- यदि (आप) पराक्रम का परित्याग कर एकमात्र क्षमा को ही सुख का साधन मान बैठे हैं, तो राजस्व का बोध कराने वाले (राज चिह्नस्वरूप) इस धनुष् को छोड़कर जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में आग में आहुति डालते रहिए।

व्याख्या- द्रौपदी आगे कहती है - यदि आपने क्षमा को ही सुख का साधन मान लिया है और इसीलिए पराक्रम की उपेक्षा कर रहे हैं तो राजचिह्न स्वरूप इस धनुष का भी परित्याग कर दीजिए। वेश क्षत्रिय का और कार्य ऋषि का, यह संगति उचित नहीं। अपना वेश भी बदल दीजिए। जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में रहकर आग में हवन करते रहिए। भाव यह है कि आप क्षत्रिय हैं, राजा हैं, तपस्वी नहीं है। अतः आपको क्षत्रियोचित पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए। यहाँ काव्यलिंग अलंकार हैं।

शब्दरचना- निरस्तविक्रमः - निरस्तः विक्रमः येन सः निरस्तविक्रमः। बहुव्रीहि। पर्येषि - परि+इ +लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन। लक्ष्मीपतिलक्ष्म - लक्ष्म्याः पतिः लक्ष्मीपतिः। षष्ठी तत्पुरुष। तस्य लक्ष्म लक्ष्मीपतिलक्ष्म। षष्ठी तत्पुरुष। जुहुधि - हु + लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते

निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।

अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा

विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ।। 45।।

अन्वय- परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न क्षमम्। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

हिन्दी अनुवाद- (हे राजन्) जब शत्रु अपकार करने में लगे है, तब महान् तेजस्वी आपके लिए शर्त का पालन उचित नहीं है। क्योंकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुता की स्थिति में किसी ब्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी इस श्लोक में गम्भीर राजनीतिक रहस्य का आश्रय लेकर युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित कर रही है। उसका कहना है कि शत्रु तो आपका अपकार करने में लगे हुए हैं और आप द्यूत की शर्त के अनुसार 'तेरह वर्ष' की अवधि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा करने से आप दुर्बल और शत्रु प्रबल होंगे। अतः आपके लिए शर्त का अनुपालन उचित नहीं है। नीति भी यही कहती है कि मित्र जब शत्रु बन जाय तो मित्रता की स्थिति में की गई सन्धि को राजा किसी न किसी बहाने से भंग कर देते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर है। सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य रहने पर यदि विजय की आकांक्षा है, तब सन्धि को तोड़ना आवश्यक है। सामर्थ्य पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है, तो सन्धि को तोड़ना व्यर्थ है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- निकृतिपरेषु - निकृतिः परं येषां ते निकृतिपराः, तेषु। बहुव्रीहि। भूरिधाम्नः - भूरि धाम यस्य सः भूरिधामा, तस्य। बहुव्रीहि। समयपरिरक्षणम् - समयस्य परिरक्षणम् समयपरिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष। सोपधि - उपधीयते इति उपाधिः, तेन सह वर्त्तमानम्। बहुव्रीहि। उपाधिः - उप + धा + कि। सन्धिदूषणानि - सन्धेः दूषणानि, तानि। षष्ठी तत्पुरुष।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार यहाँ छन्द बदल दिया गया है। इसके पूर्व पूरे सर्ग में वंशस्थ छन्द है। यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है। इसका लक्षण है - अयुजि नयुगरेफतो यकारों युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। प्रथम और तृतीय चरण में क्रमशः दो नगण, एक रगण तथा यगण होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण में क्रमशः एक नगण, दो जगण, एक रगण तथा अन्त में एक गुरु वर्ण होता है।

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ॥ 46 ॥

अन्वय- विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्योधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं त्वां दिनादौ दिनकृतम् इव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

हिन्दी अनुवाद- दैव और काल के प्रभाव से दुस्तर विपत्ति-सागर में पड़े हुए, प्रताप के नष्ट हो जाने से खिन्न, धन-वैभवरहित, शत्रुओं का नाश करके अभ्युदय प्राप्त करने वाले आपको पुनः लक्ष्मी प्राप्त हो, जैसे दैव और काल के प्रभाव से विपत्ति-सदृश समुद्र में डूबे हुए, तेज के नष्ट हो जाने से प्रकाशहीन, नष्ट किरणों वाले शत्रुसदृश अन्धकार को नष्ट करके उदित होते हुए सूर्य को प्रातःकाल लक्ष्मी प्राप्त होती है।

व्याख्या- इस श्लोक में द्रौपदी प्रतापहीन युधिष्ठिर को आश्वस्त करती हुई उनके अभ्युदय की कामना करती है। कवि-प्रसिद्धि है कि सूर्य सायंकाल समुद्र में डूब जाता है और पुनः प्रातःकाल निकलता है। युधिष्ठिर की स्थिति डूबे हुए सूर्य की भाँति है, किन्तु जिस प्रकार सूर्य का उदय अवश्यम्भावी है, उसी तरह युधिष्ठिर का अभ्युदय भी अवश्यम्भावी है। इसीलिए द्रौपदी शुभाशंसा करती है कि जिस प्रकार उदीयमान सूर्य लक्ष्मी सम्पन्न होता है, उसी तरह आप भी लक्ष्मी-सम्पन्न बनें।

यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है। मालिनी छन्द है। मालिनी छन्द का लक्षण है- ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। सर्गान्त होने से यहाँ छन्द परिवर्तित है।

शब्दरचना- विधिसमयनियोगात् - विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ। द्वन्द्व। तयोः नियोगः, विधिसमयनियोगः, तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष। अगाधे - न गाधः अगाधः, तस्मिन्। नञ् तत्पुरुष। दिनस्य आदिः दिनादिः, तस्मिन्। षष्ठी तत्पुरुष। दिनं करोति इति दिनकृत्, तम्। उपपद तत्पुरुष। दिन + कृ + क्विप्।

बोध प्रश्न .2

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क. क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 40 (ख) 41

(ग) 43 (घ) 44

ख. अन्तिम छन्द के रुप में प्रयोग किया गया है।

(क) पुष्पिताग्रा (ख) मालिनी

(ग) मन्द्राक्रान्ता (घ) शिखरिणी

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) सर्ग की समाप्ति में..... शब्द का प्रयोग किया गया है।

(घ) समूल मुन्मूलयतीव में मनः में ..... अलंकार है।

नीचे के वाक्यों के समक्ष सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगाये-

(ङ) संयम के द्वारा शत्रुओं को जीतकर राजा सिद्धि प्राप्त करते है। ( )
(च) राजा, शत्रुता की स्थिति में किसी व्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते है। ( )

6.4 सारांश

राजा कितना भी प्रजा के प्रति अव्यवहार प्रकट करे किन्तु अपने प्रिया रूपी राजलक्ष्मी को अपहृत होते नहीं देख सकता। जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता उसकी अधीनता लोग स्वयं स्वीकार कर लेते है किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं उसे न तो स्वजनों का आदर मिलता है, न कोई शत्रु उससे भयभीत होता है। इस प्रकार के अनेक स्वरूपों का चित्रण करते हुए द्रोपदी अपने पति युधिष्ठिर को शान्ति का मार्ग छोड़कर युद्ध के लिये तैयार करने का प्रयास कर रही है। जिसका सजीव चित्रण भारवि ने प्रस्तुत किया है। एक राजा को अपने कर्तव्यों का जिस रूप में निर्वहण करना चाहिए कवि ने इसका प्रदर्शन बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप द्रोपदी के कथनों से अवगत हो सकेंगे ,जिसकी सहायता से द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध का मार्ग, शान्ति के मार्ग को छोड़कर अपनाने के लिये कहती है। इस प्रकार आप कवि के कवित्व से भी परिचित हो सकेंगे।

6.5 शब्दावली

1. कुलाभिमानी - अपने कुल पर अभिमान करने वाला
2. गर्हित - निंदित
3. वल्कवासांसि - वल्कल वस्त्र
4. वनान्तशय्याकठिनी कृताकृती - वन भूमि पर सोने से कठिन शरीर वाले
5. निराश्रया - आश्रय रहित

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

क. ख ख. ग ग. कठिनी घ. चित्त वृत्तय :
ङ. सही

बोध प्रश्न 2.

क. ख ख. ख ग. लक्ष्मी घ. उत्प्रेक्षा ङ.सही च. सही

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्
2. वामन शिवराम आप्टे - संस्कृत - हिन्दी शब्दकोश।

6.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. काव्य प्रकाश - आचार्य लस्मत।
2. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ।
3. छन्दोलंकार मंजरी - डा0 बाके लाल मिश्र।

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्रोपदी के कथनों की समीक्षा कीजिए।
2. भारवि के विषय-विवेचना पर प्रकाश डालिए।

नीतिशतकम् एवं हितोपदेश
खण्ड - तीन – BLOCK-III

इकाई 1 संस्कृत नीतिसाहित्य का परिचय एवं परम्परा

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नीति का अर्थ
1.4 संस्कृत साहित्य में नीतियाँ
    1.4.1 शुक्र नीति
    1.4.2 चाणक्य नीति
    1.4.3 विदुर नीति
    1.4.4 भर्तृहरि का नीति तत्त्वो पदेश
    1.4.5 पंचतंत्र में नीति
    1.4.6 हितोपदेश में नीति
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही नीति परक उपदेशों की परम्परा चली आ रही है, जिसमें विभिन्न मनुष्यों ने अपने अनुसार नीति कथाओं, की विधानों एवं नीति के वचनों के वर्णन किये गये हैं। इस इकाई के अन्तर्गत आप संस्कृत वाङ्मय में वर्णित नीतियों का अध्ययन करेंगे।

वस्तुतः नीति के उद्भावक भगवान् ब्रह्मा और प्रतिष्ठापक विष्णु हैं। कालान्तर में मध्यकाल से लेकर आधुनिक युग तक नीतियों का अत्यधिक प्रसार हुआ है। जिनमें शुक्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि नीतियां प्रमुख व प्रसिद्ध हैं, सम्प्रति अत्याधुनिक जीवनोपयोगी नीतिकार आचार्य भर्तृहरि का नीति शतक भी एक अनुपम कृति है।

प्रस्तुत इकाई में प्रमुख नीतियों के वर्णन आप के अध्ययनार्थ प्रस्तुत हैं, इनके अध्ययन से आप जीवन के व्यावहारिक पक्षों का ज्ञान करा सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1- शुक्र नीति से परिचित हो सकेंगे।
2- चाणक्य नीति को जान सकेंगे।
3- विदुर नीति का उल्लेख कर सकेंगे।
4- पंचतंत्र में वर्णित नीतियों की व्याख्या कर सकेंगे।
5- नीति शास्त्र के सार्वदेशिक ग्रन्थ हितोपदेश से परिचित हो सकेंगे।
6- भर्तृहरि के अद्वितीय ग्रन्थ नीतिशतक को सूक्ति वचनों के द्वारा समझ सकेंगे।

1.3 नीति का अर्थ

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से जुड़कर बना है,जिसका अर्थ है जिस मार्ग (व्यवहार) से व्यक्ति और समाज का जीवन सरलता के साथ व्यतीत हो उसे नीति कहते हैं। नीति का अर्थ सही मार्ग की ओर ले जाना है, नीति का सही रूप में पालन करने से व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण होता है।

नीति के अर्थ को हम कई प्रकार से समझा सकते हैं। मनुष्य जीवन को वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन रूप में जिन बातों की आवश्यकता है वही नीति है। देखा जाय तो वास्तव में नीति का अर्थ है 'कर्माकर्मविवेक'। समाज में रहने वाले व्यक्ति, वर्ग, जाति, राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक हैं यहाँ रहकर परस्पर उनको कैसा व्यवहार करना चाहिये इसके कुछ विशेष नियम होते हैं वही नीति है। चार पुरूषार्थों- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिस के द्वारा होता है वही नीति है। नीति शब्द का अर्थ होता है ले जाना, पहुँचाना, दिग्दर्शन कराना, नेतृत्व करना तथा उपायों को बतलाना है 'नीयन्ते संलभ्यन्ते उपायादय इति वा नीतिः'। नीति वचनों के अनुसार यदि मनुष्य व्यवहार करता है तो वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, इस प्रकार मनुष्य जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में नीति के द्वारा ही उचित मार्ग का निर्देश होता है, मनुष्य यदि नीति के विरूद्ध आचरण करता है, तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। नीति शास्त्र के ज्ञाता चाणक्य का सर्वप्रथम वाक्य है- 'सुखस्य मूलं धर्मः' सुख का मूल आधार धर्म है इसलिये सबसे उत्तम नीति धर्माचरण ही है, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी सदैव सुख की ही आकांक्षा रखता है और नीति का सहारा भी वह केवल अपने सुख के लिए ही करता है। ऋग्वेद में नीति का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति से है- 'ऋजुनीति नो वरूणो मित्रो नयतु विद्वान्' (ऋक 1/90/1) इसमें मित्र और वरूण से प्रार्थना करते हुए कहा है कि

हमें ऋजु अर्थात् सरल नीति से अभीष्ट फल की सिद्धि होती है विषय की दृष्टि से नीति को दो भागों में विभाजित किया जाता है पहली राजनीति तथा दूसरी धर्मनीति। नीति के द्वारा फल के अनुरूप बीज का निर्देश प्राप्त होता है, इस तरह यदि देखा जाय तो आदिकाल से ही मानव को सही मार्ग पर चलने के लिए नीति-वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है।

1.4 संस्कृत साहित्य में नीतियां

संस्कृत भाषा में नीति साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें नीति उपदेशों का संग्रह है, नीति शास्त्र के उद्भावक परमपिता ब्रह्मा, प्रतिष्ठापक भगवान् विष्णु और प्रवर्तक शंकर हैं। एक तरफ वैदिक संस्कृत साहित्य में नीति-वचनों का प्रचुर भण्डार पड़ा है वहीं दूसरी ओर लौकिक संस्कृत साहित्य में पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों एवं विभिन्न नाटकों में भी भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होता है। नीति -वचनों के विशेष संग्रह वाल्मीकीय रामायण के सप्तम काण्ड में भरे पड़े हैं। महाभारत में भी उद्योग पर्व के आठवें अध्याय में महात्मा विदुर द्वारा कथित नीति-वचन विदुर नीति के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार महाभारत के ही भीष्म पर्व के 25वें तथा 42वें अध्याय में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात श्रीमद्भगवद् गीता तथा योग शास्त्र के साथ-साथ ब्रह्म विद्या से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण नीति शास्त्र है। महाभारत के शान्ति पर्व का वर्णित राजधर्म तो राजनीति ही है, इन समस्त नीतियों की चर्चा परवर्ती नीति ग्रन्थों में पदे-पदे उद्धृत की गयी, जैसे- विष्णुशर्मा के पंचतंत्र और हितोपदेश आदि में भी महाभारत के नीतियों की चर्चा है। भारतीय इतिहास के महामनीषी चाणक्य ने अपने ग्रंथ कौटिल्य अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नीति-वचनों का वर्णन किया है, इसके अतिरिक्त चाणक्य नीति, चाणक्य नीति दर्पण और चाणक्य नीति सूत्र आदि ग्रंथों में भी उनके नीति वचनों का संग्रह है। दैत्य गुरू शुक्राचार्य ने भी नीति-वचनों का प्रणयन किया है, जिसे शुक्र नीति कहते हैं। कामन्दकीय नीति सार के अतिरिक्त कामदेव सेमेन्द्र द्वारा नीति कल्प तरू और सोमदेव सूरी कृत्य नीति वाक्यामृत आदि नीति ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। इनके पश्चात् वर्तमान में सुप्रसिद्ध एवं प्रशंसा पात्र नीति नियमों के रचयिता भर्तृहरि द्वारा नीति शतक की रचना की गयी जो लोक विश्रुत है,विद्यापति और चंडेश्वर ठाकुर का पुरूष परीक्षा तथा राजनीति रत्नाकर आदि नीति के निर्देशक ग्रन्थों भी उपलब्ध हैं। इन समस्त नीति के भण्डार ग्रंथों के अतिरिक्त परामर्श , शिक्षा, मंत्रणा और व्यावहारिक ज्ञान आदि के अनेक ग्रंथ हैं जो नीति परक उपदेश की कोटि में आते हैं। नीति के उपदेश और काव्यों के बीच में विभाजक रेखा अत्यन्त छोटी है, फिर भी यह निर्धारित होता है कि नीति उपदेशात्मक काव्यों की रचना निम्न शैलियों में की गई होगी - कहीं पर दाम्पत्य जीवन के संवाद में, कहीं युगल पशुओं के आलाप में, कहीं शिव पार्वती के परिसंवाद में तो, कहीं पर वक्रोक्ति-अन्योक्ति और प्रहेलिका आदि के रूप में इन नीति परक काव्यों में कहीं पर प्रभु सम्मित वाक्य के द्वारा तथा कहीं पर कान्ता सम्मित उपदेश वाक्य के द्वारा तदरूप मार्गों पर चलने का निर्देश दिया गया है। इन्हीं नीति वचनों के अनुपालन से मनुष्य पुरूषार्थों की प्राप्ति में सिद्ध और सफल हो जाता। इनमें कुछ अत्यन्त प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध व्यवहारोपयोगी नीतियों के वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

1.4.1 शुक्र नीति

परमपिता ब्रह्माजी के मानस पुत्रों में भृगु का नाम प्रमुख है, इन्हीं भृगु के पुत्र असुरगुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए। योगविद्या के प्रकाण्ड आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है। यद्यपि ये असुरों के गुरू थे किन्तु मन से ये भगवान् के अनन्य भक्त थे। इनमें तपस्या, योगसाधना, अध्यात्मज्ञान तथा नीति का बहुत बल था, इन्होंने अपने योग बल के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव किये। शुक्राचार्य के नीति सम्बन्धी उपदेश बहुत ही उपयोगी तथा अनुपालनीय हैं,इनके नीतिमय उपदेश महाभारत तथा पुराणों में यत्र-तत्र विद्यमान है। आधुनिक

समय में आचार्य शुक्र के नाम से एक शुक्र नीति नामक ग्रंथ उपलब्ध है। सम्पूर्ण शुक्र नीति में पाँच अध्याय तथा 2200 श्लोक हैं, इसमें लोक व्यवहार का ज्ञान, राजा के कर्तव्य, राजधर्म, दण्डविधान, मंत्री परिषद् आदि के लक्ष्यों का समावेश है। इसके साथ ही साथ स्त्री धर्म, प्रतिमाओं का स्वरूप, विवाद, संधि तथा युद्ध नीति आदि का वर्णन है। लघु होने के कारण शुक्रनीति का अत्यधिक महत्त्व है यह प्रामाणिक भी अधिक है शुक्राचार्यजी का कहना है कि समाज के सभी लोगों के लिए उपकारक तथा समाज को सुरक्षित रखने वाला नीतिशास्त्र ही है।**'न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते'** नीति शास्त्र के सम्बन्ध में स्वयं शुक्राचार्य ने कहा है कि कवि शुक्राचार्य की नीति के समान अन्य कोई दूसरी नीति तीनों लोकों में नहीं है-

1- आचार्य शुक्राचार्य ने कहा कि राजा के लिये नीति शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि प्रजा का सम्पूर्ण दायित्व राजा के ऊपर ही रहता है, प्रजा का पालन करना व दुष्ट प्राणियों का दमन करना ये दोनों ही राजा के लिये परम आवश्यक है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक राजा को नीतिज्ञानी होना चाहिए नीतिज्ञान से रहित होना ही उसका सबसे बड़ा दोष माना जाता है। नीति और बल ये दोनों जिस राजा को प्राप्त होते हैं उसके पास लक्ष्मी का आगमन होता है अर्थात् वह कभी दरिद्र नहीं होता-

यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीः सर्वतोमुखी ।। (शुक्रनीति 1/17)

विरत प्रजा का भली प्रकार पालक, शत्रुओं पर विजय प्राप्त, दानवीर, क्षमावान् तथा वैराग्यवान् होता है ऐसा राजा ही मोक्ष को प्राप्त करता है-

'स हि नृपोऽन्ते मोक्षमन्वियात् ' (शुक्रनीति 1/31)

3- शुक्राचार्य जी ने सुन्दर नीति वचनों के माध्यम से राजा के लिए ही नहीं बल्कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए भी उपयोगी बातें कहीं हैं। मनुष्य को दूरदर्शी होना चाहिए। अपने प्रत्येक कार्य
को विचार कर अविवेक व आलस्य का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिए।

4- शुक्र नीति में एक महत्त्व पूर्ण बात बतलायी गयी है कि- आयु, धन,(लक्ष्मी) गृह के दोष, मंत्र, मैथुन, औषधि, दान, मान तथा अपमान इन नौ विषयों को अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए, किसी से कुछ भी नहीं कहना चाहिए- दानमानापमानं च नवैतानि सुगोपयेत् ॥

5- शुक्राचार्य जी ने अपने नीति वचनों में बताया कि दुर्जनों की संगति नहीं करनी चाहिए, दुर्जनों
की संगति का परित्याग कर देनचाहिए- **आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्। 'त्यजेद् दुर्जनसंगतम्।**

6 - किसी के साथ कभी भी कपटपूर्ण व्यवहार और कभी किसी की धन सम्बन्धी हानि नहीं करनी चाहिए , इसके अतिरिक्त मन से भी कभी किसी का अहित नहीं सोचना चाहिए करने की तो बात बहुत दूर है। राजधर्म और नीति के संदर्भों को बतलाकर अन्त में शुक्राचार्य जी ने श्री राम को ही सर्वोपरि नीतिमान् कहा। उनका कहना था कि भगवान् राम के समान इस पृथ्वी पर कोई नीतिमान् राजा नहीं हुआ।

1.4.2 चाणक्य नीति

चाणक्य का जन्म लगभग चार सौ साल पूर्व भारत के तक्षशिला नामक स्थान में हुआ। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त शर्मा था। कुटज गोत्र के होने के कारण ये कौटिल्य कहलाये। चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहलाये, अपने चातुर्य के कारण भी इन्हें चाणक्य कहा जाता है। ये विद्वान और नीतिमान् थे। भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि माना जाता है। चाणक्य ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला में प्राप्त की, प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये उच्च शिक्षा अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र आये। मगध के सिंहासन पर उस समय अत्यन्त लोभी व अत्याचारी राजा घनानन्द

अधिष्ठित था। अनोखी प्रतिभा के धनी व महाविद्वान चाणक्य के सानिध्य में आकर घननन्द दानी हो गया। चाणक्य विद्वान तो थे किन्तु उनका रूप अच्छा नहीं था, ये कृष्ण वर्ण के थे।

एक बार राजा घनानन्द ने चाणक्य को दरबार में आमंत्रित किया। वहां राजा ने इनके रूप को लेकर इनका अपमान किया। चाणक्य को राजा की बातों पर अत्यधिक क्रोध आया, तब उन्होंने दरबार में अपनी चोटी खोल दी और राजा से बोले- दरबार में आज जो तुमने मेरा अपमान किया है मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मैं किसी योग्य व्यक्ति को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करूँगा तब तक अपनी चोटी नहीं बाँधूगा । चाणक्य ने एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त को विशाल मगध के साम्राज्य का अधिपति बनाया, इसीलिए इन्हें कूटनीति का सम्राट भी कहते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि चाणक्य दृढ़ निश्चयी थे।

आचार्य चाणक्य के लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य, चाणक्य नीतिदर्पण, कौटलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य सूत्र आदि अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं चाणक्य के द्वारा लिखी पुस्तक अर्थशास्त्र में शासन सम्बन्धी जो सिद्धान्त हैं वे आज भी अद्वितीय हैं। चाणक्य के द्वारा लिखी हुई नीतियों को चाणक्य नीति के नाम से जाना जाता है प्रस्तुत इकाई में आप चाणक्य के कुछ नीति वचनों का

अध्ययन करेंगे-

1- आचार्य चाणक्य ने अपने चाणक्य नीति में कहा कि यदि किसी राज्य में राजा नहीं है तो अच्छा है, किन्तु बुरे राजा अर्थात् अत्याचारी राजा का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का मित्र नहीं है तो अच्छा है, किन्तु कुमित्र अर्थात् बुरे मित्र का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का कोई शिष्य न हो तो अच्छा है, किन्तु निन्दित शिष्य का होना अच्छा नहीं है। पत्नी न हो तो अच्छा है, किन्तु पत्नी यदि दुःश्चरित्रा हो तो अच्छा नहीं है।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्या
वरं न दारा न कुदारदारा ।।

2- आचार्य चाणक्य ने मैत्री के सम्बन्ध में बताते हुए अपने नीति ग्रंथ में कहा है कि हमें कैसे मित्रता की कसौटी की पहचान करनी चाहिए-

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।

वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

परोक्ष रूप में अर्थात् पीठ पीछे बुराई करके काम बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष अर्थात् सामने मीठा बोलने वाले मित्र का तो अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए। वह मित्र उस विष से भरे हुए घड़े के समान है जिसके अग्रभाग अर्थात् मुख के ऊपर थोडा़ दूध लगा रहता है।

3- आचार्य चाणक्य ने अपने नीति ग्रन्थों में बताया है कि एक पिता को अपने पुत्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए-

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।

प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पुत्र को पाँच वर्ष तक प्यार करना चाहिए, जब वह दस वर्ष का हो जाय तो उस पर अनुशासन रखना चाहिए, जब वह सोलह वर्ष का हो जाय तो उसके साथ मित्रवत् अर्थात मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए।

4- लौकिक सुख के विषय में बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि-

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्॥

जिस व्यक्ति के घर में सुन्दर स्त्री हो, लक्ष्मी भी हो अर्थात् धन-धान्य से सम्पन्न हो, पुत्र व पौत्र गुणों से युक्त हो, वह घर तो इस पृथ्वीलोक में इन्द्रलोक से भी अधिक सुन्दर है कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन्द्रलोक में सभी प्रकार के सुख वैभव हैं उसी प्रकार वह घर भी है।

5- चाणक्य ने मूर्ख व्यक्ति के विषय में बताते हुए उससे दूर रहने के विषय में कहा है-

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्यशल्येन निर्दृशाः कण्टका यथा॥

चाणक्य कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना चाहिए, क्योंकि मूर्ख व्यक्ति दो पैरों वाले पशु के समान है। जिसमें प्रत्यक्ष रूप से काँटे तो दिखलायी नहीं पड़ते हैं , किन्तु वह बार-बार वाक्यशल्य से काँटे बोता रहता है। वास्तव में देखा जाय तो चाणक्य ने जिन नीतियों का प्रतिपादन किया वह कल्याण के मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। आचार्य चाणक्य ने अपनी नीतियों में जीवन के कटु सत्य को उजागर किया है। देखा जाय तो ऐसे नीतिकार बहुत कम होते हैं, आचार्य एक महान कूटनीतिज्ञ हैं, कूटनीतिज्ञों में उनका नाम सर्वोपरि है व सदैव रहेगा। कुरूप कहे जाने वाले आचार्य चाणक्य ने अपने अलौकिक तेज से व्याप्त व्यक्तित्व से विश्व को अनूठी नीतियां प्रदान की, जो विश्व में चाणक्य नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। देखा जाय तो आज के भौतिकवादी युग में जहाँ नैतिकता का पतन हो रहा है वहां महान आचार्य चाणक्य की नीतियां समाज के प्रत्येक मनुष्य को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं जिससे प्रत्येक वर्ग व सम्पूर्ण राष्ट्र का कल्याण होगा।

बोध प्रश्नः-

(1) नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का निशान लगायें।

चिह्न लगाइये-

(क)नीति शास्त्र के उद्भावक परमपिता ब्रह्मा हैं। ( )
(ख)आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है। ( )
(ग) चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त नहीं था। ( )
(घ) चाणक्य को कूटनीति का सम्राट कहते हैं। ( )

(2) निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) 'त्यजेद् दुर्जनसंगतम् में शुक्राचार्य ने किसके विषय में कहा है-

(क) पंडित (ग) दुर्जन
(ख) सज्जन (घ) मूर्ख

(2) 'आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुनभेषजम्' किस पुस्तक की पंक्ति है-

(क) चाणक्य नीति (ग) शुक्र नीति
(ख) विदुर नीति (घ) कामन्दक नीति

(3) 'मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः' में चाणक्य ने किसके विषय में कहा है-

(क) विद्वान (ग) मूर्ख

(ख) पंडित (घ) सज्जन

1.4 . 3 विदुरनीतिः-

पिछले पृष्ठों में आप शुक्र व चाणक्य नीति से परिचित हुए। इस अध्याय में आप विदुर नीति से परिचित होंगे। धर्म के अवतार महात्मा विदुर अत्यन्त बुद्धिमान, धर्मज्ञ, ईश्वर भक्त, नीतिनिपुण व व्यवहार कुशल थे। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे भ्राता थे, ये दासी पुत्र थे इस कारण ये राज्य के अधिकारी नहीं हुए। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् जब धृतराष्ट्र राजा बने तब ये उनके मंत्री बने। विदुर नीति के तो पंडित थे ही इनकी बनायी गई विदुर नीति एक प्रामाणिक नीति मानी गई। नीति निपुण विदुर सदा धर्म के पक्ष में रहते अधर्म का खण्डन तो ये सभा के मध्य भी कर देते थे। पाण्डवों को जब बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ तो ये बड़े दुःखी हुए। विदुर जानते थे कि युद्ध विनाशकारी होगा, क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र तो अपने पुत्र मोह में इस प्रकार बँध चुके थे कि वे कोई समाधान नहीं खोज पा रहे थे। दुर्योधन अपनी जिद पर अड़ा था। द्यूत क्रीडा की शर्त के अनुसार पांडवों ने बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण करने के बाद जब अपना राज्य वापस मांगा तो पुत्र मोह में बँधे धृतराष्ट्र उन्हें कोई निर्णायक उत्तर नहीं दे पाये। द्यूत क्रीडा के समय भी विदुर ने धृतराष्ट्र को चेतावनी दी थी कि यदि यह खेल समाप्त नहीं किया गया तो अनर्थ हो जायेगा और हस्तिनापुर को विनाश की कगार से कोई नहीं बचा सकता। विदुर नीति युद्ध की नीति न होकर जीवन में प्रेम व्यवहार की नीति के रूप में अपना विशेष स्थान रखती है। जिस प्रकार चाणक्य नीति राजनीतिज्ञ सिद्धान्तों से ओत प्रोत है वहीं विदुर नीति सत् असत् की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। विदुर सदा सत् विचारों का ही परामर्श देते। देखा जाय तो महाराज धृतराष्ट्र और विदुर के बीच ये कैसा संयोग था धृतराष्ट्र अपने पुत्र मोह में फंसे थे इसके विपरीत विदुर अपनी नीति में बँधे हुए थे। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो ये किसी तरफ भी नहीं हुए, लेकिन मन से ये सदा पांडवों के पक्ष में थे और समय समय पर उन्होंने पांडवों की सहायता की तथा उन्हें कई विपत्तियों से भी बचाया।

नीति की चर्चा महाभारत में कई स्थलों पर आयी। महाभारत में वर्णन आता है कि धृतराष्ट्र ने पुत्र मोह में कई बार पांडवों के साथ अन्याय किया। इसी वजह से धृतराष्ट्र बहुत दुःखी थे तब उन्होंने अपनी चिन्ता मिटाने के लिए विदुर से उपाय पूछा। विदुर ने जो भी उपदेश धृतराष्ट्र को दिये, वह विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। महाभारत में उद्योग पर्व के 33वें से 44वें अध्याय तक नीति सम्बन्धी उपदेश संग्रहित हैं इसमें महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को लोक परलोक की बहुत सी बातें बतायी हैं। प्रस्तुत अध्याय में आप विदुर द्वारा प्रदत्त नीतियों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन करेंगे-

1- विदुर ने अपनी नीति में पंडितों के विषय में कहा है-

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मण।

अबन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।

जो व्यक्ति पहले निश्चय अर्थात् अच्छी प्रकार सोच समझकर फिर कार्य का आरम्भ करता है, कार्य के प्रारम्भ होने के पश्चात् बीच में रूकता नहीं है। अपने समय का सदुपयोग करता है अर्थात् समय को व्यर्थ नहीं जाने देता और अपने चित्त अर्थात् मन को अपने वश में रखता है वही पण्डित कहलाता है।

2- विदुर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को नीति सम्मत कई उपदेश दिये। विदुर ने मूर्ख के विषय में बताते हुए कहा है-

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।

बलवन्तं च या द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ।।

जो मनुष्य न चाहने वालों को चाहता है और चाहने योग्य लोगों का परित्याग कर देता है, तथा जो बलवानों के साथ शत्रुवत् बैर बाँधता है, उसे ही के अनुसार मूर्खचित्त वाला मनुष्य कहते हैं।

3- विदुर ने अपनी नीति में कुछ आध्यात्मिक प्रसंगों का वर्णन भी किया है,शरीर रूपी को रूपक मानकर विदुर कहते हैं-

रथः शरीरं पुरूषस्य राज-
न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः।।

विदुर कहते हैं कि मनुष्य का शरीर ही रथ है। उस रथ रूपी शरीर में बुद्धिसारथि है, और इंद्रियां अश्व हैं, अश्वों को अपने वश में करके सावधान, चातुर्य एवं धीर पुरूष एक रथी की भाँति आनंद पूर्वक जीवन की यात्रा करता है।

4- नारी के विषय में बताते हुए विदुर कहते हैं

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः।।

विदुर ने अपनी नीति में कहा है कि नारियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं, वे सदा पूजनीया हैं, अत्यन्त भाग्य स्वरूपा हैं, पुण्यशीला हैं । नारियों के इन गुणों से घर की शोभा में वृद्धि अर्थात् घर सुशोभित होता है। अतः वे विशेष रूप से योग्य है।

5- दीर्घदर्शी विदुर के अनुसार नीतियुक्त कथन न तो कहना अच्छा है और न सुनना अच्छा है । यही सब बातें धृतराष्ट्र विदुर को बताते हुए कहते हैं-

सुलभाः पुरूषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

विदुर जी कहते हैं कि राजा के समक्ष सदा प्रिय मधुर वचन बोलने वाले पुरूष तो सुलभ हैं
अर्थात् बहुत मिल जाते हैं । किन्तु राजा के समक्ष अप्रिय वचन अर्थात् उसको निन्दित लगने वाले हितकारी वचन को कहने वाले तथा उन वचनों को सुनने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं ।कहने का तात्पर्य यह है जो अप्रिय लगने वाले हितकारी वचन बोलते हैं ऐसे लोग ना के बराबर मिलते हैं।

6- महात्मा विदुर ने विद्यार्थी के विषय में कहा है-

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम् ।।

विदुर जी कहते हैं जो विद्यार्थी और सुखार्थी हैं ये अलग -अलग पहलू व एक दूसरे के विपरीत हैं विद्यार्थी के लिए सुख कहाँ अर्थात् विद्यार्थी को सुख की प्राप्ति नहीं होती है। जो विद्यार्थी सुख की कामना करता है वह विद्या को प्राप्त नहीं कर सकता है कहने का तात्पर्य यह है कि सुख की कामना करने वाले विद्यार्थी को विद्या का त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि विद्या के साथ-साथ सुखों की प्राप्तिनहीं हो सकती । वास्तव में देखा जाय तो महात्मा विदुर ने जो भी उपदेश राजा धृतराष्ट्र को दिये वे सभी नीति परक व राष्ट्र के कल्याण के लिए हितकारी हैं । राजा धृतराष्ट्र कहते हैं कि मै भी मानता हूँ कि जो धर्म के पक्ष में है विजय उसी की है, मैं भी पाण्डवों के प्रति नीति से पूर्ण बुद्धि रखता हूँ लेकिन पुत्र मोह में फँसकर मैं उसका पालन नहीं कर सका, यही सब बातें महाभारत के उद्योग पर्व में विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

1.4.4 भर्तृहरि का नीति तत्त्वोपदेश

भर्तृहरि का नीति ग्रंथ एक अद्वितीय ग्रन्थ है ।जिसमें योगी भर्तृहरि ने अनेक नीति सम्बन्धी बातों को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । भर्तृहरि एक प्रतिभावान कवि तो थे ही साथ ही व्याकरण शास्त्र के अप्रतिम ज्ञाता भी थे । नीति शतक के श्लोकों में जिन नीतिसिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वे समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकारी हैं । भर्तृहरि के विषय में एक किंवदन्ती है कि ये प्रारम्भ में अत्यधिक भोग विलास में लिप्त रहते थे,उनका जीवन विषय वासनाओं से घिरा हुआ था ।वे अपनी प्रिय रानी पिंगला के प्रेम में इस प्रकार बँधे हुए थे कि अपने अनुज विक्रमादित्य के बार- बार समझाने पर भी उन पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।रानी पिंगला व्यभिचारिणी थी वह राजा ने नहीं बल्कि किसी अन्य पुरूष से प्रेम करती थी । जब राजा भर्तृहरि को रानी के इस विश्वासघात के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्हें रानी के प्रति ऐसी घृणा हुई कि उन्हें ये सारा संसार मिथ्या लगने लगा । तत्पश्चात् भर्तृहरि ने संसार के भोग विलासों का वैसे ही त्याग कर दिया जिस प्रकार मनुष्य मरने के पश्चात् अपने शरीर का त्याग कर देता है । विरक्ति के पश्चात् वे योगी बन बैठे और संसार को अपनी अमूल्य धरोहर के रूप में त्रय शतक प्रदान किये । भर्तृहरि के तीन शतक वैराग्य, नीति, श्रृंगार विश्व प्रसिद्ध हैं । देखा जाय तो विधि के विधान को कोई बदल नहीं सकता है । यदि राजा भर्तृहरि को अपनी रानी से विश्वासघात न मिलता तो उन्हें इस संसार से विरक्ति न होती और वे महान त्रय शतकों का निर्माण कैसे करते । संस्कृत साहित्य में विद्वानों ने भर्तृहरि को एक राजा, विद्वान, योगी और संन्यासी के रूप में देखा है । भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ इन शतकों में प्रवाहमयी भाषा में अभिव्यक्त किया । यहाँ संक्षेप में भर्तृहरि के नीति तत्त्व के उपदेशों का वर्णन करेंगे-

1- यहाँ पर कवि भर्तृहरि के कहने का तात्पर्य है कि शरीर के विभिन्न अंगों की शोभा आभूषणों से नहीं होती है इसी का वर्णन करते हुए कहा है-

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
विभाति कायः करूणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।।

अर्थात् जो सत्पुरूष होते हैं उनके कान की शोभा सोने से जड़ित कुण्डल से नहीं बल्कि शास्त्रों के श्रवण से होती है, अर्थात् सत्पुरूषों के कानों की शोभा अच्छे वचनों के श्रवण से है । हाथ दान देने से सुशोभित होते हैं रत्न जड़ित कंकण पहनने से नहीं, अर्थात् हाथ की शोभा दान देने से होती है । शरीर की शोभा परोपकार करने से है चन्दन से नहीं ।

2- भर्तृहरि के अनुसार पुत्र, पत्नी और मित्र का क्या नीति धर्म है । इसी संदर्भ में बताते हुए भर्तृहरि कहते हैं-

यः प्रीणयेत् सुचारितैः पितरं स पुत्रो
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो ।।

भर्तृहरि के अनुसार जो आज्ञाकारी पुत्र अपने सुन्दर चरित्र से अपने पिता को प्रसन्न करता है, देखा जाय तो सही मायने में वही पुत्र है । जो स्त्री अपने पति का कल्याण चाहती है अर्थात् नीति की आज्ञा का पालन करती है वही पत्नी है । और जो चाहे विपत्ति आये या सुख दोनों में एक समान व्यवहार करता है वही मित्र है । ये तीनों सत्पुत्र, सत्पत्नी और अच्छा मित्र ये पुण्य आत्माओं को ही प्राप्त होते हैं ।

3- जो व्यक्ति अपने अमृतमयी मधुर वचनों से दुष्टों को सही मार्ग पर लाना चाहते हैं उसी विषय में भर्तृहरि कहते हैं-

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणी´च्छिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वा´छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।।

जो व्यक्ति कोमल कमल नाल के रेशों से हाथी जैसे बलवान जीव को बाँधने का प्रयत्न करता है, जो असम्भव है। या अत्यधिक कोमल शिरीष पुष्प के अग्रभाग से हीरे को काटने की इच्छा करता है। एकमात्र शहद की बूँद से सम्पूर्ण खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है। वह यह नहीं जानता कि ये सारे कार्य असम्भव है ये सारे कार्य यदि सम्भव भी हो जाय लेकिन फिर भी दुष्ट सज्जनता के मार्ग पर नहीं आता।

4- कवि भर्तृहरि ने विद्या के विषय में लिखा है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

कवि भर्तृहरि कहते हैं कि विद्या ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ गुण है। विद्या ही छिपा हुआ गुप्त धन है। विद्या भोगों को देने वाली और यश और सुखों को देने वाली है तथा विद्या ही गुरूओं की भी गुरू है। विदेश में रहने वाले की विद्या बन्धु के समान सहायता करती है, एवं विद्या ही ईष्ट के तुल्य है। राजाओं के द्वारा विद्या की सदा पूजा की जाती है अर्थात् पूजी जाती है, धन नहीं। जो मनुष्य विद्या से रहित है वह पशु तुल्य है अर्थात् वह पशुकोटि में रहने योग्य है।

5- कवि भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में जन्म के विषय में बताते हुए कहा है-

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

कवि कहते हैं कि युगों-युगों से जन्म-मरण का चक्र तो लगातार चलता ही रहता है। कहने का आशय यह है कि जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु निश्चय है कवि कहते हैं कि उसी का जन्म लेना सफल होता है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो।

6- मूर्ख व्यक्ति पर किसी की कही हुई बात का कोई प्रभाव नहीं होता, क्योंकि मूर्खता को कवि ने सबसे बड़ा अभिशाप माना है। कवि स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न र´जयति।।

जो व्यक्ति अज्ञ है अर्थात् अबोध है उसे आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है। जो विद्वान है, श्रेष्ठ ज्ञाता है अर्थात् विशेषज्ञ को और भी आसानी प्रसन्न किया जा सकता है। परन्तु जो अल्प मात्र के ज्ञान से अपने को निपुण मानने लगा है उसे तो सृष्टि कर्ता स्वंय परमपिता ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते साधारण मनुष्य की तो क्या बात। कहने का तात्पर्य यह है कि मूर्ख को समझाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। योगीन्द्र भर्तृहरि ने नीतिशतक में नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी है, जिनका उद्देश्य मनुष्य को कल्याण के मार्ग की ओर प्रेरित करना है। भर्तृहरि ने जीवन में मानव मूल्यों को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया है।

बोध प्रश्न

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे---थे।

(ख) भर्तृहरि का नीति शतक एक ---- ग्रन्थ है।

(ग) विद्या ही मनुष्य का---- गुण है।

(घ) द्यूतक्रीड़ा के समय भी विदुर ने -----को चेतावनी दी।

(4) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये-

(1) 'पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः' में कवि ने किसके विषय में कहा है-

(क) पुरूष (ग) नारी

(ख) पंडित (घ) मूर्ख

(2) 'सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनःसुखम्' की पंक्ति किस पुस्तक से उद्धृत है

(क) नीतिशतक (ग) विदुर नीति

(ख) चाणक्य नीति (घ) मेघदूत

(3) 'विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं' में किसकी महिमा बतायी है-

(क) विद्या की (ग) मूर्ख की

(ख) धन की (घ) पंडित की

1.4.5 पंचतंत्र में नीति

पंचतंत्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पाँच तन्त्रों में निबद्ध है। आचार्य विष्णुगुप्त शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र सरल होने के साथ-साथ बड़ा महत्व का है। यह नीति ग्रन्थ प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ इसकी लोकप्रियता भारत में ही नहीं बल्कि विश्वव्यापी है। कई विदेशी भाषाओं में अनका अनुवाद हुआ है। पंचतंत्र की रचना काल के विषय में कई मतभेद हैं लेकिन कई निष्कर्षों के आधार पर इतिहासकारों ने पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ईसा पूर्व के लगभग स्वीकार किया है। जैसा कि आपको विदित है कि पंचतंत्र के अर्न्तगत पाँच तंत्र आते हैं। आचार्य विष्णुशर्मा एक धर्मशास्त्री थे। सम्पूर्ण पंचतंत्र की कथाएँ पांच तन्त्रों में विभक्त है। इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कहते हैं कि भारत की दक्षिण दिशा में महिलारोप्य नामक एक नगर था। वहाँ अमरशक्ति नामक एक राजा राज्य करता था। उसके तीन पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंत शक्ति थे। राजा के तीनों पुत्र महामूर्ख थे, राजा ने इन पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए नीतिज्ञ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण को सौंप दिया। विष्णुशर्मा ने राजा को आश्वासन दिया कि मैं मात्र 6महीने में तीनों राजकुमारों को नीतिशास्त्र का

ज्ञाता बना देगा। तब विष्णुशर्मा ने पाँच तंत्रों की रचना की मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। इन तंत्रों के माध्यम से विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को नीतिशास्त्रज्ञ बना दिया। तभी यह पाँच तत्त्वों वाला पंचतंत्र नामक नीति ग्रंथ समस्त भूतल पर नीतिज्ञान के लिए प्रसिद्ध हो गया। पंचतंत्र में पाँचों तंत्रों को मिलाकर 71 कथाएँ हैं। मित्रभेद में 22, मित्रसम्प्राप्ति में 8, काकोलूकीय में 16, लब्ध प्रणाश में 12तथा अपरीक्षित कारक तंत्र में13 कथाएँ हैं। इनमें से 45 कथाओं में विष्णुशर्मा ने पशु पक्षियों को पात्र बनाया गया है। आचार्य विष्णुशर्मा ने कथाओं के बीच-बीच में अनेक स्थलों पर नीतिकारों को स्मरण किया है। हम यहाँ पर केवल उन्हीं अंशों को प्रस्तुत कर रहें हैं जो सदाचरण के लिए प्रेरणादायक हैं -

1- कवि विष्णुशर्मा ने अपनी नीति में बताया है कि कभी किसी व्यक्ति के ऊपर पूर्ण रूप से विश्वास करके उसे अपनी गुप्त बातें नहीं बतानी चाहिए। कभी भी किसी के प्रति असत्य भाषण अर्थात् झूठ नहीं बोलना चाहिए। सदैव एक समान नीति अर्थात् एक समान आचरण करना चाहिए। ईश्वर व राजाओं के समक्ष तो कभी भी असत्य का आचरण नहीं करना चाहिए।

2- कामी नारियों की निन्दा करते हुए विष्णुशर्मा ने कहा है

अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः।

गुंजफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः।।

कथाकार विष्णुशर्मा ने स्त्रियों के आन्तरिक और बाह्य अंग के भावों को स्पष्ट करने के लिए मापने की सबसे छोटी इकाई गुंजा का निर्माण करके कामिनियों से सदा दूर रहने की चेतावनी दी है। कथाकार ने एक ओर तो कामिनियों से दूर रहने को कहा है। वहीं दूसरी ओर स्त्री के रक्षार्थ अर्थात् रक्षा हेतु सदा तत्पर रहने के लिए कहा है। जो ब्राह्मण, स्वामी, स्त्री और गौ की रक्षा हेतु प्राणत्याग करते हैं, उन्हें ही सनातन लोक की प्राप्ति होती है।

3-धर्मबुद्धि अर्थात् धर्म के अनुसार जो अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं उनके विषय में कथाकार कहते हैं-

मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत्।

आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः ।।

धर्मबुद्धि वाले व्यक्ति दूसरे की पत्नी को माता के समान, पर धन अर्थात् दूसरे के धन को मिट्टी के समान और समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखते हैं।

4- कथाकार विष्णुशर्मा ने तीन कार्यों को करने से वर्ज्य किया है-

अयशः प्राप्यते येन येन चापगतिर्भवेत्।

स्वर्गाच्च भ्रंश्यते येन न तत्कर्म समाचरेत्।।

जिस कार्य को करने से मनुष्य का अपयश हो, दुर्गति हो और वह अपने बुरे कर्मों के कारण स्वर्ग प्राप्ति से वंचित रह जाय ऐसा कर्म मनुष्य को कभी नहीं करना चाहिए कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को सत् कर्म करने चाहिए।

5- धन और प्राण रक्षा के सम्बन्ध में कथाकार कहते हैं-

सर्वनाशे च संजाते प्राणानामपि संशये।

अपि शत्रु प्रणम्यापि रक्षेत् प्राणान् धनानि च।।

यदि मनुष्य का सब कुछ नष्ट हो जाता है, यहाँ तक की प्राण भी संकट की स्थिति में हों तो शत्रु को प्रणाम कर लेना चाहिए इससे हमारे प्राण भी संकट मुक्त हो जाते हैं और धन की भी रक्षा हो जाती है।

6- विष्णुशर्मा ने विनाश की स्थिति के विषय में कहा है-

सर्वनाशे च संजाते प्राणानामपि संशये।

अपि शत्रुं प्रणम्यपि रक्षेत् प्राणान् धनानि च ।।

यदि मनुष्य का आलस्य बढ़ता रहे और वह अपने शत्रु और रोग की उपेक्षा कर देता है, तो ये शनै-शनै बड़े प्रभावपूर्ण हो जाते हैं और अंत में वह इनके द्वारा मारा जाता है । कहने का तात्पर्य यह हैकि यदि मनुष्य आलस्य करेगा तो उसके शत्रु उत्पन्न होंगे यदि उसका रोग बढ़ता रहेगा तो अंत में उसकी मृत्यु निश्चय है । कथाकार विष्णुशर्मा ने कथामुख में राजा अमरशक्ति के तीनों पुत्रों को ज्ञानवान बनाने के लिए इस ग्रंथकी रचना की, विष्णुशर्मा के अनुसार संसार में जो लेशमात्र (अल्पमात्र) भी ज्ञान रखते हैं यह ग्रन्थ उन सभी के लिए कल्याणकारी व प्रेरणादायक रहेगाइससे प्रमाणित हो ही जाता है कि कथाकार विष्णुशर्मा ने सामान्य जन के कल्याण की भावना से प्रेरित
होकर इसकी रचना की ।

1.4.6 हितोपदेश में नीति

हितोपदेश दो शब्दों के योग से बना है- हित और उपदेश । हितोपदेश की व्युत्पत्ति धा(हि)क्त के योग से होती है यहाँ पर'धा' को 'हि' हो गया और क्त प्रत्यय से हित शब्द बना है । हित और उपदेश शब्द में हितस्य उपदेशः षष्ठी तत्पुरूष समास के बाद गुण संधि करने पर हितोपदेश शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका अर्थ है हितकारी उपदेश । इस प्रकार हितोपदेश का व्यापक अर्थ प्रत्यक्ष है, एक प्रकार से देखा जाय तो ये हितकारक नीतियों का ही उपदेश है । अर्थ गौरव से युक्त महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में हित शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है । हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः अर्थात् जो हितकारी हो और वह मधुर भी हो ऐसा वचन अति दुर्लभ है अर्थात् सुलभ नहीं है । नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग दूसरों का हित चाहते हैं वह कटु सत्य भी बोलते हैं । नीति शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसे प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार में लाता है । विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र-

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटतं संस्कृतोक्तिषु ।
वचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ।।

यह हितोपदेश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने में पटुता के साथ ही साथ वाणी की विचित्रता तथा नीति सम्बन्धी विद्या को प्राप्त कराता है । हितोपदेश के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है-
गंगा नदी के तट पर पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे, उनके चार पुत्र
थे। धीरे-धीरे समय बीतता गया और राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में अत्यधिक चिन्ता होने लगी, क्योंकि वे जानते थे कि शास्त्र के द्वारा अनेक संदेहों को दूर किया जा सकता है, जिसने शास्त्र का अभ्यास नहीं किया देखा जाय तो वह वास्तव में मूर्ख है उसके विषय में कहा गया है-यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक । इनमें एक-एक भी सबसे बड़ा अनर्थ करने वाला है, जिसमें ये चारों हों उसके विषय में तो क्या कहना । तत्पश्चात् राजा ने सोचा मेरे पुत्रों में तो ये चारों बातें विद्यमान हैं,इसलिए इस सम्बन्ध में मुझे कुछ उपाय करना चाहिए, चिन्तित राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा मेरे इन पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें । विष्णुशर्मा ने राजा के पुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश कहलाया। हितोपदेश की रचना का समय 11 शती के लगभग माना जा सकता है । सर्वजनहिताय पंचतंत्र तथा अन्य नीति ग्रंथों के आधार पर ही पं0 श्रीनारायणशर्मा ने हितोपदेश नामक ग्रंथ की रचना की । यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है - मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि । हितोपदेश की कथाओं के प्रमुखपात्र कौआ,मृग,कछुआ,चूहा,धूर्तगीदड़,मुसाफिर,बिलाव, अंधागिद्ध,संन्यासी,चिड़िया आदि हैं । देखा जाय तो इनमें से अधिकतर जंगली प्राणी, पशु पक्षी हैं । इनके अध्ययन से हमें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है । इन कथाओं में

मित्रलाभ में 216, सुहृद्भेद में 184, विग्रह में 149 और संधि में 133 श्लोकों की संख्या है। नारायण पंडित द्वारा रचित हितोपदेश के कुछ नीतिगत उपदेश निम्नलिखित हैं-

1-भाग्य के विषय में यहां पर कथाकार ने कुछ सांकेतिक उपदेश दिया है-

'स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी'

जे चन्द्रमा प्रतिदिन आकाश में विहार करता है, अंधकार को दूर करता है, राहु के द्वारा उसे भी ग्रास बना लिया जाता है, अतः देखा जाय तो भाग्य ही बलवान है।

2-मृत्यु के समीप होने का लक्षण बताते हुए कथाकार कहते हैं-

दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वक्यमरून्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।

जिनकी आयु समाप्त अर्थात् जो मृत्यु के हैं, उन्हें दीपक के बुझने से गंध का आभास नहीं होता है, मित्र के हितैषी वाक्यों को भी वे नहीं सुनते हैं और वे अरून्धती तारा को नहीं देख पाते।

3-प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कथाकार ने बताया है कि किस प्रकार बुद्धिजाावियों की बुद्धि भी मलिन को जाती है-

असम्भवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे-मृगाय
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।

कथाकार राम के विषय में बताते हुए कहते हैं कि राम तो मर्यादापुरूषोत्तम थे। फिर भी उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी थी, जिस प्रकार स्वर्णमृग का होना असम्भव है लेकिन फिर भी राम को मृगाके लिए लोभ हो गया, उन्होंने उसका पीछा किया। इसीलिए कहा गया है प्रायः विपत्ति आने पर बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

4- अतिथिर्यस्य भग्नाशो

भारतीय परम्परा के अनुसार अतिथि को देवतुल्य माना जाता है। यदि किसी घर से कोई अतिथि निराश अर्थात् दुःखी होकर लौट जाता है, वह उस घर के लोगों को अपना पाप दे जाता है।

5- विपदि धैर्यम्

शास्त्रों में भी कहा गया है कि विपत्ति के समय धैर्य धारण करना चाहिए।

6-कथाकार नारायणपंडित राजनीति के विषय में कहते हैं-

वाराङ्नेव नृपनीतिरनेकरूपा

काव्य के अन्त में कथाकार ने अपने व अपने काव्य हितोपदेश के विषय में कहा है-

कथाकार कहते हैं कि इस संसार में जब तक हिमालय सुता पार्वती के प्रणय में चन्द्रमौलि अर्थात् शंकर का प्रेम अनुराग है। जब तक बादलों में बिजली के समान भगवान विष्णु के मन में लक्ष्मी सुशोभित अर्थात् सुदर्शन धारी विष्णु व देवी लक्ष्मी का प्रेम है और जब तक सूर्य के स्फुलिङ्ग के समान स्वर्ण शिखर सुमेरू स्थित है तब तक कथाकार नारायण पंडित द्वारा विरचित यह हितोपदेश नामक कथाओं का ग्रन्थ प्रचलित रहे अर्थात् चलता रहे।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप नीति व नीति साहित्य से परिचित हुए,आपने शुक्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, भर्तृहरि के नीतितत्त्वोपदेशों का अध्ययन किया। इसके साथ ही साथ पंचतंत्र और हितोपदेश की

नीतियों से परिचित हुए। इस इकाई में आपने विभिन्न ग्रंथों से संग्रहित कल्याणकारी व जीवनोपयोगी नीतियों का अध्ययन किया।

बोध प्रश्न

(5) नीचे जो प्रश्न दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं, सही वाक्यों के सामने का चिह्न लगाइये- तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न कोष्ठक में लगायें -

(क) पंचतंत्र पाँच तन्त्रों में निबद्ध कथाओं का ग्रन्थ है ( )
(ख) पंचतंत्र विष्णुशर्मा द्वारा रचित ग्रंथ नहीं ( )
(ग) हितोपदेश की रचना पंचतंत्र के आधार पर ही की गयी है ( )
(घ) कथाओं के ग्रंथ हितोपदेश के रचनाकार नारायणपंडित हैं ( )

(6) निम्न सूक्तियों के अर्थ लिखिए-

- विपदि धैर्यम्
- वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा
- स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी

1.6 शब्दावली

उद्भावक- उत्पन्न करने वाला
परोक्ष - पीठ पीछे
दीर्घदर्शी - दूर तक दृष्टि रखने वाला
हितकारी- हित करने वाले
द्यूतक्रीड़ा- जुआ
प्रेरणादायक- प्रेरणा देने वाला
सर्वजनहिताय- सभी लोगों के हित में
नीतिशास्त्रज्ञ - नीति शास्त्र में निपुण

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- (क) (ख) (ग) (घ)

2- (1) (ग) दुर्जन

(2) (ग) शुक्रनीति

(3) (ग) मूर्ख

3- (क) - भ्राता

(ख) - अद्वितीय

(ग) - सर्वश्रेष्ठ

(घ) - धृतराष्ट्र

4- (1) (ग)- नारी

(2) (ग) - विदुर

(3) (क)- विद्या

5- (क) (ख) (ग) (घ)

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 -बलदेव उपाध्याय- संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा निकेतन5 बी, कस्तूरबा नगर,सिगरा वाराणसी 2210102-

2. डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- श्री भर्तृहरि कृत-नीतिशतकम्महालक्ष्मी प्रकाशनशहीद भगतसिंह मार्गआगरा-2820023-प्रो0 बालशास्त्री - हितोपदेशव्याकरण विभाग संस्कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

1.9 उपयोगी पुस्तकें

1- केशोराम अग्रवाल द्वारा -कल्याण-नीतिसार-अंकगीताप्रेस,गोरखपुर से मुद्रित जनवरी एवं फरवरी 2002ई0तथा प्रकाशित।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पंचतंत्र के अन्तर्गत नीति का सार लिखिये।

2 हितोपदेश की नीति को विस्तार से समझाइये।

इकाई.2 भर्तृहरि का जीवनवृत्त एवं उनकी पद्धतियों का वर्णन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भर्तृहरि का जीवनवृत्त एवं स्थिति काल
2.4 भर्तृहरि की कृतियों का परिचय
2.5 भर्तृहरि एवं उनकी पद्धतियों का वर्णन
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 उपयोगी पुस्तकें
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत जगत में प्रचलित नीति कथाओं को आप जानते हैं। उन्हीं से सम्बन्धित नीति साहित्य की परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ होकर आज तक चली आ रही है। विभिन्न ग्रंथों में नीति परक सम्वादों , कथाओं, सूक्तियों आदि के वर्णन मिलते हैं। इसी क्रम में प्रसिद्ध नीति कथाओं के रचनाकार पंचतंत्र के रचयिता आचार्य विष्णुशर्मा का अभ्युदय हुआ जिन्होंने नीति साहित्य का भरपूर सम्वर्धन किया, इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले व्याकरण एवं दर्शन प्रिय व्यक्तित्त्व तथा पाण्डित्य के धनी आचार्य भर्तृहरि ने नीतिशतक की रचना करके लौकिक जीवन के विभिन्न पक्षों में नीतियां का उद्घाटन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भर्तृहरि द्वारा विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित घटनाओं व महत्त्वपूर्ण नीति परक बातों का ज्ञान कराने में सक्षम हो सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः-

- भर्तृहरि के स्थिति काल से सम्बन्धित लेखों व प्रमाणों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भर्तृहरि के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- भर्तृहरि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के दन्तकथाओं के माध्यम से समझा सकेंगे।
- भर्तृहरि की कृतियों का उल्लेख कर सकेंगे।
- भर्तृहरि के नीति साहित्य में योगदान से सम्बधित तथ्यों से परिचित होंगे।

2.3 भर्तृहरि का जीवनवृत्त एवं स्थिति काल

भर्तृहरि का जीवनवृत्त—

व्याकरण दर्शन में अभूतपूर्व चिन्तन करने वाले जीवन में प्रीति, दया, करूणा और विद्वता जैसे अक्षुण्ण गुणों को पहचानने वाले प्रसिद्ध कवि भर्तृहरि का आविर्भाव महाकाव्यों और नीति साहित्य के सन्धि काल की उद्भूत प्रेरणाओं के साथ हुआ। दन्तकथाओं व किंवदन्तियों के आधार पर ही आप भर्तृहरि के जीवन के विषय में जान पायेंगे।भर्तृहरि का जीवन विविधताओं से भरा है, अपने काव्य में समय की ही भाँति अपने जीवन के विषय में निर्देश न देने के कारण जनश्रुतियों को ही आधार माना गया है। भर्तृहरि का जन्म मालवा प्रान्त में हुआ था, ये जाति के क्षत्रिय व परमार वंशज थे। इनका सम्बन्ध राजघराने से था। इनके पिता का नाम गन्धर्वसेन था। इनकी दो रानियां थीं। एक से भर्तृहरि का जन्म हुआ व दूसरी से विक्रमादित्य उत्पन्न हुए। राजकुमार विक्रम भर्तृहरि के छोटे भाई थे, राजकुमार विक्रम ही बाद में महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, इन्हीं के नाम पर तिथि का ज्ञान कराने के लिए संवतसर की प्रथा चलाई गई इसके विषय में आप पूर्व जान चुके हैं। भर्तृहरि ने अपनी शिक्षा गुरू के आश्रम में रहकर पूर्ण की, भर्तृहरि आज्ञाकारी थे। उन्होंने वेदों, उपवेदों और छह शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, गुरू के आश्रम में रहकर ही उन्होंने वेदान्ताचार्य से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया। महाराजा भर्तृहरि असाधारण विद्वान और बुद्धिमान होने के साथ-साथ एक महान योद्धा भी थे, एक बार उनके राज्यमें शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया उन्होंने शत्रुओं का पूर्ण रूप से दमन किया। राजा भर्तृहरि अपनी वीरता के कारण ही नहीं अपितु विद्वता के कारण भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।भर्तृहरि के साथ विक्रमादित्य और विक्रमादित्य के साथ भर्तृहरि के नाम को कभी भी अलग नहीं किया जा सकता , अग्रज होने के कारण भर्तृहरि राजा बने विक्रमादित्य अपने अग्रज के प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार चलाने में सहयोग देते

थे, जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र को कार्यभार सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार भर्तृहरि भी विक्रम को सम्पूर्ण दायित्व सौंपकर सुखी थे, दोनों भाईयों में अत्यधिक प्रेम था । कुछ समय उपरान्त मालवा की राजधानी उज्जैन हो गयी, सत्ता पाकर भर्तृहरि विषयासक्त हो गये और उनका अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में बितने लगा। महाराजा भर्तृहरि की पिंगला नाम की रानी थी जो अपने समय की परमसुंदरी, मनमोहिनी, रूपलावण्या सम्पन्ना थी । भर्तृहरि व रानी पिंगला में अत्यधिक प्रेम था, असाधारण रूप से सम्पन्न रानी पिंगला पर महाराज इस प्रकार मुग्ध हुए कि अपनी बुद्धि, विवेक, और विचार जैसे वैभव को उनके ऊपर समर्पित किया वे महारानी पिंगला के हाथों की कठपुतली बन गये, उनका अधिकांश समय रनिवास में बीतने लगा ,विक्रमादित्य के बार-बार समझाने पर भी उन्होंने उनकी बात नही सुनी।यदि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देखा जाय तो रूप लावण्या मोहिनियों के सम्मुख बड़े-बड़े योगी तपस्वी भी धाराशायी हो जाते हैं यहाँ हम भर्तृहरि को दोष नहीं देंगे, विश्वामित्र जैसे महान योगी तपस्वी ने मेनका के रूप लावण्य में फँसकर अपना तप भंग किया था, बड़े-बड़े योद्धा जो अपने बाहुबल से इस संसार को पराजित कर सकते हैं उन्होंने भी इन कोमलांगी मनमोहिनियों के सम्मुख हार मान ली बड़े-बड़े योद्धा जो अपने युद्ध कौशल के बल नहीं कर पाते ये अपने एक ही कटाक्ष से कर लेती हैं । इन मोहिनियों के वशीभूत रहने वाले पुरूष को अंत में दुःख, धोखा और विश्वासघात ही मिलता है।

यदि भर्तृहरि की बुद्धि मारी नहीं जाती तो वे रानी पिंगला के हाथों की कठपुतलीनहीं बनते जिससे रानी पर पुरूष से प्रेम न करती, यदि वह व्यभिचारिणी न होती तो भर्तृहरि को कैसे वैराग्य प्राप्त होता और वे कैसे महान शतक त्रय का निर्माण करते, येसब तो ईश्वर की इच्छा से होता है। यदि उन्हें विरक्ति न होती तो उनका नाम संसारमें अमर न होता, अपनी प्रिया के कुकर्म को जानकर उन्हें ऐसी विरक्ति हुई कि वे राजपाट त्यागकर योगीराज बन गये।

भर्तृहरि का स्थिति काल—

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम व श्रेष्ठ भाषा है । इसका साहित्य अत्यन्त विशाल और समृद्ध है । भर्तृहरि संस्कृत साहित्य में सूर्य के समान चमके, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार भर्तृहरि के शतक अन्नत काल तक समाज को प्रेरणा देते रहेंगे । इन्होंने अपने काव्य में अपने समय का निर्देश नहीं किया । संस्कृत साहित्य की परम्परा में अनेक महान साहित्यकार व कवि हुए, अपनी कृतियों में अपना परिचय न देने के कारण अनेक जनश्रुतियों को ही सत्य माना जाता है । कालिदास ,भास, भारवि, माघ,तथा शद्रक की तरह ही भर्तृहरि के समय के विषय में मतभेद है । दन्तकथाओं व विदेशी यात्रियों के द्वारा लिखे लेखों के अतिरिक्त कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है । इस प्रकार देखा जाय तो भर्तृहरि के स्थिति काल के विषय में निश्चित ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है । विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं ।

जनश्रुतियों के आधार पर राजा भर्तृहरि विक्रमादित्य के अग्रज थे, तिथियों के ज्ञान हेतु विक्रम के नाम पर एक संवत्सर की प्रथा चली जो वर्तमान में 'विक्रम संवत' के नाम से जानी जाती है । यदि हम जनश्रुतियों को आधार मानकर राजा भर्तृहरि केा विक्रमादित्य का अग्रज मान लें तो उनका समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध माना जाता हैजिन्होंने 644 में कहरूर के युद्ध में हूणों को पराजित किया । नवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध होने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में भर्तृहरि के श्लोंको को उद्धृत किया है,अतः निश्चय ही भर्तृहरि इससे पूर्व का होना चाहिए । चीनी यार्त्री हित्संग के अनुसार बौद्ध भर्तृहरि को त्रय शतकों का निर्माता मानते हैं । इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी पूवार्द्ध का माना जा सकता है, उसी समय अमरूक नामक कवि हुए, अमरूक कवि द्वारा लिखे गये शतक के पद्य भर्तृहरि के श्रृंगार शतक के पद्यों से प्रभावित हैं अर्थात् मिलते हैं ।

अतः हम भर्तृहरि के समय को 700 ई0 के कुछ पूर्व का मानेंगे, यदि भर्तृहरि को अमरूक कवि के समकालीन मान लें तो तब भी भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध का निश्चित किया जा सकता है।

भर्तृहरि के जीवन की घटनाएं—

इससे पूर्व आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए, अब आप दन्तकथाओं के आधार पर उनके जीवन की घटनाओं से परिचित होंगे कि किस प्रकार वे महाराजा भर्तृहरि से योगी भर्तृहरि बने। महारानी पिंगला अनुपम सौन्दर्य शालीनी तो थी ही साथ ही साथ मक्कार, चालाक व दुश्चरित्रा भी थी ,महाराज तो रानी से अटूट प्रेम करते थे पर रानी पिंगलाआन्तरिक रूप से राजा से प्रेम नहीं करती थी, उसे तो अपने महल के सेवक दरोगा से प्रेम था, कुछ समय तक महारानी की कलंक कथा छिपी रही आखिर एक दिन राजकुमार विक्रम को महारानी (भाभी) का कुकर्म ज्ञात हुआ तो उन्हें असह्य मनोवेदनाहुई, उन्होंने अपने अग्रज भर्तृहरि को जब सारा वृत्तांत सुनाया तो उन्होंने विक्रम से कहा- तुम्हें कोई भ्रम हो रहा है पंगला तो एक पतिव्रता व आदर्श नारी है, ऐसी पतिव्रता रानी पिंगला के चरित्र में कलंक लगाकर तुमने ठीक नहीं किया, विक्रमादित्य के बार-बार समझाने पर भी भर्तृहरि ने उनकी एक न सुनी। जब रानी पिंगला को इस घटना के बारे में ज्ञात हुआ तो उसने महाराज से विक्रमादित्य को मंत्री पद से हटाने का अनुरोध किया। विक्रम समझ गये कि यह सब पिंगला का षड्यंत्र है। राजा भर्तृहरि ने उन्हें मंत्री पद से हटाकर अपने राज्य से निष्कासित कर दिया, वे सभा भवन से निकल कर वन की ओर चल पड़े। विक्रमादित्य के चले जाने के बाद भर्तृहरि का जीवन अत्यधिक विषयवासना ग्रस्त हो गया, राज्य में अशान्ति व अव्यवस्था फैल गई। इसी समय एक घटना ऐसी घटी जिसका भर्तृहरि के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा़-एक दन्तकथा के अनुसार भर्तृहरि के राज्य में एक दरिद्र ब्राह्मण अपने सिद्धि के लिए किसी देवता की घोर अराधना कर रहा था, तप करते -करते उसे कई वर्ष व्यतीत हो गये। उसके तप के प्रभाव से देवता का आसन हिल उठा, उन्होंने उसे एक अमर फलदिया। अमर फल प्राप्त करने के बाद ब्राह्मण ने सोचा इस फल को खाने से अमर होकर मुझे दरिद्रता का कष्ट भोगना पड़ेगा। उसने मन में विचार किया क्यों न ये अमर फल मैं राजा को दे दूँ। ब्राह्मण ने अमर फल का वृत्तान्त राजा को सुनाया और वह फल राजा के हाथ में रख दिया, राजा भर्तृहरि ने प्रसन्नता पूर्वक उस ब्राह्मण को कई लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेंट स्वरूप दी। राजा अपनी रानी पिंगला से बहुत प्रेम करते थे अतः उन्होंने वह फल स्वयं न खाकर अपनी प्राणप्रिया रानी पिंगला को दे दिया। राजा भर्तृहरि ने रानी से कहा कि इस फल को खाने के बाद तुम्हारा सौन्दर्य चिरकाल तक बना रहेगा, उसने वह फल महाराज से लेते हुए कहा यदि आप चाहते हैं कि मैं इस फल को खाऊँ तो मैं इसफल को स्नान के पश्चात् खाऊँगी। राजा भर्तृहरि रानी की बात पर विश्वास करके सभा में लौट आये। एक जनश्रुति है कि रानी अपने राज्य के दरोगा से गुप्त प्रेम करती थी, अमर फल मिलने पर प्रेम के वशीभूत होकर रानी ने उस फल को स्वयं न खाकर अपने प्रेमी दरोगा को दे दिया। दरोगा बोला- प्रियतमे मैं इसे खा लूँगा। वह दरोगा भी रानी से सच्चा प्रेम नहीं करता था, वह उसी नगर की वेश्या से प्रेम करता था अतः वह फल उसने अपनी प्रेमिका वेश्या को दे दिया। दरोगा ने कहा- प्राणप्रिये इस फल को खाने से कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और उसका रूप यौवन भी चिर स्थायी रहता है। अतः मैं चाहता हूँ कि तुम इस अमर फल को खाओ। जिससे तुम सदा रूप लावण्या बनी रहोगी। वेश्या दरोगा से बोली स्नान के पश्चात् मैं इस फल को खा लूँगी। अमर फल को प्राप्त करने के बाद वेश्या ने अपने मन में विचार किया- कि इस फल को खाकर यदि मैं अमर हो जाऊँगी तो मेरी सारी आयु तो पाप कमाते बीत जायेगी। मुझे न जाने कितने पापों व कुकर्मों में अपना जीवन बिताना पड़ेगा। और कब तक इन पापों को इकट्ठा करती रहूँगी। वह वेश्या मन ही मन राजा भर्तृहरि से अटूट प्रेम करती थी , उसने सोचा क्यों न मैं इस फल को राजा भर्तृहरि को दे दूँ, जिससे राजा भर्तृहरि चिरकाल तक जीवित रहकर प्रजा को सुखी रख

सकें। महाराजा भर्तृहरि की सभा में एक अनुपम सुन्दरी, मनमोहिनी, रूप-लावण्या और वेष-कीमती परिधान से सुसज्जित नवयुवती वेश्या अपने हाथों में विचित्र फल लिए महाराज को देते हुए कहती है- महाराज यह अमर फल है इसे खाने वाला सदा अमर रहता है। फल को वेश्या के हाथों में देखकर राजा भर्तृहरि के होश उड़ गये। राजा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। राजा ने उसी क्षण वह फल वेश्या के हाथों से ले लिया और उसी क्षण उसे खा लिया। भर्तृहरि ने जब रहस्य का पता लगाया तो उन्हें पिंगला के विश्वासघात पर बड़ी आत्मग्लानि हुई, रानी के कपटपूर्ण व्यवहार पर घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने रानी की बड़ी भर्त्सना की। अब उन्हें इस संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने समझ लिया कि इस संसार में कोई किसी का नहीं होता यह संसार मिथ्या है। राजा चाहते तो सबको दण्डित कर सकते थे लेकिन उन्होंने सबको क्षमा कर दिया। राजा ने सोचा कि विषय वासनाओं में फँसकर लोग अपना बहुमूल्य कीमती जीवन गंवा देते हैं उन्होंने अत्यन्त(दुःखी) होकर अपने मन में सोचा-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।

अर्थात् जिसके लिए मैं निरन्तर चिन्तन (सोचता) रहता हूँ, वह मेरे प्रति विरक्त है, वह अन्य पुरूष की इच्छा करती है, वह पुरूष अन्य स्त्री पर आसक्त है, वह अन्य स्त्री मुझ पर आसक्त है। अर्थात् ऐसी उस रानी को, रानी के प्रेमी दरोगा पर, वेश्या पर और मुझ पर धिक्कार है और इन सबसे बढ़कर उस कामदेव को धिक्कार है जो सारे कर्म कराता है। राजा भर्तृहरि इस घटना के बाद बड़े दुःखी हुए और राजभवन त्यागकर वैरागी बन बैठे। उन्होंने अपने मंत्रियों से कहा कि मैंने उस कुटिला रानी के कहने पर अपने सत्यवादी भाई विक्रमादित्य के साथ बड़ा अन्याय किया है। आप लोग विक्रमादित्य की खोज कर उसे राजगद्दी पर आरूढ़ कर देना। भर्तृहरि ने तीन शतकों का निर्माण किया। ये शतक अनन्त काल तक समाज को प्रेरणा देते रहेंगे, योगी गोरखनाथ से उन्होंने योग साधना प्राप्त की अंत में ई0 615 में इनकी मृत्यु हो गयी।

बोध प्रश्न

1-नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाइये-

(क) भर्तृहरि का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है ( )
(ख) राजा भर्तृहरि मालवा प्रदेश के निवासी थे। ( )
(ग) भर्तृहरि जाति के ब्राह्मण थे। ( )
(घ) राजसत्ता पाकर भर्तृहरि विषयासक्त हो गये। ( )
(ङ) रानी पिंगला पतिव्रता नारी थी। ( )

2-निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) भर्तृहरि के अनुज कौन थे?

(क) चन्द्रगुप्त (ग) विक्रमादित्य
(ख) अमरूक कवि (घ) गन्धर्वसेन

(2) भर्तृहरि की रानी का नाम क्या था?

(क) सौम्या (ग) पिंगला
(ख) शकुन्तला (घ) पद्माक्षी

(3) आयुवर्द्धक अमर फल राजा भर्तृहरि को किसने दिया था?

(क) महात्मा (ग) राजा

(ख) संन्यासी (घ) ब्राह्मण

(4) महाराजा भर्तृहरि ने वह अमर फल किसे दिया?

(क) वेश्या (ग) दरोगा (ख) रानी (घ) मंत्री

2.4 भर्तृहरि की कृतियों का परिचय

भारतीय संस्कृत साहित्य में ऐसी अद्वितीय रचनाओं का भण्डार है, जो सम्पूर्ण समाज का मार्गदर्शन करती हैं। चाहे वह प्राचीन कालीन साहित्य हो या आधुनिक काल का साहित्य। संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए, भर्तृहरि की कृतियों का विवेचन करने पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने भर्तृहरि शतक नामक एक मौलिक कृति की रचना की, जिसमें तीन शतक हैं- नीति शतक, श्रृंगार शतक तथा वैराग्य शतक, इन तीनों शतकों की उपदेशात्मक कहानियाँ लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रत्येक शतक में सौ-सौ श्लोक लिखे गये थे, धीरे-धीरे कवियों ने इनकी संख्या में वृद्धि कर दी, इनके तीनों शतक विभिन्न वृत्तों में लिखे गये हैं। वाक्यपदीय का रचयिता भी भर्तृहरि को माना जाता है, यह तीन खण्डों में विभक्त है। पतंजलि के महाभाष्य के कुछ अंशों पर भर्तृहरि द्वारा टीका लिखने का संकेत मिलता है। भर्तृहरि की कृतियों का हम अगले पृष्ठों पर वर्णन करेंगे।

नीतिशतकम्—

नीति शतक के प्रत्येक श्लोक में कवि भर्तृहरि ने नैतिकता का उल्लेख किया है। कविता के माध्यम से भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों को नीति शतक में चित्रित किया है, इसमें नीति से सम्बन्धित श्लोकों का संग्रह है। यह व्यावहारिक उपदेशों का भंडार है, इसमें वर्णित पद्य तो इतने मार्मिक हैं कि वे तत्क्षण अध्येताओं के हृदय में उतरकर कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। विद्वत प्रशंसा, अर्थ पद्धति, सुजन पद्धति, दुर्जन पद्धति, परोपकार पद्धति आदि। वास्तव इस शतक में वीरता, विद्या,दया, उदारता, परोपकार, और साहस जैसे मानवीय मूल्यों को अपना विषय बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने पूरे मानव समाज के लिए नीतिगत बातों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

श्रृंगार शतक—

श्रृंगार शतक में भर्तृहरि ने बड़ा ही उल्लास पूर्ण वर्णन किया है। श्रृंगार से ओत-प्रोतश्रृंगार शतक भर्तृहरि के यौवन उल्लास की अभिव्यक्ति है, इसके श्लोकों में काम के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है। कवि ने कामिनियों के सौन्दर्य व कटाक्ष नेत्रों के द्वारा आकृष्ट करने वाले हाव- भावों का चित्रण किया है। प्रेम से प्रभावित कामी स्त्री व पुरूष के चित्त का वर्णन भर्तृहरि ने सुन्दर प्रकार से किया है-

अदर्शने दर्शनमात्रकामादृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोलाः।
आलिङ्गतायां पुनरायताक्ष्या आशास्महेविग्रहयोरभेदम् ।।

जब तक प्रेमी अपनी प्रियतमा को देख नही लेता उसे देखने की इच्छा बनी रहती है प्रियतमा का आलिंगन कर लेने के बाद ये इच्छा होती है कि दोनों इसी तरह रहें, हममें कोई विलगाव अर्थात् हम अलग न हों। इसी तरह भर्तृहरि ने युवक-युवतियों की प्रणयक्रीड़ा , स्त्रियों की मन्द-मन्द मुस्कान, भौंहों के फेरने की चतुराई से पूर्ण आंखों का मारना आदि श्रृंगारिक चेष्टाओं का
हृदयस्पर्शी वर्णन है।

वैराग्य शतक—

वैराग्य शतक में कवि भर्तृहरि का सर्वस्व प्रतीत होता है। यौवन -काल में उन्होंने सभी प्रकार के भोग पदार्थों का सेवन किया। उनका प्रारम्भिक जीवन विषय वासनाओं से ग्रस्त था। अपनी प्रिय रानी के कुकर्म से इन्हें ऐसी घृणा हुई जो कि इन्होंने राजपाट त्याग कर वैराग्य धारण किया। राजा भर्तृहरि ने अपने जीवन के सच्चे अनुभवों को श्लोकों में बॉ ध दिया। वैराग्य शतक को सर्वोत्तम कृति मानने में कोई संशय नहीं है, इसमें सांसारिक सुख भोगों का व मानवीय जीवन के दुःखमयता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया। वैराग्य के द्वारा ही परम सुख की प्राप्ति होती है। इस चराचर जीवन में मनुष्य को कहॉ से सुख मिल सकता है, वैराग्य शतक के इस श्लोक में कवि भर्तृहरि ने संसार की असारता और वैराग्य के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:॥

इस संसार में आकर हम भ्रम में थे कि जी भर के भोगों को भोगें लेकिन भोगों ने ही हमें भोग
लिया, हम तप नहीं सके पर तप ने ही हमें तपा लिया, काल व्यतीत न हुआ किन्तु हम ही व्यतीत हो गये, हमारी तृष्णा दिनों दिन बढ़ती गई किन्तु हम ही समाप्त हो गये। इस प्रकार भर्तृहरि ने संतोष को परम धन व वैराग्य को इसका साधन माना है।

वाक्यपदीय—

वाक्यपदीय के रचयिता भी महाकवि भर्तृहरि माने जाते हैं, वाक्यपदीय भी तीन खण्डों में विभक्त है। इसके तीनों काण्ड वैयाकरण के लिए आदर्श हैं भर्तृहरि की कृतिवाक्यपदीय में व्याकरण दर्शन के सिद्धान्तों का पद्यों में मार्मिक विवेचन किया है।

बोध प्रश्न

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

(क) भर्तृहरि के -----शतक हैं।

(ख) भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता' यह श्लोक-----से लिया गया है।

(ग) वैराग्य शतक भर्तृहरि की-----कृति है।

(घ) नीति शतक व्यावहारिक-----का भंडार है।

4- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथातथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही का चिह्न लगाइये-गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाएं।

(क) श्रृंगार शतक के रचयिता विष्णुशर्मा हैं। ( )

(ख) नीति शतक भर्तृहरि की रचना है। ( )

(ग) भर्तृहरि को त्रय शतकों का निर्माता नहीं माना जाता है। ( )

(घ) संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। ( )

2.5 भर्तृहरि एवं उनकी पद्धतियों का वर्णन

नीतिशतकम् भर्तृहरि के तीन प्रसिद्ध शतकों जिन्हें कि 'शतकत्रय' कहा जाता है, में से एक है। इसमें नीति सम्बन्धी सौ श्लोक हैं। नीतिशतक में भर्तृहरि ने अपने अनुभवों के आधार पर तथा लोक व्यवहार पर आश्रित नीति सम्बन्धी श्लोकों की रचना की है। एक ओर तो उनहोंने अज्ञता, लोभ, धन, दुर्जनता, अहंकार आदि की

निन्दा की है तो दूसरी ओर विद्या, सज्जनता, उदारता, स्वाभिमान, सहनशीलता, सत्य आदि गुणों की प्रशंसा भी की है। संस्कृत विद्वानों ने नीतिशतक को निम्नलिखित भागों (11) में विभक्त किया है, जिन्हें 'पद्धति' कहा गया है-

1. बह्मस्तुतिपद्धति
2. मूर्खपद्धति
3. विद्वत्पद्धति
4. मान-शौर्य-पद्धति
5. अर्थपद्धति
6. दुर्जनपद्धति
7. सुजनपद्धति
8. परोपकारपद्धति
9. धैर्यपद्धति
10. दैवपद्धति
11. कर्मपद्धति

नीतिशतक में कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से इन पद्धतियों का वर्णन किया है। सूक्ष्म वर्णन यहॉ किया जा रहा है। जिसका बृहद् वर्णन अग्रिम पाठ में किया जायेगा।

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है। संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों में नीति सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातें बतायी गयी है, इनमें महाराजा भर्तृहरि का नीतिशतक भी एक अद्वितीय ग्रंथ है। भर्तृहरि ने नीति सम्बन्धी अनेक पद्धतियों को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है, नीति, श्रृंगार एवं वैराग्य शतकों के प्रणेता भर्तृहरि का रससिद्ध कवियों में अन्यतम स्थान है, ये कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ ही साथ व्याकरण शास्त्र के भी अप्रतिम ज्ञाता थे। इन्होंने अपने नीति परक उपदेशों के माध्यम से मानव जाति को लाभान्वित किया, इनके नीति सम्बन्धी पद्धतियों के उपदेश अनन्त काल तक मानव जाति को प्रेरणा देते रहेंगे। भर्तृहरि की नीति जन-जन को बढ़ावा देकर सही दिशा निर्देशित करती है और हर किसी के जीवन को सफल बनाती है। इसमें विद्या, वीरता, उदारता, दया, परोपकार, साहस, कृतज्ञता जैसे उदात्त मानवीय मूल्यों को विषय बनाया गया है। भर्तृहरि के श्लोकों में प्रतिपादित नीति पद्धतियों के सिद्धान्त बिना किसी भेदभाव के समग्र विश्व की मानव जाति के लिए कल्याणकारी हैं। भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में कुछ विशेष पद्धतियों की शिक्षा दी है, जिसका वर्णन हम विस्तार से करेंगे-

1- महाराजा भर्तृहरि ने अपने नीति में कर्म महत्त्व की कहीं भी उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने कर्म से विरत रहने का समर्थ भी नहीं किया, इसके विपरीत उन्होंने कर्म के महत्त्व को जानते हुए कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहा है-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

कहने का तात्पर्य यह है कि नीच पुरूष विघ्न के भय से किसी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग कार्य को आरम्भ करने के पश्चात् विघ्नों के डर से कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं, परन्तु जो उत्तम कोटि

के मनुष्य हैं वो बार-बार विघ्नों के आने पर भी विचलित नहीं होते उस कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते। इस श्लोक के द्वारा भर्तृहरि ने निरन्तर कर्मरत रहने की प्रेरणा दी है तथा मनुष्य को सफलता तक पहुँचाने के लिए प्रोत्साहित किया है-

2- जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं
मनोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गति कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति अर्थात् अच्छी संगति बुद्धि की जड़ता को मिटाती है, उससे वाणी में सत्यता आती है, सत्संगति से मनुष्य की मान प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है, उससे पाप नष्ट हो जाते हैं, चित्त सदैव प्रसन्न रहता है, और उसकी कीर्ति सभी दिशाओं में फैलाती है। अतः सत्संगति में वे सभी गुण हैं जिनकी मनुष्य को आवश्यकता होती है। प्रस्तुत श्लोक में भर्तृहरि ने सत्संगति की महत्ता को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया।

3- भर्तृहरि ने अपने नीति शतक के माध्यम से बताया है कि उसी व्यक्ति का जीवन सार्थक है जिससे उसके वंश की उन्नति होती है-

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥

इस नश्वर संसार में जन्म-मरण का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मरना और फिर पुनः उत्पन्न होना इस संसार का शाश्वत सच है परजन्म लेना उसी का सार्थक होता है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति होती है। प्रस्तुत श्लोक के द्वारा भर्तृहरि ने बताया है कि विचारशील सम्पन्न मनुष्य ही ऐसा करता है, और अपने जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

4- परोपकार मानव जीवन का गुण ही नहीं अपितु अलंकार भी है, मनुष्य में परोपकार की भावना स्वभावगत होती है, भर्तृहरि ने कहा कि केवल मनुष्य में ही अचेतनों में भी परोपकार की

भावना होती है। अपने श्लोक के द्वारा उन्होंने कितना सार्थक वर्णन किया है-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरूषा समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।

जिस प्रकार फलों से लदे वृक्ष नम्र अर्थात् झुक जाते हैं, वर्षा से भरे बादल नीचे झुक जाते हैं, इसी प्रकार सत्पुरूष धन सम्पन्न होने पर भी अपनी उदारता को नहीं छोड़ते क्योंकि परोपकारी लोगों का स्वभाव ही ऐसा है अर्थात् परोपकारी पुरूष अभिमान से रहित होते हैं अभिमान से रहित पुरूष का नम्र होना स्वाभाविक ही है। भर्तृहरि की वृक्षों और मेघों के माध्यम से अचेतनों में भी परोपकार की भावना कितनी स्वाभाविक जान पड़ती है।

5- सच्चे मित्र के विषय में बताते हुए कवि भर्तृहरि ने कहा-

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

कहने का तात्पर्य यह है कि मित्र वही है जो पाप कर्म करने से रोकता है, भलाई की ओर प्रवृत्त करता है, गुप्त बातों को रहस्य की भाँति छिपाता है और मित्र के गुणों को प्रकट करता है, विपत्ति आने पर उसका साथ देता है छोड़ता नहीं है कहा जाय तो सच्चे अर्थों में वही सच्चा मित्र है। भर्तृहरि ने इस श्लोक के द्वारा समाज को यह प्रेरणा दी है कि सच्चा मित्र वही है जो सर्वस्व निछावर कर अपने मित्र का साथ देता है।

6- भर्तृहरि ने कहा कि धैर्यवान लोग अपने उद्देश्य को पूर्ण किये बिना कभी नहीं रहते , चाहे उनकी निन्दा हो या स्तुति। अपने श्लोक के माध्यम से कवि का उद्देश्य यहाँ पर केवल धैर्यवान लोगों के विषय में अवगत कराना है-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणवस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

नीति से निपुण निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी इच्छानुसार आये या चली जाय, आज ही उनकी मृत्यु हो या युग के बाद , धीर पुरूष अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं, आज ही उनकी मृत्यु हो या युग के बाद, धीर पुरूष अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं, उनकी निन्दा हो या प्रशंसा उन्हें कोई प्रयोजन नहीं, वे हर अवस्था चाहे सुख हो या दुःख अपने को सन्तुलित बनाये रखते हैं , इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने अपने युग में सम्पूर्ण समाज, देश ही नहीं बल्कि पूरी मानव जाति के लिए नीतिगत बातों को बहुत ही सरल और रोचक श्लोकों में लिखा है।

7- भर्तृहरि ने केवल समाज या साधारण मनुष्य को ही नहीं बल्कि राजा व प्रजा दोनों को समान रूप से देखा, प्रजा के लिए राजा के क्या कर्तव्य हैं इसका वर्णन भर्तृहरि ने श्लोक के द्वारा कितना सहज रूप में किया है-

राजन् ! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥

हे राजन् ! यदि तुम पृथ्वीरूपी गाय को दुहना चाहते हैं तो आप प्रजा जनों का बछड़े की भाँति पालन करें, क्योंकि प्रजा का हमेशा अच्छी तरह से पालन करने से यह पृथ्वी कल्पलता की भाँति विविध फलों को प्रदान करती है, अर्थात् अच्छी तरह प्रजा पालन करने से ही राजा को सवार्थ सिद्धि प्राप्त होती है आज के युग में लोग स्वार्थी हो गये हैं। नीति शतक में ही एक स्थान पर इन्होंने कहा कि मनुष्य को चाहे वह किसी भी स्थल पर धन अर्जित करने चला जाय तब भी उसे उतना ही प्राप्त होता है जितना उसकी नियति में रहता है, अतः इन पक्षों में भर्तृहरि भाग्यवादी प्रतीत होते हैं, इनकी दार्शनिक वर्ण्य विधा भी अन्य कवियों की भाँति श्रेष्ठतम है प्रस्तुत तथ्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है-मृग, मीन और सज्जन। तृण, जल, तथा संतोष से जीवन निर्वाह करते हैं किन्तु समाज में इन्हीं तीनों के कारण बैरी मनुष्य हो जाते हैं- बहेलिया मृग के लिए, मछुवारा मीन के लिए और पिशुन (चुगलखोर) सज्जनों के लिए जगत में अकारण बैरी होते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी वर्णन कला से भर्तृहरि ने विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में अन्तर स्थापित कर नीति शतक को उत्कृष्ट बनाते हुए मार्ग निर्देशित किया है। महान आत्माओं के आदर्श चरित्र का भी निरूपण किया गया है। जिसका अनुकरण करके मनुष्य अपने श्रेष्ठ पथ की ओर अग्रसर हो सकता है, महापुरूषों के स्वभाव में धैर्य, क्षमा, वाक्पटुता, पराक्रम,कीर्ति आदि गुण होते हैं। महायोगीश्वर भर्तृहरि ने जीवन में मूल्यों को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया है। उनका नीति शतक पूर्व में तो मानव समाज के लिए उपयोगी था ही आज के समाज व परिवेश के लिए भी यह उपयोगी है।आपने नीति

शतक के द्वारा भर्तृहरि ने नीति साहित्य को जो योगदान अपने नीति सूक्तियों के द्वारा प्रदान किया वह अनन्त काल तक स्मरणीय रहेगा।

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि भर्तृहरि का स्थिति काल 700 ई0 पूर्व लगभग का होगा, क्योंकि विभिन्न मतों के आधार पर ही हम उनके स्थिति काल के बारे में जान सके। जैसा कि पिछले पृष्ठों में आप जान चुके हैं कि भर्तृहरि का जीवन विविधताओं से भरा है। उन्होंने अपने काव्य में समय की ही भाँति अपने जीवन के विषय में निर्देश नहीं दिया, जनश्रुतियों के आधार पर ही आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए, और साथ ही साथ दन्तकथाओं के आधार पर उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं से परिचित हुए, इसके अतिरिक्त आपने भर्तृहरि की कृतियों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में विख्यात हुए। साथ ही साथ आप यह भी जान सके कि भर्तृहरि ने नीति साहित्य को क्या योगदान दिया। भर्तृहरि के नीति परक उपदेश समस्त मानव जाति के लिए है इनके नीति गत उपदेश अनन्त काल तक मानव जाति को प्रेरणा देते रहेंगे। इस इकाई में आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए।

बोध प्रश्न

5- निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए

(1) प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः श्लोक किस ग्रन्थ का है?

(क) नीति शतक (ग) अमरूक

(ख) वैराग्य शतक (घ) मेघदूत

(2) जाड्यं धियो हरति सिंचति में किसकी महत्ता बतलायी गई है?

(क) पण्डितों की (ग) सत्संगति की

(ख) मूर्खों की (घ) मित्रों की

(3) निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा---पदं न धीराः किस कवि की रचना है।

(क) कालिदास (ग) भर्तृहरि

(ख) शूद्रक (घ) माघ

(4) पापान्निवारयति योजयते हिताय---प्रविदन्ति सन्तः में किसका लक्षण बतलाया गया है।

(क) सच्चे मित्र का (ग) अज्ञानियों का

(ख) विद्वानों का (घ) पण्डितों का

6- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में कुछ ----सिद्धान्तों की शिक्षा दी है।

(ख) सत्संगति बुद्धि की----को मिटाती है।

(ग) ---- मानव जीवन का गुण ही नहीं अपितु अलंकार भी है।

(घ) इस----संसार में जन्म-मरण कहा चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

2.7 शब्दावली

अक्षुण्ण - कभी न मिटने वाले

अग्रज - बड़ा भाई

दायित्व - भार
धाराशायी - घायल
रनिवास - रानियों के रहने का स्थान
दुश्:चरित्रा - बुरा चरित्र
पूर्णरूपेण - पूर्ण रूप से
विद्वता - अत्यधिक विद्वान
कुकर्म - बुरे कर्म
निष्कासित - निकाल देना
उद्भूत - उत्पन्न होना

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- (क) (ख) (ग) (घ) (ङ)

2- (1) गः- विक्रमादित्य
(2) गः- पिंगला
(3) घः- ब्राह्मण
(4) खः- रानी

3- (क) तीन
(ख) वैराग्य शतक
(ग) सर्वोत्तम
(घ) उपदेशें

4- (क) (ख) (ग) (घ)

5- (1) कः- नीति शतक (2) खः- मूर्खों की (3) गः- भर्तृहरि
(4) घः- सच्चे मित्र के

6- (क) नैतिक (ख जड़ता (ग) परोपकार (घ) नश्वर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी - भर्तृहरि शतक रणधीर बुक सेल्स प्रकाशन182,एस0 एन0 नगर,हरिद्वार

(2) डॉ बाबूराम त्रिपाठी - श्री भर्तृहरि कृत- नीति शतकम् हालक्ष्मी प्रकाशशहीद भगतसिंह मार्गआगरा 282002

2.10 उपयोगी पुस्तकें

(1) डॉ0 चमनलाल गौतम- भर्तृहरि शतक-त्रयसंस्कृति संस्थान वेदनगरबरेली 01(उ0 प्र0)

(2) डॉ0 श्रीकृष्णपति त्रिपाठी- चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनके, 37/117 गोपालमंदिर लेनपो0 बा0 नं01129,वाराणसी 221001

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1- भर्तृहरि के स्थिति काल को समझाइये।

2- दन्तकथाओं के आधार पर भर्तृहरि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को समझाइये।

3- भर्तृहरि के नीतिसाहित्य में योगदान को लिखिए ।

इकाई.3 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 1 से 60 तक अनुवाद एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नीतिशतक का परिचय
3.3.1 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 01 से 20 तक अनुवाद एवं व्याख्या
3.3.2 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 21 से 40 तक अनुवाद एवं व्याख्या
3.3.3 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 41 से 60 तक अनुवाद एवं व्याख्या
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीति साहित्य से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि नीति साहित्य की विभिन्न विधाओं का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। इसमें मनुष्य के जीवन की प्रेरणादायी बातों का उल्लेख हुआ है और व्यावहारिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालने वाले नीतिकार भर्तृहरि ने नीति साहित्य को क्या योगदान दिया।

नीति परक श्लोकों के महत्त्व को जानते हुए इस इकाई में आप जानेंगे कि सामाजिक मनुष्य के जीवन में विविध व्यावहारिक कठिनाईयों से उबरने हेतु श्लोकों के माध्यम से कौन से उपाय निर्दिष्ट हैं, मनुष्य की स्वाभाविक विशेषताएं मूर्ख-विद्वान और सज्जन-दुर्जन में भेद स्थापित कर नीति के माध्यम से सहज उपदेश दिये गये हैं, नीतिशतक में सामाजिक जीवन में उपयोगी अनेक शिक्षाओं का वर्णन किया गया है जैसे सत्संगति के महत्त्व को बताया गया है स्वाभिमानी तथा मनस्वी पुरूषों का आचरण कैसा होता है। मान और शौर्य भी अर्थमूलक ही होते हैं अत: अर्थपद्धति का भी वर्णन इकाई के अन्तर्गत किया गया है। प्रस्तुत इकाई में धन के महत्त्व का वर्णन किया गया है तथा धन की तीन गतियों के बारे में बताया गया है। धन के बिना मनुष्य के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं। अत: धनोपार्जन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही इस इकाई में दान के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। राजा को प्रजा का पालक होना चाहिए , राजनीति वेश्या के समान अनेक रूपों वाली होती है तथा राजसेवा अत्यन्त कठिन होती है। दुर्जन व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि किसी भी स्थिति में दुर्जन का साथ नहीं करना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेगें कि कभी भी अनुचित पात्र से याचना नहीं करनी चाहिए। अधिक धन होने पर दान करना चाहिए दान के द्वारा निर्धन हो जाना शोभादायक है। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है, परिस्थिति ही मनुष्य को छोटा-बड़ा बनाती है। कभी भी दुर्जनों का साथ नहीं करना चाहिए। सदैव सद्गुणों का अर्जन कर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाना चाहिए। इस इकाई के अध्ययन के पश्चायत् आप दया, क्षमा, उदारता आदि गुणों के महत्त्व, सत्संगति से लाभ, क्षुद्र व्यक्ति और स्वाभिमानी व्यक्ति में क्या अन्तर है तथा धन का क्या महत्त्व है, उक्त नीतिपरक बातों को श्लोकों के माध्यम से समझाते हुए उनकी महत्ता को भी बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- भर्तृहरि रचित नीतिशतक के अनेक महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणापद सुभाषित श्लोकों का अध्ययन कर सकेंगे।
- बुद्धिमानों व मूखों के स्वभाव का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- विद्या एवं विद्वानों के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- अज्ञ, विशेषज्ञ और मूर्ख के स्वभाव से परिचित होंगे।
- क्षुद्र जीव के स्वभाव का वर्णन कर सकेंगे।
- सुसंस्कृत वाणी रूपी आभूषण के विषय में उल्लेख कर सकेंगे।
- विवेकहीन पुरूष के पतन के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- यह समझा सकेगें कि धन की अपेक्षा विद्या का क्या महत्त्व है।
- सत्संगति से मनुष्य को क्या लाभ होता है इसकी व्याख्या कर सकेगें

- स्वाभिमानी व्यक्ति के स्वाभाव का वर्णन कर सकेगें ।
- क्षुद्र और मनस्वी जनों के अन्तर को श्रेणी बद्ध कर सकेगें
- विश्लेषित कर सकेगें कि धन की महत्ता सर्वोपरि है।
- बता सकेगें कि धन का क्या महत्त्व है।
- राजनीति की विविधरूपता का वर्णन कर सकेगें।
- सबसे याचना नहीं करनी चाहिए इस बात को समझा सकेगें।
- दुर्जनों और सज्जकनों की मित्रता के स्वरूप को जान सकेगें तथा दोनों की मित्रता में क्या अन्तर होता है इसकी व्याख्या कर पायेंगें। दुर्जनों के स्वाभाविक गुणों की व्याख्या कर सकेगें।

3.3 नीतिशतक का परिचय

संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रंथ "शतकत्रयम्" के रचयिता भर्तृहरि हैं। नीतिशतकम् जिसमें नीति सम्बन्धी लगभग 100 छंद हैं। जो दार्शनिक और नैतिक हैं। नीतीशतक का समय निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि स्वयं भर्तृहरि का समय निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। नीतिशतकम् के एक सौ श्लोकों का समूह विषयानुसार दस श्लोकों का समूह है। कवि ने इन समूहों को इस प्रकार विभाजित किया है। नैतिकता की दस विधियां अज्ञान, ज्ञान, पुरुषार्थ, अर्थ, दुर्गुण, सूजन, परोपकार, साहस, भाग्य और कर्म के विषयों से जुड़ी हैं। संस्कृत में एकाक्षरीय, स्वतंत्र, आत्मनिहित रचना की परंपरा है जिसे 'मुक्तक' के नाम से जाना जाता है। रचनाबन्ध की दृष्टि से भर्तृहरि के ये सौ श्लोक मुक्तक हैं।

नीतिशतक का उद्देश्य सम्पादन होने के कारण यह वैचारिक प्रवृत्ति रखता है। अपनी आँखों से जीवन जीने के अनुभव से कवि का सूक्ष्म, व्यापक अवलोकन और इसके कारण उसके विचारों की दृढ़ता नीतिशतक में देखी जा सकती है। हालाँकि, भर्तृहरि का तरल, संवेदनशील काव्य मन और उनका समृद्ध भावनात्मक संसार भी इसमें प्रकट होता है।

यह सच है कि मनुष्य को अपने प्रयासों से और अकेले ही जीवन में अपना रास्ता बनाना पड़ता है, लेकिन जीवन जीते हुए मनुष्य अकेला नहीं है। वह आप्त, मित्र, नीच, धूर्त, शत्रु, अज्ञानी, ज्ञानी, धनवान, शक्तिशाली जैसे नाना प्रकार के लोगों से घिरा रहता है। सबके स्वभाव, विचार, व्यवहार अलग-अलग होते हैं। इन तीनों में अंतर। विचार, वाणी और आचरण की स्थिरता सज्जनों में ही होती है। मनुष्य को हमेशा दार्शनिक ज्ञान सीखने की जरूरत है। इसीलिए भर्तृहरि अज्ञानी-विद्वान, दुर्जन-सुजन, दैव-कर्म जैसी विपरीत स्थितियों में खड़े होकर उनके रूप, गुण, व्यवहार प्रतिमान पर मार्मिक प्रकाश डालते देखा जाता है।

जीवन का उन्नयन प्रयास के अधीन है। यह सच है कि भाग्य अपरिहार्य है लेकिन इसे मूर्ख बनाने का कोई मतलब नहीं है, प्रयासों में दृढ़ रहने, साहस के साथ जीवन जीने के महत्व को ध्यान में रखते हुए कवि ने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है और ऐसा करते हुए उन्होंने उदाहरण दिया है देवता जो अमृत पाने के लिए परिश्रम करते हैं, साथ ही आलोचना और स्तुति भी करते हैं, धन-दरिद्रता, जीवन-मरण पर ध्यान न देकर दृढ़निश्चयी पुरुष सत्यमार्ग से एक दौड़ के लिए भी नहीं झुकते। नीतिशतक में उपदेश का स्वरूप वह है जो मनुष्य को साहस देता है, सांसारिक कल्याण और पारलौकिक श्रेय का मार्ग दिखाता है। यद्यपि भर्तृहरि के जीवन में स्वार्थ, दुष्टता, मन की संकीर्णता आदि से मोहभंग हो गया है, वह जीवन से घृणा नहीं करते है, बल्कि अनुभवों से समझदार हो गया है और वह इस ज्ञान को मानव जाति को प्रस्तुत करने के लिए तरस रहे है। इसलिए नीतिशतक केवल शिक्षाप्रद कविता ही नहीं है। इसमें भर्तृहरि की आंतरिक पीड़ा प्रकट होती है। यह आम तौर पर सच है कि

विद्वान् ईर्ष्या से जलते हैं, शासक अहंकार से ग्रस्त होते हैं, और सामान्य लोग अज्ञानता से मरते हैं। इसके बावजूद भर्तृहरि की लालसा उन्हें चैन नहीं लेने देती। यह आंतरिक लालसा भर्तृहरि के काव्य की बड़ी विशेषता है। भर्तृहरि की मुख्य विशेषताएं विभिन्न आख्यानों की साफ-सुथरी संरचना, भाषा की सामयिक मुहावरेदार उदासी और कहीं अत्यधिक सादगी है।

संस्कृत भाषा की शक्ति एक बहुत बड़े विचार को एक छोटे से वाक्य या पद्य की एक प्रबंधनीय पंक्ति में व्यक्त करने के लिए, उन्होंने कीथ जैसे पश्चिमी आलोचकों को खो दिया है, लेकिन भर्तृहरि की असाधारण प्रतिभा, कुछ शब्दों में गहरे विचारों को व्यक्त करने की उनकी शक्ति, उनके अनुभव की गहराई और आंतरिक लालसा उनकी बनी हुई है। उनका काव्य एक विचारशील कवि की सुखद दृष्टि है। भर्तृहरि संभवतः यूरोप में प्रसिद्ध होने वाले पहले संस्कृत कवि थे। नीतिशतक के छंदों का डच और जर्मन में अनुवाद किया गया है। इस कविता के कई अनुवाद मराठी में भी हुए हैं।

नीति शतक के प्रत्येक श्लोक में कवि भर्तृहरि ने नैतिकता का उल्लेख किया है। कविता के माध्यम से भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों को नीति शतक में चित्रित किया है, इसमें नीति से सम्बन्धित श्लोकों का संग्रह है। यह व्यावहारिक उपदेशों का भंडार है, इसमें वर्णित पद्य तो इतने मार्मिक हैं कि वे तत्क्षण अध्येताओं के हृदय में उतरकर कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। विद्वत प्रशंसा, अर्थ पद्धति, सुजन पद्धति, दुर्जन पद्धति, परोपकार पद्धति आदि। वास्तव इस शतक में वीरता, विद्या,दया, उदारता, परोपकार, और साहस जैसे मानवीय मूल्यों को अपना विषय बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने पूरे मानव समाज के लिए नीतिगत बातों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

3.3.1 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 01 से 20 तक अनुवाद एवं व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मंगलाचरण के द्वारा अपने ईष्ट की वन्दना की है।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।

स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।।1।

अन्वयः- दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे नमः।

अनुवादः- जो दिशा काल आदि से अपरिमेय हैं ऐसे अविनाशी ज्ञान स्वरूप वाले केवल आत्मानुभूति ही जिनकी सत्ता का साक्षी है उस शान्तमूर्ति और तेजस (प्रकाश स्वरूप) परब्रह्म को नमस्कार है।

व्याख्याः- किसी भी काव्य को निर्विघ्नपूर्वक समाप्ति के लिए काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के द्वारा कवि अपने ईष्ट की वन्दना करता है. परम्परानुसार भर्तृहरि ने प्रस्तुत श्लोक में मंगलाचरण के माध्यम से परब्रह्म परमात्मा की वन्दना की है वह ब्रह्म देश काल आदि (दसों दिशाओं एवं भूत वर्तमान और भविष्य) से सदैव अपरिच्छिन्न है, अर्थात् किसी पदार्थ की सीमा में उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता है इसमें आत्मस्वरूप शान्त एवं तेजस्वरूप निराकार ब्रह्म की प्रार्थना है।

प्रस्तुत श्लोक में बतलाया गया है कि सहृदय जनों के अभाव के कारण कवि को सुन्दर सूक्तियां कहने का अवसर ही नहीं मिलता है-

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिता।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ।।2।।

अन्वयः- बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिता अन्ये च अबोधोपहताः सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

अनुवाद:- बुद्धिमान राग द्वेष से ग्रसित होते हैं ऐश्वर्यवान (धनी) घमण्ड से चूर होते हैं अन्य लोग अज्ञान से पीड़ित होते हैं, इस कारण ज्ञान युक्त बहूमूल्य सूक्तियां मन ही मन में रह जाती है उनको कोई समझ नहीं पाता।

व्याख्या :- कवि के नीति सम्बन्धी उपदेश कोई भी व्यक्ति सुनना नहीं चाहते संसार में जो लोग ज्ञानी हैं वे परस्पर राग द्वेष से ग्रसित हैं अर्थात् वे ईर्ष्यावश उनको सुनना नहीं चाहते हैं बुद्धिमान होते हुए भी वे सहृदय नहीं है अतः वे नीति सम्बन्धी सूक्तियों को भी सुनना नहीं चाहते हैं। राजा आदि ऐश्वर्यशाली भी सूक्तियों को सुनना नहीं चाहते क्योंकि वे घमंड से चूर हैं उन्हें प्रिय वचन भी अच्छे नहीं लगते इसके अतिरिक्त जो लोग हैं वे भी नीति सम्बन्धी वचनों को सुनना नहीं चाहते क्योंकि वे अज्ञानी अर्थात् अज्ञान से पीड़ित है। वे तो यह भी नहीं जानते कि किसी नीति सम्बन्धी उपदेश से क्या लाभ हो सकता है यही कारण है कि ज्ञान युक्त सूक्तियां मन ही मन में रह जाती हैं उसे बाहर निकलने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- अबोधोपहताश्चान्ये – अबोधउपहता च अन्ये जीर्णमङ्गे –
जीर्णम् अङ्गे यहाँ भी अनुष्टुप छन्द है।

इसमें मूर्ख जन के स्वरूप को बतलाया गया है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ।।3।।

अन्वय:- अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञ सुखतरम् आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं तं नरं ब्रह्मापि न रंजयति।

अनुवाद- अज्ञ को सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है विद्वान (ज्ञानी) को इशारे मात्र से समझाया जा सकता है अल्पज्ञान से जो स्वयं को श्रेष्ठ ज्ञानी समझ बैठा है उस व्यक्ति को ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते हैं।

व्याख्या:- इस संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं अज्ञ विद्वान और मूर्ख। इसमें अज्ञ अर्थात् बिल्कुल मूर्ख हैं जो कुछ भी नहीं जानते , विद्वान अर्थात् जो विशिष्ट ज्ञान रखते हैं, तथा मूर्ख वे हैं जो थोड़े से ज्ञान से अपने को सर्वज्ञ मानते हैं। इसमें से अज्ञ व्यक्ति को बड़ी आसानी से नीति सूक्तियॉ को समझाया जा सकता है, विद्वान को और भी अधिक आसानी से समझाया जा सकता है। परन्तु जो न तो समझदार है और न ना समझ ऐसे मनुष्य को परमपिता ब्रह्मा भी समझा नहीं सकते मनुष्य की तो क्या कहें।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुखमाराध्यः – सुखम् आराध्यः, ब्रह्मापि – ब्रह्म अपि , सुखतरमाराध्यते – सुखतरम् आराध्यते इस श्लोक में आर्या नामक छन्द है।

प्रस्तुत श्लोक में कवि मूर्ख व्यक्ति के चित्त की दुराराध्यता का वर्णन करता हुआ कहता है-

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्र दंष्ट्रान्तरात्,
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमाला कुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ।।4।।

अन्वय:- मकर वक्त्र दंष्ट्र अन्तरात् मणिं प्रसह्य उद्धरेत्, प्रचलत् उर्मि माला कुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत। कोपितं भुजङ्गमपि शिरसि पुष्पवद् धारयेत्, प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तम् न आराधयेत्।

अनुवाद:- यह सम्भव है कि भले ही मनुष्य मगरमच्छ के मुँह के दाढ़ों के बीच से मणि को साहस पूर्वक निकाल ले, तीव्र लहरों से युक्त समुद्र को पार कर ले, क्रुद्ध सर्पराज को भी सिर पर पुष्प के समान धारण कर ले, किन्तु बुरी संगति में फँसे दुराग्रही मूर्ख व्यक्ति के मन को सद्गुणों की ओर लाना असम्भव है।

व्याख्या:- मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से साहस करके मणि निकाल लाना मनुष्य के लिए अति दुष्कर है, कहने का तात्पर्य है कि असम्भव है यदि कोई साहस करके ऐसा करे तो उसे सफलता भी मिल सकती है। चंचल तीव्र लहरों से युक्त समुद्र को अपनी भुजाओं से तैरकर पार करना असम्भव कार्य है यदि कोई साहस करे तो यह कार्य भी कर सकता है। इसी प्रकार क्रोधित भयानक सर्पराज को फूलों की माला की तरह सिर पर

धारण कर सकता यद्यपि यह कार्य अति दुष्कर है। यदि कोई इतना साहसी हो जो शिव के समान सिर पर धारण कर सकता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि मनुष्य चाहे तो साहस करके इन कामों में समर्थ हो जाय किन्तु दुराग्रही मूर्ख के मन को वश में करना असम्भव है। पर मूर्ख का मन जिस वस्तु पर जम जाता है उससे उसको हटाना सम्भव नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी :-समुद्रमपि = समुद्रम् अपि भुजङ्गमअपि = भुजङ्गम् अपिमूर्खजनचित्तमाराधयेत्= मूर्खजनचित्तम् आराध्येत्। प्रस्तुत श्लोक में पृथ्वीनामक छन्द तथा असम्बन्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

मनुष्य चाहे तो अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर सकता है। पर दुराग्रही मूर्ख को वश में करना अत्यन्त कठिन है। इसी का वर्णन किया है-

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यट´छशविषाणमासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।5।।

अन्वयः- यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत् च पिपासार्दितः मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणम् असादयेत, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

अनुवादः- यदि प्रयत्न किया जाय तो बालू को पेरने से तेल प्राप्त हो जाए और प्यास से व्याकुल मृगतृष्णा से भी पानी पी ले, घूमते-फिरते कभी खरगोश के सींग भी प्राप्त हो जाए, किन्तु दुराग्रही मूर्ख के चित्त को वश में करना असम्भव है।

व्याख्याः-मनुष्य के अत्यधिक प्रयत्न करने पर बालू से तेल निकालना, मृगतृष्णा या मरूस्थल में प्यास बुझाना, खरगोश के सींग प्राप्त करना असम्भव कार्य हो सकते हैं। अर्थात यदि प्रयत्न से इन कामों में उसे सफलता मिल जाए किन्तु मूर्खों के चित्त को सही मार्ग पर लाना कठिन है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस संसार में प्रयत्न करने से असम्भव कार्य भी कभी-कभी संभव हो सकता है, किन्तु मूर्ख हठी को मनाना सर्वथा असम्भव है, जिस वस्तु पर डट जाता है उससे वह कभी हटता नहीं।

व्याकरणिक टिप्पणीः- तैलमपि = तैलम् अपि , पिबेच्च = पिबेत् च , कदाचिदपि= कदाचित् अपि। यहाँ भी पृथ्वी नामक छन्द व असम्बन्ध में सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति अलंकार है।

दुर्जनों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाला व्यक्ति भी अविवेकी ही होता है इसी का वर्णन कवि ने किया है-

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भयते,
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
नेतुं वां´छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ।।6।।

अन्वयः- असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृभ्यते, शिरीष कुसुम प्रान्तेन वज्रमणिं रोद्धुं सन्नह्यते, क्षाराम्बुधे मधुबिन्दुना माधुर्यं रचयितुम् ईहते यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वा´छति।

अनुवादः- वह पुरूष कोमल कमल नाल के रेशों से हाथी/गजराज को बाँधने का प्रयत्न करता है शिरीष फूल की कोमल पंखुड़ी से हीरे को बेधने का प्रयत्न करता है खारे समुद्र में शहद की एक बूँद से मिठास घोलने की इच्छा करता है जो दुष्टों को अपने अमृतमय सूक्तियों से सन्मार्ग पर लाने की इच्छा करता है।

व्याख्याः- जो व्यक्ति अत्यधिक कोमल कमल नाल के तन्तुओं से हाथी जैसे विशाल जानवर को बाँधना चाहता है जो कि रस्सियों से भी बांधा नहीं जा सकता, शिरीष के सुकोमल पंखुड़ी से अत्यधिक कठोर हीरे को छेदना चाहता है जो बड़े-बड़े घनों की चोट से भी तोड़ा नहीं जा सकता एवं जो विशाल खारे समुद्र एकमात्र

शहद की बूँद से मिठास घोलने की इच्छा करता है जो कि अतिमधुर पदार्थों से भी मीठा नहीं बनाया जा सकता है। वह व्यक्ति अपनी अमृत भरी सूक्तियों से मूर्ख को सही मार्ग पर लाने की इच्छा करता है, फिर भी जो ऐसा प्रयास करता है वह मूढ़जन से भी अतिमूढ़ है। अतः ऐसा प्रयास करने से कोई लाभ नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- समुज्जृम्भते= सम् उत् जृम्भते , क्षीराम्बुधेरीहते= क्षीर: अम्बुधेःईहते प्रस्तुत श्लोक में निदर्शना अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूर्खों की अज्ञानता को छिपाने का केवल एकमात्र उपाय बताते हुए गहा गया है-

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।7।।

अन्वय:- विधाता अज्ञतायाः छादनम् एकान्त हितं विनिर्मितं स्वायत्तं विशेषतः सर्वविदां समाजे अपण्डितानां मौनं विभूषणम्।

अनुवादः- विधाता (ब्रह्मा) ने अज्ञानता को आच्छादित करने का केवल एकमात्र गोपनीय कल्याणकारी उपाय बनाया है मौन रहना। विशेष रूप से सर्वज्ञ विद्वानों की सभा में मूर्खों के लिए मौन रहना उनका आभूषण बन जाता है।

व्याख्या:- मौन रहना एक महान गुण है, मूर्खता अर्थात् अज्ञानता को छिपाने का एकमात्र उपाय चुप रहना है जिस कार्य के लिए किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती जो सदा हितकारी तथा कल्याणकारी साधन है बुद्धिमानों की सभा में मूर्खों के लिए मौन रहना उनकी शोभा बन जाती है अर्थात् समस्त जनसमूह समझते हैं कि यह प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण चुप है। जब तक मनुष्य बोलता नहीं तब तक उसकी मूर्खता छिपी रहती है जिस प्रकार कोयल और कौए की पहचान हम उनके रंग से नहीं कर पाते हैं लेकिन बोलते ही भेद खुल जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मौनावलम्बन से मूर्खों को ही लाभ होता है।

व्याकरणिकटिप्पणी:-स्वायत्तमेकान्तगुणं = स्वायत्तम् एकान्तहितं आच्छादनमज्ञतायाः= एकान्तहितं छादनम् अज्ञतायाः। इस पद्य में उपजाति नामक छन्द है।

किसी अनुभवी मनुष्य के द्वारा दूसरों के प्रति स्वानुभाव प्रकट करने का निर्देश देते हुए कवि कहता है-

यदाकिंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इस मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचिद्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।8।।

अन्वयः- यदा अहं किञ्चित् ज्ञः तदा द्विप इव मदान्धः समभवम्, तदा मम मनः अवलिप्तम् अभवत्, सर्वज्ञः अस्मि यदा बुधजन सकाशाद् किञ्चित् -किञ्चित् अवगतम् तदा मूर्खः अस्मि इति मे मदः ज्वरः इव व्यपगतः।

अनुवादः- जब मैं कुछ जानकार (समझदार) हुआ तब मैं हाथी की तरह मद (घमंड) में चूर रहने लगा तब मेरा मन भ्रमित हो गया कि मैं सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हूँ जब विद्वानों की संगति से कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ तब मैं मूर्ख हूँ ऐसा जनकर मेरा मद ज्वर की भाँति उतर गया।

व्याख्याः- मनुष्य जब थोड़ा कुछ जान लेता है तब मद मस्त हाथी की तरह मदान्ध हो जाता है ज्ञान से शून्य होकर अपने को सर्वज्ञ मान बैठता है। किन्तु विद्वानों के सम्पर्क में आने से थोड़ा कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है तब वह अपने को अत्यधिक मूर्ख समझने लगता है। अल्पज्ञ होने से उत्पन्न हुआ उसका वह घमण्ड उसी प्रकार दूर हो जाता है जिस प्रकार ज्वर से पीड़ित व्यक्ति का ज्वर उतर जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि

मनुष्य जब तक विद्वानों के सम्पर्क में नहीं आता उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। कुएँ का मेढक जब तक कुएँ के भीतर रहता है तो वह उसे ही संसार समझता है जब तक कि वह कुएँ के बाहर आकर एक विशाल तालाब में पहुँच नहीं जाता और इस अपार संसार को स्वयं की दृष्टि से नहीं देख लेता है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि अल्पज्ञता से मद उत्पन्न होता है और विद्वतजनों के संसर्ग से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- बुधजनसकाशादवगतम्=बुधजनसकाशाद् अवगतम् । सर्वज्ञोऽस्मीत्य = सर्वज्ञः अस्मीत्य। मूर्खोऽस्मीति = मूर्खःअस्मि । प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी नामक छन्द हैं। स्वार्थपरायण प्राणी जिस तरह वस्तु को स्वीकार कर लेते हैं, चाहे वह कितनी

भी तुच्छ क्यों न हो, लेकिन वह उसकी तुच्छता पर ध्यान नहीं देते इसी के विषय में बताते हुए कवि कहता है-

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितं
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते,
न हि गणपति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।।9।।

अन्वय:- कृमिकुलचितम् विगन्धि जुगुप्सितं निरामिषम् नरास्थि लालाक्लिन्नम् निरुपमरसप्रीत्या खादन् श्वा पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते, क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् न हि गणपति।

अनुवाद:- कीड़ों से भरी हुई, दुर्गन्ध युक्त, घृणित् माँस से रहित, मनुष्य की हड्डी के लिए लार टपकाता हुआ, अद्भुत प्रकार के चटखारे लेकर चबाता हुआ कुत्ता अपने बगल में खड़े इन्द्र (देवाधिपति) को देखकर भी सशंकित नहीं होता, क्योंकि उत्श्रृंखल (नीच) स्वभाव वाले जीव प्रिय वस्तु की व्यर्थता पर ध्यान नहीं देते।

व्याख्या:- जब कीड़ों से भरी हुई, दुर्गन्ध युक्त घृणित, मांस से रहित मनुष्य की हड्डी के लिए लार टपकाता हुआ कुत्ता आनन्दपूर्वक उसे चबाता है अर्थात् उसके स्वाद का अनुभव करता है। उस समय यदि देवराज इन्द्र भी उसके सम्मुख खड़े हो जाय तो भी वह नीच (कुत्ता) उस घृणित हड्डी चबाने के आनन्द को नहीं छोड़ता और न लज्जा का अनुभव करता है।कहने का तात्पर्य यह है कि नीच प्राणी किसी भी तुच्छ व घृणित वस्तु को अपना लेता है। उसी में वह परम आनन्द का अनुभव करता है, उसे किसी की परवाह नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुरपतिमपि = सुरपतिम् अपि। प्रस्तुत श्लोक में हरिणी नामक छन्द है।

अविवेकी पुरूष के बारे में बताते हुए कवि कहता है-

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।10।।

अन्वय:- इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं सिरः पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम् उत्तुङ्गात् महीध्रात अवनिम् च अवनेः अपि जलधिम् अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति।

अनुवाद:- यह गंगा स्वर्ग से शिव के मस्तक पर , शिव के मस्तक से पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से
पृथ्वी और पृथ्वी से भी समुद्र में जा गिरी। इसी प्रकार वह गंगा नीचे-नीचे ही गिरती गई। ठीक
उसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट पुरूष का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

व्याख्या:- पतित पावनी गंगा अर्थात् भागीरथी विवेकहीन होने के कारण लक्ष्मीपति विष्णु के चरणों में विलुप्त होकर शिव के मस्तक पर गिरती है। शिव के मस्तक से हिमालय पर्वत पर और फिर ऊँचे पर्वत (हिमालय) से इस पृथ्वी पर तत्पश्चात् यह गंगा समुद्र में पहुँचकर अस्तित्व हो गयी अर्थात् कहने का तात्पर्य यह

है कि गंगा का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। इसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट अर्थात् विवेक से रहित पुरूष सैकड़ों तरह से गिरता रहता है। इसलिए जब कोई एक बार गिरता है तो वह निरन्तर गिरता ही जाता है। अतः मनुष्य को विवेकशील होना चाहिए अन्यथा वह गंगा की तरह ही अस्तित्व हीन हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:-अधोऽधो = अधःअधः । गङ्गेयं = गङ्गा इयं । स्वर्गात् में पंचमी विभक्ति है (अलग होने के अर्थ में)। इस श्लोक में शिखरिणी नामक छन्द है ।

बोध प्रश्नः1-

(1) नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने **(×)** चिह्न लगाइये:-

क . दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये' श्लोक में कवि ने ब्रह्मा की वन्दना की है । ( )

ख . मूर्ख व्यक्ति को आसानी से समझाया जा सकता है । ( )

ग .विवेक से भ्रष्ट पुरूष का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है । ( )

घ . 'यदा किंचि ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं' नीति शतकम् का श्लोक नहीं है । ( )

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.नीति शतक किस कवि की रचना है-

(क) अमरूक (ग) कालिदास

(ख) भर्तृहरि (घ) माघ

2.'लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्' श्लोक में किसका लक्षण बताया गया है-

(क) विद्वान (ग) मूर्ख

(ख) मित्र (घ) पण्डित

3.'शिरः शार्व स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं' किस पुस्तक की पंक्ति है-

(क) नीतिशतक (ग) वैराग्यशतक

(ख) श्रृङ्गारशतक (घ) मेघदूत

4. नीतिशतक' में पद्यों की संख्या कितनी है?

(1) 100 (3) 105

(2) 108 (4) 112

अज्ञानता को दूर करने के लिए कोई भी औषधि प्राप्त नहीं है इसी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ।।11।।

अन्वयः- हुतभुक् जलेन, सूर्य आतपः छत्रेण,समदः नागेन्द्रः निशित अङ्कुशेन, गो गर्दभौ दण्डेन,व्याधिर्भेषज संग्रहैः च विषम् विविधैः मन्त्रप्रयोगः वारयितुं शक्यः शास्त्रविहितं सर्वस्यौषधमस्ति मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।

अनुवादः- आग को जल से, सूर्य की धूप को छाते से, उन्मत हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से, गौ एवं गधे को डण्डे से रोग को अनेक प्रकार की औषधियों के संग्रह से तथा विष को विविध प्रकार के मन्त्र प्रयोगों से रोका जा सकता है। शास्त्रों में सभी प्रकार की औषधि का निवारण है किन्तु मूर्ख मनुष्य के लिए कोई औषधि नहीं है।

व्याख्या:- अपने को अत्यधिक बुद्धिमान समझने वाले मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने के लिए स्वयं परमब्रह्म परमात्मा भी असमर्थ है। कहने का तात्पर्य यह है कि भयानक रोगों को औषधि के द्वारा दूर किया जा सकता है। सर्प आदि के विषय को उतारने के लिए अनेक प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है। पर मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं है। सब कार्य करने में मनुष्य समर्थ है। किन्तु मूर्ख को को समझाने में असमर्थ है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- नागेन्द्रो = नाग इन्द्रो। निशिताङ्कुशेन = निशित् अङ्कुशेन। सर्वस्यौषधमस्ति = सर्वस्य औषधम् अस्ति। नास्त्यौषधम् = नास्ति औषधम्। प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द है। सूर्याश्वैर्यदि न: सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्।

साहित्य, संगीत, कला से रहित मनुष्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

साहित्यसङ्गीतकला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।12।।

अन्वय:- साहित्यसंङ्गीत कलाविहीनः पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः तृणं न खादन् अपि जीवमान तद् अयं पशूनां परमं भागधेयं।

अनुवाद:- साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य बिना सींग और पूँछ के साक्षात् पशु हैं। घास न खाते हुए भी वह जीवित रहता है यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

व्याख्या:- जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कला को नहीं जानता उसकी गणना पशुओं में की जाती है। पशु तो घास खाकर जीवित रहता है पर ऐसा मनुष्य तो घास न खाकर जीवित रहता है इसमें तो पशुओं का बड़ा सौभाग्य है। यदि वे घास खाते तो जो वास्तविक में पशुओं का जीवन कठिन हो जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के रूप में जो पशु हैं उनका घास न खाना, प्राकृतिक पशुओं के लिए परम सौभाग्य है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- साक्षात्पशुः = साक्षात् पशुः। खादन्नपि = खादन् अपि। यहाँ उपजाति छन्द है।

मूर्ख मनुष्यों को पशु तुल्य बताते हुए कवि कहता है-

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।13।।

अन्वय:- येषां न विद्या, न तपो, न दानं, ज्ञानं न, शील न गुणो न धर्मः, ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।

अनुवाद:- जिन मनुष्यों के पास न विद्या, न तप, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म ही है, वे मृत्युलोक पृथ्वी पर भार बनकर मनुष्य रूप में पशु की तरह विचरण करते हैं।

व्याख्या:- मनुष्य जैसा अमूल्य जीवन पाकर जिसने न विद्या का अध्ययन किया, न तप किया, न कभी किसी सत्पात्र को ही दिया, न ज्ञान रूपी संसार में आकर ज्ञान का ही उपार्जन किया, न कभी सदाचार का पालन किया, न अच्छे गुण ही प्राप्त किया और न अपने धर्म का ही पालन किया। कहने का तात्पर्य यह है कि वे मनुष्यों की आकृति में पशु के तुल्य हैं, उनका जीवन व्यर्थ है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- मृगाश्चरन्ति = मृगाः चरन्ति। भुवि में सप्तमी विभक्ति है। भूता में भू धातु से क्त प्रत्यय स्त्रीलिंग है। यहाँ पर भी उपजाति नामक छन्द है। मूर्ख लोगों का संसर्ग त्याग देना चाहिए इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।14।।

अन्वयः- पर्वतदुर्गेषु वनचरैः सह भ्रान्तं वरं मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेषु अपि न।

अनुवादः- पर्वत की गुफाओं में वनचरों (जंगली आदमियों) के साथ विचरण करना श्रेष्ठ है। किन्तु मूर्ख लोगों का सम्पर्क देवराज इन्द्र के भवन में भी अच्छा नहीं।

व्याख्याः- मूर्खों का साथ कभी भी हितकारी नहीं होता, क्योंकि उनसे सदैव अनिष्ट की ही आशंका रहती है। कहने का तात्पर्य यह है आज्ञानी का संसर्ग किसी को अच्छा नहीं लगता। बीहड़ पहाड़ों पर जंगली आदमियों के साथ विचरण करने में जो आनन्द मिलता है वह आनन्द तो देवताओं के राजा इन्द्र के महल में मूर्ख के साथ रहने पर नहीं मिलता क्योंकि मूर्ख अज्ञानता पूर्ण बातें ही करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुरेन्द्रभवनेष्वपि = सुरेन्द्रभवनेषु अपि। यहॉ सह के योग में तृतीया विभक्ति है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

विद्वत् जनों के विषय में बताते हुए कवि कहता है-

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा,
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोनिर्धनाः।
ताज्जाड्यं वसुधाधिपस्य सुधियस्त्वर्थं विनापीश्वराः,
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः।।15।।

अन्वयः- शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः,विख्याताः कवयः यस्य प्रभो विषये निर्धनाः वसन्ति,तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम्, सुधियः तु अर्थं विना अपि ईश्वराः कुपरीक्षकाः हि कुत्स्याः स्युः यैः मणयः अर्घतः पातिताः।

अनुवादः- शास्त्रों के ज्ञान से अलंकृत सुन्दर वाणी वाले और शिष्यों को वेद शास्त्रों के उपदेश देने वाले प्रसिद्ध कवि जिस राजा के राज्य में निर्धनता में वास करते हैं यह उस राजा की मूर्खता ही है, किन्तु विद्वान तो धन के बिना भी श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि निन्दा के योग्य तो वे कुपरीक्षक होते हैं जो मणियों के मूल्य का अवमूलन करते हैं रत्न नहीं।

व्याख्याः- जिनको शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है जो अलंकृत सुन्दर वाणी बोलने वाले हैं और अपने शिष्यों, जिज्ञासुओं को सदुपदेश देते हैं इसलिए वे सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। ऐसे सुप्रसिद्ध विद्वान जिस राजा के राज्य में निर्धन होकर रहते हैं इससे उस राजा की अयोग्या ही पता चलती है कि ऐसे विद्वानों का वहाँ आदर सत्कार नहीं है, विद्वान (ज्ञानी) तो धन के बिना भी स्वामी होते हैं क्योंकि उनके पास तो विद्या रूपी धन है और वे सर्वत्र ही पूजे जाते हैं, निन्दा तो राजा की होती है विद्वान की नहीं जैसे रत्नों का मूल्य गिराने वाला रत्नपारखी ही निन्दा का पात्र होता है, रत्न नहीं। इसलिए राजा को विद्वानों का आदर करना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी:- शिष्यप्रदेयागमाः = शिष्य प्रदेय आगमाः। प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। राजा को चाहिए कि वह ईर्ष्या से रहित होकर विद्वतजनों का आदर करे इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-,
ऽप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः! कस्तैः सह स्पर्धते ।।16।।

अन्वयः- येषां विद्याख्यमन्तर्धनम्, हर्तुर्याति न गोचरं, किमपि यत् सर्वदा शं पुष्णाति हि अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानम् अनिशं परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति तान्प्रति नृपाः मानुमुज्झत कः तैः सहस्पर्धते।

अनुवाद:- जिनके पास विद्यारूपी गुप्त धन है, जिसे चोर देख नहीं सकता और सदैव कल्याण को बढ़ाता है, शिष्यों या जिज्ञासुओं को देते रहने पर भी अधिकाधिक बढ़ता रहता है, महाप्रलय होने पर भी जिसका नाश नहीं होता है। हे राजा उन विद्वानों के प्रति अभिमान करना छोड़ दो कौन उनके साथ स्पर्धा कर सकता है। अर्थात् केाई नहीं।

व्याख्या:- जो राजा अपने धन ऐश्वर्य के कारण इन विद्वानों के सम्मुख घमंड करते हैं उनका आदर सत्कार नहीं करते, इन विद्वानों के पास तो विद्या रूपी ऐसा गुप्त धन है जिसे चोर देख नहीं सकता और जो सदा कल्याण होता है। यह विद्यारूपी धन विद्यार्थियों को उन्नति की ओर प्रेरित करती है। अतः इनके प्रति घमंड न करके आदर सम्मान करना चाहिए। क्योंकि इनसे कोई भी स्पर्धा नहीं कर सकता है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- किमपि = किम् अपि।यत्सर्वदा = त्सर्वदा। ह्यर्थिभ्यः = हि अर्थिभ्यः। कल्पान्तेष्वपि = कल्पान्तेषु अपि। विद्याख्यमन्तर्धनम् = विद्या अख्यम् अन्तः धनम्। मानमुज्झत = मान उज्झत। तान्प्रति = तान्प्रति। प्रस्तुत श्लोक में भी शार्दूलविक्रीडितं नामक छन्द है।

कवि राजा को उद्बोधित करते हुए कहता है कि तुच्छ लक्ष्मी भी विद्वानों को रोक नहीं सकती अतः उनका अपमान मत कर इसी का वर्णन किया गया है-

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यागण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।17।।

अन्वय:- अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् या अवसंस्थाः तृणम् इव लघु लक्ष्मीः तान् न एव संरुणाद्धि अभिनवमदलेखाश्याम गण्डस्थलानां वारणानां बिस तन्तुः वारणं न भवति।

अनुवाद:- हे राजन! आध्यात्म-तत्त्व को जानने वाले विद्वानों का अपमान मत करो, क्योंकि
तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी उन्हें उसी प्रकार बांध नहीं सकती जिस प्रकार नवीन मदलेखा से
युक्त श्याम गण्डस्थल वाले हाथियों को कमल नाल के तन्तुओं से बाँधना सम्भव नहीं होता है।

व्याख्या:- जिस प्रकार से कमलनाल के रेशों से मदमस्त हाथी को बाँधा नहीं जा सकता उसी प्रकार तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी भी विद्वानों को अपनी वशीभूत नहीं कर सकती। अतः हे राजा तत्त्वज्ञानियों का अपमान मत करो। क्योंकि वे धन वैभव को तुच्छ समझते हैं संसार का कोई भी वैभव कदापि उन्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता।

व्याकरणिक टिप्पणी:- पण्डितान्मावमंस्था = पण्डितान् मा अवमंस्था। तृणमिव = तृणम् इव
प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त अलंकार व मालिनी नामक छन्द है।

विद्वानों की विद्वता को विधाता भी अपहृत नहीं कर सकता इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

अम्भोजिनीवनविहारविलास मेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ।।18।।

अन्वय:- कुपितः विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवनविहारविलासम् एव नितरां हन्ति, तु असौ अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध।

अनुवादः- क्रुद्ध हुआ विधाता हंस का केवल कमलिनी के वन में विचरण करने के सुख को नष्ट कर सकता है। किन्तु दूध और पानी को पृथक करने वाला चातुर्यपूर्ण कला को मिटा नहीं सकता।

व्याख्याः- यदि किसी कारणवश ब्रह्मा हंस से क्रोधित हो जाय वह अधिक से अधिक कमलिनी वन में क्रीड़ा करने से रोक सकता है। इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता परन्तु हंस में जो जल और दूध को अलग करने की चातुर्यपूर्ण कला है उसका अपहरण कदापि समर्थ नहीं है, हंस मिश्रित दूध और जल में से दूध पी लेता है और जल छोड़ देता है।

व्याकरणिक टिप्पणी:-विलासमेव = विलासम् एव। त्वस्य = तु अस्य। प्रस्तुत श्लोक में प्रशंसालंकार व बसन्ततिलका नामक छन्द है।

विद्वानों का आभूषण विद्या ही है इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरूषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्ककरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।19।।

अन्वयः- पुरूषं न केयूराणि भूषयन्ति, न चन्द्रोजज्ज्वलाः हाराः, न स्नानं न विलेपनम्, न कुसुमं न अलङ्कृता मूर्द्धजा, पुरुषम् एका समलङ्करोति या संस्कृता धार्यते, भूषणानि खलु सततं क्षीयन्ते वाग्भूषणम् भूषणम्।

अनुवादः- पुरुष को न बाजूबंद सजाते हैं न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कांति वाले हार, न स्नान न चन्दन आदि का लेप न सुगन्धित फूल और न ही सजे सँवरे केश 'पुरुष की शोभा को नहीं' बढ़ाते हैं। पुरूष को एकमात्र वाणी ही अलंकृत करती है जो व्याकरणादि (सुसंस्कृत) रूप से धारण की गई है। अन्य आभूषण तो निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी रूपी आभूषण कभी नष्ट नहीं होता।

व्याख्या:- इस संसार सब आभूषण नाशवान् है धन, ऐश्वर्य के समाप्त होते ही ये सभी नष्ट हो जाते हैं कहने का तात्पर्य यह है सुसंस्कृत वाणी रूपी आभूषण सदा ही श्रेष्ठ आभूषण हैं क्योंकि वे कभी नष्ट नहीं होता जो सदैव बना रहता है जैसे-जैसे हम इसका उपयोग करेंगे वैसे-वैसे ये बढ़ता ही रहता है घटता नहीं है। लौकिक स्वर्ण आदि से बने आभूषण तो धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:-चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्र उज्ज्वलाः। नालङ्कृता = न अलङ्कृता। वाग्भूषणं = वाक् भूषणं। प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

विद्या के गुणों की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः।।20।।

अन्वयः- विद्या नाम नरस्य रूपम् अधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरूः विदेशगमने विद्या बन्धुजनः विद्या परां देवता विद्या राजसु पूज्यते न हि धनम्, विद्या विहीनः पशुः।

अनुवादः- विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ सौन्दर्य और अत्यन्त गुप्तधन है। विद्या भोगपदार्थों को देने वाली है तथा यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है, विदेश में विद्या बन्धु की भाँति होती है विद्या उत्कृष्ट देवता है, विद्या राजाओं के द्वारा पूजी जाती है धन नहीं। अतः विद्या से विहीन मनुष्य पशु के तुल्य ही है।

व्याख्या:- विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है अर्थात् विद्या से ही मनुष्य की शोभा होती है, मनुष्य के हृदय में विद्या रूपी गुप्त धन सदा रहने वाला है विद्या गुरूजनों से भी सर्वोच्च है क्योंकि गुरूजन भी तो विद्या के सहारे ही अपने उपदेशों को लोगों को देते हैं। यश आदि भी विद्या से ही प्राप्त होता है केवल इतना ही नहीं विदेश में विद्या से सम्बन्धी की भाँति साथ देती है अर्थात् आदर प्राप्त होता है। राजसभाओं में विद्या का ही आदर होता है धन का नहीं कहने का तात्पर्य

यह है कि विद्या से रहित मनुष्य पशु ही है।

व्याकरणिक टिप्पणी:-रूपमधिकं = रूपम् अधिकम्। प्रस्तुत श्लोक में निरवयव माला रूपम अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

बोध प्रश्न:2-

(3). नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही है और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में तथा गलत वाक्यों के सामने गलत चिह्न लगाइये-

कः- मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने की औषधि है। ( )

खः- साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन मनुष्य पशु ही है। ( )

गः- 'हर्तुर्याति न गोचरं" श्लोक में विद्या रूपी गुप्त धन के विषय में बताया गया है ( )

घः- मूर्ख का सम्पर्क इन्द्र के भवन में भी अच्छा नहीं है ( )

(4) निम्ननलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. अग्नि को किससे रोका जा सकता है-

(क) वायु (ग) जल

(ख) आकाश (घ) पाताल

2. 'येषां न विद्या न तपो न दानं" श्लोक में किसकी महत्ता बतलायी गयी है?

(क) मनुष्य (ग) विद्या

(ख) पशु (घ) धन

3. 'विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं' सूक्ति किस पुस्तक से ली गई है-

(क) रघुवंश (ग) अमरुकशतक

(ख) मेघदूत (घ) नीतिशतक

4. 'अम्भोजिनीवन विहार विलासमेव' श्लोक में किसके विषय में बताया गया है-

(क) मूर्खता (ग) विद्वता

(ख) वीरता (घ) दरिद्रता

3.3.2 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 21 से 40 तक अनुवाद एवं व्याख्या

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह जान सकेगें कि धन की अपेक्षा विद्या की क्या प्रधानता है

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम् किमरिभि: क्रोधोअस्तिचेद् देहिनां

ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदिसुहृद्दिव्यौषधै: किं फलम्।

किं सर्पैर्यदि दुर्जना: किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि

व्रीडाचेत्किमु भूषणै: सुकवितायद्यस्ति राज्येन किम्॥ 21॥

अन्वय— देहिना क्षान्ति: चेत् कवचेन किम् क्रोध: चेद् अस्ति अरिभि: किम्ज्ञाति: चेत् अनलेन किम् यदि सुहृद् दिव्यौषधे: किम् फलं यदि दुर्जना: सर्पै: किम् यदि अनवद्या विद्या धनै: किमु व्रीडा चेत् भूषणै: किमु यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्।

अनुवाद — मनुष्यों में यदि क्षमा है तो कवच से क्या (प्रयोजन) यदि ,क्रोध है तो शत्रुओं से क्या प्रयोजन यदि कुटुम्बी लोग है तो अग्नि से क्या प्रयोजन यदि दुष्ट लोग है तो सांपो से क्या प्रयोजन यदि निर्दोष अर्थात् प्रशंसनीय विद्या है तो धन से क्या प्रयोजन यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या प्रयोजन यदि सुन्दर कविता करने की शक्ति है तो राज्य से क्या प्रयोजन।

व्याख्या — भावार्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति के पास क्षमा रूपी श्रेष्ठ गुण है तो उसे अपनी रक्षा की चिन्ता ही नहीं करना चाहिए और यदि वह क्रोधी है तो उसे शत्रु का अभाव नहीं क्योकि क्रोध से बढ कर कोई शत्रु नहीं होता। दायाद सभी सम्पत्ति के विनाशक होते हैं यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसे कुटुम्बी जन है तो उसे सम्पत्ति विनाश के लिए अग्नि की आवश्यकता न होगी। और यदि मनुष्य के पास अच्छा मित्र है तो उसे औषधियों की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि सन्मित्र सभी विपत्तियों को दूर करने वाला होता है। दुष्ट व्यक्ति सर्पों से अधिक घातक होते हैं अत: जहां दुष्ट व्यक्ति हो वहां सर्पों की आवश्यकता नहीं होती है। विद्या ही सबसे बडा धन है यदि किसी व्यक्ति के पास निर्दोष विद्या हे तो उसे अन्य धन की कोई आवश्यकता नहीं , इसी प्रकार लज्जा रूपी आभूषण के रहते अन्यभूषणों की आवश्यकता नहीं रहती।

व्याकरणिक टिप्पणी — सुहृत् — शोभनं हृदयं यस्य स: (बहुब्रीहि) प्रकृति प्रत्यय — क्षान्ति: —क्षम् +क्तिन (भावे)। शार्दूलविक्रीडत छन्द है।

समभाव - कबीरदास जी का कथन है-

जहां दया तहँ धर्म है लोभ जहाँ तहँ पाप

जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ क्षमा तहँ आप ।।

लोक व्यवहार में साफल्य प्राप्ति के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता होती है इन्हीं का निर्देश करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि —

दाक्षि ाण्यं स्वजने दया परिजने शाठयं सदा दुर्जने

प्रीति: साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम्।

शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरूजने कान्ताजने धृष्टता

ये चैवं पुरूषा: कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थिति: ।। 22।।

अन्वय - स्वजने दाक्षिण्यं ,परिजने दया ,दुर्जने सदा शाठयं ,साधुजने प्रीति: ,नृपजने नय:, विद्वज्जने च आर्जवम् ,शत्रुजने शौर्यं ,गुरूजने क्ष ामा , कान्ताजने धृष्टता , एवं ये च पुरूषा: कलासु कुशला: तेषु एव लोकस्थिति: (वर्तते)।

अनुवाद - अपने लोगों पर उदारता ,सेवकों पर दया ,दुष्टों के साथ शठता ,सज्जनों के साथ प्रीति ,राजाओं के प्रति नीति,विद्वानोप्रति सरलता ,शत्रुओं के प्रति पराक्रम ,गुरूजनों के प्रति सहनशीलता ,स्त्रियों के प्रति प्रगल्भता दिखाते हुए जो पुरूष कलाओं में कुशल है, उन्हीं पर
लोक की स्थिति अर्थात् संसार टिका हुआ है।

व्याख्या — लोक व्यवहार में कुशलता प्राप्त करने के लिए तथा जीवन को सफल बनाने के लिए मनुष्य को इन निर्दिष्ट कलाओं में कुशल होना चाहिए। इस कुशलता से ही लोक मर्यादा स्थिर रह सकती है। समाज में अनेक प्रकार की चित्तवृत्ति वाले लोग होते हैं अत: सबके साथ

एक जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। जिन पुरूषों में ये गुण पाये जाते हैं उन्हीं से लोकमर्यादा की रक्षा हो सकती है अन्य लोगो से नहीं। विद्वान व्यक्ति में ही ये गुण प्राप्त होते हैं इसलिए वे ही लोक मर्यादा रक्षक होते हैं।

व्याकरिणक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय - प्रीति: - प्री + क्तिन्। समास - लोकस्थिति: - लोकस्य स्थिति:(ष0 त0)। शार्दूलविक्रीडत छन्द हैं।

सत्संगति के महत्त्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि —

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसाम ।। 23।।

अन्वय- धिय: जाड्यं हरति ,वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति ,पापम् अपाकरोति,चेत: प्रसादयति ,दिक्षु: कीर्तिं तनोति ,कथय सत्संगति: पुंसाम् किम् न करोति।

अनुवाद - सत्संगति बुद्धि की जडता को दूर करती है ,वाणी में सत्यता को स्थापित करती है,सम्मान को बढ़ाती है,पाप को दूर करती है ,चित्त को प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो सत्संगति मनुष्यों के लिए क्या नहीं करती है।

व्याख्या- अच्छी संगति के प्रभाव से मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है ,सत्यभाषी होता है ,मान प्रतिष्ठा एवं उन्नति प्राप्त करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा मन हमेशा प्रसन्न रहता है उसका यश सभी दिशाओं में फैलता है। इसलिए सत्संगति में वे सभी गुण विद्यमान है जो मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाने के लिए आवश्यक हैं।

व्याकरिणक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय - सम +गम् +क्तिन् - संगति। वसन्ततिलका छन्द है।

रससिद्ध कवीश्वरों का महत्त्व निरूपण करते हुए भर्तृहरि कहते हैं —

जयन्ति ते सुकृतिनों रससिद्धा: कवीश्वरा:।
नास्ति तेषां यश: काये जरामरणजं भयम् ।। 24

अन्वय - ते सुकृतिन: रससिद्धा: कवीश्वरा: जयन्ति तेषां यश:काये जरामरणजं भयं नास्ति।

अनुवाद - अत्यन्त पुण्यवान् एवम् रस वर्णन में निपुण वे महाकवि सर्वविजयी हैं ,जिनके कीर्ति रूपी शरीर के लिए वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय नहीं होता है।

व्याख्या - भाव यह है कि जो नव रसों की अभिव्यक्ति में अत्यधिक प्रवीण है ऐसे रससिद्ध कवीश्वरों का स्थूल शरीर भले ही नष्ट हो जाय किन्तु उनका यश रूपी शरीर सदा स्थायी रहता है और उसमें वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय नहीं रहता। उदाहरण के लिए महाकवि कालिदास बाल्मीकि आदि श्रेष्ठ कवि य़द्यपि आज जीवित नहीं है किन्तु उनकी रचनाओं द्वारा अर्जित यश आज भी विद्यमान है।

व्याकरणिक टिप्पणी — सुकृतिन: —सु+कृत+इनि। रसेषु सिद्धा: रससिद्धा: (तत्पुरूष) !। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है।

महात्मा भर्तृहरि कहते हैं कि भगवान् विष्णु के प्रसन्न होने पर संसार के सभी कल्याणकारी पदार्थ प्राप्त होते हैं —

सूनु: सच्चरित: सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुख:
स्निग्धं मित्रमवञ्चक: परिजनो नि:क्लेशलेशं मन:

आकारो रूचिर: स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टेविष्टपकष्ट हारिणी हरौ सम्प्राप्यते देहिना ।। 25।।

अन्वय - विष्टपकष्टहारिणी हरौ तुष्टे देहिना सच्चरित: सूनु: ,सती प्रियतमा ,प्रसादोन्मुख: स्वामी ,स्निग्धं मित्रमं ,अवञ्चक परिजन: ,नि:क्लेश्लेशं मन: रूचिर: आकार: , स्थिर: विभव: , विद्यावदातं मुखं च सम्प्राप्यते ।

अनुवाद - संसार के कष्ट को हरने वाले भगवान विष्णु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को सदाचारी पुत्र ,पतिव्रता पत्नी ,प्रसन्न रहने वाला स्वामी ,स्नेही मित्र ,न ठगने वाला सेवक , छल कपट रहित बन्धुजन ,क्लेश के लेशमात्र से भी रहित मन ,सुन्दर आकृति ,चिर स्थायी धन सम्पत्ति और विद्या से उज्ज'वल मुख प्राप्त किया जाता है।

व्याख्या -मनुष्य को उपरोक्त प्रकार के सुखों की प्राप्ति के लिए भागवत्कृपा प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि भगवान् के प्रसन्न होने परअत्यन्त दुर्लभ पदार्थ भी अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय —प्रियतमा प्रिय +तमप् +टाप्देहिना — देह +इनि।

अनुप्रास अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

महाकवि भर्तृहरि मनुष्यों के कल्याण के मार्ग का निरूपण कर रहे हैं —

प्राणाघातान्निवृति: परधनहरणे संयम: सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभाव: परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरूषु च विनय: सर्वभूतानुकम्पा
सामान्य: सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि: श्रेयसामेष पन्था: ।। 26

अन्वय — प्राणाघातात् निवृत्ति: ,परधनहरणे संयम: ,सत्यवाक्यं , काले शक्त्याप्रदानं ,परेषाम् युवतिजनकथामूकभाव: ,तृष्णास्रोतो विभंग: ,गुरूषुविनय: ,सर्वभूतानुकम्पा च एष: सर्वशास्त्रेषु अनुपहतविधि: सामान्य:श्रेयसां पन्था: ।

अनुवाद — जीवहिंसा से दूर रहना , दूसरों के धनापहरण से चित्त को रोकना ,सत्य बोलना ,समय पर सामर्थ्यानुसार दान देना ,परस्त्री चर्चा से विमुख रहना ,कामनाओं के प्रवाह को रोकना ,गुरूजनों के प्रति नम्रता रखना और सब प्राणियों पर दया करना ,यही सब शास्त्रों में अप्रतिषिद्ध (उचित)विधि वाला मानव कल्याण का सामान्य मार्ग है।

व्याख्या —इस श्लोक के अध्ययन से आप यह जानेगें कि मानव जाति के लिए परम कल्याणकारी मार्ग क्या है।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय —निवृत्ति: — नि +वृत् +क्तिन्। युवति: — युवन् +ति ।इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द है।

महात्मा भर्तृहरि अधम ,मध्यम तथा उत्तम श्रेणी के पुरूषों की कार्य सम्पादन विधि पर प्रकाश डाल रहें हैं —

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै:
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्या: ।
विघ्नै: पुन: पुनरपि प्रतिहन्यमाना:
प्रारब्धमुत्तमजना: न परित्यजन्ति ।। 27।।

अन्वय - नीचै: विघ्नभयेन न प्रारभ्यते खलु ,मध्या: प्रारभ्य विघ्नविहिता:विरमन्ति ,उत्तमजना: विघ्नै: पुन: पुन: प्रतिहन्यमाना: अपि प्रारब्धंकार्यं न परित्यजन्ति ।

अनुवाद — नीच लोग विघ्नों के भय से कार्य प्रारम्भ ही नही करते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग कार्य आरम्भ करके विघ्नों द्वारा प्रताडित होने पर विचलित होकर रूक जाते हैं ,परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग विघ्नों के द्वारा बार बार आहत किये जाने पर भी प्रारम्भ किये कार्य को नहीं त्यागते हैं।

व्याख्या — इस श्लोक के अध्ययन से आप यह व्याख्या कर सकेंगे कि अधम कोटि के लोग तो विघ्नों के भय से कार्य आरम्भ ही नही करते मध्यम कोटि के लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं किन्तु बारम्बार विघ्नों के आने पर रूक जाते हैं ,परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग कार्य कीसफलता तक प्रयत्न करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय — उत्तम — उत् +तमप् ।समास — उत्तमा: जना: इति उत्तमजना: (कर्मधारय)। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

सज्जन पुरूष अत्यन्त कठिन स्वभाव सिद्ध सदाचार परम्परा का पालन करते हुए लोगों के उपदेशक एवं प्रमाण बन जाते हैं इस पर प्रकाश डालते हुए कवि कहतेहैं कि —

असन्तो नाभ्यर्थ्या: सुहृदपि न याच्य: कृशधन:
प्रिया न्याय्या वृतिर्मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरम्।
विपद्युच्चै: स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदं ।।28

अन्वय— असन्त: नाभ्यर्थ्या:,कृशधन: सुहृदपि न याच्या:,प्रिया न्याय्यावृति:(समाश्रयणीया:) मलिनम् असुभंगे अपि असुकरम् , विपदिउच्चै: स्थेयं ,महतां च पदम् अनुविधेयम् ,इदं विषमम् असिधाराव्रतंसतां केन उपदिष्टम् ?

अनुवाद — असज्जनों से नहीं मांगना चाहिए इसी प्रकार स्वल्प धन वाले मित्र से भी नहीं मांगना चाहिए ,प्रिय न्याय युक्त जीविका का आश्रय लेना चाहिए ,प्राणनाश की सम्भावना होने पर भी निन्दनीय कर्म नहीं करने चाहिए ,विपत्ति में भी अधीन होकर (समुन्नत) रहना चाहिए और महापुरूषों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उस कठोर असिधारा व्रत सज्जनों को न जाने किसने उपदेश दिया है।

व्याख्या — इस श्लोक को पढकर आप यह विश्लेषित कर सकेगें कि सज्जन पुरूषोंको सन्मार्ग पर चलने के लिए किसी ने उपदेश नहींदिया अपितु वेस्वत: ही इस पर प्रवृत होते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — कृशं धनं यस्य स: - कृशधन: (बहुब्रीहि समास)। शोभनं हृदयं यस्य स: - सुहृद् (बहुब्रीहि समास)। प्रकृति प्रत्यय - स्थेयं स्था +यत्। याच्य: याच्+ यत् । इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

स्वाभिमानी पुरूषों के स्वभाव का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टांदशा—
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्र विभिन्न कुम्भपिशितग्रासैकबद्ध् स्पृह:
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसर: केसरी ।। 29।।

अन्वय — क्षुत्क्षाम: अपि जराकृश: अपि शिथिलप्राण: अपि कष्टां दशां आपन्न: अपि विपिन्नदीधिति: अपि मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृह: मानमहताम् अग्रेसर: केसरी प्राणेषु नश्यत्सु अपि किं जीर्णं तृणम् अत्ति।

अनुवाद – भूख से क्षीण भी, वृद्ध होने से जीर्ण-शीर्ण भी , बलहीन भी , कष्ट से युक्त दशा को प्राप्त भी, क्षीणकान्ति होकर भी, मदमत्तगजराज के विदीर्ण गण्डस्थलों के माँस के खाने में एकमात्र बँधी हुई इच्छा वाला और स्वाभिमानियों में अग्रगण्य सिंह प्राणों के नष्ट होने पर भी क्या सूखी घास खाता है ? अर्थात् कदापि नहीं।

व्याख्या - इस श्लोक को पढ़कर आप यह बता सकेगें कि स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव सिंह के समान होता है। सिंह भूखा भले ही मर जाय पर वह स्वाभिमानी होने के कारण कभी भी सूखी घास खाकर प्राण धारण नही करेगा । इसी प्रकार मानधनी मनुष्य भूख से व्याकुल होकर भी वृद्ध शिथिल एवं अति दु:खित होकर भी मरणकाल उपस्थित होने पर भी कभी किसी से याचना नहीं करेगा अर्थात् माँग कर नहीं खायेगा। स्वाभिमानी और वीर पुरूष प्राणसंकट उपस्थित होने पर भी स्वाभिमान और शौर्य को नहीं त्यागता।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय – मत्त – मद् +क्त ।स्पृहा – स्पृह +अङ् +टाप् ।शिथिल प्राण: - शिथिला: प्राणा: यस्य स: (बहुब्रीहि) ।इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है। क्षुद्र जीव की प्रवृत्ति उक्त मानधनी व्यक्ति के ठीक विपरीत होती है , इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते हैं –

स्वल्पस्नायुवसावसेकमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं ,
श्वालब्ध्वापरितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जम्बुकमकंमागतमपि व्यक्तवा निहन्ति द्विपं ,
सर्व: कृच्छगतोऽपिवाञ्छति जन: सत्वानुरूपं फलम् ।। 30

अन्वय – श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसम् अपि अस्थिकं लब्ध्वा परितोषम् एति तु तत् तस्य क्षुधाशान्तये न भवति सिंह: अंकम् आगतम् अपि जम्बुकं अपि त्यक्तवा द्विपंनिहन्ति कृच्छ्रगत: अपि सर्व: जन: सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति।

अनुवाद – कुत्ता थोड़ी सी आँत और चर्बी के बचे हुए भाग से मैली तथा माँस रहित हड्डी के टुकड़े को पाकर भी सन्तुष्ट हो जाता है , यद्यपि यह उसकी भूख मिटाने का के लिए नहीं होती। सिंह गोद में आये हुए भी सियार को छोड़कर हाथी को मारता है। कष्ट में रहने पर भी सब लोग अपनी शक्ति के अनुरूप ही फल की इच्छा करते हैं।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह बता सकेगें कि मानधनी व्यक्ति संकटग्रस्त होकर भी वही वस्तु प्राप्त करना चाहेगा जो उसके बल पौरूष के अनुरूप होगी, कभी किसी तुच्छ वस्तु की इच्छा न करेगा। हंस या तो मोती ही चुगते हैं या भूखे ही मर जाते हैं सिंह या तो गजराजों को ही मार कर खाते हैं ,या भूखे ही मर जाते हैं क्योंकि वे मानी एवं शौर्यवान् होते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी प्रकृति प्रत्यय – लब्ध्वा - लभ् +क्त्वा । क्षुधा – क्षुध् + टाप् । इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

बोध प्रश्न-3

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क . ---------- से बढ़कर कोई शत्रु नहीं होता।

ख . ---------- कथय किं न करोति पुंसाम।

ग . भगवान ---------- प्रसन्न होने पर संसार के सभी कल्याणकारी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

घ . प्रारभ्यते न खलु ---------- नीचै:।

ङ स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव ---------- के समान होता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नही में दीजिये –

(क) दुष्ट व्यक्ति सर्पों से अधिक घातक होते हैं। ( )

(ख) सत्संगति बुद्धि की जड़ता को दूर नहीं करती है। ( )

(ग) उत्तम श्रेणी के लोग कार्य की सफलता तक प्रयत्न करते हैं। ( )

(घ) सिंह सियार का शिकार कर सन्तुष्ट होता है। ( )

(ङ) सुखों की प्राप्ति के लिए भगवत् कृपा की आवश्यकता नहीं होती है। ( )

क्षुद्र और मानी व्यक्ति के स्वभाव में क्या अन्तर होता है यह इस श्लोक के अध्ययन से आप जान सकेगें –

लांगूलचालनमधरश्चरणावपातं ,

भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।

श्वा पिण्डदस्य कुरूते गजपुंगवस्तु ,

धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ।। 31

अन्वय – श्वा लांगूलचालनम् अध: चरणावपातम् भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च पिण्डदस्यपुरस्तात् कुरूते, गजपुंगव: तु धीरम् विलोकयति , चाटुशतै: च भुङक्ते।

अनुवाद – कुत्ता रोटी देने वाले के सामने पूँछ हिलाता है , नीचे चरणों पर गिरता है और पृथ्वी पर लेट कर मुख तथा पेट दिखलाता है किन्तु गजेन्द्र तो भोजन देने वाले के समक्ष गम्भीरतापूर्वक देखता है और सैकड़ों बार पुचकारने पर खाता है।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि दो प्राणियों के स्वभाव में कितनाअन्तर होता है कहाँ एक कुत्ते जैसा क्षुद्र प्राणी जो भोजन देने वाले व्यक्ति के समक्ष अपनी प्रसन्नता को अपने हाव-भावों से व्यक्त करता है और दूसरी तरफ स्वाभिमानी गजराज जो भोजन देने वाले व्यक्ति को बड़ी गम्भीरता से देखता है और अनुनय-विनय के बाद खाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय निपत्य – नि+ पत् +क्त्वा +ल्यप् ।दर्शनम् - दृश् + ल्युट्। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझ सकेगें कि वही पुरूष धन्य है जिसके द्वारा वंश उन्नति को प्राप्त होता है –

परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते।

स जातो येन जातेन याति वंश: समुन्नतिम् ।। 32

अन्वय – परिवर्तिनि संसारे क: न मृत: क: वा न जायते। स: जात: येन जातेन याति वंश:समुन्नतिम्

अनुवाद – इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता या कौन नहीं जन्म लेता है ?वस्तुत: वह उत्पन्न हुआ जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त करता है।

व्याख्या – मरना और मरकर पुन: उत्पन्न होना यह शाश्वत् नियम है लेकिन उसी पुरूष काजन्म सफल है जो अपने कुल की समुन्नति का कारण बनता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मृत: - मृ +क्त ।समुन्नतिम् – सम् + उत् + नम् (क्तिन्) भावे ।इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

समभाव - 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु: ध्रुवं जन्म मृतस्य च '। " गीता"

मनस्वी पुरूष इस संसार में या तो उत्कर्ष के साथ जीता है या एकान्तवास के द्वारा शरीर त्याग को ही श्रेष्ठ मानता है। इसी भाव का आप इस श्लोक में अध्ययन करेगें –

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृतिर्मनस्विन: ।

मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।। 33

अन्वय- मनस्विन: कुसुमस्तबकस्य इव द्वयी वृत्ति: अस्ति, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा तिष्ठति ,वनेएव वा शीर्यते।

अनुवाद – पुष्प के गुच्छे के समान मनस्वी पुरूष की दो स्थितियाँ होती हैं, या तो वहसब लोगों के शिर पर रहता है अथवा वन में ही जीर्ण-शीर्ण हो जाता है।

व्याख्या – मनस्वी पुरूष का स्वभाव पुष्प जैसा होता है या तो वह देवताओं और राजाओं केशिर पर चढ़ता है अर्थात् सर्वोच्च स्थान पर पहुँचता या फिर अपनी डाल से स्वत टूट कर वन में ही गिर कर सूख जाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वृत्ति: - वृत् +क्तिन् ।इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है। महात्मा भर्तृहरि यह स्पष्ट करते हैं कि मनस्वी पुरूष मनस्वी के साथ ही शत्रुता करते हैं -

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतय: सम्भाविता: पञ्चषा-
स्तान् प्रत्येष विशेषविक्रमरूची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रात: पर्वणि पश्य दानवपति: शीषविशेषाकृति: ।। 34।।

अन्वय – भ्रात: पश्य, बृहस्पतिप्रभृतय: अन्ये अपि पञ्चषा: सम्भाविता: (ग्रहा:) सन्ति, तान्प्रति एष: विशेष विक्रमरूचि: राहु न वैरायते। शीषविशेषाकृति: दानवपति: पर्वणिभास्वरौ दिवाकरनिशाप्राणैश्वरौ द्वौ एव ग्रसते ।

अनुवाद - हे भाई ! देखो बृहस्पति आादि भी दूसरे पाँच छ: प्रतिष्ठित ग्रह है,परन्तु उनके प्रति यह विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला राहु बैर नहीं करता है। सिरमात्र से अवशिष्ट आकृतिवाला राहु पूर्णिमा और अमावस्या में प्रकाशयुक्त सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों को ही ग्रसता है।

व्याख्या – राहु दानवेन्द्र होकर भी मानधनी एवं शौर्य सम्पन्न है, इसलिए वह बृहस्पति जैसे कम तेजस्वी ग्रहों पर अपना पराक्रम नहीं दिखाता अपितु अपने ही समान तेजस्वी एवं बलवान सूर्य और चन्द्र को ही ग्रसता है क्योंकि मानीजनों का ऐसा स्वभाव ही होता है। वह यह जानते हैं कि दुर्बल एवं हीन जनों से जीतने पर भी हार है और हार जाने पर तो हार है ही। अत: वे अपने ही समान पराक्रमी लोगों से ही बैर और युद्ध करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – विशेष – वि + शिष् + अच्। दिवाकर – दिवा +कृ +ट। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

महापुरूषों का चरित्र अवर्णनीय होता है इसी बात को बताते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि –

वहति भुवनश्रेणिं शेष: फणाफलकस्थितां ,
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरूते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह !महतां नि:सीमानश्चरित्रविभूतय: ।। 35

अन्वय – शेष: फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणिं वहति स च कमठपतिना सदा मध्ये पृष्ठं धार्यते तम् अपि पयोधि: अनादरात् क्रोडाधीनं कुरूते अहह ! महतां चरित्रविभूतय: नि:सीमान:भवन्ति।

अनुवाद – शेषनाग अपने फनों के पटल पर स्थित पातालादि लोकों को धारण करते हैंऔर उन्हें कच्छपराज सदैव अपनी पीठ के बीच धारण करते हैं और उन कूर्मराज को भी समुद्र अनायास गोद में रख लेता है। अहो ! महापुरूषों के चरित्र की महिमा असीम होती है।

व्याख्या – शेषनाग अपने फनों पर चौदह लोकों को धारण किये हुए हैं फिर भी उन्हें भार नहींलगता और उससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि उन शेषनाग को कच्छपराज अपनी पीठ पर धारण किये हुए हैं, और सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि उन दोनों को समुद्र अनायास ही अपनी गोद में धारण कर लेता है वस्तुत: महापुरूषों की सामर्थ्य की कोई

सीमा नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मध्येपृष्ठं = पृष्ठस्य मध्ये इति मध्ये पृष्ठं (अव्ययी भाव समास)।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा हरिणी छन्द है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि किसी भी परिस्थिति में औचित्य का परित्याग नहीं करना चाहिए –

वरं पक्षच्छेद: समदमधवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरूद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरूभि: ।
तुषाराऽद्रे: सूनोरहह ! पितरिक्लेशविवरो
न चासौ सम्पात: पयसि पयसांपत्युरूचित: ।। 36

अन्वय – तुषाराद्रे: सूनो: उद्गच्छद् बहुलदहनोद्गारगुरूभि: समदमधवन्मुक्तकुलिशप्रहारै: पक्षच्छेदोवरम् । (किन्तु) अहह ! पितरि क्लेशविवशे (सति) पयसां पत्यु: पयसि असौ सम्पात:: ।

अनुवाद –हिमालय पर्वत के पुत्र मैनाक पर्वत का ऊपर उठती हुई प्रचुर अग्नि की लपटों से असह्य , मदयुक्त इन्द्र के द्वारा छोड़े गये वज्र के प्रहारों से पंखों का कट जाना अच्छा था , किन्तु खेद है कि अपने पिता के (वज्रप्रहारजनित) दु:ख से विह्वल होने पर (निजप्राणरक्षार्थ) समुद्र के जल में प्रवेश करना अर्थात् अपने प्राणों की रक्षा के लिये समुद्र में प्रवेश कर छिपना उचित नथा।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन के पश्चात् आप इस बात की व्याख्या कर सकेगें कि सामान्यत: तो मान शौर्यशाली जीव का अपने प्राण मात्र की रक्षा के लिए कहीं छिप जाना ही अयशस्कर होता है , पर पिता के दु:ख से विह्वल होने पर प्राणों की रक्षा के लिए कहीं छिप जाना तो और भी अधिक अयशस्कर होता है। यहाँ मैनाक के दृष्टान्त द्वारा मनुष्य की स्वार्थमयी नीच प्रवृत्ति को बतलाया गया है। सामान्यत: किसी को भी ऐसी प्रवृत्ति नहीं अपनानी चाहिये और मानशौर्यशाली धनी जन के लिए तो ऐसी प्रवृत्ति और भी निन्दनीय है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मुक्त – मुच् +क्त ।तुषाराद्रे: - तुषारस्य अद्रि: तस्य (ष0त0) ।इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

इस श्लोक में महाकवि भर्तृहरि इस सत्य को बता रहें हैं कि संसार में जड़ पदार्थ भी अपने अपमान को नहीं सहता है तो तेजस्वी पुरूष अपकार को किस प्रकार सहन करें –

यद्चेतनोऽपि पादै: स्पृष्ट: प्रज्वलति सवितुरिनकान्त: ।
तत्तेजस्वी पुरूष: परकृतनिकृतिं कथं सहते ।। 37 ।।

अन्वय– यद् अचेतन: अपि इनकान्त: सवितु: पादै: स्पृष्ट: प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरूष: परकृतनिकृतिं कथं सहते।

अनुवाद – जब अचेतन भी सूर्यकान्तमणि सूर्य की किरणों से छू जाने पर प्रज्वलित हो उठता है
तो (चेतन) तेजस्वी पुरूष दूसरे के द्वारा किये गये अपमान को कैसे सह सकता है ? अर्थात् किसी भी प्रकार नहीं सह सकता है।

व्याख्या - तेजस्वी मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह अपने से भी अधिक शौर्यशाली शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को नहीं सह सकता है। तुच्छ एवं अति लघु होने पर भी सूर्यकान्तमणि सूर्य की किरणों के छूने से जलने लगता है क्योंकि शूरवीरों का यही स्वभाव होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – तेजस्वी – तेजस् +विनि। स्पृष्ट: - स्पृश् +क्त ।अचेतन: - न अस्ति
चेतनं यस्य स: अचेतन: (बहुब्रीहि)। इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा आर्या छन्द है।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि केवल आयु ही तेज का कारण नहीं है -

सिंह शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।

प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो: हेतु: ।। 38।।

अन्वय – सिंह: शिशु: अपि मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु निपतति इयं सत्त्ववतां प्रकृति: वय:तेजस: हेतु: न खलु।

अनुवाद – सिंहशावक अर्थात् बालक सिंह भी मद से मलिन गण्डस्थल वाले हाथियों पर झपटता है, तेजस्वियों का यह स्वभाव होता है। अवस्था तेज का कारण नहीं होती।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझा सकेगें कि तेज एवं पराक्रम के लिए अवस्था कारण नहीं होती अपितु जन्मजात तेजस्वी जनों का ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे उत्पन्न होते ही शौर्य प्रदर्शन करने लगते हैं। जैसे श्रीकृष्ण ने और सम्राट सिकन्दर ने भी अपने बाल्यकाल में बड़े-बड़े कार्य सम्पादित किए थे।

व्याकरणिक टिप्पणी –प्रकृति – प्र +कृ +क्तिन्। निपतति – नि +पत् +लट्। इस श्लोक में आर्या छन्द है।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझा सकेगें कि धन की महत्ता सर्वोपरि है –

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तत्राप्यधो गम्यतां
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजन: सन्दह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न: केवलं
येनैकेन बिना गुणास्तृणलवप्राया: समस्ता इमे ।। 39

अन्वय – जाति: रसातलं यातु गुणगणै: तत्र अपि अध: गम्यतां शीलं शैलतटात् पतत्तु अभिजन: वह्निना सन्दह्यतां वैरिणिशौर्ये आशु वज्रं निपततु न केवलं अर्थ: अस्तु येन एकेन बिना इमे: समस्ता: गुणा: तृणलवप्राया: (भवन्ति)।

अनुवाद – जाति पाताल को चली जाये , गुणों का समूह उससे भी नीचे चला जाये , शील पर्वत के किनारे से गिर जाये , उच्च वंश अग्नि में जल जायें , शत्रु स्वरूप शौर्य पर शीघ्र वज्रपात हो जाये परन्तु हमारे पास केवल धन हो , जिस एक धन के बिना ये समस्त गुण तुच्छ तिनके के समान हो जाते हैं।

व्याख्या – आप बता सकेगें कि धन के समक्ष समस्त गुण व्यर्थ हैं जिसके पास धन है उसके पास सग कुछ है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वैरिणि – वैर + इनि ।इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

धनहीन गुणी व्यक्ति अत्यन्त शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो जाता है –

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम ,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहित: पुरूष स एव,
त्वन्य: क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।। 40

अन्वय – अविकलानि तानि इन्द्रियाणि , तदेव नाम, अप्रतिहता सा बुद्धि: , तदेव वचनम्।(किन्तु) अर्थोष्मणा विरहित: स एव तु पुरूष: क्षणेन अन्यो भवति , एतद् विचित्रम्।

अनुवाद – विकार रहित वही इन्द्रियाँ है, वही नाम है , वही अकुण्ठित बुद्धि है, वही वाणीहै किन्तु धन की गर्मी से रहित वही मनुष्य क्षण भर में दूसरा ही हो जाता है ,यह आश्चर्य है।

व्याख्या - इस श्लोक से आप यह समझ सकेगें कि धनवान और निर्धन व्यक्ति की शारीरिकसंरचना में तो कोई अन्तर नही होता है किन्तु धनवान मनुष्य के इन्द्रियगण ,बुद्धि,कर्म आदि जैसे होते हैं वैसे ही निर्धन के भी क्यों न हो पर उनमें परस्पर अन्तरअवश्य हो जायेगा। अर्थात् धनवान को सब पहचानते हैं निर्धन को कोई नहीं यद्यपियह विचित्र बात है पर ऐसा ही होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – प्रतिहता – प्रति + हन् +क्त + टाप् ।इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

बोध प्रश्न-4

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

क. सत्संगति से क्या लाभ है ?

ख. क्षुद्र और मानी व्यक्ति के स्वभाव में क्या अन्तर होता है ?

ग. धनहीन व्यक्ति की क्या स्थिति होती है ?

घ. स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव कैसा होता है ?

अभ्यास प्रश्न – 4

निम्नलिखित श्लोक का अर्थ लिखिए –

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विन: ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।।

सिंह: शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो: हेतु: ।।

3.3.3 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 41 से 60 तक अनुवाद एवं व्याख्या

गुणहीन धनवान पुरूषों की गणना भी गुणवान् के रूप में होती है अत: धन सर्वोपरि है इसी बात को बताते हुए भर्तृहरिकहते हैं कि –

यस्यास्ति वित्तं स नर: कुलीन: ,
स पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञ: ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय:
सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति ।। 41

अन्वय – यस्य वित्तं अस्ति स नर: कुलीन: स पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञ: स एव वक्ता स चदर्शनीय: सर्वे गुणा: काञ्चनम् आश्रयन्ति ।

अनुवाद – जिसके पास धन है वह मनुष्य कुलीन है, वह पण्डित है, वह शास्त्रों का ज्ञाता है, गुणों को जानने वाला है, वही सुन्दर वक्ता है और वही दर्शनीय है क्योंकि समस्त गुण स्वर्ण का आश्रय लेते हैं ।

व्याख्या - धनवान व्यक्ति ही सत्कुलोत्पन्न , विद्वान, बहुश्रुत, गुणग्राही, अच्छा वक्ता एवं सुन्दर(दर्शनीय) माना जाता है क्योंकि धनवान के ही आश्रय में ये सभी गुण रहते हैं। अत: मनुष्य को गुणों के अर्जन की चिन्ता न करके धनार्जन ही करना चाहिए क्योंकि धन आते ही ये सभी गुण अपने आप आ जायेंगें।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – दर्शनीय – दृश् + अनीयर्। श्रुतवान् – श्रुत + मतुप् ।इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

इस श्लोक में धन के विनाश के कारणों और प्रकारों का वर्णन किया गया है –

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यति: संगात् सुतो लालना –

द्विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।

ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषि: स्नेह: प्रणासाश्रया-

न्मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागप्रमादाद्धनम ।। 42

अन्वय – दौर्मन्त्र्यात् नृपति: संगात् यति लालनात् सुत: अनध्ययनात् विप्र: कुतनयात् कुलखलोपासनात् शीलं मद्यात् ह्री: अनवेक्षणात् अपि कृषि: प्रवासाश्रयात् स्नेह: अप्रणयात्मैत्री अनयात् समृद्धि: त्यागप्रमादात् च धनं विनश्यति।

अनुवाद – अनुचित सलाह से राजा, आसक्ति से सन्यासी, पुत्र दुलार से, अध्ययन न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से वंश, दुष्टों के संसर्ग से शील, मदिरा के सेवन से लज्जा, देखभाल न करने से खेती, परदेश में निवास करने से स्नेह, प्रेम के अभाव से मित्रता, अनीति से समृद्धि और व्यय में असावधानी से धन नष्ट हो जाता है।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह जान पायेगें कि यदि राजा को मन्त्रियों के द्वारा उचित सलाह न दिये जाने पर उसका राज्य तक नष्ट हो जाता है। आसक्ति के कारण योगी और अत्यधिक लाड़-प्यार किये जाने से पुत्र , देखभाल के अभाव में खेती तथा खर्च में लापरवाही से धन नष्ट हो जाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रमाद – प्र +मद् +घञ् ।समृद्धि: - सम् +ऋध् +क्तिन्। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

धन की तीन गति होती है इसी बात का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते हैं -

दानं भोगो नाश स्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गति भवति ।। 43

अन्वय – दानम् भोग: नाश: इति वित्तस्य तिस्र गतय: भवन्ति य: न ददाति न भुङ्क्ते तस्यतृतीया गति भवति।

अनुवाद – दान, उपभोग और नाश धन की ये तीन गति होती हैं, जो न दान करता है और न उपभोग करता है उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।

व्याख्या – जो व्यक्ति न कभी किसी को दान करता है और न स्वयं उसका उपभोग करता है

उसका सम्पूर्ण धन नष्ट हो जाता है क्योंकि उत्तम, मध्यम, और अधम भेद सेधन की उक्त तीन ही गति होती है। धन को सत्पात्र को दान देना ही उसकी प्रथम उत्तम गति है और उसका उपभोग करना द्वितीय मध्यम गति है तथा चोर आदि के द्वारा उसका हरण कर लेना उसकी तीसरी अधम गति है। अत: मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धन का सदुपयोग दान देकर करे।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – भोग: - भुज् +घञ् ।दानम् – दा +ल्युट्। इस श्लोक में आर्या छन्द है।

दान के द्वारा निर्धन हो जाना भी प्रशंसनीय होता है इस बात को कई उदाहरणों के द्वारा आप इस श्लोक के अध्ययन से जान सकेगें –

मणि: शाणोल्लीढ़: समरविजयी हेतिदलितो ,

मदक्षीण: नाग: शरदि सरिदाश्यानपुलिना ।
कलाशेषश्चन्द्र: सुरतमृदिता बालवनिता ,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नरा: ।। 44

अन्वय– शाणोल्लीढ़:मणि:,हेतिदलित:समरविजयी,मदक्षीण:नाग:,शरदि आश्यानपुलिनासरित्, कलाशेष: चन्द्र:, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा: नरा: च तनिम्नाशोभन्ते ।

अनुवाद – सान पर खरादी (घिसी) हुई मणि , शस्त्रों से विक्षत योद्धा, मद से क्षीण हाथी,शरद् ऋतु में सूखे पुलिन प्रदेशों वाली नदी , कला मात्र से अवशिष्ट चन्द्रमा, सुरतकालीन मर्दन से शिथिल हुई युवती और याचकों के विषय में (दान से) धन से रहित हुए मनुष्य अपनी क्षीणता से ही शोभा पाते हैं ।

व्याख्या - अर्थात् शान पर घिसा हुआ हीरा , शस्त्रों से विक्षत शूरवीर योद्धा , मदस्राव से क्षीणहोने पर भी हाथी ,सूखे हुए सैकत प्रदेश वाली शरदकालीन नदियाँ ,एक कलामात्र केशेष रहने पर भी द्वितीया का चन्द्रमा तथा रतिकालीन मर्दन से शिथिल नवयुवती भी शोभासम्पन्न लगती है । इसी प्रकार याचकों को दान देते-देते जिसका सब धन नष्ट हो गया है ऐसे लोग अपनी धनक्षीणता से ही अधिक शोभा पाते हैं ।

व्याकरणिक टिप्पणी –क्षीण: - क्षि +क्त । अर्थिषु – अर्थ +णिनि ।इस श्लोक में दीपक अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है ।

परिस्थिति ही मनुष्य को लघु तथा गुरू बनाती है । धनाभाव तथा धनसदभाव काल की अवस्था का वर्णन करते हुए महात्मा भर्तृहरि कहते हैं कि –

परिक्षीण: कश्चित् स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात् सम्पूर्ण: कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ।
अतश्चानेकान्ता गुरूलघुतयार्थेषु धनिना –
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ।। 45

अन्वय – कश्चित् परिक्षीण: यवानां प्रसृतये स्पृहयति, स पश्चात् सम्पूर्ण: धरित्रीं तृणसमांकलयति, अत: च अर्थेषु गुरूलघुतया अनैकान्त्यात् धनिनाम् अवस्थां वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ।

अनुवाद – कोई निर्धन मनुष्य मुट्ठी भर जौ के लिए लालायित होता हे, बाद में वही धनीहोने पर पृथ्वी को तृण के समान तुच्छ समझता है । इसलिए धन के सम्बन्ध में छोटा-बड़ा के विषय में
अव्यवस्था होने के कारण धनियों की अवस्था ही वस्तुओं को बड़ी तथा छोटी बनाती है ।

व्याख्या - इस श्लोक के द्वारा आप यह समझ सकेगें कि किसी भी वस्तु का अपना मूल्य नहीं होता परिस्थितियाँ ही मनुष्य को छोटा और बड़ा बनाती हैं । जिसके पास आज धन नहीं है कुछ समय बाद वही धनसम्पन्न हो जाने पर ऐश्वर्यवान् कहा जाने लगता है । जब व्यक्ति निर्धन होता है तो रोटी का ण्क टुकड़ा भी उसके लिए बहुमूल्य होता है और जब वही मनुष्य धनाढ्य हो जाता है तो पृथ्वी को भी तिनके के समान तुच्छ समझने लगता है । धनावस्था और निर्धनता ही मनुष्य की दृष्टि में वस्तुओं को छोटा और बड़ा बनाती देती है ।

व्याकरणिक टिप्पणी – गुरूलघुतया – गुरू च लघुचेति (द्वन्द्व समास) । इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है । राजा को सम्बोधित करता हुआ कवि उसके लिए अर्थ साधन का उपाय बताते हुए कहता है –

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनु मेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुंपुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमि ।। 46

अन्वय – राजन् यदि एनां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि तेन अद्य अमुं लोकं वत्सम् इव पुषाण तस्मिन् च अनिशं सम्यक् परिपुष्यमाणे भूमि: कल्पलता इव नाना फलं फलति।

अनुवाद – हे राजन् ! यदि इस पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो इस समय बछड़े के तुल्य इस प्रजा वर्ग का पालन करो। उस प्रजावर्ग के नित्य भली-भाँति पालन किये जाने पर पृथ्वी कल्पलता की तरह अनेक प्रकार के फलों को देती है।

व्याख्या–इस श्लोक में राजा को यह नीतिज्ञान दिया गया है कि राजा के धन वैभव की वृद्धिप्रजाजनों से ही होती है यदि राजा अपनी प्रजा का सम्यक् देखभाल करता है और वेपरिपुष्ट एवं सुखी रहते हैं तो राजा इस पृथ्वी से स्वेच्छानुकूल जितना चाहे उतना धन प्राप्त कर सकता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – पुषाण – पुष् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष ए0व0 । परिपुष्यमाणे – परि+पुष्+यक्+शानच्। इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। इस श्लोक में राजनीति की विविधरूपता का वर्णन किया गया है –

सत्याऽनृता च परूषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।। 47

अन्वय – नृपनीति: वारागंना इव सत्या अनृता च परूषा प्रियवादिनी च हिंस्र दयालु: अपि अर्थपरा वदान्या च नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च अनेक रूपा भवति।

अनुवाद – राजनीति वेश्या के समान कभी सत्य बोलने वाली , कभी झूठ बोलने वाली , कभी कठोरभाषिणी, कभी मधुर वचन बोलने वाली, कभी क्रूर, कभी दयायुक्त ,कभी धनलोलुप, कभी अत्यधिक दानी, कभी नित्य खर्च करने वाली, कभी नित्य धन प्राप्त करने वाली इस प्रकार अनेक रूपों वाली होती है।

व्याख्या – राजनीति बहुरूपिणी होती है इसी बात को इस श्लोक में समझाया गया है। राजनीति की तुलना वेश्या से की गई है जिस प्रकार वेश्या लोगो को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विविध रूप बनाती है उसी प्रकार राजनीति भी लोगों पर शासन करने के लिए और अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कभी कोपवृद्धि कभी सत्यभाषी कभी असत्यभाषी कभी कपटपूर्ण व्यवहार करती है। वस्तुत: राजा या राजनीति निपुण व्यक्ति एक समान नीति से राज्य को नहीं चला सकता उसके लिए उसे कूटनीति का सहारा लेना पड़ता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वदान्या – वद्+आन्य +टाप्। प्रियवादिनी – प्रिय +वद् +णिनि +ङीप। इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि किन छ: गुणों से युक्त राजा आश्रय के योग्य होता है –

आज्ञा: कीर्ति: पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड् गुणा न प्रवृत्ता: कोऽर्थतेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।। 48।।

अन्वय – पार्थिव: येषां आज्ञा कीर्ति: ब्राह्मणानां पालनं दानं भोग: मित्रसंरक्षणं च एते षड्गुणा:न प्रवृत्ता: तेषाम् उपाश्रयेण क: अर्थ: ?

अनुवाद – हे राजन् ! जिन राजाओं में आज्ञा (शासन करने की शक्ति), कीर्ति, ब्राह्मणों कापालन, दान, भोग और मित्रों की रक्षा करना, ये छ: गुण विद्यमान नहीं है ,उनका आश्रय लेने से क्या लाभ।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन के बाद आप यह व्याख्या कर सकेगें कि कि राजाओं में यदि ये छ: गुण होते हैं तभी प्रजाजन उसकी सेवा करते हैं अन्यथा नहीं, अत: यदि राजाप्रजाजनों से सेवा पाता है तो उसे इन गुणों से विशिष्ट होना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – कीर्ति: - कृत् + क्तिन्।((दानं – दा +ल्युट्। इस श्लोक में शालिनी छन्द है। कवि का अभिमत है कि जो भाग्य में लिखा होता है वही प्राप्त होता है –

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं ,
तत्प्राप्नोति मरूस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो न धिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथा:
कूपे पश्य पयोनि धावपि घटोगृह्णाति तुल्यं जलम् ।। 49

अन्वय – धात्रा स्तोकं महत् वा यद् धनं निजभालपट्टलिखितं तद् मरूस्थले अपि नितरां प्राप्नोति मेरौ तत: अधिकं न तद् धीर: भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथा: पश्य कूपे पयोनिधौ अपि घट: तुल्यं जलं गृह्णाति ।

अनुवाद – ब्रह्मा ने थोड़ा या अधिक जो धन अपने ललाट (भाग्य) में लिख दिया है उसे मनुष्य रेगिस्तान में भी अवश्य प्राप्त कर सकता है और उससे अधिक सुमेरू पर्वत पर भी नहीं पा सकता है इसलिए धैर्यशाली बनो । धनिकों के प्रति व्यर्थ में दीन वृत्ति मत धारण करो । देखो ! कुयें और समुद्र में भी घड़ा बराबर जल ग्रहण करता है ।

व्याख्या – इसका आशय यह है कि ब्रह्मा ने जिस मनुष्य के भाग्य में जितना धन लिख दिया है उससे ज्यादा या उससे कम उसे नहीं प्राप्त होता है चाहें वह सुमेरू पर्वत पर ही क्यों न चला जाय । इसलिए मनुष्य को धैर्यशाली होना चाहिए तथा धनवानों के सामने धन के लालच से अपनी दीनता प्रकट नहीं करनी चाहिए क्योंकि घड़ा चाहे कुयें में जाये या अथाह जलसागर में उसे जल तो उतना ही मिलेगा जितना जलग्रहण करने के लिए उसे बनाया गयाहै । उसी प्रकार मनुष्य को धन उतना ही मिलेगा जितना उसके भाग्य में लिखा है ।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय –महान व्यक्ति याचकों के दीन वचनों को सुने बिना ही याचकों को दान देते हैं । इसी भाव का वर्णन इस श्लोक में किया गया है –

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचर: ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्ययोक्तिं प्रतीक्षसे ।। 50।।

अनुवाद – हे श्रेष्ठ मेघ ! तुम ही चातकों के आधार हो, यह किसे ज्ञात नहीं है ? फिर तुम हमारे दीन वचनों की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो

व्याख्या – चातको का एकमात्र प्राणाधार मेघ ही होता है यह बात सभी लोग जानते हैं। इसलिए हे मेघ तुम हमारी याचना की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो अर्थात् बिना माँगें ही तुम हमें जलबिन्दु प्रदान करो। तात्पर्य यह है कि दाता को याचकों के दीन वचनों की प्रतीक्षा किये बिना ही दान देना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रति +ईक्ष् +लट्। चातकानाम् आधार: इति चातकाधार: (तत्पुरूष समास) । इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है ।

बोध प्रश्न-5

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

क. समस्त गुण ---------- का आश्रय लेते हैं ।

ख. धन की ---------- गति होती है ।

ग. दान के द्वारा ---------- हो जाना भी प्रशंसनीय होता है ।

घ. नानाफलं फलति ---------- भूमि ।

ङ. राजनीति ---------- के समान अनेक रूपों वाली होती है।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

क. किन गुणों से युक्त राजा आश्रय के योग्य होता है ?

ख. धन की कौन सी तीन गति होती है

ग. धन का क्या महत्व है लिखिए ?

हर एक के सामने याचना नहीं करनी चाहिए इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि –

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयतां –
मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशा: ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वच: ।। 51

अन्वय – **रे रे** मित्र चातक सावधानमनसाक्षणं श्रूयताम् , गगने हि बहव: अम्भोदा: सन्ति ,सर्वेऽपि एतादृश: न। केचिद् वृष्टिभि: वसुधाम् आर्द्रयन्ति , केचिद् वृथा गर्जन्ति(अत:) यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरत: दीनं वच: मा ब्रूहि।

अनुवाद – हे मित्र चातक ! सावधानमन से क्षण भर के लिए सुनो , आकाश में बहुत सेमेघ हैं परन्तु सभी एक समान नहीं है। कुछ वर्षा से पृथ्वी को गीला कर देतेहैं और कुछ निरर्थक गरजते हैं। अत: जिस जिस को देखते हो उसके आगे दीनवचन मत बोलो।

व्याख्या – इससे आप समझेगें कि संसार के सभी लोग उदार नहीं होते हैं अत: सबसे याचनानहीं करनी चाहिए। उदार व्यक्ति के सामने दीन वचन कहने से तो इष्ट पूर्ति हो सकती है पर कृपण व्यक्ति से याचना करने से कोई लाभ न होगा। उसी प्रकार आकाश में सभी मेघ बरसने वाले नही होते हैं। इसलिए पपीहे को सावधान करते हुए कवि कहता है कि हर किसी मेघ के आगे दीन वचन मत कहो।

व्याकरणिक टिप्पणी - पुरत: - पुर +तस् ।सावधानश्च तत् मनश्च , तेन सावधानमनसा (तत्पुरूष समास)। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडत छन्द है।

दुर्जनों के नैसर्गिक लक्षणों का वर्णन करते हुए कवि कहता है –

अकरूणत्वमकारणविग्रह:
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता ,

प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।। 52

अन्वय – अकरूणत्वम् अकारणविग्रह: परधने परयोषिति च स्पृहा सुजन बन्धुजनेषु असहिष्णुता, इदं दुरात्मनां प्रकृतिसिद्धं हि ।

अनुवाद – निर्दयता , अकारण झगड़ा करना , दूसरे के धन की तथा दूसरे की स्त्री को पाने की इच्छा करना , तथा सज्जनों एवं बन्धुओं के प्रति असहनशीलता ये लक्षण दुर्जनों में स्वभाव से ही प्राप्त होते हैं ।

व्याख्या - अर्थात् दुर्जनों में उपरोक्त दुर्गण जन्मजात होते हैं उन्हें इनको सीखना नहीं पड़ता ।अत: धनी एवं विद्यालंकृत होने पर भी दुर्जन परिहेय ही होता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – सहिष्णुता – सह +इष्णुच् +तल +टाप् ।इस श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द है ।इस श्लोक से आप यह जानेगें कि दुष्ट पुरूष का स्वभाव ऐसा होता है कि वह गुणों में भी दोष निकाला करता है –

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतशुचौदम्भ:शुची कैतवं ,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनी ।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्ति: स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कत: ।। 53

अन्वय – ह्रीमति जाड्यं , व्रतशुचौ दम्भ: , शुचौ केतवम् , शूरे निर्घृणता , मुनौ विमतिता ,प्रियालापिनी दैन्यम् , तेजस्विनी अवलिप्तता , वक्तरि मुखरता , स्थिरे अशक्ति: गण्यते , तत् गुणिनां स: क: नाम गुण: य: दुर्जनै: न अंकित: भवेत् ।

अनुवाद - लज्जाशील में जड़ता , व्रतों से पवित्र पुरूष में दम्भ , पवित्र अन्त:करण में कपट , वीर में निदर्यता , मुनि में बुद्धिहीनता , प्रिय बोलने वालों में दीनता ,तेजस्वी में घमण्ड , वक्ता में वाचालता और स्थिरचित्त पुरूष में सामर्थ्य का अभाव मानतें हैं । तो गुणवानों का वह कौन सा गुण है , जिसे दुष्टों ने दोष नहीं कहा है ।

व्याख्या – दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सज्जनों के सद् गुणों की भी निन्दाकरते हैं,वे लज्जाशील व्यक्ति को मूर्ख कहते हैं ,व्रतादि से परिशुद्ध व्यक्ति को पाखण्डी कहते हैं , पवित्रात्मा को कपटी और शूरवीर को निर्दयी कहते हैं इस प्रकार सज्जनों के अनेकानेक गुणों को वे दोष कहते हैं । किसी कवि ने कहा है –

दोष लगावत मुनिन को , जाको हृदयमलीन ।
धरमी को दम्भी कहे , छमियन को बलहीन ।।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – प्रियालापिनी – प्रिय +आ +लप् +णिनि ।मुखरता – मुख +र् +तल् +टाप् । इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

विद्या सम्पन्न भी दुर्जन पुरूष सर्वथा परिहरणीय है इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते है कि -

दुर्जन: परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषित: सर्प: किमसौ न भयंकर: ।। 54 ।

अन्वय – विद्यया अलंकृत: अपि सन् दुर्जन: परिहर्त्तव्य: , मणिना भूषित: सर्प: असौ किम् नभयंकर: ।

अनुवाद – विद्या से विभूषित होते हुए भी दुष्ट पुरूष को त्याग देना चाहिए । मणि से विभूषित होते हुए भी क्या यह सर्प भयंकर नही होता ।

व्याख्या – अर्थात् सर्प में नागमणि होती है इतनी सुन्दर मणि होने पर भी स्वभावत: वह दूसरों को दु:ख पहुँचाने वाला और विषैला होने के कारण भयानक भी होता है । उसी प्रकारकिसी विद्वान व्यक्ति को देखकर सहसा उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि दुर्जन विद्या से सुशोभित होने पर भी दूर रहने योग्य होता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – अलंकृत: - अलम् +कृ +क्त ।भयंकर: - भय + कृ +अश् । इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है ।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझ सकेगें कि हमेशा सद् गुणों का अर्जन तथा दुर्गुणों का परित्याग करना चाहिए–

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकै: ,
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्य यदि किं गुणै: सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डने: ,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशयो यद्यस्ति किं मृत्युना ।। 55 ।

अन्वय – लोभ: चेत् (अस्ति तर्हि) अगुणेन किम् , यदि पिशुनता अस्ति पातकै: किम् , सत्यंचेत् तपसा च किम् , यदि मन: शुचि अस्ति तीर्थेन किम् , यदि सौजन्य गुणै: किम्यदि सुमहिमा अस्ति मण्डनै: किम् , यदि सद् विद्या धनै: किम् , यदि अपयश:अस्तिमृत्युना किम् ।

अनुवाद – यदि लोभ है तो अन्य दुर्गुणों से क्या प्रयोजन , यदि चुगलखोरी है तो अन्य पापों से क्या प्रयोजन , सत्य है तो तपस्या का क्या प्रयोजन , यदि मन पवित्र है तो तीर्थ से क्या प्रयोजन , यदि सज्जनता है तो गुणों से क्या प्रयोजन , यदि सुन्दर महिमा है तो आभूषणों का क्या प्रयोजन , यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या प्रयोजन , यदि अपकीर्ति है तो मृत्यु से क्या प्रयोजन ?

व्याख्या – कवि का भाव यह है कि मनुष्य को श्लोक में वर्णित सत्य, तप पवित्र मन ,सज्जनता , महिमा , सद्विद्या आदि सद् गुणों को ही मनुष्य को अर्जित करनाचाहिए पिशुनता अपयश आदि दुर्गुणों को नहीं ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – पिशुनता – पिशुन + तल् + टाप् । लोभ: - लुभ् + घञ् । इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

इस श्लोक में किसी अनुभवीजन के द्वारा कष्टदायक सातशल्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

भर्तृहरि का मन्तव्य है कि राजसभागत भी दुर्जन सबके मन को कष्ट ही देता है –

शशी दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृते: ।
प्रभुर्धनपरायण: सततदुर्गत: सज्जनों
नृपांगणगत: खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ।। 56 ।

अन्वय– दिवसधूसर: शशी,गलितयौवना कामिनी,विगतवारिजं सर:,स्वाकृते अनक्षरं मुखं धनपरायण: प्रभु: , सतत दुर्गत: सज्जन: ,नृपागंणगत: खल: इति सप्त शल्यानि मे मनसि सन्ति।

अनुवाद – दिन में निस्तेज चन्द्रमा , यौवन रहित कामिनी , कमलविहीन सरोवर , सुन्दरआकृति वाले पुरूष का विद्याविहीन मुख ,धन का लोभी स्वामी ,सदा दुर्दशाग्रस्त सज्जन और राज्यसभा में रहने वाला दुर्जन , ये सात मेरे मन में काँटें की भाँति चुभते हैं अर्थात् अति कष्टप्रद हैं ।

व्याख्या – आप यह बता सकेगें कि परमात्मा द्वारा रचित इस जगत में सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ दोष अवश्य देखें जाते हैं और ये ही दोष कवि के मन को कष्ट देते हैं । चन्द्र, कामिनी , सरोवर और सुन्दर पुरूष की शोभा क्रमश: तेज, कमल, और विद्या से होती है । इनके अभाव में ये देखने वालों को कष्टप्रद ही होते हैं । इसी प्रकार विद्वान की धनाभाव से दुर्दशा , धनलोभी राजा और राजसभावर्ती दुर्जन भी इसी प्रकार कष्टप्रद होते हैं ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – शशि – शश् + इनि । गलित यौवनं यस्या: सा गलितयौवना (बहुब्रीहि समास) । इस श्लोक में पृथ्वी छन्द है ।

इस श्लोक के अध्ययन से आप क्रोधी राजा के स्वरूप को समझ सकेगें –

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावक: ।। 57

अन्वय – चण्डकोपानां भूभुजाम् कश्चित् अपि आत्मीयो नाम न (अस्ति हि) पावक: स्पृष्ट:जुह्वानं होतारं अपि दहति ।

अनुवाद – अत्यधिक क्रोध वाले राजाओं का कोई भी व्यक्ति अपना नहीं होता जैसे अग्निछू जाने पर हवन करने वालो को भी जला देती है ।

व्याख्या – इसके अर्थ से आप यह बता सकेगें कि कभी भी क्रोधी राजा का विश्वास नहीं करनाचाहिए । जैसे अग्नि हवन करने वाले को भी जला देती है उसी प्रकार क्रोधी राजाअपने बन्धुजनों को भी नहीं छोड़ता उन्हें भी दण्ड देता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – स्पृष्टा: - स्पृश् + क्त । होतारम् – हू + तृच् ।

इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है ।

राजसेवा कितनी दुष्कर होती है इसको बताते हुए कवि भर्तृहरि कहते हैं कि –

मौनान्मूक: प्रवचनपटुर्वाचको जल्पको वा
धृष्ट: पार्श्वे भवति च वसन्दूरतोऽप्यप्रगल्भ: ।
क्षान्त्या भीरूयदि न सहते प्रायशो नाभिजात:
सेवाधर्म: परमगहनो योगिनामप्यगम्य: ।। 58

अन्वय – मौनात् मूक: प्रवचनपटु: वाचक: जल्पक: वा पार्श्वे च वसन् धृष्ट: भवति दूरत: अपिअप्रगल्भ: क्षान्त्या भीरू: यदि न सहते प्रायश: अभिजात: न सेवाधर्म: परमगहन:योगिनाम् अपि अगम्य: अस्ति ।

अनुवाद – सेवक मौन रहने से गूंगा , बोलने में कुशल होने पर वाचाल या बातूनी, समीपरहने पर ढीठ , दूर रहने पर बेवकूफ, क्षमाशील होने से डरपोक तथा यदि सहनशील नहीं है तो प्राय: अकुलीन कहा जाता है , इस प्रकार सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है और योगियों के लिए भी अगम्य है ।

व्याख्या - आशय यह है कि राजाओं अथवा धनीजनों की सेवा करना अत्यन्त कठिन कार्य है । सब कुछ अच्छा करता हुआ भी सेवक सदा निन्द्य एवं उपहास का पात्र होता है ।यदि वह शालीनतावश चुप रहे तो गूंगा, अच्छा वक्ता होने पर वाचाल , सदैव पास रहने पर निर्भीक , क्षमाशील होने पर डरपोक और अपने तिरस्कार को न सहने पर नीचकुलोत्तपन्न माना जाता है । त्रिकालदर्शी योगीजन भी इस सेवाधर्म का निर्वाह नहीं कर सकते अतएव सेवाधर्म को गहन एवं अगम्य कहा गया है ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – गम्य: - गम् +यत् ।वसन् – वस् + शतृ ।

इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है ।

इस श्लोक को पढ़कर आप यह जानेगें कि नीच पुरूष के सम्पर्क से सुख की प्राप्ति सम्भव नही है

उद्भासिताऽखिलखलस्य विश्रृंखलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्ते: ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतै: सुखमाप्यते कै: ।। 59

अन्वय- उद्भासिताऽखिलखलस्य विश्रृंखलस्य प्राग्जात विस्तृत निजाधमकर्मवृत्ते: दैवात् अवाप्तविभ-वस्य गुणद्विष: अस्य नीचस्य गोचरगतै: कै: सुखम् आप्यते ।

हिन्दी अनुवाद – समस्त दुष्टों को प्रकाशित करने वाली, स्वेच्छाचारी , पहले किये गये अपने नीच कर्मों को व्यवहार में लाने वाले , भाग्य से धन पा जाने वाले तथा गुणों से वैर रखने वाले इस नीच पुरूष के सम्पर्क में आये हुए कौन से लोग सुख पाते हैं ? अर्थात् कोई भी सुख नहीं पाता।

व्याख्या - आशय यह है कि जो दुर्जनों का ही आश्रयदाता है , गुणद्वेषी है, जो भाग्यवश सम्पत्ति शाली बन गया है ऐसे दुष्ट धनीजन की सेवा में कोई भी सुख से नहीं रह सकता अत:ऐसे नीच की सेवा नहीं करनी चाहिये ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – वृत्ति: - वृत् + क्तिन्। अवाप्त – अव + आप् + क्त। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

इस श्लोक में आप सज्जनों और दुर्जनों की मित्रता के स्वरूप से परिचित होगें तथा दोनों की मित्रता में क्या अन्तर है यह भी जान पायेंगें–

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।। 60

अन्वय - खलसज्जनानाम् मैत्री दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छाया इव आरम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी पुरा लघ्वी पश्चात् च वृद्धिमती (भवति)।

अनुवाद – दुष्टों और सज्जनों की मित्रता दिन के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में भिन्न स्वरूप वाली छाया के समान प्रारम्भ में लम्बी फिर धीरे-धीरे क्षीण होने वाली तथा पहले छोटी और बाद में बढ़ने वाली होती है।

व्याख्या – तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार दोपहर से पूर्व की छाया प्रारम्भ में लम्बी होती है और फिर क्रमश: क्षीण हो जाती है उसी प्रकार दुर्जनों की मित्रता प्रारम्भ में बढ़ जाती है फिर क्रमश: घटती रहती है परन्तु दोपहर बाद की छाया प्रारम्भ में छोटी होती है और फिर क्रमश: बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की मित्रता प्रारम्भ में कम रहती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – गुर्वी – गुरू + ङीप्।क्षयिणी – क्षि + णिनि + ङीप्।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

बोध प्रश्न-6

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नही में दीजिये –

(क) जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन है। ( )
(ख) धन की चार गति होती है। ( )
(ग) राजसभागत दुर्जन भी सबके मन को कष्ट देता है। ( )
(घ) सेवाधर्म अत्यन्त सरल है। ( )
(ङ) नीच पुरूष के सम्पर्क से सुख प्राप्त होता है। ( )

अभ्यास प्रश्न – 4

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
(ख) विद्यालंकृत होने पर भी ---------- परिहेय ही होता है।
(ग) होतारं अपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति ----------।
(घ) सेवा धर्म ---------- के लिए अगम्य है।
(ङ) नीच पुरूष के सम्पर्क से ---------- की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

(च) मणिना भूषित: ---------- किमसौ न भयंकर: ।

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि मूर्खों का स्वभाव किस प्रकार का होता है व मूर्ख की मूर्खता का प्रतिकार अशक्य है साथ ही साथ आप अज्ञानी,ज्ञानी और अल्पज्ञानी के स्वभाव में अन्तर कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ क्षुद्र जन्तु के स्वभाव से परिचित हुए, विवेकहीन व्यक्ति के पतन के कारणों को भी आपने जाना कि किस प्रकार से विवके से भ्रष्ट व्यक्ति का पतन होता है साथ ही आप विद्या के महत्त्व से परिचित हुए, आपने जाना कि विद्या ही ऐसा धन है जो कभी समाप्त नहीं होता है विद्या से युक्त अर्थात् विद्वानों का सभी जगह सम्मान होता है इसके विपरीत मूर्खों का कहीं भी सम्मान नहीं होता है।

आपने जाना कि विद्या का क्या महत्त्व है। जिस व्यक्ति के पास विद्या रूपी धन है उसे किसी भी आभूषण की आवश्यकता नहीं रहती। इसके साथ ही आप सामाजिक जीवनोपयोगी अनेक शिक्षाओं से परिचित हुए। सत्संगति के महत्त्व को जाना, स्वाभिमानी तथा मनस्वी पुरूषों के आचरण से परिचित हुए तथा धन के महत्त्व को समझा कि धन के अभाव में गुणों का अस्तित्व तुच्छ तिनके के समान हो जाता है जिसके पास धन है उस के पास सब कुछ है धनरहित अवस्था में वही मनुष्य बदल सा जाता है। इसके पश्चात् आप दया, क्षमा, शौर्य, उदारता, सत्संगति, विद्या आदि उत्कृष्ट गुणों के महत्व को जानकर तथा इसे अपने जीवन में उतार कर अपने जीवन को उच्च एवं सफल बना सकते हैं।

आपने जाना कि मनुष्य के जीवन में धन का क्या महत्त्व है क्योंकि धन के अभाव में मनुष्य के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं और उसका समाज में कोई स्थान नहीं रहता है। इसलिए मनुष्य को धनार्जन करके दान आदि के द्वारा उसका सदुपयोग कर अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए। आपने यह भी जाना कि राजाओं में किन गुणों का होना आवश्यवक है , राजा को प्रजापालक होना चाहिए तथा राजनीति विविधरूपों वाली होती है और दुर्जन व्यक्ति का कभी साथ नहीं करना चाहिए। इन महत्त्व पूर्ण शिक्षाओं के अध्ययन के द्वारा आप जीवन के लिए क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी है यह समझा सकेगें। इस इकाई में आपने भर्तृहरि रचित नीतिशतकम् से संग्रहित अनेक जीवनोपयोगी सदुपदेशों का परिचय प्राप्त किया।

3.5 शब्दावली

अबोधोपहताश्चान्ये	-	अन्य लोग अज्ञानता से पीड़ित है
न रञ्जयति	-	सन्तुष्ट नहीं कर सकता।
प्रसह्य	-	साहस करके
सिकतासु	-	बालू के कणों में
समुज्जम्ज्मृ म भते	-	प्रयत्न करता है
छादनमज्ञतायाः	-	अज्ञानता को ढकने का
किञ्चिचज्ज्ञोऽहं	-	थोड़ा कुछ जानने वाला
कृमिकुलचितं	-	कीड़ों के समूह से भरी हुई
विवेकभ्रष्टानां	-	विवेक भ्रष्ट लोगों का
निशिताङ्कुशेन	-	तीक्ष्ण अंकुश से
शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः	-	शास्त्रों के ज्ञान से अलंकृत सुन्दर वाणी वाले
हर्तु	-	चोर (डाकू)
वारणानां	-	मदमस्त गजराजों को

वैदग्धकीर्तिम्	-	कुशलता के यश को
केयूराणि	-	बाजूबन्द
प्रच्छन्नगुप्तधनम्	-	अदृश्यगुप्त धन
पर्वतदुर्गेषु	-	पर्वत की गुफाओं में
पुच्छविषाणहीनः	-	बिना सींग और पूँछ के
मृगाश्चरन्ति	-	मृग के समान विचरण
अनवद्याविद्या	-	निर्दोष विद्या
दुर्जन:	-	दुष्ट लोग
देहिनां	-	मनुष्यों में
दाक्षिण्यं	-	उदारता
शौर्यं	-	वीरता
पुसां	-	पुरूषों के लिए
अपाकरोति	-	दूर करती है
अवञ्चक:	-	न ठगने वाला
अनुपहतविधि:	-	समुचित विधि वाला
कृशधन:	-	स्वधल्प: धन वाले
केसरी	-	सिंह
अस्थिकं	-	हड्डी के टुकड़ों को
जम्बुक	-	सियार
सत्त्वानुरूपं	-	शक्ति के अनुरूप
लांगूलचालनं	-	पूँछ हिलाना
कुसुमस्ताबक	-	पुष्पस गुच्छव
भास्वसरौ	-	प्रकाशयुक्त
कमठपतिना	-	कच्छतपराज
पयोधि :	-	समुद्र
पक्षच्छेसद:	-	पंखों का कट जाना
इनकान्ता:	-	सूर्यकान्तटमणि
मदमलिनकपोलभित्ति	-	मद से मलिन गण्डिस्थ ल वाले
अप्रतिहता	-	अकुण्ठित
विशेषविक्रमरूच	-	विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला
परिवर्तिनि	-	परिवर्तनशी
जराकृश:	-	वृद्धावस्थार केकारणक्षीण
गुणज्ञ:	-	गुणों को जानने वाला
ह्री:	-	लज्जा
कुतनय	-	कुपुत्र
तिस्र:	-	तीन
शाणेल्ली:ढ़:	-	सान पर खरादी गयी

समरविजयी	-	युद्धविजेता
तृणसमां	-	तिनके के समान
क्षितिधेनुं	-	पृथ्वीस रूपी गाय को
नृपनीति:	-	राजनीति
वारांगना	-	वेश्या्
परूषा	-	कठोर
चातकाधार:	-	पपीहे के आधार
अम्भोधदा:	-	बादल
अकरूणत्वं	-	निर्दयता
अकारणविग्रह:	-	बिना कारण के झगड़ना
असहिष्णुता	-	असहनशीलता
कैतवं	-	कपट
पिशुनता	-	चुगलखोरी
शशि	-	चन्द्रीमा
विगतवारिजं	-	कमलहीन
पावक:	-	अग्नि
जुह्वानं	-	हवन करने वाले
मूक:	-	गूंगा
गुणद्विष:	-	गुणों से द्वेष करने वाले
क्षयिणी	-	क्षीण होने वाली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर-1

(1) क. ख. ग; घ.

(2) (1) ख. भर्तृहरि (2)ग. मूर्ख
(3) क. नीतिशतक (4) क. 100

बोध प्रश्नोत्तर-2

(3) क ख. ग. घ.

(4) (1) ग. जल (2) ग. विद्या
(3) घ. नीतिशतक (4)ग. विद्वता

बोध प्रश्नोत्तर-3

अभ्यास प्रश्न 1- क. क्रोध ख. सत्संगति ग. विष्णु घ. विघ्नेभयेन ङ. सिंह

अभ्यास प्रश्न 2- क. हाँ ख. नहीं ग. हाँ घ. नहीं ङ. नहीं

बोध प्रश्नोत्तर- 4

अभ्यास प्रश्ना 3 -

क. श्लोक संख्या 23

ख. श्लोक संख्यार 30

ग. श्लोक संख्यार 40

घ. श्लोक संख्यार 29

अभ्या स प्रश्ना 4 -

1. श्लोक संख्या 33 का अर्थ देखें

2. श्लोक संख्या 38 का अर्थ देखें।

बोध प्रश्नोत्तर-5

अभ्यास प्रश्न 1 – क. स्वर्ण ख. तीन ग. निर्धन घ. कल्पलतेव ङ. वेश्या।

अभ्यास प्रश्न 2 –

क. श्लोक संख्या 48 देखें।

ख. श्लोक संख्या 42 देखें।

ग. श्लोक संख्या 41 देखें।

बोध प्रश्नोत्तर-6

अभ्यास प्रश्न 3 - क. हाँ ख. नहीं ग. हाँ घ. नहीं ङ. नहीं।

अभ्यास प्रश्न 4 - क. दुर्जन ख. पावक: ग. योगियों घ. सुख ङ. सर्प:।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) श्री कृष्णमणि त्रिपाठी - नीतिशतकम् (भर्तृहरिरचित)चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,37/117 गोपालमन्दिर लेन,पो0बा0न0-1129, वाराणसी-221001

(2) पं0 ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी- भर्तृहरि शतकरणधीर बुक सेल्स प्रकाशन,182, एस0एन0 नगर, हरिद्वार।

(3) डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- महालक्ष्मी प्रकाशन,शहीद भगत सिंह मार्ग,आगरा-28200

(4) श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।

(5) श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् , श्री कृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 37/ 117 गोपाल मन्दिर लेन , वाराणसी।

3.8 उपयोगी पुस्तकें

(1) सुनील शर्मा- भर्तृहरि शतकमनोज पब्लिकेशन,761, मेन रोड बुराड़ी,दिल्ली-110084

(2) श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।

(3) भर्तृहरिशतक, पं0 ज्वालाप्रसाद चतुर्वेदी, रणधीर बुक सेल्सा प्रकाशन, 182 एस0 एन0 नगर हरिद्वार ।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- मूर्खों के स्वभाव के विषय में विस्तार से समझाइये।

2- विद्या के महत्त्व को बताइये।

3- सत्संगति के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

4- स्वाभिमानी व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन कीजिए।

5- धन के महत्त्व की व्याख्या कीजिए।

6- दुर्जन के स्वाभाव का वर्णन कीजिए।

इकाई .4 पण्डित नारायण का जीवनवृत्त एवं हितोपदेश की कथाओं का सारांश

इकाई की रूपरेखा –

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 नारायण पण्डित का जीवनवृत्त एवं रचना काल
4.4 हितोपदेश की कथाओं का सारांश
    4.4.1 प्रथम भाग मित्रलाभ का सारांश
    4.4.2 द्वितीय भाग सुहृद्भेद का सारांश
    4.4.3 तृतीय भाग विग्रह का सारांश
    4.4.4 चतुर्थ भाग सन्धि का सारांश
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि नीति कथाओं का किस प्रकार विकास हुआ एवं इसकी कथाओं से प्राप्त शिक्षाओं का मानव जीवन में क्या महत्त्व है । नीतिकथाओं के विकास एवं महत्व के अध्ययन के पश्चात् आप इस इकाई में नारायण पण्डित का जीवनवृत्त एवं रचना काल एवं हितोपदेश की कथाओं का अध्ययन करेगें हितोपदेश की कथायें चार भागों में विभक्त है 1- मित्रलाभ 2-सुहृद्भेद 3- विग्रह 4- सन्धि। इन चार भागों की मूल कथाओं के साथ ही कुछ अन्तर्कथायें भी हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हितोपदेश की कथाओं का सार बता पायेगें । तथा पशु-पक्षियों की कथाओं के माध्यम से प्राप्त शिक्षाओं का मानव-जीवन में क्या महत्त्व है यह भी समझा पायेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- नारायण पण्डित का जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- हितोपदेश की कथाओं से परिचित हो पायेगें।
- यह बता पायेगें कि इस ग्रन्थ की रचना पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के मूर्ख पुत्रों को गुणवान एवं सदाचारी बनाने के लिये की गई।
- समझा सकेगें कि राजनीति में अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए शत्रु के सुहृद्धों (मित्रों) में भेदनीति से फूट डालना किसी भी विद्वान राजा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।
- समझा सकेगें कि मन्त्रियों की दूरदर्शिता से ही दो राज्यों में सन्धि संभव हो सकी।
- नारायण पण्डित के रचना काल के विषय में जान सकेंगे।

4.3 नारायण पण्डित का जीवनवृत्त एवं रचना काल

पण्डित नारायण ने पंचतन्त्र तथा अन्य नीति के ग्रंथों की सहायता से हितोपदेश नामक इस ग्रंथ का सृजन किया। स्वयं पं. नारायण जी ने स्वीकार किया है--पंचतन्त्रान्तथाडन्यस्माद् ग्रंथादाकृष्य लिख्यते। इसके आश्रयदाता का नाम धवलचंद्रजी है। धवलचंद्रजी बंगाल के माण्डलिक राजा थे तथा नारायण पण्डित राजा धवलचंद्रजी के राजकवि थे। मंगलाचरण तथा समाप्ति श्लोक से नारायण की शिव में विशेष आस्था प्रकट होती है। उनके समय के बारे में ठीक से ज्ञात नहीं है। कथाओं से प्राप्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर डॉ॰ फ्लीट का मानना है कि इसकी रचना 11वीं शताब्दी आस- पास होना चाहिये। हितोपदेश का नेपाली हस्तलेख 1373 ई. का प्राप्त है। वाचस्पति गैरोलाजी ने इसका रचनाकाल 14 वीं शती के आसपास माना है। इन तथ्यों से नारायण पण्डित का काल 11वीं से 14वीं शताब्दी के आसपास का मालूम होता है।

रचना काल— नीतिकथाओं में पंचतन्त्र का पहला स्थान है। विभिन्न उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना तीसरी शताब्दी के आस-पास निर्धारित की जाती है। हितोपदेश की रचना का आधार पंचतन्त्र ही है। कथाओं से प्राप्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर डा. फ्लीट कर मानना है कि इसकी रचना काल ११ वीं शताब्दी के आस-पास होना चाहिये। हितोपदेश का नेपाली हस्तलेख १३७३ ई. का प्राप्त है। वाचस्पति गैरोला जी ने इसका रचनाकाल १४ वीं शती के आसपास माना है। हितोपदेश की कथाओं में अर्बुदाचल (आबू),

पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, मालवा, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज (कन्नौज), वाराणसी, मगधदेश, कलिंगदेश आदि स्थानों का उल्लेख है, जिसमें रचयिता तथा रचना की उद्गमभूमि इन्हीं स्थानों से प्रभावित है। हितोपदेश की कथाओं को इन चार भागों में विभक्त किया जाता है—

1.मित्रलाभ 2. सुहृद्भेद 3. विग्रह 4. संधि

4.4 हितोपदेश की कथाओं का सारांश

4.4.1 प्रथम भाग मित्रलाभ का सारांश

इस ग्रन्थ के मित्रलाभ भाग में कुल 216 श्लोक हैं , जिनमें यह बताया गया है कि किसी भी प्रकार का साधन या धन ना होने पर भी विवेकपूर्ण मित्रता से संगठित होकर असाध्य कार्य को भी सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पण्डित विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा से सम्बन्धित मित्रता की अनेक कथायें सुनाई जो इस प्रकार हैं —

चित्रग्रीव और हिरण्यक की कथा -

गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल सेमल का वृक्ष था, जिस पर विभिन्न दिशाओं से आकर पक्षी रात्रि में निवास करते थे। एक दिन प्रात:काल लघुपतनक नामक कौऐ ने एक व्याध को हाथ में जाल लिए आते हुए देखा। ऐसा देखकर उसने सोचा कि आज प्रात:काल ही अनिष्ट के दर्शन हुए हैं पता नहीं किस विपत्ति का सामना करना पडेगा यह सोचकर वह उसके पीछे-पीछे चल दिया। उस बहेलिये ने पृथ्वी पर चावल बिखेर कर जाल बिछा दिया और स्वयं छिपकर बैठ गया। उसी समय चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा अपने परिवार तथा अन्य मित्र कबूतरों के के साथ आकाश में उड रहा था उसने चावल के कणों को देखकर कहा इसमें अवश्य ही कोई धोखा है अत: हमें इसे खाने का लोभ नहीं करना चाहिए। परन्तु उसके साथी कबूतरों ने बात नही मानी फलस्वरूप वे सभी जाल में फँस गये। अब वे सब पछताने लगे उन्हें आपत्ति में फँसे देखकर चित्रग्रीव ने कहा कि सभी एक साथ ताकत लगाकर जाल को लेकर उड चलो। सभी कबूतरों ने ऐसा ही किया और शिकारी निराश हो गया। जाल लेकर वे गण्डकी नदी के किनारे चित्रवन में पहुंचे जहाँ हिरण्यक नामक चूहों का राजा रहता था जो चित्रग्रीव का मित्र था। हिरण्यक ने जाल काटकर उन सबको बन्धन मुक्त कर दिया। इस प्रकार इस कहानी से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि छोटे या बडे सभी से मित्रता करनी चाहिये क्योंकि मित्र चूहे के कारण ही सभी कबूतर बन्धन मुक्त हुए।

वृद्ध व्याघ्र और लोभी पथिक की कथा-

दक्षिण दिशा में दण्डकारण्य नामक वन है, वहाँ किसी समय एक व्याघ्र रहता था। वृद्ध हो जाने के कारण वह शिकार करने में असमर्थ हो चुका था। एक बार वह स्नान करके हाथ में कुश और सोने का कंगन लेकर तालाब के किनारे बैठ गया। जो यात्री तालाब के किनारे से निकलता , उससे वह कहता कि है कि हे यात्रियों ! आप मुझसे यह सोने का कंगन दान में ले लो , किन्तु मृत्यु के भय से कोई भी उस सुवर्ण कंकण को ग्रहण करने के लिये व्याघ्र के समीप नहीं जाता था। किसी समय एक लोभी पथिक उस तालाब के किनारे से गुजर रहा था, व्याघ्र ने उसे भी सोने के कंगन का लालच दिया। पथिक ने कहा – तुम हिंसक प्राणी हो तुम्हारा क्या भरोसा ? व्याघ्र ने कहा – मैंने अपनी युवावस्था में बहुत से प्राणियों का वध किया है और इसी पाप कर्म के कारण मैं निर्वंश हो गया हूँ, अपने इन्हीं पापों के प्रायश्चित के लिए तुम्हें यह सोने का कंगन देना चाहता हूँ, तुम तालाब में स्नान करके इसे ग्रहण कर लो। पथिक ने सुवर्ण कंकण के लोभ में व्याघ्र की बात मान ली और वह स्नान करने के लिए तालाब में उतर गया। तालाब में पानी कम और कीचड अधिक था वह उस कीचड में धँस गया। अब

वह वहाँ से भागने में असमर्थ था। व्याघ्र ने उस लोभी पथिक का भक्षण कर लिया। इसीलिये कहा जाता है कि कभी लोभ नहीं करना चाहिये।

हिरण, कौआ, और सियार की कथा

मगध प्रान्त में चम्पक वन में मृग तथा कौआ दो मित्र रहते थे। एक बार मृग पर किसी श्रृगाल की दृष्टि पडी। श्रृगाल के हृदय में उस मृग का माँस खाने की इच्छा हुई। इस उद्देश्य से उसने मृग के साथ मित्रता कर ली। सांयकाल जब वह उस श्रृगाल के साथ अपने निवास स्थान पर पहुँचा तो मृग के मित्र कौवे ने कहा – इस श्रृगाल से मित्रता करना उचित नहीं है क्योंकि अपरिचित से मित्रता अच्छी नहीं होती। इसी प्रसंग में वह जरद्गव तथा मार्जार की कथा सुनाता है। परन्तु क्षुद्रबुद्धि नामक वह सियार सुबुद्धि नामक कौवे के कथन का विरोध करते हुए कहता है कि प्रथम दिन तुम भी अचानक आये हुए अज्ञातकुलशील ही थे, फिर तुम दोनों की मैत्री कैसे दिनोंदिन बढ़ रही है ? यह अपना है यह पराया है इस प्रकार का विचार तो तुच्छ मानसिकता वाले ही करते है उदार हृदय वालों का तो प्राणीमात्र ही परिवार होता है। इसके बाद वह तीनों एक साथ रहने लगे।

एक दिन सियार ने वन में स्थित एक खेत में जाकर मृग को वहाँ चरने की सलाह दी। वह मृग वहाँ प्रतिदिन जाकर चरने लगा। दुर्भाग्य से एक दिन उस खेत के स्वामी द्वारा बाँधे हुए जाल में मृग फँस गया। मृग ने सियार से आग्रह किया कि वह उसके बन्धनों को काट दे ,किन्तु सियार ने रविवार व्रत का बहाना बनाकर स्नायुनिर्मित बन्धनों को स्पर्श न करने की बात कहकर उसे टाल गया। इधर प्रतिदिन के समान सांयकाल होने पर भी मृग के घर वापस न लौटने पर सुबुद्धि कौआ उसे ढूँढता हुआ वन में आया और मृग को इस प्रकार जाल में फँसा हुए देखकर बोला – हे मित्र ! यह क्या ! तब रोते हुए मृग ने कहा कि मित्र की बात ना मानने का फल भोग रहा हूँ। कौवे ने कहा कि मैंने पहले ही कहा था कि दुष्ट का साथ कदापि नहीं करना चाहिये। फिर कौवे ने पूछा कि वह दुष्ट सियार कहाँ है इस पर मृग ने कहा कि वह मेरा माँस खाने के लिए यहीं छिपा बैठा है। तब कौवे ने कहा कि मैं जैसा कहता हूँ तुम वैसा ही करना अभी क्षेत्रपति आयेगा तुम मृतवत् हो जाना। मैं तुम्हारी आँख कुरेदता रहूँगा यह देखकर क्षेत्रपति तुम्हें मृत समझ कर जाल उठा लेगा। मेरे काँव-काँव करते ही तुम उठ कर भाग जाना। मृग ने वैसा ही किया। मृग के इस प्रकार भाग जाने पर क्रुद्ध क्षेत्रपति ने लाठी मृग की तरफ फेंकी ,जो पास में छिपकर बैठे सियार को लगी और वह मारा गया।

जरद्गव गीध तथा दीर्घकर्ण बिलाव की कथा

गंगा नदी के तट पर गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पर्कटी का वृक्ष था। उसके कोटर में एक वृद्ध गीध रहता था, जिसका नाम जरद्गव था। वह अत्यन्त निर्बल होने के कारण भोजनार्जन में सक्षम नहीं था जिस कारण वह उसी वृक्ष पर निवास करने वाले पक्षियों के बच्चों की देखभाल करता था जिसके बदले में सभी पक्षी अपने आहार में से कुछ भाग बचाकर उसे दे देते थे। एक बार दीर्घकर्ण नामक बिलाव वहाँ आया तथा चालाकी से अपनी बातों में जरद्गव को फँसाकर वहीं वृक्ष पर रहने लगा। कुछ दिन शान्त रहकर बाद में वह पक्षियों के बच्चों को खाने लगा तथा उन की हड्डियाँ जरद्गव के कोटर में डालने लगा। जिन पक्षियों के बच्चों को बिलाव ने खा लिया था वे पक्षी अपने बच्चों को इधर-उधर ढूँढने लगे। यह जान कर वह बिलाव धीरे से वहाँ से भाग गया तथा उसके कोटर में पडी हुई हड्डियों को देखकर इस गीध ने ही हमारे बच्चों को खाया है ऐसा निश्चय कर उसे उन पक्षियों ने मिलकर मार डाला। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है – अज्ञातकुलशील को आश्रय नहीं देना चाहिए।

मूषकपरिव्राजक – कथा

चम्पक नामक नगरी में सन्यासियों का एक मठ था। वहाँ चूडाकर्ण नामक एक सन्यासी रहता था। भिक्षान्न से अवशिष्ट भोजन को वह खूँटी पर टाँग देता तथा वहीं सोता था। मै उस भोजन को कूद-कूद कर खाया करता था। एक बार उसका मित्र वीणाकर्ण नामक सन्यासी आया ,वीणाकर्ण के द्वारा विभिन्न कथा प्रसंगों मे उसका मन नहीं लग रहा था। यह देखकर वीणाकर्ण ने उसका कारण पूछा। तब चूडाकर्ण ने कहा कि यह अल्प बल वाला चूहा भिक्षान्न से अवशिष्ट भोजन को कूद-कूद कर खाया करता है। वीणाकर्ण ने कहा – छोटा सा चूहा इतना ऊँचा उछलता है इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए बिना कारण के ऐसा नहीं हो सकता। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसने बहुत सा धन एकत्रित कर लिया है। इसी एकत्रित धन के अभिमान से यह बहुत कूद रहा है। यह कहकर उसने चूहे के बिल को खोदा और उसका सारा धन ले लिया। एक दिन शक्तिहीन चूहें को धीरे-धीरे चलता देखकर वीणाकर्ण ने कहा " मित्र चूडाकर्ण ! धनहीन इस चूहे को देखो कितना धीरे-धीरे चल रहा है "। इसीलिए नीति भी कहती है कि " समस्त धनवान इस संसार में सर्वत्र सदा ही बलवान रहतें हैं "। क्योंकि राजा को भी प्रभुता धन से ही प्राप्त होती है।

भैरव व्याघ्र तथा लोभी श्रृगाल की कथा

कल्याण कटक नामक देश में भैरव नामका एक व्याघ्र रहता था। एक बार वह शिकार खेलने के लिए जंगल में गया तथा बाण से एक मृग को मार कर घर को लौटते समय उसने एक बडे सुअर को देखा। उसने मृग को नीचे रखकर उस सुअर पर बाण चला दिया। बाण लगने से क्रुद्ध सुअर ने शिकारी के अण्डकोश पर प्रहार किया जिससे वह उसी समय गिर कर मर गया। गिरने से उसके नीचे दब कर एक सर्प भी मर गया। इधर बाण की पीडा से व्याकुल होकर सुअर भी मर गया। इतने में कहीं से घूमता हुआ एक लोभी श्रृगाल वहाँ आया तथा मरे हुए सर्प, व्याघ्र, सुअर तथा शिकारी के धनुष को देखकर विचार करने लगा – आज तो खूब भोजन प्राप्त हो गया यह चार महीने तक चलेगा। अत: आज तो तेज भूख में धनुष की डोरी को ही खाया जाय। ऐसा विचार कर जैसे ही उसने धनुष की डोरी को खाने के लिए काटा वैसे ही धनुष उछला और उछलकर उसके पेट में लगा और वह भी वहीं मर गया। इसीलिए नीतिकारों के द्वारा कहा गया है कि संचय तो करना चाहिए किन्तु बहुत अधिक संचय नहीं करना चाहिये।

कर्पूर तिलक हाथी एवं धूर्त श्रृगाल की कथा

ब्रह्मारण्य में कर्पूर तिलक नाम का एक हाथी रहता था। उसे देखकर जंगल के सियारों ने विचार किया कि किसी तरह यह हाथी मर जाये तो हम सबकों इच्छानुसार चार मास का भोजन प्राप्त हो जायेगा। यह सुनकर एक सियार ने प्रतिज्ञा की ' मै उसको अपनी बुद्धि से मारूँगा'। ऐसा कहकर उसने कर्पूरतिलक हाथी के पास जाकर साष्टांग प्रणाम करके कहा – जंगल में रहने वाले सब पशुओं ने मिलकर मुझे आपके पास भेजा है कि बिना राजा के रहना अच्छा नहीं है और इस समय राजा होने के योग्य आप ही हैं। इसलिए राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त कहीं बीत ना जाये आप शीघ्र ही मेरे साथ चलिये। कर्पूरतिलक तत्काल उसके साथ चलने को तैयार हो गया तथा मार्ग में दलदल में फँस गया। दलदल में फँसकर कहने लगा कि अब मैं क्या करूँ? यह सुनकर उस सियार ने कहा कि मेरे जैसे नीच का विश्वास करने का फल भोगों। इस प्रकार दलदल में फँसा हुआ वह हाथी मर गया। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि ' जो कार्य उपाय से हो उसे पराक्रम से नहीं करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न — 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1• मित्रलाभ भाग में कुल ---------- श्लोक हैं।

2• गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल ---------- का वृक्ष था।

3• ब्रह्मारण्य में ---------- नाम का एक हाथी रहता था।

4• ---------- नामक देश में भैरव नामका एक व्याघ्र रहता था।

5• चम्पक वन में ---------- तथा कौआ दो मित्र रहते थे।

6• चूडाकर्ण का मित्र ---------- नामक सन्यासी था।

अभ्यास प्रश्न — 2

निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए।

1• पंचतन्त्र के लेखक है —

क. नारायण पण्डित ख. विष्णुशर्मा

ग. राजशेखर घ. इनमें से कोई नहीं

2• चित्रग्रीव कौन था —

क. चूहा ख. व्याघ्र

ग. कबूतरों का राजा घ. मृग

3• व्याघ्र दान में क्या देना चाहता था —

सुवर्णकंकण

भोजन

सुवर्णहार

अन्न

4• हिरण्यक कौन था —

बन्दर

बिल्ली

चूहा

कच्छप

5• हितोपदेश से किस प्रकार की शिक्षायें प्राप्त होती है —

नीतिपरक

सुनीतिपरक

ऐतिहासिक

राजनीतिक

6• हितोपदेश किसकी रचना है —

कालिदास

शूद्रक

विष्णुशर्मा

नारायण पण्डित

4.4.2 द्वितीय भाग सुहृद्भेद का सारांश

हितोपदेश का द्वितीय भाग सुहृद्भभेद राजनीति, विशेषकर कूटनीति की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है , क्योंकि राजनीति में शत्रु का शत्रु मित्र और मित्र का शत्रु शत्रु माना जाता है। इसलिए किसी भी बुद्धिमान राजा को शत्रु के सुहृद्धों में भेदनीति से फूट डालना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस भाग में शत्रु के मित्रों में फूट उत्पन्न करके अपने कार्य की सिद्धि के उपाय बतायें गये हैं जो 184 श्लोकों में संगृहीत हैं। इस भाग का कथासार इस प्रकार है —

संजीवक और पिंगलक की कथा (मूलकथा का सारांश) -

दक्षिणापथ में सुवर्णवती नाम की एक नगरी थी। जिसमें वर्धमान नाम का एक धनी बनिया रहता था। एक बार वह व्यापार के उद्देश्य से गाडी में बहुत सी वस्तुयें भरकर नन्दक और संजीवक नामक दो बैलों को जोतकर कश्मीर की ओर चला , किन्तु सुदुर्ग नामक विशाल वन में घुटना टूट जाने के कारण संजीवक गिर पडा , तब वणिक ने उसे वहीं छोडकर दूसरा बैल खरीद कर गाडी में जोत लिया और आगे चल दिया। उधर संजीवक भी कुछ दिनों में स्वस्थ हो गया और इच्छानुसार आहार-विहार करने वह हृष्ट– पुष्ट हो गया। उस वन का राजा पिंगलक नामका एक शेर था। एक बार वह प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना नदी के किनारे गया। उसी समय उसे वहाँ मेघों के गम्भीर गर्जन के समान संजीवक की आवाज सुनाई दी। उस भयंकर ध्वनि को सुनकर आश्चर्यचकित हो वह वहाँ बिना पानी पिये ही बैठ गया और विचार करने लगा कि यह अद्भुत आवाज किसकी है ? उसे इस प्रकार उदास बैठे देखकर उसके प्रधानमन्त्री के दो पुत्र करकट और दमनक आपस में विचार करने लगे कि ऐसा प्रतीत होता है कि राजा इस समय बहुत भयभीत है और यदि हम इनके भय का निवारण कर दे तो इनके विश्वासपात्र बन जायेंगें। आपस में विचार-विमर्श करके दमनक सिंह के पास पहुँचा और परस्पर वार्तालाप के माध्यम से उसने राजा के भयभीत होने का कारण जान लिया। उसने राजा के समक्ष उसका भय दूर करने की प्रतिज्ञा की और करकट के पास लौट आया। दमनक ने करकट से कहा कि – मित्र ! राजा संजीवक नामक बैल की आवाज से डर गया है। यदि मैं चाहता तो उसी समय उसके भय को दूर कर सकता था किन्तु मेरे मन में यह विचार आया कि क्यों ना हम लोग राजा के विश्वासपात्र बनकर उससे उपहार भी प्राप्त करें और बैल को अपना भक्ष्य भी बनायें। इसलिये आप यहीं बैठे मैं संजीवक को लेकर यहीं आता हूँ फिर हम लोग राजा के पास चलेगें। ऐसा कहकर दमनक संजीवक के पास गया और बोला – अरे बैल मुझे राजा पिंगलक ने इस वन की रखवाली के लिये रखा है तुम शीघ्र ही सेनापति करकट के पास चलो अन्यथा इस जंगल को छोडकर चले जाओ। यह सुनकर भयभीत संजीवक करकट के पास गया और प्रणाम करके बोला – हे सेनापति मेरे लिए क्या आज्ञा है ? करकट ने कहा कि यदि तुम इस जंगल में रहना चाहते हो तो हमारे राजा को चलकर नमस्कार करो तुम्हे डरने की आवश्यकता नहीं है। हमारे राजा शरण में आये हुए का अपकार नहीं करते। ऐसा कहकर वे तीनों पिंगलक के पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होनें संजीवक को थोडी दूर पर बैठाकर स्वयं पिंगलक के पास जाकर बोले – हे महाराज !हमनें उस मेघगर्जन के समान शब्द करने वाले का पता लगा लिया है। वह अत्यन्त शक्तिशाली है और आपसे मिलना चाहता है , अत: आप तैयार होकर बैठिये। उसके बाद वे दोनों संजीवक को उसके पास ले आये। संजीवक और पिंगलक में मित्रता हो गयी और वे दोनों साथ-साथ रहने लगे।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण उसके घर आया। उसका सत्कार करने के पश्चात् पिंगलक उसके भोजन की व्यवस्था करने के लिए शिकार करने चला गया। तब संजीवक ने कहा – महाराज ! आज ही दो मृग मारे गये थे फिर उनके माँस का क्या हुआ। पिंगलक ने कहा कि वो दमनक और करकट ही जाने उन्होनें कुछ खाया

होगा और कुछ फेंक दिया होगा। यह सुनकर स्तब्धकर्ण ने कहा कि इस प्रकार अपव्यय ठीक नहीं है अत: आपको धनसंग्रह सम्बन्धी अधिकार संजीवक को दे देना चाहिए। पिंगलक ने स्तब्धक की बात मानकर अर्थाधिकार संजीवक को दे दिया। इससे दमनक और करकट को परेशानी होने लगी और वे संजीवक के शत्रु हो गये। वे बल से तो जीत नहीं सकते थे अत: उन्होनें संजीवक और पिंगलक की मैत्री में फूट डालने का निश्चय किया। एक दिन दमनक ने पिंगलक से कहा कि संजीवक किसी दिन बल प्रयोग करके आपका राजपाट छीन लेगा। इस प्रकार दमनक ने उसके हृदय में सुहृद्भेद के बीज बो दिये। उधर उसने संजीवक को भी समझाया कि पिंगलक तुमको मार डालना चाहता है अत: उसके आक्रमण करने के पूर्व ही तुम अपने तीक्ष्ण सींगों से उसका वध कर दो। दमनक के इस प्रकार भडकाने पर संजीवक अत्यन्त क्रोध में भरकर पिंगलक के पास गया। उसे आक्रमण की मुद्रा में आते देखकर पिंगलक ने क्रुद्ध होकर उस पर छलाँग लगा दी और अपने तीक्ष्ण नाखूनों से उसे फाड डाला। इस प्रकार सुहृद्भेद नीति से दमनक और करकट ने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया।

अभ्यास प्रश्न — 3

निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिये।

1• दक्षिणापथ में स्थि ात नगरी का क्या नाम है।

2• वणिक का क्या नाम था।

3• नन्दक और संजीवक कौन थे।

4• पिंगलक किसका नाम था।

5• स्तब्धकर्ण कौन था।

4.4.3 तृतीय भाग विग्रह का सारांश

विग्रह शब्द का अर्थ है – विरोधियों में फूट डालना। अपने साम्राज्य विस्तार और सुरक्षा की दृष्टि से यह नीति प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के इस भाग में कुल 149 श्लोक हैं जिसमें कथाओं के माध्यम से विग्रह का महत्व समझाया गया है। इस भाग की मूल कथा का सार निम्नवत् है –

हिरण्यगर्भ और चित्रवर्ण की कथा (मूल कथा का सारांश)

कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नामका एक सरोवर था। उसमें हिरण्यगर्भ नामक राजहंस पक्षियों के राजा के रूप में रहता था। वहाँ से कुछ ही दूरी पर जम्बूद्वीप में विन्ध्याचल पर्वत पर चित्रवर्ण नाम का एक मयूर पक्षीराज के रूप निवास करता था। एक दिन पद्मकेलि सरोवर का एक बगुला भ्रमण करते हुए जम्बूद्वीप पहुँचा। उसे दूसरे राज्य से आया हुआ जानकर चित्रवर्ण के सेवक उसे चित्रवर्ण के पास ले गये। उस बगुले ने चित्रवर्ण से अपने राज्य और राजा की प्रशंसा की जिससे क्रोधित होकर उसने कर्पूरद्वीप में आक्रमण करने का निश्चय किया। बगुले ने यह सूचना अपने राजा को दी ,इधर चित्रगुप्त ने भी शुक को अपना दूत बनाकर इस सन्देश के साथ भेजा कि वह बिना युद्ध के ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ले। हिरण्यगर्भ के मन्त्री सर्वज्ञ नामक चक्रवाक ने राजा से कहा कि इस मूर्ख बगुले के कारण ही हमारा राज्य युद्ध की स्थिति में फँस गया है और ऐसा इसने किसी के बहकावे में आकर किया है अत: आप गुप्तचर भेजकर शत्रु के सामर्थ्य की जानकारी कीजिये और दूत शुक को अतिथिशाला में ठहराकर अपनी सेना और दुर्ग को व्यवस्थित कीजिये। समय द्वारपाल ने आकर एक कौवे के आने की सूचना दी। किन्तु चक्रवाक ने शत्रुपक्ष का होने के कारण उसे आश्रय देने से मना कर दिया। परन्तु राजा ने कहा कि कौआ बहुत बुद्धिमान होता है इससे गुप्तचर का कार्य लेना चाहिये। दूत शुक के द्वारा चित्रवर्ण का सन्देश सुनकर हिरण्यगर्भ बहुत क्रोधित हुआ किन्तु चक्रवाक ने उसे समझाकर शान्त किया और

दूत को उपहार देकर विदा कर दिया। इधर शुक ने कर्पूरद्वीप की समृद्धता का वर्णन करते हुए उस पर आक्रमण करने का आग्रह किया किन्तु चित्रगुप्त के मन्त्री गृध्र ने आक्रमण ना करने की सलाह दी। परन्तु चित्रवर्ण ने उसकी बात नहीं मानी और मलय पर्वत की चोटी पर सेना का डेरा डाल दिया। इधर चक्रवाक द्वारा नियुक्त गुप्तचर ने वहाँ की सारी गतिविधियों की जानकारी हिरण्यगर्भ और चक्रवाक को दी। और यह भी बताया कि चित्रवर्ण ने किसी को कपटदूत बनाकर किले में प्रवेश करा दिया है। किन्तु राजा ने उस की बात ना मानकर युद्धनीति पर चर्चा की। चक्रवाक ने राजा को समझाते हुए कहा कि चित्रवर्ण ने अपने मन्त्री की सलाह को ना मानते हुए आक्रमण किया है अत: आप प्रधान सेनापति को आदेश दीजिये कि वह वनों, नदियों एवं पहाडों में छिपकर चित्रवर्ण की सेना पर आक्रमण करें। राजा हिरण्यगर्भ ने उसकी बात मानकर आक्रमण किया परिणामस्वरूप चित्रवर्ण की बहुत सी सेना मारी गयी। इससे परेशान होकर चित्रवर्ण ने ग्रृध्र से सलाह लेकर कौवे से महल के अन्दर आग लगवा दी। जिससे घबराकर हिरण्यगर्भ की सेना सरोवर में छिप गयी। हिरण्यगर्भ चित्रवर्ण के सेनापति मुर्गे से युद्ध करता हुआ घायल हो गया , जिसे उसके सेनापति सारस ने अपने प्राण देकर बचाया।

उस कथा के माध्यम से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि दूरदर्शी एवं स्वामिभक्त मन्त्री की सलाह अपने राजा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। यदि मन्त्री चक्रवाक की बात मानकर हिरण्यगर्भ ने कौवे को आश्रय न दिया होता तो उसकी पराजय न होती।

4.4.4 चतुर्थ भाग सन्धि का सारांश

हिरण्यगर्भ और चित्रवर्ण में सन्धि की कथा (मूलकथा का सारांश)

अपनी पराजय के बाद हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री चक्रवाक से पूछा कि हमारे किले में आग किसने लगायी थी ? तब चक्रवाक ने कहा – महाराज ! यह उसी कौवे का कार्य था और अब गुप्तचरों से यह ज्ञात हुआ है कि चित्रवर्ण उसे कर्पूरद्वीप का राजा बना रहे हैं परन्तु उनके मन्त्री ग्रृध्र ने इसका विरोध करते हुये आपसे सन्धि करने का परामर्श दिया किन्तु विजय के अभिमान में उन्मत्त हिरण्यगर्भ इस बात को स्वीकार नहीं कर रहा है अत: मेरे विचार से आप अपने मित्र सिंहलद्वीप के राजा सारस को चित्रवर्ण के राज्य पर आक्रमण करनें के लिए कहें। इस बात को मानकर राजा हिरण्यगर्भ ने विचित्र नामक बगुले को दूत बनाकर सिंहलद्वीप के राजा सारस के पास भेज दिया। सारस ने अपने मित्र के सन्देश के अनुसार जम्बुद्वीप को घेर लिया। जैसे ही चित्रगुप्त को यह ज्ञात हुआ हुआ वह क्रोधित होकर युद्ध के लिये सेना तैयार करने लगा। यह देखकर उसके दूरदर्शी मन्त्री ग्रृध्र ने कहा कि यदि आप सारस से युद्ध करेगें तो हिरण्यगर्भ भी आप पर आक्रमण कर देगा अत: आप को पहले हिरण्यगर्भ से सन्धि कर लेनी चाहिए।

मन्त्री बात मानकर चित्रवर्ण ने ग्रृध्र को ही सन्धि के लिए भेज दिया। इधर ग्रृध्र को आता जानकर हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री चक्रवाक से परामर्श किया। इस पर चक्रवाक ने कहा महाराज हमें सन्धि कर लेनी चाहिये। चक्रवाक ने ग्रृध्र का स्वागत किया और उसे राजा के पास ले गया और दोनों राज्यों में कांचनाभिधान नामक सन्धि करा दी , जिसके अनुसार सम्पूर्ण जीवन में सम्पत्ति या विपत्ति प्रत्येक दशा में दोनों एक दूसरे के मित्र बने रहेगें। इस प्रकार मन्त्रियों की दूरदर्शिता से विग्रह के बाद दोनों राज्यों में सन्धि हो गई और वे सुखपूर्वक रहने लगें।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके है कि हितोपदेश नामक ग्रन्थ की कथायें चार भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग मित्रलाभ में कुल 216 श्लोक हैं , जिनमें यह बताया गया है कि किसी भी प्रकार का

साधन या धन ना होने पर भी विवेकपूर्ण मित्रता से संगठित होकर असाध्य कार्य को भी सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पण्डित विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा से सम्बन्धित मित्रता की अनेक कथायें सुनाई। हितोपदेश का द्वितीय भाग सुहृद्भेद, राजनीति, विशेषकर कूटनीति की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि राजनीति में शत्रु का शत्रु मित्र और मित्र का शत्रु शत्रु माना जाता है। इसलिए किसी भी बुद्धिमान राजा को शत्रु के सुहृद्धों में भेदनीति से फूट डालना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस भाग में शत्रु के मित्रों में फूट उत्पन्न करके अपने कार्य की सिद्धि के उपाय बतायें गये हैं जो 184 श्लोकों में संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ के तृतीय भाग में कुल 149 श्लोक हैं जिसमें कथाओं के माध्यम से विग्रह का महत्व समझाया गया है। तथा सन्धि नामक चतुर्थ भाग के अध्ययन से आपने यह भी जाना कि किस प्रकार मन्त्रियों की दूरदर्शिता से राज्यों में सन्धि हो जाती है।

4.6 शब्दावली

सुहृद्ध	मित्र
परामर्श	सलाह
असाध्य	कठिन
लोभ	लालच
क्षेत्रपति	खेत का स्वामी
पर्कटी	पाकड
कोटर	खोखला
परिव्राजक	सन्यासी
अवशिष्ट	बचा हुआ
वणिक	बनिया

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – 1• 216 2• सेमल 3• कर्पूरतिलक 4•कल्याणकटक 5• मृग 6• वीणाकर्ण ।

अभ्यास प्रश्न 2 – 1- ख 2- ग 3- क 4- ग 5- क 6- घ

अभ्यास प्रश्न 3 - 1- सुवर्णवती 2- वर्धमान 3- बैल 4- शेर (वन का स्वामी) 5- पिंगलक

4•8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर ।

4.9 उपयोगी पुस्तकें

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर ।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1• मित्रलाभ की किन्हीं तीन कथाओं को लिख कर प्राप्य शिक्षायें बताइये।

2• संजीवक और पिंगलक की कथा का वर्णन कीजिये।

3• तृतीय भेद विग्रह का सारांश लिखिए।

4• सन्धि कथा का वर्णन कीजिए।

इकाई.5 हितोपदेश की चार प्रमुख कथाओं का वर्णन मूलपाठ , अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा:

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 हितोपदेश की चार प्रमुख कथाओं का वर्णन
5.3.1 वृद्धव्याघ्र लुब्धविप्र कथा (मूलपाठ,अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी)
5.3.2 मृगश्रृगाल कथा (मूलपाठ,अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी)
5.3.3 जरद्गव विडाल कथा (मूलपाठ, अर्थ, व्यामख्या एवं टिप्प्णी)
5.3.4 मूषक परिव्राजक कथा (मूलपाठ, अर्थ, व्यामख्या एवं टिप्प्णी)
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5•1 प्रस्तावना

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीतिसाहित्य से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इससे पूर्व कि इकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते है कि नीतिसाहित्य का विकास किस प्रकार हुआ और इन नीतिसाहित्य का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है। इसके साथ ही आप हितोपदेश की कथाओं से भी परिचित हुए। इस इकाई में आप चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत वृद्ध व्याघ्र लुब्धविप्रकथा, मृगश्रृगाल कथा, जरद्गव विडाल कथा एवं मूषक परिव्राजक कथा का अध्ययन करेगें तथा इन कथाओं से प्राप्त शिक्षाओं को जानेगें, कि किसी व्यक्ति के बारे में सम्यक जानकारी न होने पर उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि जरद्गव ने दीर्घकर्ण के कुल और शील को जाने बिना ही उसकी बातों पर विश्वास कर उसे आश्रय दे दिया था और अन्तत: वह निंदोष होने पर भी मारा गया। और मूषक परिव्राजक कथा के अध्ययन से आप ने जाना कि इस संसार में धनवान व्यक्ति ही बलशाली, उत्साह-सम्पन्न और विद्वान माना जाता है और धनरहित अवस्था में उसी व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रहता। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि मनुष्य को अत्यधिक लालच में आकर दुष्ट स्वभाव के प्राणियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। तथा अचानक आये हुए व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसका परिणाम दु:खदायी ही होता है।

संस्कृत पद्यकाव्य एवं नीतिसाहित्य से सम्बन्धित यह अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप ने जाना कि नीति कथाओं का विकास किस प्रकार हुआ एवं इन कथाओं का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है। तथा आप हितोपदेश की कथाओं से परिचित हुए। इन कथाओं का प्रतिपाद्य सदाचार, राजनीतिशास्त्रों एवं व्यावहारिक ज्ञान है। इनमें प्रधान कथा के साथ ही कई अन्य अन्तर्कथाओं का भी अध्यनयन किया। इस इकाई में आप चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत जरद्गव विडाल कथा, मूषक परिव्राजक कथा, जरद्गव विडाल कथा एवं मूषक परिव्राजक कथा का अध्ययन करेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

1. संस्कृत नीति कथा साहित्य से परिचित हो पायेगें।
2. बता सकेगें कि दुष्ट व्यक्ति पर विश्वास क्यों नहीं करना चाहिए।
3. अत्यधिक लोभ से उत्पन्न दोषों की व्याख्या कर सकेगें।
4. यह समझा सकेगें कि बिना विचार किये कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए।
5. मित्र एवं शत्रु में अन्तर सम्बन्धी विवेक प्राप्त कर सकेगें।
6. नीति ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में उपयोग कर सकेगें।
7. जिसका कुल शील ज्ञात न हो उसे आश्रय नही देना चाहिए इस पर विचार कर सकेंगे।
8. सहसा किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए।
9. धनाभाव अभावों में बलवान होता है,यह जान सकेंगे।
10. दरिद्रता समस्त आपत्तियों का मूल है, इस बात से परिचित हो सकेंगे।

5.3 हितोपदेश की चार प्रमुख कथाओं का वर्णन

5.3.1 वृद्धव्याघ्र लुब्धूविप्र कथा (मूलपाठ,अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी)

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्न पश्यम् एको वृद्धो व्याघ्र: स्नात: कुशहस्त: सरस्तीरे ब्रूते – ' भो: भो: पान्था , इदं सुवर्णकंकणम् गृह्यताम् । ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेन आलोचितम् भाग्येन एतत् सम्भवति ।, किन्तु अस्मिन् आत्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया । यत: -

हिन्दी अनुवाद – मैंने एकबार दक्षिण के जंगल में विचरण करते हुए देखा कि बूढ़ा व्याघ्र स्नान करके हाथ में कुशों को लिए हुए तालाब के किनारे यह कह रहा था – हे हे पथिक !यह सोने का कंगन ग्रहण कर लो । तब लोभ से आकर्षित होकर एक पथिक ने विचार किया कि भाग्य से ऐसा भी सम्भव हो सकता है परन्तु प्राणों को संकट में डालने वाले कार्यों में साहस की प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि –

व्याख्या – इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को कभी भी लोभ के कारण या धन सुवर्ण क मोह के कारण बिना सोचे विचारे अपने प्राणों को संकट में नहीं डालना चाहि उस कार्य में प्रवृत्त
नही होना चाहिए जब तक कि देने वाले का उद्देश्य ज्ञात न हो जाय ।

टिप्पणी - प्रवृत्ति - प्र +वृत् + क्तिन् । कुशहस्त: - कुशा: सन्ति हस्ते यस्य स: (बहुब्रीहि समास)

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा ।
यत्राऽऽस्ते विषसंसर्गोऽमृत: तदपि मृत्यवे ।।

हिन्दी अनुवाद – दुष्ट व्यक्ति से इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर भी उसका परिणाम अच्छा नहीं होता जैसे अमृत में विष का संसर्ग हो तो वह अमृत भी मृत्यु का कारण बन बन जाता है ।

व्याख्या - आशय यह है कि दुर्जन व्यक्ति से इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर भी वह कल्याणकारक नहीं होता है । जैसे अमृत के साथ यदि विष का सम्बन्ध हो जाता है तो उससे अमृतत्व समाप्त हो जाता है और वह विष का परिणाम अर्थात् मृत्यु देता है ।

टिप्पणी - लाभ – लभ् +घञ् । इष्टलाभे – इष्टस्य लाभे (षष्ठी त0) । इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है ।

किन्तु सर्वत्राऽर्थार्जने प्रवृत्तौ सन्देह एव । तथा चोक्तम् –

न संशयमनारूह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारूह्य यदि जीवति पश्यति ।।

हिन्दी अनुवाद – परन्तु सभी स्थान में धन के उत्पन्न होने में सन्देह होता ही है । जैसा कहा भी है – मनुष्य संकट में बिना पड़े मंगल नहीं देखता है किन्तु संकट में पड़ने के बाद जो जीवन धारण है वही कल्याण को देखता है ।

व्याख्या – उस पथिक के मन में लोभ के कारण यह विचार आया कि यदि मैं इस सोने के कंगन को ग्रहण नहीं करता हूँ तो मुझे हानि होगी और यदि ग्रहण कर लेने पर कोई कष्ट उत्पन्न हो गया तो मृत्यु भी संभव है फिर वह पुन: विचार करता है कि बिना संशय में पड़े कल्याण संभव नहीं है । संशय से उबरने के पश्चात् ही लाभ का सुख भोगता है ।

टिप्पणी - पश्यति– दृश धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है ।

तन्निरूपयामि तावत् । प्रकाशं ब्रूते – कुत्र तव कंकणम् ? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति । पान्थोऽवदत् कथं मारात्मके त्वयि विश्वास: ? व्याघ्र उवाच – श्रृणु रे पान्थ: । प्रागैव यौवनदशायामहमतीव दुर्वत्तं आसम् । अनेक: गोमानुषाणांवधान्मे पुत्रा: मृता: दाराश्च, वंशहीनाश्चाहम् । तत: केनचिद्धार्मिकेणाहमुपदिष्ट: दानधर्मादिकं चरतु भवान् इति । तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशील: दाता, वृद्धो गलितनखदन्त: कथं न विश्वासभूमि: ?

हिन्दी व्याख्या – इसलिए सबसे पहले निश्चय करता हूँ कि इसके हाथ में कंगन है कि नहीं ।पथिक जोर से बोला – अरे ! तुम्हारा वह कंगन कहाँ है । व्याघ्र ने हाथ फैलाकर कंगन दिखा दिया । पथिक ने कहा , कि तू

हिंसक प्राणी है तुझ पर मैं कैसे विश्वास करूँ ?व्याघ्र बोला – अरे पथिक ! सावधान होकर सुनो। मैं युवावस्था में बड़ा दुराचारी था। मैंने अनेक गाय और मनुष्यों वध किया जिसके पाप से मेरी स्त्री और सन्तान मर गये तथा मैं वंशहीन हो गया। तब किसी धर्मात्मा पुरूष ने उपदेश दिया कि " तुम दान धर्म किया करो"। उस महापुरूष के उपदेश से मैं इस समय नित्यस्नान करता हूँ एवं दान देता हूँ। मैं बूढा हो गया हूँ और मेरे नाखून और दांत भी गिर गये हैं ,फिर मैं कैसे विश्वास करने के लायक नहीं हूँ।

व्याख्या – बूढा व्याघ्र उस पथिक को समझाता है कि मेरे पापकर्मो के कारण मैं वंशहीन हो गया हूँ उसी के प्रायश्चित हेतु मैं इस दान कर्म को कर रहा हूँ। और अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ मेरे नख और दांत भी नहीं है तब मैं तुम्हें कैसे नुकसान पहुंचा सकता हूँ।

टिप्पणी–दर्शयति – दृश + णिच् – लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन विश्वासभूमि: - विश्वासस्य भूमि: (षष्ठी त0)

इज्याध्ययनदानानि तप: सत्यं धृति: क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविध: स्मृत: ।।

हिन्दी अनुवाद – यज्ञ करना, वेदशास्त्रों का अध्ययन करना, दान देना, उपवास करना , सत्य बोलना , धीरता, सहनशील होना, लोभ न करना, ये धर्म के आठ मार्ग कहे गये हैं।

व्याख्या – व्याघ्र कहता है कि यज्ञादि कार्यों को करना, वेदशास्त्रों को पढ़ना, सत्पात्र को दान देना, व्रत करना, सदा सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, क्षमाशील होना, किसी वस्तु के प्रति लालच न करना ये धर्म के आठ मार्ग बताये गये हैं। व्याघ्र के अनुसार वह इस समय धर्म के बताये मार्ग में प्रवृत है।

टिप्पणी - स्मृत: - स्मृ +क्त । अलोभ: - न लोभ: अलोभ: (नञ तत्पुरूष)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ।।

हिन्दी अनुवाद - उसमें पूर्वोक्त आठ प्रकार के मार्ग में पहले चार (यज्ञ करना, वेदशास्त्रापढ़ना, दान देना, और तप करना) तो प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए पाखण्डी व्यक्ति भी करते रहते हैं किन्तु अन्त के चार (सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, कष्ट सहना, निस्पृह होना) ये महात्माओं में ही सुलभ होते हैं।

व्याख्या – व्याघ्र पथिक को बताता है कि उपरोक्त धर्म के बताये गये मार्ग में से प्रथम चार को तो धूर्त और पाखण्डी व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए अपनाते हैं किन्तु अन्तिम चार मार्गो के दर्शन महात्माओं में ही सुलभ होते हैं सामान्य व्यक्ति में नहीं।

टिप्पणी - महात्मनि – महान आत्मा यस्य स: तस्मिन् (बहुब्रीहि समास)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है। मम चैतावांल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थ◌ामपि सुवर्ण कंकणं यस्मै कस्मै चिद्दातुमिच्छामि । तथापि व्याघ्रो मानुषं खादतीति लोकप्रवादो दुर्निवार: । यत: -

"गताऽनुगतिको लोक: कुट्टिनीमुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति नो धर्मे यथा गोघ्नमपि द्विजम् ।। "

हिन्दी अनुवाद – मैं तो यहाँ तक लोभरहित हूँ कि अपने हाथ का सोने का कंगन भी जिस किसी को देना चाहता हूँ। किन्तु बाघ मनुष्यों को खाता है, यह जो लोकापवाद चला आ रहा है उसको मिटाना बहुत कठिन है । क्योंकि – प्राचीन परम्परा का पालन करने वाला यह संसार धर्म के विषय में चाहे वह गोहत्या कारक ही क्यों न हो ब्राह्मण की ही बात को प्रामाणिक मानता है जैसे धर्मरता कुट्टिनी (व्यभिचारिणी स्त्री) की बात को नही मानता।

व्याख्या –तात्पर्य यह है कि संसार अन्धपरम्परा से आने वाली बात के ही पीछे चलता है।धर्म की बात चाहे वह गो हत्या जैसे घृणित कार्य की हो ब्राह्मण की ही बात को प्रामाणिक माना जायेगा। किन्तु पहले व्यभिचार में लिप्त होने पर बाद में धर्मोपदेश देने वाली स्त्री की बात को कोई भी नहीं मानेगा। इसी प्रकार पूर्वकाल में मैनें हिंसादि कार्य किया किन्तु इस समय उन दोषों से दूर रहने पर भी कोई मेरी बात का विश्वास नहीं करता।

टिप्पणी - प्रमाणयति – प्रमाण+णिच् +लट् (प्र0पु0 ए0 व0) इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि। श्रृणु –

मरूस्थल्यां यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं तथा।

दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन।।

हिन्दी अनुवाद - और मैंने धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया है। सुनो (महाभारत में कोई ऋषि महात्मा युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं) हे पाण्डुनन्दन ! जैसे रेगिस्तान में वर्षा सार्थक होती है और भूखे को भोजन देना सार्थक होता है उसी प्रकार गरीब को दान देना अत्यन्त सार्थक होता है।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि जहाँ पर जिस चीज की अधिकता हो वहाँ देने से कोई लाभ नहीं होता जैसे किसी स्थान पर पानी ही पानी हो कहीं बाढ़ आयी हो और वहाँ जलवृष्टि हो तो क्या लाभ ? जलवृष्टि का असली लाभ तो मरूस्थल में है जहाँ पानी का अभाव है। उसी प्रकार जिसका पेट भरा हुआ हो तो उसको और खिलाने से क्या लाभ होगा। भूखे व्यक्ति को भोजन कराना सार्थक होता है। उसी प्रकार दान हमेशा धनहीन व्यक्ति को ही देना चाहिये जिससे वह उसका उपयोग कर सके।

टिप्पणी - दीयते – दा धातु कर्मवाच्य लट् ल0 प्र0 पु0 ए0 व0।

प्राणा यथा आत्मनो अभीष्टा भूतानामपि ते तथा।

आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधव: ।।

हिन्दी अनुवाद — जैसे अपने प्राण स्वयं को प्रिय हैं , वैसे ही औरों को भी अपने- अपने प्राण प्रिय होते हैं ऐसा समझ कर महात्मा पुरूष जीवमात्र के ऊपर दया करते हैं।

व्याख्या- ' आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पण्डित: ' अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियों को अपने ही समान समझता है वही महान है इसी भाव का वर्णन उपरोक्त श्लोक में किया गया है।

टिप्पणी - अभीष्टा: - अभि +इष् + क्त। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है। अपरञ्च – और भी

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदु:खे प्रियाप्रिये।

आत्मौपम्येन पुरूष: प्रमाणमधिगच्छति ।।

हिन्दी अनुवाद – अपना अपमान होने से, दानादिलाभ होने से, प्रिय विषय में तथा अप्रिय विषय में जैसा स्वयं को सुख दु:ख का अनुभव होता है वैसा सभी जीवों को होता है। ऐसा विचार कर साधुजन सभी जीवों पर दयापूर्ण व्यवहार करते हैं।

व्याख्या — इस श्लोक का भावार्थ यह है जैसा व्यक्ति सुख एवं दु:ख में या अन्य परिस्थितयों में स्वयं अनुभव करता है वैसा ही अन्य प्राणियों को भी अनुभव होता होगा। किसी को भला बुरा कहने से उस प्राणी को कितना कष्ट होगा इसका अनुमान मनुष्य को अपने ऊपर ही करना चाहिये।

टिप्पणी - सुखदु:खे – सुखं च दु:खं च (द्वन्द्व समास)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पण्डित: ।।

हिन्दी अनुवाद — जो परस्त्री को माँ के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के समान और सभी जीवों को अपने समान देखता है वस्तुत: वही सच्चा ज्ञानी है।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि जो दूसरे की स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखकर अपनी माँ के समान आदर दें ,दूसरे के धन को लोभ की दृष्टि से न देखें बल्कि उसको मिट्टी के ढेर के समान समझे और समस्त प्राणियों को अपने समान समझे वास्तव में वही सच्चा ज्ञानी होता है।

टिप्पणी - मातृवत् - मातृ +वति इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तन्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम्। तथा चोक्तम् –

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।

व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरूजस्य किमौषधै: ।।

हिन्दी अनुवाद - तुम अत्यन्त धनहीन हो अत: यह कंगन मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। इसीलिये कहा गया है – (महाभारत में कहा गया है) हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! दरिद्रों का ही पालन –पोषण करो, धनियों को दान मत दो क्योंकि रोगी के लिये ही औषधि लाभदायक होती है पर जो नीरोग है उनको औषधि की क्या आवश्यकता।

व्याख्या - कहने का भाव यह है कि दीन-हीन निर्धन व्यक्ति को ही दान देना चाहिये क्योंकि उनके लिए वह दान उपयोगी है धनी व्यक्ति को दान नहीं देना चाहिये क्योंकि उनके लिये उसका महत्व उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति के लिये औषधि का कोई महत्व नहीं होता।

टिप्पणी - इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च - और भी

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणि।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदु: ।।

हिन्दी अनुवाद — ' देना है ' इस स्वार्थ रहित बुद्धि से जो दान तीर्थ स्थानादि में और ग्रहण आदि के पर्व के समय में तथा सत्पात्र का विचार कर ब्राह्मणादि को दिया जाता है, वह सात्विक दान कहलाता है।

व्याख्या - दान हमेशा नि:स्वार्थ भाव से करना चाहिये। सुपात्र को दिया हुआ दान सात्त्विक दान कहलाता है।

टिप्पणी - दातव्यम् – दा+तव्यत्। इस श्लोक में सात्त्विक दान पर प्रकाश डाला गया है। अनुष्टुप छन्द है।

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकंकणमिदं गृहाण । ततो यावदसौ तद्वच: प्रतीत: लोभात्सर: स्नातुं प्रविष्ट:, तावन्महापंके निमग्न: पलायितुमक्षम:। 'पंके पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत् - 'अहह !महापंके पतितोऽसि अतस्त्वामहमुत्थापयामि ।' इत्युक्त्वा शनै: शनैरूपगम्य तेन व्याघ्रेण धृत: स पान्थोऽचिन्तयत् –

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं ,

न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मन:।

स्वभाव एवाऽत्र तथाऽतिरिच्यते ,

यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पय: ।।

हिन्दी अनुवाद — इसलिये तुम इस सरोवर में स्नान करके इस सोने के कंगन को ले लो। इस प्रकार बाघ की चिकनी-चुपड़ी बाते सुनकर लोभाकृष्ट होकर जैसे ही वह पथिक स्नान करने के लिए तालाब में उतरा वह गहरे कीचड़ में फँस गया और भागने में असमर्थ हो गया। उसे कीचड़ में फँसा हुआ देखकर बाघ बोला 'अहा !हा तुम भारी कीचड़ में फँस गये हो। अच्छा रूको मैं तुम्हें बाहर निकालता हूँ"। ऐसा कहकर उसने धीरे-धीरे उस फँसे हुए पथिक के समीप जाकर उसे पकड़ लिया। तब वह पथिक सोचने लगा – नीच प्रकृति वाले पुरूष का हृदय परिवर्तन करने में धर्मशास्त्र तथा वेदादि के अध्ययन समर्थ नहीं हो सकते हैं। किन्तु हृदय परिवर्तन में स्वभाव ही कारण माना जाता है। जिस प्रकार गाय का दूध प्रकृति से ही मधुर होता है।

व्याख्या — इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझ सकेगें कि दुष्ट पुरूष ने भले हीधर्मशास्त्रादि का अध्ययन किया हो किन्तु उस अध्ययन से उसकी दुष्टता दूर नही होती । दुष्टता को दूर करने वाला एक स्वभाव ही होता है।

टिप्पणी — स्नातुम् – स्ना +तुमुन् । पतितम् – पत् +क्त। दुरात्मन: - दुष्ट: आत्मा यस्य स: तस्य (बहुब्रीहि) । उपमा अलंकार एवं वंशस्थ छन्द है।

अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुभर्गाभरणप्रायो ज्ञानं भार: क्रियां बिना ।।

हिन्दी अनुवाद – जिस पुरूष की इन्द्रिया और चित्त अपने वश में नहीं और उसकी नित्य और नैमित्तिक क्रियायें हाथी के स्नान की भाँति निष्फल होती है (जैसे हाथी स्नान के बाद पुन: पुन: धूल उड़ाकर अपने शरीर को गंदा कर लेता है) उसी प्रकार क्रिया के बिना शास्त्रीय ज्ञान भी विधवा स्त्री के आभूषण के समान भारस्वरूप ही होता है।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन से आप यह सकेगें कि जो लोग अपने ज्ञान का उपयोग नहीं करते हैं उनका ज्ञान विधवा स्त्री के आभूषण की तरह भारमात्र ही है आचरण से हीन ज्ञान केवल भार ही है।

टिप्पणी – ज्ञानम् – ज्ञा +ल्युट्। उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वास: कृत:। तथा ह्योक्तम् –

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां श्रृगिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु ।।

हिन्दी अनुवाद — इसलिये मैंने अच्छा नहीं किया जो इस हिंसक बाघ में विश्वास किया। कहा भी गया है – नदियों का, शस्त्रधारियों का, नखों वाले सिंहादि और सींग वाले (गाय, भैंस आदि) प्राणियों का , स्त्रियों का तथा राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

व्याख्या — आशय यह है कि प्रवाहमान नदियों का क्या विश्वास कभी भी व्यक्ति उसमें बह सकता है , शस्त्रधारी पुरूष और नख और सींग वाले पुरूष का क्या भरोसा कब प्रहार करदे। तथा राजकुल के लोग शक्तिसम्पन्न कहे गये हैं। बहुत ही अनुकूल और सरल होने पर भी उनकी मैत्री कभी भी प्रतिगामी परिणाम वाली हो सकती है। अत: ये सभी कभी भी विश्वास के योग्य नहीं होते हैं।

टिप्पणी –कर्तव्य – कृ +तव्यत्।नखिनाम् – नखा: सन्ति येषां तेषां (बहुब्रीहि)। शस्त्रपाणिनाम् – शस्त्र पाणौ येषां तेषां (बहुब्रीहि)। अनुष्टुप छन्द है।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणा:।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ।।

हिन्दी अनुवाद - सभी प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा की जाती है , अन्य गुणों की नहीं। क्योंकि सभी गुणों को अतिक्रमण कर स्वभाव ही सबके ऊपर रहता है।

व्याख्या - भावार्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति से प्रथम परिचय में उसका स्वभाव ही देखा जाता है अन्य गुणों की पहचान नही की जा सकती है अन्य गुण तो लम्बे साथ के बाद ही पता चलते है।

टिप्पणी – परीक्ष्यन्ते – परि + ईक्ष +यक् (प्र0 पु0 ब0 व0)। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ,

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं क: समर्थ: ।।

हिन्दी अनुवाद — आकाश में विहार करने वाले, अन्धकार को नष्ट करने वाले, तथा हजारों किरणों को धारण करने वाले , सूर्य एवं नक्षत्रों के बीच भ्रमण करने वाले उस चन्द्रमा को भी जब दैवयोग से राहु ग्रस लेता है (तो कहना पड़ेगा कि) ब्रह्माने जो कुछ ललाट में लिख दिया है , उसे कौन मिटा सकता है अर्थात् कोई नहीं ।

व्याख्या — अर्थात् जब सूर्यदेव एवं चन्द्रदेव को दैववशात् राहु ग्रस लेता है तब सामान्य मनुष्य की क्या बात । विधाता ने जो जिसके भाग्य में लिख दिया है उसे कोई भी मिटा नहीं सकता । इसी भाव को महात्मा भृर्तहरि ने नीतिशतक में इस प्रकार कहा है –

" पत्रं नैव यदा कीरीटविटपे, दोषो वसन्तस्य किम् ,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ?
धारानैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणम् ,
यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं क: क्षम: "।।

टिप्पणी – प्रोज्झितुम् - प्र +उज्झ् + तुमुन् । कल्मषध्वंसकारी – कल्मषध्वंस + कृ + णिनि । मालिनी छन्द है ।

इति चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण व्यापादित: खादितश्च । अतोऽहं ब्रवीमि - 'कंकणस्य तु लोभेन' इत्यादि । अत: सर्वथा अविचारितं कर्म न कर्त्तव्यं ।

हिन्दी अनुवाद- इस प्रकार वह सोच ही रहा था कि बाघ ने उसे मार डाला और खा गया । इसीलिए मैं (कपोतराज) कहता हूँ कि 'कंकण के लोभ से' आदि । अत: बिना विचार किये कोई काम नही करना चाहिये ।

व्याख्या - कपोतराज चित्रग्रीव निर्जन जंगल में चावल के कणों को देखकर लोभ के कारण उसको खाने की इच्छा करने वाले कबूतरों को सावधान करने के लिए बूढे व्याघ्र और लोभीपथिक की यह कथा सुनाता है कि किस प्रकार लोभ में फँसकर वह पथिक अपने प्राण गँवा बैठा । अत: बिना सोचे-समझे कोई कार्य नहीं करना चाहिए ।

टिप्पणी – चिन्तयन् – चिन्त् +णिच् + शतृ ।

बोध प्रश्न:1

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये ।

व्याघ्र पथिक को ---------- का कंगन देना चाहता था ।

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते ---------- ।

---------- यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं तथा ।

दवा ---------- पुरूष को ही लाभ करती है ।

व्याघ्र ---------- में फँस गया ।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते ---------- नेतरे गुणा: ।

दरिद्रे दीयते ---------- सफलं पाण्डुनन्दन ।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये ।

व्याघ्र कीचड़ में फँस गया था । ( )

सरोवर के तट पर व्याघ्र कुश हाथ में लेकर खड़ा था। ( )
व्याघ्र दान में स्वर्णकंगन देना चाहता था। ( )
भूखे को भोजन एवं दरिद्र को दान देना सार्थक है। ( )
पथिक व्याघ्र से कंगन लेकर चला गया। ( )
अमृत में यदि विष का सम्पर्क हो जाये तो विष भी अमृत हो जाता है। ( )
स्वस्थ व्यक्ति को औषध से लाभ मिलता है। ( )

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित श्लोक का अर्थ लिखिये।

क. दरिद्रान भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरूजस्य किमौषधै:

ख. मरूस्थल्यां यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं तथा॥
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन: ॥

5.3.2 मृगश्रृगाल कथा(मूलपाठ,अर्थ,व्याख्या एवं टिप्पणी)

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी। तस्यां चिरान्महतां स्नेहेन मृगकाकौ निवसत:। स च मृग: स्वेच्छया भ्राम्यन्हृष्टपुष्टांग: केनचित् श्रृगालेनाऽवलोकित:। तं दृष्टवा श्रृगालोऽचिन्तयत् आ: कथमेतन्मासं सुललितं भक्ष्यामि ? भवतु विश्वासं तावदुत्पादयामि। इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत मित्र ? कुशलं ते ? मृगेणोक्तम् – कस्त्वम् ? स: ब्रूते – क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्। अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुन: सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि, अधुना तवाऽनुचरेण मया सर्वथा भवितव्यमिति। मृगेणोक्तम् - 'एवमस्तु'।

हिन्दी अनुवाद — मगधदेश में चम्पकवती नाम का एक विशाल जंगल था। उसमें बहुत दिनों से एक मृग और कौआ अत्यन्त प्रेम से रहते थे। स्वेच्छा से घूमते फिरते तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले उस हरिण को किसी सियार ने देखा। उसको देखकर वह सियार सोचने लगा आह ! किस प्रकार इसका सुन्दर और मधुर माँस खाऊँ? अच्दा पहले इसे विश्वास उत्पन्न कराता हूँ। ऐसा सोचकर वह उसके समीप जाकर बोला - 'मित्र' कुशल से हो ? मृग ने कहा – तुम कौन हो ? उसने कहा – मैं क्षुद्रबुद्धि नामक सियार हूँ और इस जंगल में मित्ररहित मरे हुए के समान रहता हूँ किन्तु इस समय तुम सरीखे मित्र को पाकर फिर मित्रसहित संसार में स्थित हूँ अर्थात् मित्र सुख को पाकर जी उठा हूँ। अब मैं सब प्रकार से तुम्हारा सेवक होकर रहूँगा। मृग ने कहा – अच्छा ऐसा ही (ठीक है) हो।

व्याख्या – भावार्थ यह है कि उस चालाक क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने मृग को खाने के लिये उससे झूठी मित्रता का प्रस्ताव रखा जिसे सरल हृदय मृग ने स्वीकार कर लिया।

टिप्पणी – मृगकाकौ – मृगश्च काकश्च इति द्वन्द्व समास मृतवत् – मृ +क्त + वति।

तत: पश्चादस्तं गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनी तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्टवा काकोऽवदत् – सखे चित्रांग ! कोऽयं द्वितीय: ! मृगो ब्रूते जम्बुकोऽहम् अस्मत्सख्यमिच्छन्नागत:। काको ब्रूते – मित्र अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता।

हिन्दी अनुवाद – इसके पश्चात् अंशुमाली भगवान सूर्य के अस्ताचल को जाने पर वे दोनों मृग के निवास स्थान पर गये। वहाँ चम्पक वृक्ष की शाखा पर मृग का अति पुराना मित्र सुबुद्धि नामक कौआ रहता था। कौऐ

ने उन दोनों को देखकर कहा – मित्र चित्रांग !यह दूसरा कौन है मृग ने कहा यह सियार है। हमारे साथ मित्रता करने की इच्छा से आया है। कौआ बोला – मित्र अपरिचित के साथ सहसा मित्रता नहीं करनी चाहिये।

व्याख्या – सूर्यास्त हो जाने पर मृग सियार के साथ अपने घर गया। वहाँ पर मृग के साथ रहने वाले उसके मित्र सुबुद्धि नामक कौवे ने पूछा कि तुम्हारे साथ दूसरा कौन आया है। तब मृग ने बताया कि यह क्षुद्रबुद्धि नामक सियार है जो हमसे मित्रता करना चाहता है। तब कौवा मृग को सावधान करते हुए कहता है कि अचानक आये हुए किसी अपरिचित के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि जिसका कुल और शील ज्ञात न हो उस व्यक्ति के साथ की गयी मित्रता कष्टदायी हो सकती है।

टिप्पणी - गतौ – गम् +क्त।

तथा चोक्तम् – कहा भी है

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य ही दोषेण हतो गृधो जरद्गव: ।।

हिन्दी अनुवाद – जिसका वंश और चरित्र ज्ञात न हो उसको घर में कभी आश्रय नहीं चाहिये। क्योकि विडाल के दोष से जरद्गव नामक बूढ़ा गीध मारा गया।

व्याख्या – अर्थात् जिसके कुल और चरित्र की सम्यक् जानकारी न हो ऐसे व्यक्ति को कभी भी अपने घर में नहीं रखना चाहिये अन्यथा वो नुकसान पहुँचाता है।

टिप्पणी - वास: - वस् + घञ्। अनुष्टुप छन्द है।

इत्याकर्ण्य स: जम्बुक: सकोपमाह – मृगस्य प्रथम दर्शनं दिने भवानपि अज्ञातकुलशील एव, तत् कथं भवता सहैतस्य स्नेहानु वृतिरूत्तरोत्तरं वर्धते ?

यत्र विद्वज्जनों नास्ति श्लाघ्यस्तत्राऽल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।।

हिन्दी अनुवाद- यह सुनकर उस क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने क्रोधित होकर कहा – कि मृग के प्रथम दर्शन के दिन आप भी तो अपरिचित ही थे फिर कैसे आपके साथ उसकी मित्रता धीरे-धीरे आगे बढ़ती गयी। अथवा – जिस स्थान पर विद्वान पुरूष नहीं है वहाँ अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति की भी प्रशंसा होती है, जैसे वृक्षविहीन देश में एरण्ड का पेड़ भी वृक्ष कहा जाता है।

व्याख्या – अर्थात् जिस स्थान पर विद्वान पुरूषों का अभाव होता है, वहाँ कम पढ़े लिखे व्यक्ति को भी उसी प्रकार विद्वान माना जाता है जिस प्रकार वृक्षरहित प्रान्त में एरण्ड का पेड़ भी वृक्ष ही कहलाता है।

अन्यच्च - और भी

अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

हिन्दी अनुवाद – यह अपना है यह पराया है ऐसी गणना (धारणा) तुच्छबुद्धि वाले करते हैं,
किन्तु उदार हृदय वालों के लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है।

व्याख्या – तात्पर्य यह है कि संकुचित विचार वाले व्यक्तियों के लिये अपना और पराया होता है। विशाल हृदय वाले व्यक्तियों लिये सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार के समान होती है।

टिप्पणी – उदारचरितानां – उदारं चरितं येषां तेषां (बहुब्रीहि)। अनुष्टुप छन्द है।

यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि । मृगोऽब्रवीत् – किमनेन उत्तरोत्तरेण ? सर्वैरेकत्र विश्रृम्भाऽऽलापै: सुखमनुभवद्भि: स्थीयताम्। यत: -

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपु:।

व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।।

हिन्दी अनुवाद – जैसे यह मेरा मित्र है वैसे तुम भी हो। मृग बोला – इस वाद-विवाद से क्या प्रयोजन ? सब एक स्थान में विश्वस्त भाव से सुखपूर्वक रहो। क्योंकि –न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है, किन्तु व्यवहार से ही शत्रु या मित्र बनते है।

व्याख्या - अर्थात् किसी भी व्यक्ति का व्यवहार ही उसकी शत्रुता और मित्रता का कारण हो व्यक्ति के अच्छे स्वभाव के कारण ही उसके मित्र और बुरे स्वभाव के कारण शत्रु बनते हैं।

टिप्पणी – व्यवहारेण - वि + अव + हृ + घञ। अनुष्टुप छन्द है।

काकेनोक्तम् – एवमस्तु । प्रात: सर्वे यथाभिमतदेशं गता: ।एकदा निभृतं श्रृगालो ब्रूते – सखे मृग! अस्मिन्वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति, तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि । तथा कृते सति मृग: प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति । अथ क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशो योजित: अनन्तरं पुनरागतो मृग: पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत् - "को मामित: कालपाशादिव व्याधपाशात्त्रातुं मित्रादन्य: समर्थ: ? " अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्राऽगत्य उपस्थितोऽचिन्तयत् - " फलितस्तावदस्माकं कपटप्रबन्ध: , मनोरथसिद्धिरपि बाहुल्यान्मे भविष्यति । यत: एतस्य उत्कृत्यमानस्य माँसाऽसृग्लिप्तानि अस्थीनि मया अवश्यं प्राप्तव्यानि । तानि च बाहुल्येन मम भोजनानि भविष्यन्ति । स च मृगस्तं दृष्ट्वा उल्लासितो ब्रूते – सखे ! छिन्धि तावन्मम बन्धनम्, सत्वरं त्रायस्व माम् ।

हिन्दी अनुवाद – कौवे ने कहा - 'ठीक है'। फिर प्रात:काल सभी अपने –अपने अभीष्ट स्थान को गये। एक दिन एकान्त में सियार ने कहा – मित्र चित्रांग ! इस वन के एक भाग में धान्य से भरा हुआ एक खेत है , मैं तुम्हें ले जाकर वह दिखाता हूँ। वैसा करने पर मृग प्रतिदिन वहाँ जाकर धान्य खाने लगा। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर खेत के स्वामी ने हरिण को खेत में चरता हुआ देखकर खेत में फँदा लगा दिया। इसके अनन्तर जब वहाँ मृग और दिन की तरह चरने के लिये आया ,तो जाल में फँस कर सोचने लगा – "मुझे इस यमफाँस की तरह व्याध फाँस से मित्र के सिवाय दूसरा कौन छुड़ा सकता है "। इसी समय सियार वहाँ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा कि मेरे कपट की चाल से मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ। इसके जब चर्म उधेड़े जायेंगें तब माँस और रक्त से सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी। वे मेरे भोजन के लिये पर्याप्त होंगी। मृग उसको देखकर प्रसन्न होकर बोला – मित्र, मेरे इन बन्धनों को शीघ्र काटो और मुझे बचाओ।

व्याख्या – इस गद्यांश को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि सियार ने किस प्रकार मृग के साथ धूर्तता की और वह मृग संकट में फँस गया।

टिप्पणी – नीत्वा – नी + क्त्वा। बन्धनम् – बन्ध् + ल्युट्। यत: - क्योंकि

आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्या क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ।।

अपरञ्च – और भी

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव: ।।

हिन्दी अनुवाद – आपत्तिकाल में मित्र, युद्ध में शूर, ऋण के लेन-देन में सच्चा व्यवहार करने वाला, धन नष्ट होने पर स्त्री और दु:ख पड़ने पर अपने भाई-बन्धु परखे जाते हैं। तथा आनन्द के समय में, विपत्ति आने पर , अकाल के समय, राजपरिवर्तन के समय, राजद्वार में तथा श्मशान में जो साथ रहे वही सच्चा मित्र है।

व्याख्या - इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझ पायेंगे कि बुरे समय में ही सच्चे मित्र की पहचान होती है , युद्धक्षेत्र में ही व्यक्ति की वीरता का परिचय प्राप्त होता है ,पैसे के लेन-देन के समय ही ईमानदारी , धन के

समाप्त हो जाने पर भी स्त्री का साथ में रहना तथा विपत्ति के आ जाने पर भाई-बन्धुओं की पहचान होती है। क्योंकि सुख के समय तो प्रत्येक व्यक्ति आपके साथ रहता है किन्तु जो दु:ख में साथ दे वही सही व्यक्ति है। और जो सुख-दु:ख में सदा साथ रहे वही सच्चा मित्र है।

टिप्पणी - आपत्सु - आ +पद् + क्विप्। अनुष्टुप छन्द है।

जम्बुको मुहुर्मुहु: पाशं विलोक्याचिन्तयत् – दृढ़स्तावदयं बन्ध:। ब्रूते च – सखे ! स्नायुनिर्मिता एते पाशा: तद़द्य भट्टारक वारे कथमेतान् दन्तै: स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते न अन्यथा मन्यसे,तदा प्रभाते यत्र त्वया वक्तव्यं तत् कर्त्तव्यम् इतियुक्त्वा समीपं आत्मानमाच्छाद्य स:। अनन्तरे स काक: प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्य येत्तस्ततोऽन्विष्य तथाविधं दृष्टोवाच – सखे ! किमेतत्? मृगेणोक्तम् – अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत्।

हिन्दी अनुवाद – सियार जाल को बार-बार देखकर सोचने लगा यह बन्धन बड़ा मजबूत है और बोला मित्र ये फन्दे तांत के बने हैं। इसलिए आज रविवार के दिन कैसे इन्हें दाँतो से स्पर्श करूँ ? मित्र यदि बुरा न मानें तो सुबह होते ही जो कहोगे वह करूँगा। ऐसा कहकर चित्रांग के समीप ही अपने को छिपाकर बैठ गया। इसके पश्चात् सुबुद्धि नामक कौवा सांयकाल मृग को न आया देखकर इधर-उधर खोजकर तथा उसे इस प्रकार बन्धन में फँसा हुआ देखकर बोला – मित्र यह क्या (यहाँ जाल में फँसना किस कारण से हुआ)। मृग ने कहा मित्र की बात को न मानने का यही फल है।

टिप्पणी - विलोक्य – वि +लोक् +क्त्वा +ल्यप् अवधीरित: - अवधीरितं सुहृदवाक्यं येन स: तस्य (बहुब्रीहि)।

काको ब्रूते – स वञ्चक: क्वास्ते ? मृगेणोक्तम् – मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव। काको ब्रूते – उक्तमेव मया पूर्वम्।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेतादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

हिन्दी अनुवाद – कौवा बोला – वह ठग सियार कहाँ है ? मृग ने कहा - मेरे माँस का लोभी वह यही है। कौवा बोला मैंने पहले ही कहा था। परोक्ष में काम बिगाड़ने वाले तथा प्रत्यक्ष में प्रिय बोलने वाले मित्र को मुख पर दूध वाले जहर से भरे घड़े के समान छोड़ देना चाहिए।

व्याख्या - अर्थात् जो मित्र पीठ पीछे काम को बिगाड़ता हो और सामने मिलने पर मीठी-मीठी बातें करता हो ऐसे मित्र को उसी प्रकार त्याग देना चाहिए जिस प्रकार मुख भाग में दूध एवं अन्दर विष से भरे हुए घड़े को छोड़ दिया जाता है। वरना उसकी मित्रता कष्टदायी होती है।

टिप्पणी– प्रियवादिनम् – प्रियं वदतीति प्रियवादी ,तम्। प्रिय + वद् +णिनि। अनुष्टुप छन्द है।

तत: काको दीर्घं नि:श्वस्य - अरे वञ्चक ! किं त्वया पापकर्मणा कृतम्। अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशमागच्छन् काकेनावलोकित:। तमालोक्य काकेनोक्तम् – सखे मृग ! त्वमात्मानं मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ, अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा विलिखामि। यदाहं शब्दं करोमि, तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे। मृगस्तथैव काक वचनेन स्थित:। तत: क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्लोचनेन तथाविधो मृग आलोकित:। आ: ! स्वयं मृतोऽसि इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान् गृहीतुं सयत्नो बभूव। तत: काकशब्दं श्रुत्वा मृग: सत्वरमुत्थाय पलायित:। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन श्रृगालो हत:।

हिन्दी व्याख्या – इसके बाद कौवे ने लम्बी साँस भर कर कहा – अरे धूर्त ! पापी तुमने यह क्या किया। बाद में प्रात:काल हाथ में लाठी लेकर आते हुए खेत के मालिक को कौवे ने देखा। उसे देखकर कौवे ने कहा – मित्र मृग ! तुम अपने को मरे हुए की तरह दिखाकर पेट को हवा से फुलाकर और पैरों को कड़ा कर बैठ जाओ। मैं

तुम्हारी आँखों को कुरेदूँगा। जब मैं शब्द करूँगा तो तुम शीघ्र ही उठकर भाग जाना। मृग उसी तरह कौवे के कहने के अनुसार बैठ गया। खेत के मालिक ने प्रसन्नता से आँखे फाड़कर उस प्रकार पड़े हुए मृग को देखा। आह ! अपने आप मर गया ऐसा कहकर मृग को बन्धनों से छुड़ाकर जाल इकट्ठा करने में लग गया। तब कौवे का शब्द सुनकर मृग शीघ्र ही उठकर भागा। मृग को भागते हुए देखकर किसान ने उसको निशाना बनाकर एक लाठी फेंकी जो मृग को न लगकर सियार को लगी और वह मर गया।

व्याख्या – इसके अध्ययन से आप ने यह जाना कि दूसरे का बुरा चाहने से अपना भी बुरा ही होता है जैसे सियार धोखे से मृग को मार कर खाना चाहता था किन्तु कौवे जैसे सच्चे मित्र के कारण मृग की जान बच गयी और वह सियार स्वयं मारा गया। इसीलिये कहा जाता है कि जो दूसरों के लिये गढ्डा खोदता है स्वयं उसी में गिर पड़ता है। भक्ष्य और भक्षक की मित्रता विपत्ति का कारण होती है।

टिप्पणी - आगच्छन् – आ +गम् + शतृ। क्षिप्तेन – क्षिप् + क्त।

अत: उक्तम् –

भक्ष्यभक्षकयो प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम्।

श्रृंगालात् पाशबद्धौऽसौ मृग: काकेन रक्षित: ।।

हिन्दी अनुवाद – अत: कहा गया है – भक्ष्य (खाने योग्य) और भक्षक (खाने वाले) की मित्रता आपत्ति की जड़ होती है। जैसे सियार (भक्षक) के द्वारा जाल में फँसाया गया हरिण (भक्ष्य) कौवे से रक्षा किया गया। अत: मनुष्य को सोच-विचार कर ही किसी से मित्रता करनी चाहिए।

टिप्पणी - भक्ष्य – भक्ष् +यत्।

बोध प्रश्न:2

अभ्यास प्रश्न – 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क. चम्पकवती वन में मृग और ----------स्नेह से रहते थे।

ख. जाल में फन्दे ---------- के बने थे।

ग. भक्ष्य और ---------- की मैत्री आपत्ति का मूल है।

घ. न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् ---------- ।

ङ. किसान द्वारा फेंकी गयी लाठी ---------- को लगी।

अभ्यास प्रश्न – 5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

क. चम्पकवती नामक वन मगध देश में है। ( )

ख. व्यवहार से ही मित्रता अथवा शत्रुता होती है। ( )

ग. अपरिचित के साथ सहसा मित्रता करनी चाहिए। ( )

घ. खेत के मालिक ने हिरण को डण्डे से मार दिया था। ( )

ङ. सियार हिरण से स्वार्थवश मित्रता करना चाहता था। ( )

च. कौवे ने हिरण को सियार से मैत्री करने से मना किया था। ( )

अभ्यास प्रश्न – 6

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

1. हिरण का क्या नाम था ?

2. हिरण से कौन मित्रता करना चाहता था

5.3.3 जरद्गव विडाल कथा (मूलपाठ,अर्थ,व्याख्या, टिप्पणी)

अस्ति भागीरथी तीरे गृधकूट नाम्नि पर्वते महान पर्कटी वृक्ष: । तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनों जरद्गवनामा गृध: प्रतिवसति । अथ कृपया तज्जीवनाय तद् वृक्षवासिन: पक्षिण: स्वहारात् किंचिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनासौ जीवति, तेषां शावकरक्षां च करोति । अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जार: पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्राऽऽगत: । ततस्तमायान्तं दृष्ट्या पक्षिशावकैर्भयार्तै: कोलाहल: कृत: । तत् श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम् - कोऽयमायाति ? दीर्घकर्णौ गृध्रमालोक्य सभयमाह -हा हतोऽस्मि ।

हिन्दी अनुवाद- गंगानदी के किनारे गृधकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पाकड का वृक्ष था। उसके कोटर में दुर्भाग्य से अन्धा तथा नखहीन जरद्गव नामक गृद्ध (गीध) रहता था । उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी दया कर अपने — अपने आहार से कुछ— कुछ निकाल उसके जीवन निर्वाह के लिए देते थे और वह बदले में पक्षी के बच्चों की रक्षा था । एक दिन दीर्घकर्ण नामक एक बिलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के लिए वहाँ आया । उसको आते देखकर पक्षियों के बच्चे भयभीत होकर कोलाहल करने लगे । उस कोलाहल को सुनकर जरद्गव ने कहा — यह कौन इधर आ रहा है ? दीर्घकर्ण गीध को देखकर डरकर बोला - हाय ! अब मैं मारा गया ।

व्याख्या - गंगा नदी के तट पर गृध्रकूट पर्वत पर स्थित पाकर वृक्ष के कोटर में वृद्ध एवं नेत्रहीन जरद्गव नामक गीध रहता था । जो उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों के बच्चों की देखभाल करता था और इसके बदले में उनसे प्राप्त आहार के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता था । एक बार दीर्घकर्ण नामक बिलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के उद्देश्य से वहाँ आया । भयभीत शावकों की आवाज सुनकर जरद्गव ने डाँट कर पूछा कि कौन इधर आ रहा है ? तब वह बिलाव भयभीत होकर सोचने लगा कि अब मैं मारा जाऊँगा ।

टिप्पणी - उद्धृत्य - उत्+धृ +क्त्वा + ल्यप् । आलोक्य — आ + लोक् + क्त्वा — ल्यप् । यत:— क्योंकि

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नर: कुर्याद्यथोचितम् ।।

हिन्दी अनुवाद — भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय समीप न आये किन्तु भय को पास आया देखकर मनुष्य जैसा प्रतीकार उचित समझे वैसा करे ।

व्याख्या — आशय यह है कि दीर्घकर्ण बिलाव जरद्गव गीध को देखकर भयभीत होकर मन ही मन सोचने लगता है कि उसकी मृत्यु समीप आ गयी है किन्तु वह पुन: विचार करता है कि व्यक्ति को निडर होना चाहिए । विपत्ति के आ जाने पर प्राणी को निर्भय होकर उसका यथोचित प्रतिकार करना चाहिए अर्थात भयभीत होकर भागना नहीं चाहिए ।

टिप्पणी - भेतव्यम् — भी + तव्यत् । आगतम् — आ + गम् + क्त । अनुष्टुप छन्द है ।

अधुनास्य सन्निधाने पलायितुमक्षम: । तद्यथा भवितव्यं तद् भवतु । तावत् विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपं गच्छामि , इत्यालोच्यो तमुपसृत्याब्रवीत् आर्य! त्वाम् अभिवन्दे । गृध्रोऽवदत् कस्त्वम् ?सोऽवदत् मार्जारोऽहम् । गृध्रो ब्रूते — दूरमपसर । नो चेत् हन्तव्योऽसि मया । मार्जारोऽवदत् — श्रूयतां तावदस्मद्वचनम् । ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्य:।

हिन्दी अनुवाद — अब इसके समीप से भाग नहीं सकता हूँ । इसलिए जो होना होगा वह होगा ही। प्रथम अपना विश्वास उत्पन्न कर इसके समीप जाता हूँ । ऐसा विचार कर वह उसके समीप आकर बोला – आर्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । गीध बोला – तुम कौन हो ? उसने कहा मैं विडाल हूँ । गीध बोला दूर भाग नहीं तो मेरे द्वारा मारा जायेगा । विडाल बोला – पहले मेरे वचन तो सुनो , बाद में यदि मैं मारने योग्य होऊँ तो मार देना ।

व्याख्या — दीर्घकर्ण नामक विडाल गीध को देखकर अत्यन्त भयभीत हो जाता परन्तु फिर वह सोचता हैं कि जो होना होगा वो होगा सर्वप्रथम मैं इसको अपने विश्वास में लेता हूँ। तत्पश्चात् वह गीध को प्रणाम करता है और उसके द्वारा परिचय पूछे जाने पर वह बताता है कि वह विडाल है। गीध के द्वारा भगाये जाने पर विडाल कहता है कि पहले आप मेरी बात सुन लीजिये फिर यदि मैं आपको मारने योग्य लगूँ तो मार देना।

टिप्पणी- उपसृत्य – उप+सृ+क्तवा+ल्यप्। वचनम् – वच्+ल्युट्। हन्तव्य: - हन्+तव्यत्। यत: - क्योंकि

जातिमात्रेण किं कश्चित् हन्यते पूज्यते क्वचित्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्य: पूज्योऽथवा भवेत्॥

हिन्दी अनुवाद — केवल जातिमात्र से कोई क्या मारने या पूजने के योग्य होता है ?अर्थात् नहीं किन्तु व्यवहार जानकर ही मारने या पूजने योग्य होता है।

व्याख्या — विडाल स्वयं को बचाने के लिए गीध को तर्क के साथ समझाता है कि किसी भी व्यक्ति का आंकलन उसकी जाति के आधार पर नहीं किया जा सकता। जाति से कोई सम्मान या मृत्यु के योग्य नहीं होता बल्कि व्यक्ति का व्यवहार (चरित्र) ही सर्वोपरि है। यदि उसका व्यवहार श्रेष्ठ है तो वह पूजा के योग्य होता है और यदि उसका व्यवहार ठीक नहीं है तो वह मारने के योग्य होता है। इसलिए सर्वप्रथम व्यक्ति के व्यवहार को परखना चाहिए।

टिप्पणी- पूज्य: - पूज् +यत्। परिज्ञाय – परि +ज्ञा +क्तवा +ल्यप्। अनुष्टुप दन्द है।

गृध्रो ब्रूते – ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ? सोऽवदत् – अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी , ब्रह्मचारी , चान्द्रायण , व्रतमाचरैस्तिष्ठामि। यूयं धर्मज्ञानरता विश्वासभूमय इति पक्षिण: सर्वे सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति। अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्देभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागत:। भवनत्श्चैतादृशा धर्मज्ञा यन्मामतिथि हन्तुमुद्यता:। गृहस्थ धर्मश्च एष: -

अरावयप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुं पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुम:॥

हिन्दी अनुवाद - गीध बोला – कहो क्यों आये हो ? तब बिलाव बोला मैं यहाँ गंगा के किनारे नित्य स्नान कर , शाकाहारी भोजन करने वाला ब्रह्मचारी हूँ और चान्द्रायण व्रत करता हुआ यहाँ निवास करता हूँ। आप धर्मज्ञानी और विश्वास के योग्य हैं इस बात को सब पक्षी सदा मेरे सामने कहा करते हैं। इसलिए विद्या और अवस्था में आप वृद्ध हैं अत: आप से धर्म की बातें सुनने आया हूँ। किन्तु आप ऐसे धर्मज्ञानी है कि मुझ अतिथि को मारने के लिए उद्यत हैं। और गृहस्थों का धर्म यह है कि — अपने घर आये हुए शत्रु का भी उचित सत्कार करना चाहिए। जैसे – वृक्ष अपने काटने वाले के समीप गयी छाया को समेट नहीं लेता है अर्थात् धूप से सन्तप्त अपने शत्रु का सन्ताप भी दूर करता है।

व्याख्या — गीध के द्वारा विडाल के वहाँ आने का कारण पूछने पर वह कहता हे कि वह नित्य गंगा स्नान करने वाला , शाकाहारी ब्रह्मचारी है। पक्षियों के मुख से गीध की प्रशंसा सुनकर वह यहाँ आया था किन्तु विडाल कहता है कि आप कैसे धर्मज्ञानी और वृद्ध हैं कि मुझ अतिथि को मारने के लिए उद्यत हैं। जबकि शास्त्रों में अतिथि को देवतुल्य कहा गया है। विडाल पुन: गीध को समझाते हुए कहता है कि घर आये हुए शत्रु का भी आदर सत्कार उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार वृक्ष अपने शत्रु (वृक्ष को काटने वाला) के ऊपर से छाया को दूर नहीं करता बल्कि धूप से उसकी रक्षा ही करता है।

टिप्पणी- श्रोतुम् – श्रु +तुमुन्। धर्मज्ञा – धर्मं जानन्ति इति धर्म +ज्ञा +क्त। उपसंहरते – उप +सम् +हृ +लट् (प्र0 पु0 ए0 व0) अनुष्टुप छन्द है।

यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाऽपि अतिथि: पूज्य एव। यत: -

तृणानि भूमिरूदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।

हिन्दी अनुवाद — यदि धन आदि न हो तो मधुर एवं प्रिय वचनों से भी अतिथि सत्कार करना चाहिये। क्योंकि – तृणमय आसन , बैठने का स्थान, जल और चौथी मधुर और सत्य वाणी इनका सज्जनों के घर में कभी अभाव नहीं होता।

व्याख्या — विडाल गीध से कहता है कि सज्जनों के घर में उपरोक्त चार वस्तुओं का कभी भी अभाव नहीं होता चाहे अन्य वस्तुऐं उपलब्ध हो अथवा न हो। अर्थात् घर आये हुए अतिथि को बैठने का स्थान ,आसन एवं जल प्रदान करके मधुर वचनों के द्वारा सत्कार करना चाहिए। क्योंकि अतिथि देवता के समान होता है।

टिप्पणी - इस श्लोक के माध्यम से अतिथि के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अनुष्टुप छन्द है। अन्यच्च – और भी

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागत:।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽभ्यागतो गुरू: ।।

हिन्दी अनुवाद — बालक, वृद्ध अथवा युवा जो भी घर पर आया हुआ है , उसकी पूजा करनी चाहिए। क्योंकि अतिथि सबके लिए गुरूवत् पूज्यनीय है।

व्याख्या — भारतीय संस्कृति में 'अतिथि देवो भव ' की उदात्त भावना को प्रतिपादित किया गया है। अर्थात अतिथि देवतुल्य होता हे इसलिए घर पर आये हुए अतिथि का चाहे वह किसी भी आयुवर्ग का हो उसकी पूजा अर्थात् स्वागत –सत्कार करना चाहिए क्योंकि वह सबसे महान होता है।

टिप्पणी — आगत: - आ +गम् +क्त । विधातव्या – वि+धा +तव्य। अनुष्टुप छन्द है।

अपरञ्च – और भी

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधव:।
न हि संहरते ज्योत्सनां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन: ।।

हिन्दी अनुवाद — साधुपुरूष गुणहीन प्राणियों पर भी दया करते हैं , जैसे चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर पडी अपनी किरणें नहीं हटाता है।

व्याख्या - बिना किसी भेदभाव के जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका को चारो ओर फैलाता है वह चाण्डाल के घर से अपनी किरणों को समेटता नहीं है । उसी प्रकार सज्जन पुरूषों का यह स्वभाव ही होता है कि वह समस्त प्राणियों पर दया करते हैं चाहे वह गुणी हो अथवा गुणहीन।

टिप्पणी - चाण्डाल: - चाण्डालस्य वेश्मन: (ष0 त0) अनुष्टुप छन्द है।

अपरञ्च – और भी

अतिथिर्यस्य भग्नाशों गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।

हिन्दी अनुवाद — जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश होकर वापस जाता है तो वह अतिथि उस गृहस्थ को अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

व्याख्या — घर आये हुए अतिथि का यथाशक्ति सम्मान करना चाहिए। यदि किसी के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है तो वह उस व्यक्ति (गृहस्थ) के समस्त पुण्य कर्मों का फल अपने साथ लेकर और अपने पापों को उसे देकर चला जाता है।

टिप्पणी - दुष्कृतम् – दुस् +कृ +क्त। दत्वा - दा +क्त्वा। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागता ।
पूज्यनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथि: ।।

हिन्दी अनुवाद — उत्तम वर्ण के घर यदि नीच वर्ण का भी अतिथि आये तो उसका उचित सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि सभी देवताओं का स्वरूप होता है।

व्याख्या — अतिथि के महत्व को बताते हुए कहा जा रहा है कि घर आये हुए अतिथि की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए उसका यथायोग्य सम्मान करना चाहिए। यदि किसी उच्चवर्ण (ब्राह्मणादि) के घरा पर निम्न वर्ण (शूद्र) का अतिथि भी आये तो उसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि देवतुल्य होता है अर्थात् देवताओं की सेवा से जो फल प्राप्त होता है वही फल अतिथि सेवा से भी प्राप्त होता है।

टिप्पणी - आगत: - आ + गम् + क्त। पूज्यनीय: - पूज् + अनीयर्। अनुष्टुप छन्द है।

गृध्रोऽवदत् – मार्जारो हि मांसरूचि । पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति,तेनाऽहमेदं ब्रवीमि। तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णो स्पृशति , ब्रूते च मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम् । परस्परं विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम् ' अहिंसा परमोधर्म:' इत्यत्रैकमत्वम् ।

हिन्दी अनुवाद — गीध बोला – बिलाव को माँस विशेष प्रिय होता है ,और यहाँ पक्षियों के बच्चों निवास करते हैं इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ। यह सुनकर बिलाव ने भूमि स्पर्श कर कान पकड कर बोला – मैनें धर्मशास्त्र को सुनकर और तृष्णा को त्यागकर अत्यन्त कठिन चान्द्रायण व्रत किया है। आपस में धर्मशास्त्र का मतभेद होने पर भी 'अहिंसा परम धर्म है ' इसमें सभी का एकमत है।

व्याख्या- बिलाव के वहाँ रहने की इच्छा को जानकर गीध कहता है कि तुमको माँस विशेष प्रिय होता है और यहाँ पर पक्षियों के बच्चे निवास करते हैं इस कारण यहाँ नहीं रूक सकते। तब बिलाव ने कहा कि मैनें धार्मिक ग्रन्थों को सुनकर अपनी इच्छाओं को त्याग कर अत्यन्त कठोर चान्द्रायण व्रत किया है। विभिन्न धर्मशास्त्रों का अन्य विषयों में भले ही मतभेद हो किन्तु अहिंसा सबसे बडा धर्म है इससे सभी सहमत है। बिलाव कहता है कि मैंने हिंसा को त्याग कर अहिंसा का मार्ग अपना लिया है और अब मैं माँसभक्षी नहीं हूँ अत: आप मुझे यहाँ रूकने दीजिये।

टिप्पणी - स्पृशति – स्पृश् + लट् (प्र0पु0ए0व0) वीतरागेण – वीत: राग: यस्य स: तेन (बहुब्रीहि)

यत: - क्योंकि

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नरा: सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नरा: स्वर्गगामिन: ।।

हिन्दी अनुवाद — जो मनुष्य सभी प्रकार की हिंसा से विरत है , जो सब प्रकार के सुख-दु:ख तथा मान-अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और जो समस्त प्राणियों को आश्रय देते हैं ,वे मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं।

व्याख्या — अर्थात् वे ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं जो किसी प्राणी को नहीं मारते या किसी भी प्रकार की हिंसा से विरत हैं जो सभी प्रकार के द्वन्द्वों को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और जो सभी के आश्रयभूत हैं।

टिप्पणी - आश्रय: - आ +श्रि + अच्। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य: ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ।।
मर्त्तव्यमिति यद् दु:खं पुरूषस्योपजायते ।
शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम ।।

हिन्दी अनुवाद — धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य का साथ देता है और सब तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। और 'मुझे मरना ही होगा' ऐसा सोचकर या सुनकर जो कष्ट स्वयं को होता है वैसा ही कष्ट दूसरो को होगा ऐसा समझकर कभी किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि मृत्यु के साथ ही अन्य सभी वस्तुओं का अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है केवल धर्म ही शेष रहता है अत: वह सच्चा मित्र है। और अपनी मृत्यु को विचार कर जो कष्ट व्यक्ति को स्वयं होता है उसका दूसरे के द्वारा अनुमान से वर्णन नहीं किया जा सकता है। अत: जो कष्ट मुझे प्राप्त होगा वैसा ही कष्ट दूसरे को भी होगा यदि कोई ऐसा विचार करता है तो वह कभी किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता अर्थात् वह हिंसा त्याग देगा।

टिप्पणी- नाशम् – नश् + घञ् । सुहृत् – शोभनं हृदयं यस्य स: (बहुव्रीहि) मर्तव्यम् – मृ + तव्यत् परिवर्णितुम् - परि+ वर्ण +तुमुन्। अनुष्टुप छन्द है।

किञ्च – और भी

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयो: पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्य: प्राणैर्विमुच्यते॥

श्रृणु पुन: - फिर सुनो

स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनाऽपि प्रपूर्यते।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे क: कुर्यात् पातकं महत्॥

हिन्दी अनुवाद — जो प्राणी जिस समय जिस प्राणी का माँस खाता है उन दोनों का भेद तो देखो खाने वाले को तो एक क्षण के लिए आनन्द मिलता है और दूसरा अपने जीवन से अलग हो जाता है। और जो पेट स्वयं वन में उत्पन्न होने वाले शाक – भाजी आदि से भरा जा सकता है तो उस पेट रूपी जलती हुई भट्ठी के लिए भयंकर पाप कौन करें।

व्याख्या — भक्ष्य और भक्षक के भेद को बताते हुए कह रहे हैं कि जब एक प्राणी दूसरे प्राणी को खाता है तो उन दोनों के बीच कितना अन्तर होता है। एक खाने वाले को तो क्षण भर का आस्वाद प्राप्त होता है किन्तु दूसरा हमेशा के लिए इस संसार से विदा हो जाता। यदि इस क्षुधा को वन मे उत्पन्न शाकादि से शान्त किया जा सकता है तो उसके लिए इतना पाप कर्म क्यों किया जाय अर्थात् निर्दोष प्राणी को मार कर क्यो खाया जाये।

टिप्पणी - प्रीति: - प्री +क्तिन्। जात: - जन् +क्त अनुष्टुप छन्द है।

एवं विश्वासस्य स मार्जारस्तरू कोटरे स्थित: । ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाकृम्य स्वकोटरमानीय प्रत्यहं खादति। येषामपत्यानि खादितानि तै: शोकार्ते: विलपद्भिस्तिस्ततो जिज्ञासा समारब्धा । तत्परिज्ञाय मार्जार: कोटरान्नि:सृत्य बहि: पलायित: । पश्चात् क्षिभिस्तिस्ततो निरूपयद्भिस्तत्र तरूकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि । अनन्तरं च ऊचु: - "अनेनैव जरद्गवेनास्माकं शावका खादिता: "इति सर्वै: पक्षिभिर्निश्चित्य गृध्रो व्यापादित:।

हिन्दी अनुवाद - इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करके वह बिलाव वृक्ष के खोखले में रहने लगा। कुछ दिन बीतने पर वह पक्षियों के बच्चों को मारकर खोखले में लाकर प्रति दिन खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चे खाये गये थे वे शोकातुर हो विलाप करते हुए इधर –उधर खोज करने लगे। यह जानकर वह बिलाव खोखले से निकल कर भाग गया। इसके पश्चात् खोजते हुए पक्षियों ने उस पेड के कोटर में बच्चों की हड्डियाँ प्राप्त की। तब वे बोले इसी जरद्गव ने हमारे बच्चों को खाया है , इस प्रकार सब पक्षियों ने निश्चय कर उस गीध को मार डाला।

व्याख्या - उस बिलाव ने गीध के प्रति अपना विश्वास स्थापित करके उसी वृक्ष के कोटर में रहकर उन पक्षियों के बच्चों को खा लिया। और उन पक्षियों ने यह समझा कि इसी गीध ने हमारे बच्चों को खा डाला इसलिए गीध को सब पक्षियों ने मिलकर मार डाला। अत: कहा जाता है कि अज्ञात कुल और शील वाले व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिए।

टिप्पणी - नि:सृत्य - निर्+सृ +क्तवा + ल्यप्। विलपद्भि: - वि +लप् +शतृ (तृ0 ब0 व0)

बोध प्रश्न:3

अभ्यास प्रश्न --- 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1- गृध्रकूट नामक पर्वत पर ---------- का वृक्ष था।
2- विडाल का नाम ---------- था।
3- आगतं तु ---------- वीक्ष्य नर: कुर्य्यात् यथोचितम्।
4- व्यवहार जानकर ही व्यक्ति ---------- या पूजने योग्य होता है।
5- तृणानि भूमिरूदकं ---------- चतुर्थी च सुनृता।
6- अतिथि सबके लिए ---------- पूज्यनीय है।
7- चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका को ---------- के घर से वापस नहीं लौटाता है।
8- स्वच्छन्दवन जातेन ---------- प्रपूर्यते।

अभ्यास प्रश्न --- 2

निम्नलिखित का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये ।

1- जरद्गव नाम का एक वृद्ध व्याघ्र था। ( )
2- गंगा नदी के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत है। ( )
3- दीर्घकर्ण नामक विडाल जरद्गव के समीप आया था। ( )
4- पाकड के वृक्ष पर चूहे के बच्चे रहते थे। ( )
5- दीर्घकर्ण जीर्ण नख और नेत्रहीन गीध था। ( )
6- दुष्ट व्यक्ति के घर में सुमधुर वाणी का अभाव नहीं होता। ( )
7- अतिथि देवस्वरूप होता है। ( )
8- मृत्यु के पश्चात् धर्म ही मनुष्य का साथ देता है। ( )
9-

5.3.4 मूषक परिव्राजक कथा (मूलपाठ अर्थ,व्याख्या, टिप्पणी)

अस्ति चम्पकाऽभिधानायां नगर्य्यां परिव्राजकाऽवसथ:। तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राट प्रतिवसति। स च भोजनाऽवशिष्ट भिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति। अहं च तदन्नमुत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्ष्यामि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद् वीणाकर्णोनाम परिव्राजक: समायात: , तेन सह कथाप्रसंगाऽवस्थितो मम त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। वीणाकर्ण उवाच – सखे ! किमिति मम कथा विरक्तोऽन्यासक्तो भवान् ?

हिन्दी अनुवाद - चम्पक नामक नगरी में सन्यासियों का एक निवास स्थान था। हाँ चूडाकर्ण नामका एक सन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए भिक्षान्न सहित भिक्षापात्र को खूँटी पर टाँग कर सो जाया करता था। और मैं उस अन्न को प्रतिदिन कूद-कूद कर खाया करता था। कुछ दिनों पश्चात् उसका प्रिय मित्र वीणाकर्ण

नामक सन्यासी वहाँ आया। उसके साथ अनेक प्रकार की कथाओं में आसक्त होते हुए भी वह मुझे डराने के लिए एक जर्जर बाँस के टुकड़े को जमीन पर मारता था।

वीणाकर्ण ने कहा – मित्र ! क्यों आप मेरी कथा को छोडकर अन्यत्र मन लगाते हो।

व्याख्या - मन्थर नामक कछुआ जब हिरण्यक नाम के चूहे से उस निर्जन वन में आने का कारण पूछता है तो हिरण्यक उसको चूडाकर्ण और वीणाकर्ण सन्यासियों वाली कथा सुनाता है।

टिप्पणी - भिक्षापात्रम् – भिक्षाया: पात्रम् (ष0त0)

यत: -क्योंकि

मुखं प्रसन्नं विमलां च दृष्टि
कथाऽनुरागो मधुरां च वाणी ।।
स्नेहोऽधिक: सम्भ्रमदर्शनञ्च
सदाऽनुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ।।

अदृष्टिदानं, कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरिताऽनुकीर्तनम्।
कथाप्रसंगेन च नाम विस्मृतिर्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ।।

हिन्दी अनुवाद — मुख पर प्रसन्नता, स्वच्छ दृष्टि , वाणी में प्रेम, अत्यधिक स्नेह, पुन: पुन: देखना, यह सब अनुरक्त मनुष्यों के लक्षण हैं।

दृष्टि न डालना, किये हुए उपकार को न मानना, सम्मान न करना, दुराचरण को प्रकाशित करना, वार्ता प्रसंग में याद भी नहीं करना ये पाँच चिह्न मनुष्यों के विरक्त भाव को व्यक्त करते हैं।

व्याख्या — अर्थात् प्रसन्न मुख, विमल नेत्र, वार्तालाप में प्रीति, अधिक स्नेह और किसी के आने पर हडबडाकर देखना ये सभी लक्षण प्रेमी पुरूष के होते हैं और इसके विपरीत विरक्त मनुष्यों के लक्षण होते हैं ।विरक्त पुरूष असन्तुष्ट होकर देखता है और पूर्वकृत उपकारों को भूल जाना , किसी का सम्मान न करना , दोषों को प्रकट करना और मौके पर नाम तक भी भूल जाना आदि विरक्त पुरूष के लक्षण है।

टिप्पणी - दृष्टि – दृश+ क्तिन्। प्रसन्नम् – प्र +सद् +क्त। प्रथम श्लोक में उपजाति छन्द तथा द्वितीय में वंशस्थ छन्द है।

चूडाकर्णेन उक्तम् – भद्रं नाहं विरक्त: , किन्तु पश्य , अयं मूषिको ममाऽपकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्यं भक्षयति। वीणाकर्णो नागदन्तमवलोक्याह – कथमयं मूषिक: स्वल्पबलोऽप्ये – तावद् दूरमुत्पतति ? तदत्र केनाऽपि कारणेन भवितव्यम्।

हिन्दी अनुवाद — चूडाकर्ण ने कहा – भद्र मैं तुम्हारी बातों से विरक्त नहीं हूँ। किन्तु देखो यह चूहा मेरा अपकार करने वाला है। यह सदा कूद –कूद कर मेरे पात्र में स्थित भिक्षान्न को खा जाया करता है। तब वीणाकर्ण ने खूँटी की ओर देखकर कहा यह चूहा अल्प बल वाला होते हुए भी इतनी ऊँचाई तक कैसे कूद जाता है ? इसमें अवश्य कोई कारण होना चाहिए।

व्याख्या — वीणाकर्ण के द्वारा कथा सुनाये जाने पर चूडाकर्ण का ध्यान बार-बार खूँटी की ओर जा रहा था जिसे देखकर वीणाकर्ण ने इसका कारण पूछा। तब चूडाकर्ण ने बताया कि यह चूहा उसका भिक्षापात्र में बचा हुआ अन्न खा जाया करता है। तब वीणाकर्ण कहा कि इसमें अवश्य कोई न कोई कारण होगा क्योंकि चूहा जैसा छोटा प्राणी इतनी ऊँचाई तक कैसे कूद जाता है।

टिप्पणी — विरक्त: - वि+रञ्ज् +क्त। उत्प्लुत्य – उत् + प्लु +क्त्वा + ल्यप्।

क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम् – कारणं चात्र धनबाहुल्यमेव भविष्यति। यत: -

धनवान् बलवाँल्लोके सर्व: सर्वत्र सर्वदा।

प्रभुत्वं धनमूलं हि संज्ञामप्युपजायते ।।

हिन्दी अनुवाद — कुछ देर सोचकर वीणाकर्ण ने कहा यहाँ धन का आधिक्य ही कारण होगा । क्योंकि – संसार में सभी मनुष्य धन के कारण ही पूजे जाते हैं और राजाओं के प्रभुत्व का कारण धन ही है ।

व्याख्या — इस संसार में जिसके पास धन है वही व्यक्ति बलशाली होता है । धन की अधिकता के कारण ही राजा को लोग (प्रजा) अपना स्वामी मानते हैं । अत: इस छोटे से चूहे के शक्तिसम्पन्न होने के पीछे भी धन ही कारण होगा । टिप्पणी — धनवान् – धन + मतुप । अनुष्टुप छन्द है ।

तत: खनित्रमादाय तेन विवरं खनित्वा चिरसंचितं मम धनं गृहीतम् । तत: प्रभृति निजशक्तिहीन: सत्त्वोत्साहरहित: स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षम: सत्रासं मन्दमन्दमुपसर्पश्च चूडाकर्णेनावलोकित: । ततस्तेनोक्तम् –

धनेन बलवाँल्लोके धनाद्भवति पण्डित: ।

पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ।।

हिन्दी अनुवाद — इसके बाद उस सन्यासी ने फावडा लेकर मेरे बिल को खोदकर बहुत दिनों से एकत्रित किया हुआ मेरा धन ले लिया । उसी दिन से मैं शक्तिहीन , पराक्रम तथा उत्साह से रहित अपने लिए भोजन ढूँढ़ने में भी असमर्थ हो गया और एक दिन मैं डर के कारण धीरे-धीरे जा रहा था कि मुझे उस चूडाकर्ण सन्यासी ने देखा और इसके पश्चात् उसने कहा – संसार में मनुष्य धन से ही बलवान होता है और धन से ही पण्डित होता है । इस दीन चूहे को तो देखो (धनहीन होने के कारण) यह अपनी जाति के समान हो गया ।

व्याख्या — सन्यासी के द्वारा उस चूहे का संचित धन छिन जाने से वह शक्तिहीन हो गया । इसलिए सत्य ही कहा गया है कि धन ही व्यक्ति को बलवान् और विद्वान बनाता है ।

टिप्पणी - खनित्र – खन् +इत्र । बलवान् – बल+ मतुप् । समता – सम + तल् + टाप् । अनुष्टुप छन्द

किञ्च – और भी

अर्थेन तु विहीनस्य पुरूषस्याल्पमेधस: ।

क्रिया: सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।।

अपरञ्च – और भी

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा: ।

यस्यार्था: स पुमांल्लोके यसयार्था: स हि पण्डित: ।।

हिन्दी अनुवाद — जिस प्रकार गर्मियों में छोटी-छोटी नदियों का जल सूख जाता है ,उसी प्रकार धन विहीन मन्दबुद्धि पुरूष की समस्त क्रियायें नष्ट हो जाती है । संसार में जिसके पास धन है उसी के सब मित्र हैं, जिसके पास धन है उसी के सब कुटुम्बी है , जिसके पास धन है वही बडा पुरूष है और जिसके पास धन है वही पण्डित (विद्वान) है ।

व्याख्या — दरिद्र हो जाने से अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन मनुष्य के सभी काम उसी प्रकार बिगड जाते हैं जैसे गर्मी में छोटी नदियाँ सूख जाती है । और इस संसार में जिसके पास धन है उसी को सब वस्तुऐं एवं रिश्ते सुलभ हैं ।

टिप्पणी - अल्पमेधस: - अल्पा मेधा यस्य स: तस्य (बहुब्रीहि) अनुष्टुप छन्द है ।

अन्यच्च – और भी

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।

मूर्खस्य च दिश: शून्या: सर्वशून्या दरिद्रता ।।

अपि च – और भी

दारिद्रयान्मरणाद्वापि दारिद्रयमवरं स्मृतम् ।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्रयमति दु:सहम् ।।

हिन्दी अनुवाद — पुत्ररहित का तथा जिसके सच्चा मित्र नहीं है उसका घर सूना है , मूर्ख के लिए सभी दिशाऐं सूनी है और दरिद्रता तो सभी अभावों का स्थान है। दरिद्रता और मृत्यु इन दोनों में दारिद्रय को ही बुरा कहा गया है , क्योंकि मृत्यु थोडे कष्ट से ही हो जाती है किन्तु दरिद्रता जीवन भर कष्ट देती है।

व्याख्या —अभिप्राय यह है कि दरिद्र के लिए संसार में कहीं भी स्थान नहीं है। दरिद्र होने से तो मर जाना अच्छा है क्योंकि उसमें कुछ समय का ही कष्ट है किन्तु दरिद्रता पूरे जीवन भर कष्ट देती है। अत: धनाभाव अभावों में बलवान है।

टिप्पणी - दरिद्रता – दरिद्र +तल् +टाप्। अनुष्टुप छन्द है।

अपरञ्च — और भी

तानीन्द्रियाण्याविकलानि तदेव नाम ,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित: पुरूष: स एव,
अन्य: क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।

एतत्सर्वमाकर्ण्य मयाऽऽलोचितम् ममात्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्, यच्चान्यस्मै एतद् वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम्।

हिन्दी अनुवाद — धन सम्पन्नता की स्थिति मे जो विकार रहित इन्द्रियाँ थी, वे ही इस समय भी है, पूर्व में जो नाम था वही इस समय भी है, पूर्व की तरह ही तीक्ष्ण बुद्धि है, वही वाणी ,वही पुरूष है किन्तु धन की उष्णता से हीन होने पर क्षण भर उसकी दशा बदल जाती है ,ये कैसी विचित्र और आश्चर्य की बात है। इस प्रकार चूडाकर्ण की सारी बातें सुनकर मैनें सोचा कि अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है और दूसरे से यह समाचार कहना भी उचित नहीं है।

व्याख्या - दरिद्रता अत्यन्त कष्टकारी होती है। धनसम्पन्न व्यक्ति जब धनविहीन हो जाता है तो क्षण भर उसकी दशा ही बदल जाती है, उसी व्यक्ति को लोग पहचानते तक नहीं है। चूडाकर्ण की सम्पूर्ण बातों को सुनकर हिरण्यक (चूहा) सोचता है कि अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है ,और किसी को यह समाचार बताना भी ठीक नहीं है।

टिप्पणी - वचनम् – वच् +ल्युट्। वसन्ततिलका छन्द है।

तथा चोक्तम् – और जैसा कि कहा गया है –

अत्यन्त विमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरूषे ।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत् कुत: सुखम् ।।

हिन्दी अनुवाद —जिसका भाग्य अत्यन्त विपरीत हो गया है और सभी प्रयत्न भी निष्फल हो गये हैं। ऐसे मनस्वी किन्तु दरिद्र पुरूष को वन के अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ सुख मिलेगा।

व्याख्या -अभिप्राय यह है कि भाग्य के प्रतिकूल होने पर और प्रयत्नों के विफल होने पर मनस्वी किन्तु दरिद्र व्यक्ति को वन में चले जाना चाहिये जिससे वह उपहास का पात्र न बन सके।

टिप्पणी - मनस्विन- मनस् +विनि। अनुष्टुप छन्द है।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।

हिन्दी अनुवाद — बुद्धिमान पुरूष को अपने धन का नाश, मन का दु:ख, घर की बुराई, किसी दूसरे के द्वारा ठगा जाना तथा अपमानित होना इनको प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

व्याख्या — बुद्धिमान व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कष्टों को दूसरों के सामने व्यक्त नहीं करते हैं। इसी बात को हिरण्यक भी सोचता है कि मुझे अपने धनविहीन होने की बात किसी से नहीं कहनी चाहिए।

टिप्पणी — वञ्चनम् – वञ्च् +ल्युट् । अपमानम् - अप +मा +ल्युट्। अनुष्टुप छन्द है।

यच्चाऽत्रैव याञ्चया जीवनं तदतीव गर्हितम्। यत: -

दारिद्र्याद् ध्रियमेति ह्रीपरिगत: सत्त्वात्परिभ्रश्यते ,

नि:सत्त्व: परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।

निर्विण्ण: शुचमेति, शोकनिहतो बुद्धया परित्यज्यते ,

निर्बुद्धि:क्षयमेत्यहो ! निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ।।

हिन्दी अनुवाद — और यहाँ पर (मठ) रह कर मेरा भिक्षा माँग कर जीवन व्यतीत करना यह तो अत्यन्त निन्दित है। क्योंकि – निर्धनता से मनुष्य लज्जित होता है। लज्जित पुरूष पराक्रमहीन हो जाता है। पराक्रमहीन मनुष्य दूसरों से अपमानित होता है , और अपमान से दु:खी होता है ,दु:खी शोकको प्राप्त करता है , शोकाकुल बुद्धिरहित हो जाता है , और बुद्धिहीन मनुष्य का नाश हो जाता है। अहो! निर्धनता सभी आपत्तियों का स्थान है।

व्याख्या - अर्थात् निर्धनता ही सभी आपत्तियों का मूल स्थान है। समाज में धनवान का सम्मान और निर्धन का अपमान होता है। इस निरादर से मनुष्य दु:खी हो जाता है। क्रमश: वह बुद्धिहीन हो कर विनष्ट हो जाता है।

टिप्पणी - निर्विण्ण: - निर्+विद् +क्त। शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

इति विमृश्य त्तत् – किमहं परपिण्डेनात्मानं पोषयामि ?कष्टं भो ! तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम् । इत्यालोच्याऽपि लोभात्पुनरप्यर्थं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम् ।धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टो नूनमात्मद्रोही भवति। तथा चोक्तम् –

लोभेन बुद्ध्यिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम्।

तृषाऽर्त्तो दु:खमाप्नोति परत्रेह च मानव:।

हिन्दी अनुवाद - इस प्रकार विचार कर कि फिर मैं क्यों दूसरों के दिये गये भोजन से अपना पालन करूँ। अहो ! कष्ट है कि यह भी मृत्यु का दूसरा द्वार है। इस प्रकार विचार कर भी लोभ से फिर मैनें धन ग्रहण करने का विचार किया। क्योंकि धन का लोभी और असन्तोषी मनुष्य अपनी आत्मा से भी विद्रोह करने वाला होता है। जैसा कि कहा गया है – लोभ से मनुष्य की बुद्धि चंचल होती है , लोभ से ही तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से ही मनुष्य इस लोक और परलोक में दु:ख प्राप्त करता है।

व्याख्या - अभिप्राय यह है कि लोभ की अधिकता से ही मनुष्य को कष्ट प्राप्त होता है। और लोभ के कारण ही मनुष्य अपनी आत्मा की आवाज को भी नहीं सुनता है।

टिप्पणी - लोभेन – लुभ् +घञ् (तृ0ए0व0)। अनुष्टुप छन्द है।

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितश्चाऽचिन्तयम् –

धनलुब्धो, ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रिय:।

सर्वा एवाऽऽवदस्तस्य , यस्य तुष्टं न मानसम् ।।

तदत्राऽवस्थोचितकार्यपरिच्छेद: श्रेयान्। यत: -

को धर्मो, भूतदया, किं सौख्यमरोगिता, जगति जन्तो:।

क: स्नेह:, सद्भाव:, किं पाण्डित्यं, परिच्छेद: ।।

इत्यालोच्याहं निर्जनवनमागत: ।

हिन्दी अनुवाद — इसके पश्चात् उस वीणाकर्ण ने धीरे- धीरे मुझे जाते हुए देखकर एक फटे हुए बाँस के टुकडे से मारा और मैं सोचने लगा – जो मनुष्य धन का लोभी ,असंतोषी, चंचल चित्त वाला, इन्द्रियों के वश में रहने वाला है, तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, ऐसे मनुष्य को सब प्रकार की आपत्तियाँ आकर घेर लेती हैं । इसलिए यहाँ अब अपनी अवस्था के अनुसार कर्त्तव्य कार्य का निर्णय कर लेना ही अच्छा है । क्योंकि – धर्म क्या है ? प्राणियों पर दया करना । संसार में सुख क्या है ? नीरोग रहना । स्नेह क्या है ? सभी जीवों पर सद्भाव रखना । पाण्डित्य क्या है ? कर्त्तव्य– अकर्त्तव्य का निश्चय करना । ऐसा विचार कर मैं मठ (सन्यासियों का निवास स्थान) को छोडकर निर्जन वन में चला आया ।

व्याख्या — धन के लोभी मनुष्य को आपत्तियाँ घेर लेती है ऐसा विचार कर हिरण्यक ने अपने विवेक से मठ को छोडकर वन में जाने का निर्णय लिया ।

टिप्पणी- सन्तुष्टम – सम् +तुष्ट +क्त । परिच्छेद: - परि + छिद् +घञ् । अनुष्टुप छन्द है ।

बोध प्रश्न:4

अभ्यास प्रश्न — 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1• ---------- नामक नगरी में सन्यासियों का एक निवास स्थान है ।

2• चूडाकर्ण का मित्र ---------- नामक सन्यासी था ।

3• क्रिया: सर्वा विनश्यन्ति ---------- कुसरितो यथा ।

4• धनाभाव ---------- में बलवान है ।

5• वञ्चनं चापमानं च ---------- प्रकाशयेत् ।

5•4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किस प्रकार वृद्ध व्याघ्र ने सोने के कंगन का लालच देकर अपनी मीठी-मीठी बातों से पथिक को सरोवर में स्नान करने के लिए प्रेरित किया और जब पथिक कीचड़ में फँस गया तब व्याघ्र ने उसे मार कर खा लिया । आपने इस इकाई को पढ़ कर यह भी जाना कि किसी भी प्राणी के स्वभाव में परिवर्तन कर पाना अत्यन्त कठिन है । मृग श्रृगाल की कथा को पढ़कर आप जान पायें कि किस प्रकार क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने झूठा विश्वास दिलाकर चित्रांग नामक मृग से मित्रता की और उसको अपनी योजना के अनुसार किसान द्वारा बिछाये गये जाल में फँसवा दिया गया ताकि उसे मृग का माँस खाने को मिल सके । किन्तु मृग के मित्र सुबुद्धि नामक कौवे ने उसे अपने बुद्धि बल से मुक्त करवाया और वह सियार किसान की लाठी से स्वयं मारा गया । अत: आपने जाना कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता विपत्ति का कारण होती है और जो विपत्ति में साथ दे वही सच्चा मित्र होता है ।

आपने इस इकाई को पढ़ कर यह भी जाना कि दीर्घकर्ण नामक डाल की झूठी बातों पर विश्वास करके और उसको आश्रय देकर निर्दोष जरद्गव पक्षियों के द्वारा मारा गया । मूषक परिव्राजक कथा के अध्ययन से आप ने जाना कि किस प्रकार चूहा (हिरण्यक) चूडाकर्ण के भिक्षापात्र से अवशेष अन्न को कूद-कूद कर खा जाता था जिसके कारण चूडाकर्ण का ध्यावन वीणाकर्ण की कथाओं में नही लग रहा था। तब वीणाकर्ण ने कहा कि इस अल्पक बल वाले चूहे के इतने ऊपर उछलने में कोई न कोई कारण अवश्यब होगा और यह कारण धन ही होगा। तब उस चूहे का संचित धन बिल से खोदकर निकाल लिया गया और धनविहीन हो जाने पर वह चूहा

निर्जन वन को चला गया। इस कथा के द्वारा दरिद्र व्यवक्ति की समाज में क्या स्थिति होती है एवं धन का क्या महत्त्व है आपने यह ज्ञान भी प्राप्त किया।

5•5 शब्दावली –

व्याघ्र	-	बाघ
सरस्वतीतीरे	-	तालाब के किनारे
संसर्ग	-	सम्बन्ध
क्षुधार्त:	-	भूखा
व्याधितस्य	-	रोगी को
नीरूजस्य	-	निरोगी को
प्रकृत्या	-	स्वभाव से
मूर्ध्नि	-	शिरोभाग पर
व्यापादित:	-	मार दिया गया
सुजीर्णमन्नम्	-	अच्छी तरह पका हुआ अन्न
जम्बुक:	-	सियार
मरीचिमालिनी	-	रश्मियों की माला वाले (सूर्य)
चिरमित्रम्	-	पुराना मित्र
भट्टारकवासरे	-	रविवार के दिन
मुहुर्मुहु:	-	बार-बार
वञ्चक	-	धूर्त
वीक्ष्यो	-	देखकर
गृध:	-	गीध
मार्जार:	-	विडाल
परिज्ञाय	-	जानकर
द्रुम:	-	वृक्ष
अभ्यागत:	-	अतिथि
दग्धो दरस्य	-	पेट रूपी जलती हुई भट्ठी
सम्भ्रमदर्शन	-	बार-बार देखना
नागदन्त	-	खूँटी
दुश्चित्रतानि	-	दुष्ट चरित्र

5•6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नोत्तर:1

अभ्यास प्रश्न 1 –

क. सुवर्ण ख. शुभा ग. मरूस्थल्यां घ. रोगी ङ. गाढ़े कीचड़ च. स्वभाव छ. दानं ।

अभ्यास प्रश्न 2 –

क. नहीं ख. नहीं ग. हाँ घ. हाँ ङ. नहीं च. नहीं छ. नहीं।

अभ्यास प्रश्न 3 –

क. उत्तर पृष्ठ संख्या में देखें।
ख. उत्तर पृष्ठ संख्या में देखें।

बोध प्रश्नोत्तर: 2

अभ्यास प्रश्न 4 –
क. कौवा ख. ताँत ग. भक्षक घ. कस्यचिद्रिपु: ङ. सियार ।
अभ्यास प्रश्न 5 –
क. हाँ ख. हाँ ग. नहीं घ. नहीं ङ. हाँ च. हाँ।
अभ्यास प्रश्न 6 –
1. चित्रांग 2. क्षुद्रबुद्धि नामक सियार।

बोध प्रश्नोत्तर : 3

अभ्यास प्रश्न 1 —
1• पाकर 2• दीर्घकर्ण 3• भयं 4• मारने 5• वाक् 6• गुरूव7• चाण्डातल 8• शाकेनाऽपि ।
अभ्या स प्रश्नर 2 —
1• हाँ 2• हाँ 3• हाँ 4• नहीं 5• नहीं 6• नहीं 7• हाँ 8• हाँ ।

बोध प्रश्नोत्तर : 4

अभ्या स प्रश्नर 3 — 1• चम्प क 2• वीणाकर्ण 3• ग्रीष्मे 4• अभावों 5• मतिमान्न ।

5•7 सन्दर्भग्रन्थ

1. नारायण पण्डित, हितोपदेश ,मोतीलाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
2. नारायण पण्डित, हितोपदेश, आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री आचार्य सीताराम शास्त्री , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री , प्रो0 बालशास्त्रीह। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थ प्रकाशन, कानपुर ।

5•8 उपयोगी पुस्तकें–

1. नारायण पण्डित, हितोपदेश ,मोतीलाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
2. नारायण पण्डित, हितोपदेश, आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री आचार्य सीताराम शास्त्री , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3.नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री , प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4.नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पातदक एवं व्यांख्या।कार डा0 शिवबालक द्विवेदी, डा0 रेखा शुक्लाह , डा0 रत्नाव तिवारी। ग्रन्थकम् प्रकाशन, कानपुर ।

5•9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृद्धव्याघ्र लुब्धविप्रकथा का सारांश लिखते हुए प्राप्त शिक्षाएं बताइये।

2. मृगश्रृगाल कथा का सारांश लिखिए।
3. जरद्गव विडाल कथा को अपने शब्दों में लिखकर उनसे प्राप्त शिक्षायें बतायें।
4. मूषक परिव्राजक कथा का सारांश लिखिये।
5. मूषक परिव्राजककथा के आधार पर निर्धन व्यक्ति की क्या स्थिति होती है, इसका वर्णन कीजिये।